

मलिक

सुहम्मद



जायशी

और उनका काव्य

मलिक मुहम्मद जायसी और उनका काव्य

(सागर विश्वविद्यालय की पी० एच० डी० की उपाधि के लिए स्वीकृत शोध प्रबंध)

डॉ० शिवसहाय पाठक

बी० ए०, (बिनास), एम० ए० पी० एच० डी०, साहित्याचार्य साहित्यरत्न



ग्रन्थम

रामबाग कानपुर

ग्रन्थम, कानपुर

मूल्य अठारह रुपए

- प्रकाशक
ग्रन्थम रामबाग, कानपुर
- प्रकाशन तिथि
नवम्बर, १९६४
- मुद्रक
विवेक प्रिन्टर्स,
ब्रह्मानगर, कानपुर

प्रारम्भिक वक्तव्य

सागर विश्वविद्यालय हिन्दी विभाग के अन्तर्गत पी-एच०डी० का शोध-काय पिछले दारह वर्षों से नियमित रूप से चल रहा है और इस समय तक प्रायः पाच दर्जन शोध-कर्ता उपाधियाँ प्राप्त कर चुके हैं। आरम्भ में कतिपय विशिष्ट कवियाँ और साहित्य पुरस्कर्ताओं पर शोध प्रबंध प्रस्तुत करने का क्रम चला था। इस विषय में एक प्रमुख कठिनाई प्रामाणिक जीवनी का अभाव की उपस्थिति हुई। स्वतः जीवनी लेखन का काम अब तक हिन्दी में गम्भीरतापूर्वक नहीं अपनाया गया जिसका मुख्य कारण उपजीव्य सामग्री की विरलता ही कहा जायगा। यद्यपि हमारा शोध-काय कवि-कृतित्व पर ही केन्द्रित रहकर सम्पन्न हो सकता था परन्तु प्रामाणिक जीवनियाँ के अभाव में वह यथेष्ट फलप्रद नहीं हो सकता था। अतएव हम आशिक रूप से अपनी शोध दिशा बदलनी पड़ी। कुछ प्रबंधयुगीन भूमिकाओं पर भी लिखे गये हैं जिनमें युग विक्षेप के साहित्य सप्ताहों की कृतियों का विवेचन किया गया है और उनके साहित्यिक और कलात्मक प्रदेय प्रकाश में लाए गए हैं। यद्यपि यह काम हिन्दी के आरम्भिक साहित्यिक आकलन के लिए आवश्यक और उपयोगी रहा है परन्तु हमने उसे ही सतोष करना हमारे लिए उचित और सम्भव न था। तब हमने आधुनिक युग के विविध साहित्यिक आन्दोलनों और उनसे निरसत कला शक्तियों में से प्रत्येक को क्वार्ड मानकर शोध-काय का तृतीय अध्याय आरम्भ किया। इस सदर्भ में स्वच्छन्दतावादी साहित्यिक विकास पर प्रायः आध दर्जन शोध विषय लिए गये जिनमें से अधिकतर काय साहित्य, नाट्यकृतियाँ समीक्षा तथा स्वच्छन्दतावाद के सद्धान्तिक आधारों पर हमारे विभाग द्वारा अनेक शोध प्रबंध प्रस्तुत किये गये हैं और अब भी उनके कुछ पक्षों पर काय किया जा रहा है। विशुद्ध वचारिक, सद्धान्तिक और कला शास्त्रीय तथ्यों के अनुशीलन के लिए भी हमारी शोध-योजना में स्थान रहा है और कुछ विशिष्ट शोध-कर्ता इस काय में भी सलग्न हैं। भारतीय साहित्य शास्त्र और कला विवेचन के सिद्धान्तों पर स्वतंत्र रूप से अलग अलग शोध-कृतियाँ प्रस्तुत करने की दिशा में भी हम अग्रसर हो रहे हैं क्योंकि हमें पता है कि भारतीय कला या साहित्यशास्त्र का अनुशीलन अब भी परम्परागत प्रणालियों से ही हो रहा है। इसमें नवीन चिन्तन और आधुनिक वैज्ञानिक उद्भावनाओं का सम्यक योग नहीं हो पाया है। हमारी पारिभाषिक शब्दावली

इस क्षेत्र में अद्यतन नहीं है। प्राचीन साहित्य चिन्तन को नया स्वरूप और नयी शान्तावली देने की आवश्यकता है। इन सबके अतिरिक्त कतिपय साम्प्रतिक साहित्यिक समस्याओं और प्रश्नों पर भी सतुलित विचारणा की आवश्यकता है जिन पर पी. एच. डी. के शोध काय लाभप्रद हो सकते हैं। उनकी ओर भी हमारी दृष्टि गई है और कुछ काय आरम्भ किया गया है।

सागर विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग में डी. लिट. के शाध सम्बन्धी विषय भी निर्धारित किए गए हैं। इनमें स्वभावतः अधिक आवश्यकता और अधिक प्रशस्त विवेचन और आकलन की आवश्यकता प्रतीत हुई है। डी. लिट. सम्बन्धी यह शोधकाय कुछ ही समय में एक स्पष्ट रूपरेखा ग्रहण करेगा। कहने की आवश्यकता नहीं कि स्कूल और सह्याय प्रत्यागत विषयों पर आनुपगिर काय करने की अपेक्षा विशिष्ट योजना के अनुसार सुसम्बद्ध और समग्र भूमिकाओं पर शोध काय करने में हमारी अधिक रुचि है और इस रुचि को साकार रूप देने और फलप्रद बनाने में हम पिछले कुछ समय से सलग्न हैं।

डा० शिवसहाय पाठक का प्रस्तुत प्रबंध सूफी कवि मलिक मुहम्मद जायसी के काय के समग्र विवेचन से संबंधित है। यद्यपि इसमें अधिकांश सामग्री जायसी के कायपक्ष को आधार बनाकर चली है परंतु शोधकर्ता ने जायसी के व्यक्तित्व परंपरा मसनवी शैली तथा कवि की भारतीय भूमिका और परिवेश का भी विस्तृत विचार किया है। जायसी की काय भाषा उनके रहस्यवाद तथा उनकी प्रमसाधना पर भी स्वतंत्र अध्याय दिए गए हैं। प्रमाख्यान काय की समस्त परंपरा का उल्लेख भी किया गया है। इस प्रकार शोध प्रबंध में जायसी के काव्य को केन्द्र में रख कर उसके पार्श्ववर्ती पक्षा का भी अच्छा अनुशीलन किया जा सका है।

लेखक की विशयता यह है कि उसने जायसी और सूफी काय पर लिखे गए समस्त विद्वानों के विचारा का सग्रह और आकलन किया है तथा उन पर विचार करने के पश्चात् अपने निर्देश दिये हैं। इस पद्धति का प्रयोग उसके शोध प्रबंध को विशाल बनाने में सहायक हुआ है। इस एक ग्रंथ के ज्वलोकन से जायसी काव्य की अख्यताओं को पूर्ववर्ती समस्त विवेचकों की विवेचना का सार प्राप्त हो सकेगा। इस प्रबंध के लेखन में शोधकर्ता ने स्पष्टता और निर्भीकता से भी काम किया है और पूर्ववर्ती विचारका पर अपनी खरी सम्प्रतियां भी दी हैं। यह आवश्यक नहीं है कि उसके सभी निष्पत्तियां या निर्देश स्वीकार किए जायें परंतु जो कुछ भी उसने लिखा है उसमें सताग्रह की अ पक्षा तटस्थ विचारणा का प्राधाय है।

शाधकर्ता का अपने शोधमाल में ही जायसी की कुछ अप्रकाशित कृतियाँ प्राप्त हुई थी, जिनका स्वतंत्र रूप में संपादन भी उसने किया है। इन नवीन कृतियाँ के मिल जाने से उसके शोध प्रबंध में कई अस्पष्ट धारणाओं की पुष्टि और स्पष्टीकरण भी हो सना है। विशेषकर जायसी की भाषा-संस्कृत विशयताओं पर इस प्रबंध से अच्छा प्रकाश पडा है।

जहा तक कवि के काव्य के कलात्मकता का संबंध है वस्तु संगठन चित्र योजना, वस्तुवर्णन भावा और रसों की योजना आदि विषयों पर लेखक ने सतुलित दृष्टि से विचार किया है। प्रस्तुत पुस्तक लेखक के शोध प्रबंध का विचित्र सशोभित स्वरूप है। उसे हम जायसी-काव्य समीक्षा का सवागीण और अद्यतन स्वरूप कह सकते हैं। इस दृष्टि से पुस्तक विद्वानों और विशारदों द्वारा स्वीकृत और समादित होगी इसी आशा और विश्वास के साथ यह प्रकाशित की जा रही है। इसके प्रकाशन में मुझ विशय सतोष और प्रसन्नता है।

—नन्दुलार वाजपयी

पूज्य गुरुवर आचाय प० नन्ददुलारे वाजपेयी

पय लाइ जेहि दीह गिआनू ।'

को

प्रणतिपूवक

निवेदन

प्रस्तुत प्रबंध में मध्ययुगीन हिंदी साहित्य के अत्यंत महान्वि मलिक मुहम्मद जायसी और उनके काव्य का सामोपाग अध्ययन प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया गया है।

हिंदी साहित्य में जायसी का सर्वप्रथम प्रकाश म लाने का श्रेय सर जाज प्रियसन और प० सुधाकर द्विवेदी को है। प्रियसन ने द्विवेदी जी की सहायता से पदमावत का संपादन किया था। द्विवेदी जी की टीना रायल एगियाटिक सोसाइटी आफ बंगाल से प्रकाशित हुई थी। उनके असामयिक निधन के कारण यह काव्य पूरा न हो सका। १९२४ ई० में प० रामचंद्र गुप्त ने पदमावत और बखरावत का संपादन किया। इस ग्रंथ की भूमिका में उन्होंने विद्वतापूर्ण शैली में जायसी के शास्त्रिक मूल्यवान का प्रयत्न किया। १९३५ ई० में गुप्तजी ने जायसी ग्रंथावली के अंतर्गत आखिरी काम रामक ग्रंथ को भी प्रकाशित किया। १९५१ ई० में डा० माताप्रसाद गुप्त ने जायसी-ग्रंथावली के अंतर्गत 'महरी बाईसी नामक ग्रंथ को भी प्रकाशित किया। जायसी और पदमावत विषयक और भी ग्रंथ समय समय पर प्रकाशित होते रहे हैं। गुप्तजी के पश्चात् जायसी के शास्त्रिक मूल्यवान का प्रयत्न कम हुआ है। इस काव्य में जो व्यक्ति प्रवृत्त हुए हैं उनकी कृतियां में प्रायः गुप्तजी का ही अनुकरण द्रष्टव्य है। उनकी मौलिकता इस बात में अवश्य है कि वे गुप्तजी के ही मतों को घटा बढ़ाकर और बाट छांटकर गंभीर करते हैं।

शुक्लजी ने भी जायसी के जीवन चरित्र, गुरु-परम्परा, पदमावत का ऐतिहासिक आधार, पदमावत की लिपि पदमावत का रचना-काल प्रभृति विषयों पर सामग्री का अभाव में बहुत कम विचार किया है। इस प्रकार स्पष्ट है कि जायसी के कृतित्व और चरित्र का अभी तक सम्यक अध्ययन अनुशीलन नहीं हो सका था। प्रस्तुत प्रबंध में इन अभावों की पूर्ति का विनम्र प्रयत्न किया गया है।

प्रस्तुत प्रबंध का विशिष्ट प्रयत्न मक्षेप में निम्नलिखित हैं -

प्रस्तावना के अंतर्गत जायसी विषयक अद्यावधि गोधा और अध्ययना का आलोचनात्मक परिचय दिया गया है। जायसी व्यक्तित्व जीवन और गुरु परम्परा के अंतर्गत प्राचीन-नवीन उपलब्ध कृतियों के प्रकाश में एतद्विषयक गोषपूर्ण नए तथ्य और विचार प्रस्तुत किए गये हैं। अभी तक यह माना जाता रहा है कि जायसी के दो गुरु थे किन्तु प्रामाणिक सामग्री के आधार पर यहाँ स्पष्ट कर दिया गया है कि प्रस्तुत जायसी के एक ही गुरु थे—महदी सख्त बरहान।

जायसी के काव्य की सामान्य रूपरेखा के अंतर्गत जायसी की स्फुट कृतियों का आलोचनात्मक शोधात्मक परिचय दिया गया है। हिंदी साहित्य में

सबप्रथम 'चित्ररेखा ममता (ममतानामा) और कहरानामा नामक ग्रंथों का विवेचन इसी प्रबंध के अंतर्गत किया गया है। जायसी की लिखी गई लगभग दो दर्जन कृतियाँ हैं। फारसी लिपि के कारण ये गुप्तप्राय हैं। 'गोध व आलोक मेरे कृतियाँ मिनती जा रही हैं और मेरा विश्वास है कि शीघ्र ही जायसी की सम्पूर्ण रचनायें प्रकाश में आ जायेंगी। चित्ररेखा हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय वाराणसी से प्रकाशित हो चुकी है। मसलानामा को भी चार प्रतियाँ उपलब्ध हो चुकी हैं और इन परिशिष्ट में संकलित कर दिया गया है। चित्ररेखा एक प्रमत्त ग्रंथ है और 'मसला' लोकांतियों का सफाई।

द्वितीय खण्ड में पदमावत का विस्तृत अनुशीलन करने का प्रयत्न किया गया है। इसके अंतर्गत पाँच अध्याय हैं। कथावस्तु मूल स्रोत तथा अन्य उपकरण शीघ्र अध्याय में एतद्विषयक सर्वांगीण अध्ययन प्रामाणिक एवं गोचरपण नये तथ्य और विचार प्रस्तुत किये गये हैं।

इस प्रबंध में पदमावत की लगभग तीन दर्जन हस्तलिखित प्रतियाँ का विवरण दिया गया है। लिपि के सम्बन्ध में विचार करते हुए स्पष्ट किया गया है कि पदमावत फारसी लिपि में ही लिखा गया था। पदमावत के रचयिता की समस्या पर भी विचार किया गया है और मेरा मत है कि इसकी रचना १४७७ ई० (१५४० ई०) में हुई थी।

अभी तक पदमावत में ऐतिहासिकता की खोज की जाती रही है और इसकी उत्तराद्ध कथा को ऐतिहासिक कहा जाता रहा है। इस प्रबंध में ऐतिहासिकता का समीक्षात्मक विवेचन करते हुए स्पष्ट कर दिया गया है कि इसमें रत्नसन वित्तोर अलाउद्दीन दिल्ली प्रभुति कतिपय नाम ही नाममात्र के लिए ऐतिहासिक हैं वस्तुतः उक्त समय पद्मिनी नाम की कोई रानी ही नहीं थी। पदमावती रानी की कहानी भारतीय लोक और साहित्य की बड़ी प्राचीन कथा है। इन सबमें जायसी की तूलिका के कल्पना विनासा और सम्भावना का ही प्राधान्य है। कथावस्तु को निश्चित निशा गति आधार और मोड़ देने के लिए पदमावत में अनेक कथानक रूढ़ियाँ की योजना की गई है। इस प्रबंध में कथाक रूढ़ियों का सविस्तार विवेचन किया गया है।

प्रबंध काय के रूप में पदमावत एक श्रेष्ठ महाकाव्य है। इसमें भारतीय प्रबंध काय-चरित्रकाय की शली और फारसी की मसनवी शली का सुन्दर समन्वय द्रष्टव्य है। चरित्र चित्रण प्रकृति चित्रण और शलीगत विवेचन के अंतर्गत पदमावत के काव्य सौष्ठव के सम्बन्ध में नवीन तथ्य एवं विचार प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। पदमावत की साहित्यिकता मसनवी शली रूपवर्णन और अप्रस्तुत विधान आदि का विशाल विवेचन भी किया गया है और शोधपूर्ण नए तथ्य भी उपस्थित किये गये हैं।

तृतीय खण्ड के अंतगत 'जायसी का रहस्यवाद 'जायसी की कायभाषा' के अतिरिक्त सूफीमत का विवाद एवं शोधपूर्ण विवेचन करते हुए जायसी की प्रेम-साधना का परिचय दिया गया है। प्रमाख्यानक परम्परा और जायसी के अतग्त शुद्ध भारतीय और सूफी प्रमाख्यानों के उत्भव एवं विकास का शोधपूर्ण परिचय दिया गया है। साथ ही सूफियों की दून और जायसी का महत्व का मूल्यांकन भी किया गया है।

जायसी ने एक विराट समवेय की चेष्टा की है। यह समवेय है सूफी प्रम पथ और भारतीय यागपथ का अध्यात्म और काय का हिंदू ससृति और मुस्लिम ससृति का इतिहास की सभावनाओं और कल्पना विलासों का भारतीय और फारसी शक्तियों का लोष-सत्त्वों और कायतत्वा का परम्परादाद और स्वच्छतावाद का। इस विराट समवेय की चेष्टा न जायसी को भारतीय साहित्य के शीपस्य कवियों में प्रमुख स्थान दिया है। वस्तुतः मध्ययुगीन हिंदी कविता में महारत्ना तुलसीदास और जायसी ही सवथ्र पठ प्रवचनार हैं।

मेरी प्रस्तुत साधना गुरुवर आचाय नन्ददुनारे बाजपेयी के चरण-कमला में सम्पन्न हुई है। उन्होंने अत्यंत प्रेम उत्साह और वत्सलता के साथ इस प्रयत्न के लिये विषय दिया निर्देश किया और अत्यंत व्यस्त रहने पर भी इस विस्तृत प्रवचन का एक एक अध्याय देखा सुना और सुधारा है। यह उन्हीं के आशीष और सुयोग्य निश्चिन का परिणाम है कि 'विरहेणा कहरानामा, और ममता (या ममनानामा) नामक जायसी की विलुप्त कृतिया प्रकाश में आ सकी हैं। उन्हीं का आशय पाकर मैं इस काय में प्रवचन हुआ—वस्तुतः मम प्रवचन की अच्छादया का सम्पूर्ण श्रेय पूरव आचाय जी का है। उनके प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करन की घष्टता कम कर ? प्रस्तुत कृति के साथ उनके चरण-कमला में करवद्ध श्रद्धावजनन हूँ वस्तुतः उनके 'अनंत उपकार और अनुग्रह में उत्पन्न हुना शक्य है।

आचाय प० विश्वनाथप्रसाद मिश्र डा० वामुदेवधारण अग्रवान स्व० प० नाथराम प्रसी प्रो० शशिनाथर नथानी भाई चन्द्रवलीसिंह, प्रो० रामलपण शुक्ल डा० राकेश गुप्त, आदि विद्वाना से मुझे प्ररणाए-महायनाए मिली हूँ। मैं इनके प्रति विनम्र कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ।

बम्बई विश्वविद्यालय के पुस्तकालयाध्यक्ष श्री माशर जी ने पुस्तक पत्र-पत्रिकाशा तथा अलम्य हस्तलिखित प्रतियों में मेरी सहायता की है मैं उनका आभारी हूँ।

प्रस्तुत प्रवचन लिखन में जिन पम्नकायना से जिन भाडारों से, जिन हस्तलिखित प्रतिया से तथा जिन विद्वाना से और जिनकी कृतिया से मूय किंचित भी सहायता मिली है उन्हें मेरा धन्यवाद। जिनके मतों का मैंने खरन-मडन किया है उन मयक प्रति मेरी श्रद्धा है। मैं समन नहीं पा रहा हूँ कि भाई डा० प्रेमशर

जी क स्नेह के प्रति किन शब्दों में आभार व्यक्त करूँ ? उनकी बहुमूल्य सहायता के लिये औपचारिक धन्यवाद का कोई महत्व नहीं है ।

अतः मैं, मैं गुरुवर आचार्य प० हजारीप्रसाद द्विवेदा के चरणों की बन्दना करता हूँ । मूलतः उन्होंने ही मुझे १९५३-५४ ई० में जायसी के अध्ययन की ओर प्रवृत्त किया था । उनका आशीर्वाद साहाय्य मुझे सदा मिलता रहा है ।

यदि प्रेम पीर के अमर गायक जायसी और उनके काव्य का यह अध्ययन हिन्दी के साहित्य देवता द्वारा स्वीकृत हुआ तो यह मेरा सौभाग्य होगा—

‘फूल सोइ जो महेसहि चर ।’

दीपावली २०२१

विनम्र,
शिवसहाय पाठक

विषय निर्देशिका

१—प्रस्तावना

१७-३६

२—जायसी विषयक अध्ययन अनुसंधान पदमावत के संस्करण

मलिक मुहम्मद जायसी— जीवन व्यक्तित्व एवं गुरु परंपरा

३७-६८

नाम जीवन व्यक्तित्व, जन्म स्थान मित्र, मृत्यु, अंत साक्ष्यो एवं बहि साक्ष्या के आधार पर जायसी का जीवन, जन्मतिथि विभिन्नमत, निष्पन्न, जायसी की गुरु परंपरा, पीर परंपरा, निष्पन्न

३—जायसी के काव्य की रूपरेखा (और स्फुट कृतियाँ)

६९-१२६

जायसी के काव्य की सामान्य रूपरेखा, जायसी की कृतियाँ

अखरावट

अखरावट का रचनाकाल, कथावस्तु, अखरावट के दार्शनिक आध्यात्मिक बिन्दु, जीव, ब्रह्म, गुरु, शून्यवाद, चारि बसेरे, नतिक मतवाद एवं आध्यात्मिक वशिष्ट्य की रूपक, दीपक रूपक, जौलाहा रूपक, अखरावट के आधार पर जायसी के आध्यात्मिक विचार ।

आखिरी कलाम

हस्तलिखित प्रतियाँ और संपादन, निर्माण-काल, आखिरी कलाम की कथा, नाम, पीर, महिमा, गिया विचार धारा, इस्लामी धर्म, दर्शन, ब्रह्म जीव मण्डि ।

चित्ररेखा

हस्तलिखित प्रतियाँ, प्रतिलिपिकाल, चित्ररेखा की कथा, चित्ररेखा के विशिष्ट आकषण, सण्डि का उदभव, प्रेम की सर्वोच्चता, चित्ररेखा का मार्मिक संदेश, मुहम्मद और उनके चार मीत, पीर परंपरा, गुरु परंपरा, कवि का अपने विषय में कथन दोहा-बौपाई ।

कहरानामा

हस्तलिखित प्रतियाँ महरी बाईसी का प्रकाशन कहरानामा की कथा विशेष ।

मसला (मसलानामा)

हस्तलिखित प्रतियाँ, वष्य और उसका वशिष्ट्य ।

(हस्तलिखित प्रतियाँ, रचनाकाल और लिपि)

पद्मावत की प्राप्त हस्तलिखित प्रतियाँ, उक्त विवरण पद्मावत का रचना काल, पद्मावत की लिपि एक सर्वेक्षण, कथानक का मूल स्रोत, प्रमगाथाया की कथा वस्तु के मूल तन्तु और पद्मावत, जायसी द्वारा गहीत पद्मावती की कथा, पद्मावत की कथा, पद्मावत की ऐतिहासिकता टाड का राजस्थान, तारीख-फिरिश्ता, पद्मावत और तारीख फिरिश्ता, अमीर खसरा जियाउद्दीन बर्नी आईन अकबरी का पदमिनीवत्त, हज्जी उद्दौर का पदमिनी वत्त, अन्य इतिहासकारों के उल्लेख सर्वेक्षण और निष्कर्ष, जायसी के मत की समीक्षा विशेष फिरिश्ता जवुलफाल टाड जादि की पदमिनी सम्बन्धी बात और जायसी द्वारा गहीत कथा, कथानक रूढ़ि, पद्मावत में कथानक रूढ़ियों का प्रयोग पद्मावत में प्रयुक्त कुछ विविष्ट कथानक रूढ़ियाँ, पद्मावती रानी की कहानी की भारतीय लोक और साहित्य की एक कथानक रूढ़ि है, पद्मावत के कतिपय विविष्ट कथानक रूढ़ियों (अभिप्रायों) का सर्वेक्षण, मिहिर द्वीप हीरामन शुक्

५—प्रबन्ध का य के रूप में पद्मावत का सघटन

१९३-२१

महाकाव्य के भारतीय लक्षण महाकाव्य विषयक पाश्चात्य जादश पद्मावत का महानायत्व— (१) सुसंगठित और जीवन्त कथावस्तु (२) नायक (३) रसात्मकता और प्रभाववर्धित, वस्तुवर्णन महत्काय उदात्त भाषाशली महान उद्देश्य, महती प्रतिभा मार्मिक प्रसादा की सृष्टि एवं तज्जय गाभीय ।

६—चरित्र रचना

२११-२२५

पद्मावत का चरित्र विधान, रत्नसन पद्मावती नागमती अनाउद्दीन राघव चेतन, गोरा वादन ।

७—प्रकृति-चित्रण

२२६-२५३

प्रकृति का अर्थ और काव्य जायसी कृत प्रकृति-वर्णन के विविध रूप (१) उपमानों के रूप में किया गया प्रकृति चित्रण परंपरा प्रचलित और रूढ़ियुक्त उपमान (२) नखशिल वर्णन में प्रकृति के उपमान (३) मानवीय भावनाओं के वर्णन में प्रयुक्त उपमान (४) अन्य वस्तुओं और कार्यों के प्रकृति क्षेत्र से गहीत उपमान (५) वातावरण की विनिर्मित और घटना वर्णन के लिए किया गया प्रकृति वर्णन (६) आध्यात्मिक अभिव्यक्ति और ईश्वरीय वचन के स्पष्टीकरण के लिये

किया गया प्रकृति चित्रण (४) उपदेश और नीति के माध्यम के रूप में प्रकृति चित्रण (५) मानवीय हर्ष विषाद की अभिव्यक्ति के रूप में किया गया प्रकृति-चित्रण (६) उद्दीपन रूप एवं विप्रलम्भ शृंगार, पट ऋतुवर्णन, बारहमासा और उसका सौंदर्य, बारहमासे का रेखांकन, वशिष्ट्य, जग जलवृद्धि जहा लगी ताकी का औचित्य ।

८-शलीगत विवेचन

२५४-३४०

पदमावत की साकेतिकता रूप, सौंदर्य वर्णन एवं अप्रस्तुत विधान रूप-सौंदर्य वर्णन-(१) रूप का मुख्य प्रतीक पारस और उसकी याख्या (२) रूप की साव भूमिकता (सट्टिव्यापी प्रभाव एवं लोकोत्तर कल्पना) (३) रूप-वर्णन की अत्युत्तिया और उनका औचित्य (४) अप्रस्तुत विधान (उपमान रूप) नखशिल वर्णन और तत्रिहित अप्रस्तुत सौंदर्य (५) यौवन भार भरिता पदमावती का नखशिल (६) रूप सौंदर्य के उपमान-केश, मस्तक, ललाट, भौह नत्र, बहनी, नासिका, अधर, दात, रसना, कपोल, तिन, श्रवण, मुख, ग्रीवा मुञ्ज हथली, स्तनद्वय, पेट, रोमावलि, कटि, नाभि, पीठ, उरु चरण (७) उपमान रूपा का सौंदर्य एक सर्वक्षण (८) अय विषयो के वर्णना से सम्बन्धित उपमानो का सौंदर्य (९) प्रकृति क्षत्र से गहीत उपमाना का सौंदर्य, (१०) लोकजीवन से गहीत उपमाना का सौंदर्य (११) वस्तु वर्णन एवं कार्यों के उपमानो का सौंदर्य ।

रस

भावभि यजना शृंगार सभोग विवश करुण, वात्सल्य अय रस भाव, विशेष ।

अलंकार

पदमावत में अलंकार विधान-(१) शब्दालंकार (२) अर्थालंकार-उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक अतिशयोक्ति अत्युक्ति, तद्गुण, व्यतिरेक प्रतीप सदेहानंकार दण्डत अर्वात्तरयास निदशना विरोध, प्रत्यनीक, भ्रम विभावना, परिवरान्दुर विनोक्ति लोमोक्ति दीपक, उत्तर अनन्वय परिणाम श्लेष मुद्रा विधान और शगामिभाव सक्कर अप्रस्तुत प्रशंसा ससष्टि सक्कर विशेष ।

छन्द विधान

दोहा चौपाई, दोहा छौपाई की परम्परा और जायसी चौपाई और अरिल्ल छन्द दाहे की युत्पत्ति और पदमावत मसनवी शली परिभाषा रूप, मसनवी के चार वग और पदमावत निष्कप ।

९-जायसी का रहस्यवाद

३४१-३६८

रहस्यवाद अद्वैतवाद अद्वैतभावना पर आश्रित रहस्यवाद, अयोक्ति

समासोक्ति जायसी का प्रकृतिमूलक रहस्यवाद प्रेममूलक रहस्यवाद जायसी की देन, प्रतीक योजना, साधना के साम्प्रदायिक प्रतीक, सहज मुदरी सिद्धयोगी युगनन्द महासुख रसेश्वर मत सामरस्य सिद्धांत और जायसी का रहस्यवाद ।

१०—जायसी की काव्य साधा

३६९-३९४

ठेठ अवधी जनता की बोली जायसी की भाषा जबधी भाषा जीर पदमावत सूक्तियाँ नोकोक्तियाँ कहावतें, मुहावरे और जायसी, सूक्तियों से भाषा की यजकता महावरा म चुरत और अथपूण बनी भाषा, कहावतो स सजीव रनी भाषा, भाषा शक्ति भाषा की एकरूपता जीर उसकी कतिपय ज य विगपतायें, जायसी और तुलसादास की भाषा, शान्ति म चित्र प्रस्तुत करने के धनी कलाकार जायसी जायसी का अवधी और उसका प्रयाग का औचित्य भाषा, भावाभिव्यक्ति और जायसा जायसों की भाषा (एक सक्षिप्त सिंहावलोकन) निष्कप ।

११—सूफीमत जायसी की प्रेम-साधना

३९५-४२८

सूफी युत्पत्तिमूलक अथ सूफीमत का आविर्भाव भारतवर्ष म सूफीमत का प्रवश विकास चौदह सूफी संप्रदायों का उल्लेख, विशती संप्रदाय सुहरावर्दी संप्रदाय कादरी संप्रदाय नरेशबंदी-संप्रदाय सत्तारी संप्रदाय मदारी संप्रदाय विशय जायसी की प्रेम भक्ति साधना सूफीमत म प्रेम का महत्व और जायसी की प्रेम साधना परमसत्ता की प्रेममय कल्पना विश्लेषण निष्कप ।

१२—प्रेमाख्यानक परम्परा

४२९-५१९

प्रेमाख्यानको का महत्व और जायसी

प्रमाख्यान का अथ भारतीय प्रमाख्याना की परम्परा रयणसेहरी कहा अपभ्रंश के प्रमाख्यान हिंदी साहित्य म प्रमाख्यान गुद्ध प्रमाख्याना सूची नरपति नाह्ल वृत्त बीमलदेव रास सूफी प्रमाख्यानक साहित्य-अप्राप्त प्रमगाथाए हिंदी के कतिपय उपन्यास सूफी प्रमाख्यानों की सची चन्दायन, साधन क्त मनासत मगावती पदमावत, जायसी द्वारा प्रमाख्यानों का उल्लेख मनोहर और मधुमानती, गल (मिया) गुफ्तार मज्जान कृत मधुमानती उसमान कृत चिनावती शंखनवी कृत पानदीप कासिमशाह कृत हस जवाहिर नूर मुहम्मद कृत इद्रावती दखिलनी हिंदी के प्रमाख्यान अनुशीलन (१) निजामी (२) मुल्तावजही (३) गवासी (४) मुक्कीमी (५) नसरती जरबी-फारसी-सामी परम्परा की अनुवतन । सूफी गाथा कारी के दो मुख्य केन्द्र । परवर्ती सूफी कविया पर जायसी का प्रभाव सफी कवियों

का वशिष्ठय देन, तुलसीदास को जायसी की दल, जायसी और कवीरदास, जायसी और मीराबाई, मण्डि जीव, हिन्दी प्रमाख्यानक काय की चित्त आनोचना और उसका उत्तर जारी, सूफी प्रेमाख्यानो का महत्व एव उनका हिन्दी साहित्य मे स्थान निष्पत्त ।

परिशिष्ट

५२०-५४९

(क) मसना (ममलानामा) बहरानामा-(ख) कतिपय सूक्तिया लोकोक्तिया मुहावरे (सूची)-(ग) अनाउद्दीन सम्बन्धी प्रबन्ध और फुटकन काव्यों की सूची (घ) सहायक ग्रन्थ सूची-हिन्दी ग्रन्थ ससृष्ट प्राचिन अपभ्रंश शब्द-उद्ग-कारसो-अंग्रेजी (ङ) हस्तलिखित प्रतिया (च) पत्र पत्रिकाए-संज्ञ-विवरण ।

— — — — —

प्रस्तावना

जायसी विषयक अध्ययन अनुसन्धान

५

जायसी हिन्दी साहित्य के सर्वश्रेष्ठ कवियों के हैं। हिन्दी भाषा के प्रबन्ध काव्यो में पद्यावत का अर्थ और जलकृति तीना नष्टिया से अनूठा काव्य है। इस कृति में श्रेष्ठतम प्रबन्ध काव्यो के गुण एवम् प्राप्त हैं। मार्मिक स्थला की बहुलता, उदात्त लौकिक और ऐतिहासिक कथावस्तु भाषा की अत्यन्त विलक्षण शक्ति जीवन के गम्भीर सर्वाङ्गीण अनुभव, मग्न दाशनिर्क चित्रण आदि इमही अनेक विशेषताएँ हैं। सबमुच पद्यावत हिन्दी साहित्य का एक जगमगाता हुआ हीरा है। इससे बहु विध पहल और घाटी पर ज्यो-ज्या साहित्य मनीषियों की ध्यान रश्मियाँ केन्द्रित होगी क्योंकि इस नक्षत्र-सम्पन्न काव्य रत्न का स्वरूप और भी उज्ज्वल दिखाई देगा। अवधी भाषा के इस उत्तम काव्य में मानव जीवन के चिरतन सत्य प्रेम-सत्त्व की उत्कृष्ट कल्पना है। पद्यावत की प्रमात्मक निम्न ज्योति नितनी भास्वर है, उसमें कितना जावपण है इमे सन्तो में प्रकट करना कठिन है। महाकवि ने एक ओर अनुत्तम रूप ज्योति का निमाण किया है और दूसरी ओर उस ज्योति को मानव के भाग्य में निम्नी हुई अनिवाय कष्टों की सौभाग्य विलोपी छाया के सम्मुख नारा रहा है, किन्तु इस निम्न कमीटी पर कम जाने से वह आभा और अधिक प्रकाशित हो उठी। कवि के शब्दों में इस प्रेम कथा का मर्म है— 'गानी प्रीति नन जल भई।' (६५२।२) रत्नसन और पद्यावती दोनों के जीवन का अन्तर्यामी सूत्र है— प्रेम में जीवन का पूण विकास और नेत्र जन में उसकी समाप्ति। प्रेम-सत्त्व की दृष्टि से पद्यावत का जितना अध्ययन किया जाय कम है। संसार के उत्कृष्ट महाकाव्यो में इसकी गिनती हाने योग्य है। इसे अभी तक जो पद मिला है भविष्य में उसके और उच्चतर होने की सम्भावना है।

इस ग्रन्थ रत्न को हिन्दी साहित्य के सर्वश्रेष्ठ प्रबन्ध काव्यो में महत्वपूर्ण स्थान देने के विषय में दा मन नहा हां सबत। हिन्दी साहित्य को प्रेमकाव्य परंपरा के अंतर्गत लिख गए प्रबन्ध काव्यो में यह ग्रन्थ सर्वोत्तम है। पद्यावत की रचना के

लगभग ३५ वर्ष पश्चात् अवधी भाषा की दूसरी सब-प्रवृत्ति का प्रणयन हुआ। यह गोस्वामी तुलसीदास का प्रसिद्ध ग्रन्थ 'रामचरितमानस' है। अवधी के ये दोनो ग्रन्थ रत्न दो भिन्न चिन्ता धाराओ के प्रतिनिधि काव्य ग्रन्थ हैं। रामचरितमानस में 'नानापुराणनिगमागम सम्मत निगुण निराकार ब्रह्म को सगुण साकार रूप में उपस्थित किया गया है। पद्मावत में लोक और साहित्य समादत्त पद्मावती की कथा द्वारा अलौकिक ईश्वरीय प्रेम की मार्मिक अभिव्यक्ति करते हुए निगुण निराकार प्रेम प्रभु की आरती उतारी गई है। पद्मावत में सूफी और भारतीय सिद्धान्तों के सम वय का सहारा लेकर प्रेम पीर की उत्कृष्ट अभिव्यक्ति की गई है तो 'रामचरितमानस' में भारतीय सगुण भक्ति की धारा गत सहस्र गाथाओं में फूटकर प्रस्रवित हुई है और मर्यादा, लोकमगन एवं आदर्श को अमर गाथा का आवरण बन गई है। इन्हीं मूलभूत सद्धान्तिक अन्तरो के कारण दोनो रचनाएँ दो भिन्न प्रकार की रचनाकोटि में आती हैं। रामचरितमानस शास्त्रोन्मूल (कलसिक्ल) अधिक है। प्रबन्ध सघटन रचना कौशल, भाषा, छन्द शैली इत्यादि सभी दृष्टिकोणों से तुलसीदास ने भारतीय काव्य पद्धति का अनुसरण किया है। इसके ठीक विपरीत पद्मावत लोकोन्मुख है। जायसी ने अपनी समथ तूतिका और लोक जीवन के प्रगाढ़ अनुभव से पद्मावत की काव्यभूमि पर लोक और काव्य के अनन्त उपादानों और प्रसाधनों के द्वारा उत्कृष्ट और गाढ़ अभिव्यञ्जना का विधान किया है। क्या भाषा और क्या भाव क्या रचना शिल्प और क्या छन्द क्या क्या वस्तु का सघटन और क्या रूप सौन्दर्य वर्णन इत्यादि सभी दृष्टिकोणों से जायसी ने लौकिक और शास्त्रीय पद्धतियों का सुन्दर समन्वय किया है परिणामस्वरूप पद्मावत में सहज ही एक अनूठा सौन्दर्य आ गया है।

पद्मावत के अतिरिक्त जायसी के और भी अनेक ग्रन्थ हैं इनमें अखरावट आखिरी क्लाम, बहरानामा चित्ररेखा और 'मसलानामा' अभी तक उपलब्ध हो सके हैं। प्रस्तुत प्रबन्ध में इन सब उपलब्ध ग्रन्थों के सर्वाङ्गीण विवेचन का प्रयत्न किया गया है।

मध्ययुग में जायसी की कृतियों का बड़ा व्यापक प्रचार था। जराकान के मगन ठाकुर के राजकवि अलाओल ने बगाल में इसका अनुवाद किया था। फारसी में बज्मी आदि के अनेक अनुवाद ग्रन्थ मिलते हैं। पद्मावत तथा जायसी की अन्य कृतियों की प्रतियों के आधिक्य से भी यह बात स्पष्ट है। यद्यपि मध्ययुग में जायसी की प्रसिद्धि व्यापक थी तथापि बीसवीं शताब्दी के पहले हिन्दी में जायसी को पुराने लोगो ने स्थान नहीं दिया। बीसवीं शताब्दी के प्रथम चरण तक भी इनके मूल्यांकन का प्रयत्न नहीं हुआ। इस उपेक्षा का प्रधान कारण धार्मिक पूर्वाग्रह रहा है। पद्मावत की भाषा का (ठेठ अवधी का) पुरानापन गुणता एवं शुद्ध संस्करण का अभाव भी जायसी की उपेक्षा के गौण कारण हो सकते हैं। और यही कारण है कि उनका

अध्ययन न हो सका था। बीसवीं शताब्दी में जायसी को हिन्दी साहित्य के समस्त उपस्थित करने का प्रथम श्रेय सर जाज ग्रियसन एवं पंडित सुधाकर द्विवेदी को है। उन्होंने पद्मावत को प्रकाशित संपादित किया था। इसके पश्चात् जायसी की कीर्ति को हिन्दी सभार में फैलाने और उनका वास्तविक मूल्यांकन करने का श्रेय पण्डित रामचन्द्र गुवन को है।

जायसी पर अब तक हुए अनुसंधान अध्ययन का परिचय

प्राच्य विद्वान् गार्सादत्तासी^१ ने अपने ग्रन्थ 'इस्वार द ला लितररूपूर ऐंदुई ऐ ऐन्दुस्तानी के दूसरे भाग में जायसी के विषय में एक संपिप्त विवरण प्रस्तुत किया है। इस ग्रन्थ में जायसी के विषय में परिचयात्मक और गोघात्मक उल्लेख किए गए हैं। इसमें जायसी की कई संग्रहालया में (और व्यक्तियों के पास) मिलने वाली हस्तलिखित प्रतियाँ का भी विवरण दिया गया है।

"जायसी जिन्हें जायसीदास भी कहा जाता है जो उनके हिन्दू से इस्लाम धर्मानुयायी बनने की ओर संकेत करता प्रतीत होता है। इसी नेमक की परमाथ जपजी, सोरठ और पद्मावत नामक पुस्तकें भी हैं। उन्होंने १५४०-४१ ई० में 'पद्मावती काव्य की रचना की।'^२

शिर्वासिंह सेंगर वृत्त 'शिर्वासिंह सरोज' (१८७७ ई०) में जायसी का उपस्थिति-काल दिया हुआ है कि जायसी १६८० वि० में विद्यमान थे किन्तु जायसी की मृत्यु १५६६ वि० में हो चुकी थी अतः यह कथन विश्वासयोग्य नहीं है।

सर जाज ग्रियसन^३ ने 'द माडन वर्नाक्यूलर लिटरेचर आफ हिन्दुस्तान (१८८६ ई०) में पद्मावत को हिन्दी साहित्य का सबसे अधिक अध्ययन व योग्य ग्रन्थ

१-गार्सादत्तासी इस्वार द ला लितररूपूर ऐंदुई ऐ ऐन्दुस्तानी। (इस ग्रन्थ का प्रथम संस्करण दो भागों में प्रथम १८३६ और १८४७ ई० में पेरिस से प्रकाशित हुआ था। द्वितीय परिवर्धित संस्करण तीन भागों में पेरिस से ही १८७०-७१ ई० में प्रकाशित हुआ था। इस ग्रन्थ के हिन्दी साहित्य से सम्बंधित भाग का हिन्दी अनुवाद डा० लक्ष्मीसागर बार्णोय ने किया है (हिन्दुस्तानी एकेडमी से प्रकाशित हिन्दुई साहित्य का इतिहास १८५३) इसमें हिन्दी के अनेक ग्रन्थों के नाम विवरण आदि श्री तासी ने दिए थे छोड़ दिए गए हैं जिनमें अक्षरावट की प्रती का विशेष उल्लेख भी छूट गया है।

२-वही पृ० ८३-८६।

३-शिर्वासिंह सेंगर शिर्वासिंह सरोज, स० १६४० (एणियाटिक सोसायटी, बंगाल)।

४-सर जाज ग्रियसन द माडन वर्नाक्यूलर लिटरेचर आफ हिन्दुस्तान १८८६ ई०। (हिन्दी अनुवाद किशोरीलाल गुप्त - हिन्दी साहित्य का प्रथम इतिहास (१६५७)

बतलाया है। उनका कथन है कि जायसी ने सोरसाह के समय १५४० ई० में पदमावत लिखा था। जायसी ने कहानी का कुछ भाग उदयन की पदमावती और रत्नावती से भी लिया है।^१

१९१३ ई० में मिश्रबधुजी का प्रसिद्ध इतिहास ग्रंथ मिश्रबधु विनोद^२ प्रकाशित हुआ। मिश्रबधुजी ने अपने नवरत्न में जायसी को स्थान नहीं दिया। उन्होंने अपने विनोद^३ में जायसी का संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत किया है। उन्होंने जायसी के पदभावत की इतिहास कहना ठीक माना है। सिवा एक दो छोटी छोटी बातों के अतिरिक्त पदमावती की अन्य सभी घटनाएँ इतिहास से मिलती हैं। इनकी कविता से तत्कालीन रहन-सहन का पता चलता है। इनकी कविता में उद्भृष्टता का अभाव नहीं है। उन्होंने कभी हिन्दू धर्म पर श्रद्धा नहीं दिखालाई। मिश्रबधुजी के विवरण से स्पष्ट है कि जायसी विषयक उनका ज्ञान अत्यंत सीमित था।

महामहोपाध्याय रायबहादुर गोरशकर हीराचंद आथा^४ उदयपुर राज्य का इतिहास के प्रथम भाग में पदमावत की कथा जीर उसके ऐतिहासिक पक्ष पर विचार किया है। आजाजी ने प्रथम बार साहसपूर्वक प्रतिपादित किया है कि पदमावत ऐतिहासिक उपन्यास की सी कविताबद्ध कथा है जिसका कतवर इन ऐतिहासिक तथ्यों के आधार पर रचा गया है कि रत्नसेन चित्तौड़ का राजा, पद्मिनी उसकी रानी और अलाउद्दीन दिल्ली का सुल्तान था जिसने उससे लड़कर चित्तौड़ का किला जीता था। उसमें अनेक इतिहास विरुद्ध बातें भी हैं। सिंहलद्वीप में गंधर्वसेन नाम का कोई राजा नहीं हुआ। उस समय तक कुम्भलनेर आबाद तक नहीं हुआ था।

१९२४ ई० में प० रामचंद्र गुप्त द्वारा संपादित होकर जायसी ग्रंथावली नागरी प्रचारिणी सभा काशी से प्रकाशित हुई इसमें जायसीकृत पदमावत और अखरावट दो ग्रंथ थे। वस्तुतः जायसी विषयक आज तक की समालोचनाओं में सर्वाधिक महत्वपूर्ण काव्य आचार्य शुक्ल जी का ही है। १९३५ ई० में जायसी ग्रंथावली का परिवर्द्धित और संशोधित द्वितीय संस्करण प्रकाशित हुआ। इसमें जायसी की एक और नवीन प्राप्त पुस्तक आखिरी कलाम को भी संपादित करके प्रकाशित किया गया है। उनकी २१० पंक्तियों की विगद भूमिका के विषय में प० हजारीप्रसाद द्विवेदी के शब्दों को हम दुहरा सकते हैं— पदमावत की प्रस्तावना में आपने जसी काव्य ममज्ञता दिखाई है वसी हिन्दी तो क्या जय आधुनिक भारतीय भाषाओं में भी कम ही मिलेगी। यह प्रस्तावना अपने आप में एक अत्यधिक महत्वपूर्ण साहित्यिक कृति

१—सर जान प्रियसन द माडन वर्नियूजर लिटरेचर आफ हिन्दुस्तान १८८६ ई०।

२—मिश्रबधुविनोद हिन्दी ग्रंथ प्रसारक मण्डली खडवा और प्रयाग।

३—म०म० गोरशकर हीराचंद आथा उदयपुर राज्य का इतिहास।

हे । ' जायसी के अध्ययन की गहराई के दृष्टिकोण से शुक्ल जी की 'भूमिका' आज तक हुए जायसी-विषयक अध्ययन में मूषक है । शुक्ल जी वृत्त 'पदमावत' की प्रम-पद्धति, वियोग-पक्ष सभोग-शृंगार वस्तु-वर्णन भाव-व्यञ्जना अलंकार, स्वभाव-चित्रण और जायसी की भाषा आदि की महत्ता आज भी ज्यादियों है । आज तक के जायसी के आलोचक और हिन्दी के इतिहासकार शुक्ल जी के ही वाक्यों को हेर-फेर कर के प्रस्तुत कर देने में अपनी इतिवृत्तव्यता समझते हैं । यह अत्यन्त सुस्पष्ट तथ्य है कि शुक्ल जी के पश्चात् उपयुक्त विषयों पर विद्वानों ने जो कुछ भी लिखा है वह या तो शुक्ल जी के मतों का पिच्छेपण है या मान अनावश्यक विस्तार ।

यह अवश्य सत्य है कि विविष्ट सामग्री के अभाव में प्रमगाथा की परंपरा जायसी का जीवनवृत्त, पदमावत का इतिहासिक आधार जायसी का रहस्यवाद आदि विषयक शुक्लजी के मत पूर्ण नहीं कह जा सकते । शुक्लजी के परवर्ती विद्वानों ने इसी ओर प्रवृत्त करने का साहस भी किया है । १९२५ ई० में बाबू सत्यजीवन वर्मा का आख्यानक काव्य^१ 'गीतिका' एक ६० पृष्ठों का लेख प्रकाशित हुआ । इस लेख में उन्होंने उस समय तक के प्राप्त हुए बीस प्रमाख्यानक काव्यों का उल्लेख करते हुए जायसी, कुतुबन और मदन का परिचय भी दिया था ।

डा० श्यामसुन्दरदास जी ने १९३० ई० में हिन्दी भाषा और साहित्य नामक ग्रन्थ प्रकाशित किया । इसमें उन्होंने 'प्रेममार्गी भक्तिशाखा' 'गीतिका' के अन्तर्गत जायसी और उनके तीन ग्रन्थों का त्रयभाग एक पृष्ठ में परिचय दिया है । ' ऐतिहासिक दृष्टि से यह परिचय महत्वपूर्ण है ।

प० चन्द्रवती पाण्डेय ने १९२० ई० में सरस्वती में अखरावट का रचना काल 'गीतिका' निबन्ध प्रकाशित कराया था । उन्होंने विद्वत्तापूर्ण तर्कों और अन्त साक्ष्यों के आधार पर अखरावट के निर्माणकाल की विवेचना की है । म० १९८८ (१९३१ ई०) में ना० प्र० पत्रिका^२ में प० चन्द्रवती पाण्डेय का पदमावत की लिपि और रचना काल^३ 'गीतिका' लेख प्रकाशित हुआ । पाण्डेयजी का प्रस्ताव है कि ' रचनाकाल विषयक मतभेद दो और चार का ही है । कवि ने पदमावत कभी लिपि में ही लिखा था । हमारी समझ में उसका आरम्भ ९२७ हिजरी में ही हुआ था । पदमावत का रचनाकाल ९२७ हि० से ९४७ हि० तक ठहरता है । ' के १५४०

१- प० हजारीप्रसाद द्विवेदी हिन्दी साहित्य की भूमिका प० ६५-६६ ।

२- नागरी प्रचारिणी पत्रिका कागरी भाग ६ ।

३- डा० श्यामसुन्दरदास हिन्दी भाषा और साहित्य पृ० २८४ (द्वि० म० १९९४) ।

४- सरस्वती, प्रयाग १९३० ई० ।

५- ना० प्र० पत्रिका कागरी भाग १२, म० १९८८ (नेम३), प० १०१-१४५ ।

६- वही पृ० १४१-४२ ।

ई० तक पदमावत की रचना करते रहे और ग्रंथ के समाप्त हो जाने पर शरणाह को उचित शाहेवक्त पाकर उमकी बरना भी उसम जाड दी । हमको अपने कथन पर इतना विश्वास है कि हम इसको अधिक बरना उचित नही समझते । ' प० चद्र बनी पाडय कृत्न इस निबन्ध म विषयात्तर भी है जो गोध निग्रध का एक अवगुण है और लेखक के तर्कों म कही नही औद्धत्य और आधारहीनता भी दीख पडती है साथ ही उसके निष्पत्त हम भ्राम्य प्रतीत हो सक्ते हैं पर त्मम कही भी गभीरता का अभाव नही है । ' स० १९६० वि० (१९३३ ई०) म प० चद्रबली पाडय का जायसी का जीवनवत्त^१ गापक एक लख प्रकाशित हुआ । ना० प्र० पत्रिका म जायसी विषयक प्रकाशित होनेवाले अन्य लेखो म म० म० गौरीशंकर हीराचन्द जोशा कृत पदमावत का सिंहल द्वीप गीपक लेख उल्लेखनीय है । ओशा जी का मत है कि रत्नसन इतने कम समय तक राजगद्दी पर रहा कि वह सिंहल (नका) नही जा सकता था । पदमावत का सिंहल द्वीप समुद्र स्थित लका न होकर चित्तौड से चानीस मीन पूव मे स्थित सिंगोली नामक प्राचीन स्थान है । कवि सिंगोली का सिंहल निखा गया है । ओशा जी न सिंहल का सिंगोली तो सिद्ध कर दिया पर माग के बन-वातार कलिंग, सातसागर आदि के विषय म कोई भी तक वितक नही प्रस्तुत किया ।

डा० पीताम्बरदत्त बड्यवाल ने १९३३ ई० मे 'द्विवेदी अभिनदन ग्रंथ'^२ म एक लेख दिया था । इसम उन्होंने पदमावत की कथा और जायसी के अध्ययन पर विचार किया था ।

डा० सूयकांत गास्त्री द्वारा सम्पादित पदुमावति^३ म टेक्चर द ने 'जायसी और उनके पदमावत का एक संक्षिप्त परिचय दिया है । चार पन्था क 'फोरबड म उन्होंने पदमावत की कहानी रचना-काल (१५४० ई०) और जायसी की कुछ विशेषताओ का परिचयात्मक विवरण देते हुए विद्वान सम्पादक सूयकांत गास्त्री के प्रस्तुत बड दार्शनिक मूल्य वाले सम्पादन काय की प्रशंसा की है । हिन्दू धर्म और लोकतत्वा का उनका सुंदर ज्ञान था । हिन्दू संस्कृति और धर्म के ज्ञान क लिए हिन्दू पंडितो स व वर्षों तक संस्कृत पढ थ । उनका

१- वही प० १४५ ।

२- ना० प्र० पत्रिका, काशी वष ६४ स० २ १६ पृ० १९१ ।

३- वही, भाग १४ वष स० १९६ ।

४- वही, भाग १३ वष स० १९५६ ।

५- 'पदमावत की कहानी और जायसी का अध्यात्मवाद पीताम्बरदत्त बड्यवाल द्विवेदी अभिनदन ग्रंथ ना० प्र० सभा कागी स० १९६ ।

६- पदुमावति सूयकांत गास्त्री प्राक्कथनरत्नक आनरबुन जस्टिस टकचन्द प्रथम भाग, स्व० १२५ पजाब यूनिवर्सिटी, लाहौर १९३४ ई० ।

वाक्य शास्त्र और छन्दशास्त्र पर पूरा अधिकार था ।^१

'पदुमावलि की दस पंक्तियों की भूमिका (प्रीफेस) में श्री सूयकांत गाम्भीर्य न जायसी और पदमावलि पर एक मशहूर विवरण प्रस्तुत किया है। 'मम पदमावलि की संपिप्त कथा जायसी की रहस्यवादिता, लौकिक और अलौकिक प्रेम का समन्वय प्रेम का उत्पन्न रूप, जीवन-मरण, पदमावलि अर्थात्त है आदि बातों का उल्लेख किया गया है। 'मम सतक' यत्किंचिद्विषय म ह्य वन्त कम बातें नात है। माहम्मद उनका नाम था, मलिक कौटुम्बिक उपाधि थी। वे जायस के रहने वाले थे। व. ८३० हि० में 'कचाना मुहम्मद म पदा' हुए थे। ११६ वर्ष तक जीवित रहे। उनकी चौदह रचनायें कही जाती हैं—योस्नीनामा कहरनामा माराननामा मखरावट चम्पावती अखरावट, पदुमावलि और आखिरी कलाम।^२ पदमावलि की भाषा ठेठ अवधी है। यह प्रथम परिगणन लिपि में लिखा गया था। 'वेव नागरी के अनुलिपि कथाशा न प्रतिलिपि करने हुए अनवर भूतों की हैं।'^३

१९३४ ई० में ही जायसी और प्रेम तत्व^४ विषय पर प० परशुराम चतुर्वेदी ने एक विद्वत्तापूर्ण निबंध लिखा था। डा० रामकुमार वर्मा^५ ने १९३७ ई० में पदमावलि पर एक आलोचनात्मक लेख लिख कर उसके मशहूर मूल्यांकन का प्रयत्न किया था। डा० वर्मा ने १९३८ ई० में अपने हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास^६ में प्रेमकाव्य और जायसी के विषय में विस्तारपूर्वक लिखा है। जायसी का जीवन काव्य रचना, अध्यात्मवाद, हिन्दू सत्त्वनि आदि विषयों का उन्होंने विद्वत्तापूर्ण विवेचन किया है। सयद आने माहम्मद कहर जायसी ने १९४० ई० में मलिक मुहम्मद जायसा का जीवन चरित विषय पर एक सुन्दर और खोजपूर्ण निबंध प्रस्तुत किया था। प० गणगप्रसाद द्विवेदी ने हिन्दी में प्रेमगाथा साहित्य और मलिक मुहम्मद जायसी नामक एक लेख लिखा था। थाड में परिवर्तन के साथ निबंध हिन्दी के कवि और काव्य भाग ३ में प्रकाशित किया गया है। १९४१

१-वही, पौरवह पृ० २।

२-वही, प० ४।

३-वही प० ६।

४-हिन्दुस्तानी भाग ४ अंक ३, जनवरी १९३४ ई०।

५-सम्मेलन पत्रिका, पीप माघ, १९८४ वि०।

६ डा० रामकुमार वर्मा हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास (स० ७१० १७५०)

७-ना० प्रा० पत्रिका वर्ष ४५ स० १९६७।

८-ना० प्र० पत्रिका में प्रकाशित हिन्दी में प्रेमगाथा साहित्य और मलिक मोहम्मद जायसी।

ई०में सयद कल्ब मुस्तफा जायसी ने मलिक मुहम्मद जायसी नामक एक पुस्तक उद्गम लिखी है। इन्होंने लिखा है कि 'पदमावत फारसी त्रिपि में लिखा गया था। जायसी का जन्म ६०० हि० १४६५ ई० में जायस में हुआ था। ये सच्चे मुसलमान थे। महान सूफी सन्त थे। इनका सिंहन उम्बई के पास अरब सागर में था। पदमावती की कल्पनी में पदमावती की कथा काल्पनिक है। इनमें रत्न सेन भी काल्पनिक है। गौरा वादल दो व्यक्ति नहीं थे—यह एक व्यक्ति था। पदमावत में वर्णित प्रेम में भारतीय और फारसी दोनों के प्रेम-तत्वों का मिश्रण है। सन १६४४ ई० में ए० जी० शिरफ ने सर जाज प्रियसन कृत पदमावती के अनुवाद को पूरा करके बंगाल की रायल एशियाटिक सोसाइटी से प्रकाशित करवाया। १८६६ ई० में प्रियसन और महामहोपाध्याय प० सुधाकर द्विवेदी ने पदमावती का प्रकाशन प्रारम्भ किया था। पदमावती की भूमिका में सब प्रयत्न प्रियसन ने जायसी के महत्त्व की जोर विद्वानों का ध्यान आकृष्ट किया था। १६११ में पदमावती का (१ से २५ खण्ड तक) पाठ और भाष्य विस्तृत आलोचनात्मक टिप्पणियों के साथ प्रकाशित हुआ था। प० सुधाकर द्विवेदी का स्वगवाह हो जाने के कारण काव्य आगे न बढ़ सका। १६३८ ई० में शिरफ ने प्रियसन की अनुमति से इस अधूर काव्य को हाथ में लिया। उन्होंने इस काव्य को १६४० ई० में पूरा किया। शिरफ ने इस ग्रन्थ की भूमिका में जायसी का सक्षिप्त परिचय दिया है। शिरफ के 'पदमावती का पाठ प्रायः प्रियसन और शुक्ल जी द्वारा स्वीकृत पाठ ही है। मूलतः यह एक अनुवाद ग्रन्थ है। यह अनवाद आज भी महत्त्वपूर्ण है। शिरफ की टिप्पणियाँ ता जायसी के अध्ययन के लिये सदा पथ निर्देशन का काम करती।

डा० कमल कुलश्रेष्ठ ने १६४७ में मलिक मुहम्मद जायसी भाग १ नामक पुस्तक प्रकाशित की। (आज तक इस भाग १ का पूरा भाग २ नहीं ही प्रकाशित हुआ)। १६५३ ई० में डा० कमल कुलश्रेष्ठ का हिन्दी प्रमाख्यानक काव्य प्रकाशित हुआ। डा० श्रेष्ठ के इस ग्रन्थ के विषय में श्री गोपालराय का मत उल्लेखनीय है— डाक्टर के लिए प्रस्तुत किए गए शोध ग्रन्थों में जिसे त्वरा से काम लिया जाता है और उसके जो दुष्परिणाम होते हैं यह ग्रन्थ उसका सजीव

१—सयद कल्ब मुस्तफा जायसी मलिक मुहम्मद जायसी १६४१ ई०।

२—ए० जी० शिरफ पदमावती।

३—ए० जी० शिरफ पदमावती अग्र जी अनुवाद—भूमिका।

४—डा० कमल कुलश्रेष्ठ म० मु० जायसी भाग १ १९४७।

५—डा० कमल कुलश्रेष्ठ हिन्दी प्रमाख्यानक काव्य चौधरी मारुसिंह प्रकाशन, कचहरी रोड, अजमेर, १९५३।

६—गोपाल राय ना० प्र० पत्रिका, वय ६४, स० २०१६ पृ० १६६—६७—६८।

उदाहरण है। इस पुस्तक में दापो की मात्रा इनकी अधिक है कि उनकी समुचित रूप से दिखाने के लिए एक स्वतंत्र निबंध की आवश्यकता होगी। समूचा ग्रंथ भ्रान्त आधारों, दुबल तर्कों और अशुद्ध निष्कर्षों से पूरा है। गम्भीर अग्रयन का अभाव पद्य पर दृष्टिगोचर होता है। किसी तरह पृष्ठ पूरा करने का प्रयत्न इतना स्पष्ट है कि लक्षक पर दया आती है। — 'फारसी मसनवी का निरास और उरुका हिंदी प्रभाषानक काय पर प्रभाव' बहानी कना आदि परिवर्द्ध भी नितांत हल्के हैं। पदमावत की रचना त्रिविध सभ्य व म लेखक का मत और भी हाम्यास्प है। आखिरी बलाम का अथ लक्षक की अंतिम रचना मानना निराधार और भ्रमपूर्ण है। लक्षक के प्राय सभी निष्पन्न दापण हैं। डा० श्रद्ध के निष्कर्षों के दोषपूर्ण होने का कारण यह है कि उन्होंने केवल सात ग्रंथों के आधार पर अपना गोध-प्रबंध प्रस्तुत किया है और उन्होंने सूफी और सूफीतर प्रमत्तियों का वर्गीकरण करके उन पर अलग-अलग विचार भी नहीं किया है। इस ग्रंथ का बहुत बड़ा दोष सश्लेषण का अभाव है। प्रमत्तों के किसी पक्ष का स्पष्ट विवरण इस ग्रंथ में नहीं हो सका है। भाषा सम्प्रदायी अगुद्विधा भी प्रस्तुत ग्रंथ में प्रचुर मात्रा में दिखाई देता है।^१ हिंदी प्रभाषानक काय के विषय में श्री गणपाल राय का यह कथन ठीक ही है।

१९४६ ई० में डा० लक्ष्मोघर का पदमावती दी लिग्विस्टिक स्टडी आफ दी सिक्कीय मेंचुरी हिंदी [अवधी] नामक प्रबंध प्रकाशित हुआ। लक्षक ने प्रारम्भ में २६ पन्ना में पदमावत का भाषा पर यात्रात्मक दृष्टिकोण से विचार किया है। दूसरे भाग में पदमावत के १०६ छन्दों का पाठ-संपादन है और तीसरे भाग में संपादित पाठ का अंग्रेजी अर्थ दिया गया है। चौथे भाग में पदमावत की शब्द सूची दी गई है [इस ग्रंथ की जानीबना आगे दी गई है]। प० परशुराम चतुर्वेदी द्वारा संपादित सूफी काव्य संग्रह^२ [१९५० ई०] नामक ग्रंथ में हिंदी में सूफी कविता का [जायसी का भी] संपिन्न पर गोधपूर्ण परिचय प्रस्तुत किया गया है। डा० माताप्रसाद गुप्त ने १९५१ ई० में जायसी 'गोधवली'^३ का संपादन किया है [इसकी चर्चा आगे की गई है]। १९५२ में चाल्स नपियर का 'नई जायसी गोधवली तथा पदमावत की लिपि और रचनाकाल'^४ गोधक निबंध

१- गा० प्र० पत्रिका, वष ६४, सं० २०१६, प० १६६, २७, ६८।

२- डा० लक्ष्मोघर पदमावती दी लिग्विस्टिक स्टडी आफ दी सिक्कीय मेंचुरी हिंदी [अवधी], ल्यूजक एण्ड कम्पनी लंदन से प्रकाशित।

३- परशुराम चतुर्वेदी सूफी काव्य संग्रह माहिष सम्मेलन, प्रयाग, १९५०।

४- डा० माताप्रसाद गुप्त, गायसी गोधवली, हिंदुस्तानी एकेडेमी, प्रयाग, १९५१ ई०।

५- गा० प्र० पत्रिका, वष ५७, सं० २००६, प० २३१, ४२।

प्रकाशित हुआ। इस निबन्ध में लेखक ने प्रमाणित किया है कि पन्नावत मात फारसी लिपि में लिखा गया था।^१ इस निबन्ध में लेखक ने डा० गुप्त की 'जायसी गवावली' का विशद गुण दोष विवेचन भी किया है।

१९५५ ई० में डा० विमलकुमार जन का प्रबंध सूफीमत और हिंदी साहित्य हिंदी अनुसंधान परिषद, दिल्ली से प्रकाशित हुआ। इसी विषय पर बहुत पहले ही प० चंद्रबनी पाण्डेय ने [१९४१ ई०] तस वुफ अयवा 'सूफीमत' नामक ग्रंथ लिखा था। १९५६ ई० में श्री रामपूजन तिवारावत सूफीमत साधना और साहित्य नामक ग्रंथ प्रकाशित हुआ। इन तीनों ग्रंथों का मूल प्रतिपाद्य सूफीमत का उदभव और विकास ही है। १९५५ ई० में श्री हरिकांत श्रीवास्तव का भारतीय प्रेमसंधानक काव्य नामक गाद्यग्रन्थ प्रकाशित हुआ। इस ग्रन्थ में हिंदू कवियों द्वारा लिखित प्रेमकाव्यों का अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। १९५६ ई० में डा० सरला शर्मा का प्रबंध जायसी क परवर्ती कवि और काव्य तमनऊ विश्व विद्यालय से प्रकाशित हुआ। इसमें जायसी के पश्चात् के सूफी प्रमाणों का विवेचन किया गया है। १९५६ ई० में प्रस्तन विद्या पीकत पदमावत का काव्य सोदम प्रकाशित हुआ। इसमें पदमावत के काव्यगत सौंदर्य को नय सिरे से देखने का प्रयास है और भरे विचार में यह प्रयास बहुत अच्छा हुआ है।^२ १९५७ ई० में डा० तय्येब का शोध ग्रन्थ सूफी महाकवि जायसी नाम से प्रकाशित हुआ। इस ग्रंथ का रचनाकाल १९४९ ई० है और इसका प्रकाशन १९५७ ई० में हुआ है। इस ग्रंथ में १९४९ ई० के पश्चात् गाद्य में प्राप्त किसी भी सामग्री का उपयोग नहीं किया गया है।^३ इस अध्ययन में ऐसी कोई भी बात नहीं दी गई पश्चिमी जिसके वन पर इस ग्रंथ को अनुसंधान ग्रंथ कहा जाय। इसमें न तो लेखक ने किसी नवीन तथ्य का उद्घाटन किया है और न उसे बात तथ्या की मौनित व्याख्या और उनके बीच नवीन सम्बन्ध स्थापन में ही सफलता मिल सकी है। यह बात निस्संकाच कही जा सकती है कि प्रस्तन ग्रंथ से जायसी विषयव्यवहारी की जानकारी में कोई वृद्धि नहीं हुई। सारा ग्रंथ अनावश्यक विस्तार उभले विचारों और दुबल तर्कों से भरा हुआ है। मौनितता का इसमें सबधा अभाव है। शुक्ल जी के ही कथनों को प्रायः हरफेर के साथ दुहरा भर दिया गया है। जायसी के जीवन-वृत्त विषयव्यवहारी किसी नवीन तथ्य का उद्घाटन नहीं हुआ है उससे तक भी सुनिश्चित नहीं है। इन्होंने दूसरे अन्वय में जायसी के जीवन वृत्त से सम्बन्ध हमारी जानकारी में कोई वृद्धि नहीं की। जना वश्यक विस्तार करके पुस्तक का बलवर दगाया गया है। अनावश्यक विस्तार पिष्टपेषण और छिछोतेपन का सबसे बत्कर कोई दूसरा उदाहरण नहीं मिल सकता।

१—ना० प्र० पत्रिका, वप १७ सख्या २००९, प० ३४१।

२—डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी पन्नावत का काव्य-सौंदर्य—शुभकामना से उद्धृत।

चरित्र चित्रण म तरतक ने अपनी दशनीय विवकशूयता का परिचय दिया है। इस ग्रन्थ के सभी अंश जिनके सम्प्रदाय म मौलिकता का दावा किया गया है, भ्रामक और आधारहीन हैं। लेखक मचन को जायसी का पूषवर्ती कवि मानता है जो गनत ह।' किन्तो श्री दशा म इसे शोचप्रय कहना तो उचित नहीं। प्रस्तुत ग्रन्थ के प्रकाशन से हिन्दी आलोचना साहित्य के विकास म सौगमन श्री योग नहा मिला है।' श्रीगोपालराय का उपयुक्त कथन यथाथ है। यदि श्री जयदेव जी भाडा श्रम और अध्ययन किये होते तो संभवतः उनकी कति मूल्यवान् होंतो पर अध्ययन और श्रम के अभाव म 'शुक्ल जी के मतों का पिष्टपयण और शुक्ल जी की ही निन्दा करण और कहा-नशा' कल जी के प्रमाणिक मत का दाव कर उठने नारा भूत की है। आचार्य प० हजारीप्रसाद द्विवेदी ने अपने कई ग्रन्थो म जायसी विषयक विवचन एवं अध्ययन के लिए नई दिशाआ का निर्देशन भी किया है। उन्होंने हिन्दी साहित्य की भूमिका, हिन्दी साहित्य का आदिकान, हिन्दी साहित्य नाथ-सम्प्रदाय मध्यका तीन धम साधना प्रभृति ग्रन्थो म जायसी और उनके अध्ययन के नवीन आयामा का उदघाटन किया ह। उनके मतानुसार 'पदमावत' मे ऐतिहासिकता के लिए मूढ मारना बेकार है। उसका सम्पूर्ण सौंदर्य का य का है। उसमे भारतीय काव्यो की कथानक कृतियों का सुन्दर पर्याय हुआ ह। पदमावत की कथा भारत की प्राचीन कथाओं म है।'

हिन्दी साहित्य के कतिपय अग्र इतिहास-ग्रन्थो म भी जायसी विषयक चर्चाएँ की गई हैं किन्तु प्रायः शुक्ल जी का [जायसी-ग्रन्थावली की] भूमिका का ही सार रूप सचन देखने को मिलता है।

कुछ लोगो ने जायसी पर अलग से भी ग्रन्थ लिखे है, डा० रामरत्न भट-नागर का 'जायसी डा० सुधीन्द्र का 'कविवर जायसा और उनका पदमावत, श्री इन्द्रचन्द्र नारङ्गकत 'पदमावत का ऐतिहासिक आधार और 'पदमावत सार प्रो० दान बहादुर पाठक कत जायसी की काव्य-साधना,' श्री यादव शर्माकत 'जायसी साहित्य और सिद्धांत। श्री पुष्पोत्तमचन्द्र याजपथीकत 'कवीर और जायसी का मू याकन आदि ग्रन्थ हिन्दी के वी० ए० एम० ए० के विद्यार्थियों के लिए लिखे गये है। इन ग्रन्थो म श्री नारग जी कत पदमावत सार की भूमिका और 'पदमावत का ऐतिहासिक आधार' गोथ एवं चिन्तनपूर्ण ग्रन्थ है। पटना विश्वविद्यालय के प्रो० समद हसन अस्वरी के कइ नख सूफीमत हिन्दी साहित्य और जायसी से सम्बद्ध प्रकाशित हुए हैं। 'काटीब्यशन आफ दी सूफाज आफ दी नाथ टू हिन्दी' लिटरेचर [१९४३ ई०] ए यूनी डिसकवड वाल्यूम आफ अवरी वकम एक्वूडिण 'पदमावत

१-गोपालराय ना० प्र० पत्रिका २०१६ अफ ३४ पृ० २०९-१२।

२-करंट स्टडीज पटना कानज पटना, १९४३, अक २।

एण्ड अखरावट आफ मलिक मुहम्मद जायसी' रेयर फ्रेगमेंटस आफ च'दायन एण्ड मुगावती' [१९५५ ई०] आदि लख हिन्दी गोप के क्षन म महत्वपूर्ण हैं। प्रो० अस्करी ने च'दायन के रचनाकाल का प्रामाणिक विवरण दिया है मनेर शरीफ खानकाह से पदमावत, अखरावट, महरिनामा अरिल्ल विधोगसार प्रमति ग्रथो को खोज निकाला है और सूफी सम्प्रदायो और कतिपय सूफी सतों का प्रामाणिक इति वृत्त प्रस्तुत किया है। उनके मतानुसार पदमावत का रचनाकाल ९४७ हि० है। सन १९५६ ई० में उन्होंने पटना विश्वविद्यालय पत्रिका वष १० में एक निबन्ध 'दि बिहार शरीफ मनस्विष्ट आफ पदमावत प्रकाशित कराया। इस नख म उन्होंने प्रियसन, शुबल और माताप्रसाद गुप्त आदि द्वारा संपादित पदमावत के विभिन्न संस्करणों तथा मनेरशरीफ की हस्तलिखित प्रति से बिहार शरीफ से प्राप्त 'पदमावत की हस्तलिखित प्रति के पाठांतरों का सविस्तार विवरण किया है।

प० मुशीराम शर्मा कत पदमावत [पूर्वाह्न, सटीक^१] म शबलजी के ही पाठ को प्रघाता दी गई है। यह एक सुन्दर और उपयोगी टीका है वही-वही तो शर्मा जी ने अत्यन्त सुन्दर जय किए हैं जस किछु कहि चला तबल देद्र उगा। का अत्यन्त उपयुक्त अर्थ^२ डा० वासुदेवशरण अग्रवाल ने पदमावत मूल्य और सजीवनी व्याख्या^३ म अत्यन्त विद्वत्तापूर्ण ढंग से पदमावत के अर्थानुसंधान का प्रयत्न किया है। इस सजीवन भाष्य द्वारा कोई भी हिन्दी जानकार पदमावत के सौंदर्य का रसास्वादन कर सकता है। इसके प्रारम्भ म डा० अग्रवाल ने ५५ पन्ठों के विषय प्राक्कथन में पदमावत का पाठ 'रचनाकाल, गुरुपरम्परा अध्यात्म पक्ष आदि पर गम्भीरता पूर्वक और विद्वत्तापूर्ण ढंग से विचार किया है। श्री गोपालराय कत 'हिन्दी प्रमा ख्यानक काव्य में आलोचना तथा अनुसंधान और जायसी से सम्बद्ध तिथिया का पुनः परीक्षण शीघ्र लक्ष्य अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। हिन्दी अनुशीलन के धीरेन्द्र वर्मा विनोपादि में प्रकाशित 'जायसी तिथिग्रन्थ और गुरुपरम्परा [लेखन प० रामसेलावन

१—ज० बी० आर० एस० वष ३९ अंक १२ (माघ जून)।

२—क्वेट स्टडीज पटना कानेज पटना १९५५, प० ३३।

३—प० मुशीराम शर्मा पदमावत, संपादित संस्करण १९५८ ई०।

४—वही, प्राक्कथन (च)।

५—वही (टीका भाग) प० ११ (दोहा २३ का अर्थ)।

६—डा० वासुदेवशरण अग्रवाल, पदमावत (मूल और सजीवनी व्याख्या) १९५५ ई०, चिरगावि श्रांसी से प्रकाशित।

७—ना० प्र० पत्रिका २०१६, अंक ३४ वष ६४।

८—हिन्दी अनुशीलन, जुलाई सितम्बर १९५८ वष ११, अंक ३।

पाण्डेय] और जायसी की विरहानुभूति का आध्यात्मिक पक्ष' [डा० मु शीराम शर्मा] भी जायसी स सम्बद्ध अध्ययनो म अद्यावधि शृङ्खला के रूप में समादृत हैं। १९५८ १९५९ ई० म प्रस्तुत लेखक ने चित्ररेखा को प्रकाशित किया। उसकी भूमिका म मसलानामा या 'मसला की प्राप्त प्रति का भी उल्लेख किया गया है। ('चित्ररेखा के लिए देखिये—'एक बोल आचाय प० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, चित्ररेखा)।

अब तब जायसी के ग्रथो(मुख्यतः पदमावत)के कई संस्करण संपादन हुये हैं—

- (१) नवलकिंगोर प्रस लखनऊ से प्रकाशित, १८८१ ई० (सम्पादन अज्ञात)।
- (२) रामजसन मिश्र द्वारा सम्पादित, चन्द्रप्रभा प्रस, काशी से प्रकाशित, १८८४ ई०।
- (३) बगवासी फम द्वारा १८९६ ई० म प्रकाशित।
- (४) मौलवी अली हसन द्वारा सम्पादित, मु शी नवलकिंगोर द्वारा प्रकाशित।
- (५) शैल अहमद अली द्वारा सम्पादित शख मुहम्मद अजीमुल्लाह द्वारा वानपुर से प्रकाशित।

(विशेष—मौलवी अली हसन और शख अहमद अली द्वारा सम्पादित पदमावत के पाठ अत्यंत उपयोगी हैं। डा० माताप्रसाद गुप्त ने भी अपने पदमावत के संस्करण में इन प्रतियों का उपयोग किया है। इन दोनों प्रतिया के पाठ शुक्ल जी और प्रियसन के पाठ का पावन समर्थन करते हैं)।

- (६) दी पदमावति आफ मलिक मुहम्मद जायसी, १९११ १२ ई० जी० ए० प्रियसन और महामहोपाध्याय प० सुधाकर द्विवेदी द्वारा सम्पादित १ से २५ खण्डों तक रायन एंगियाटिक सोसायटी आफ बेंगाल, कलकत्ता से प्रकाशित। इन दोनों विद्वान संपादकों ने ग्यारह^१ हस्तलिखित प्रतियों (त० १, ३ द्वि० २ ३ द्वि० ४ ५ प्र० १, तीन कथी लिपि की तथा एक उदयपुर की नागरी लिपि की प्रतियाँ) की सहायता से पाठ निर्धारण का प्रयत्न किया था।^१

- (७) जायसी ग्रथावली—(१९२४ ई० प्रथम संस्करण, १९३१ द्वि० सं०) नागरी प्रचारिणी सभा काशी द्वारा प्रकाशित, प० रामचन्द्र शुक्ल

१—डा० माता प्रसाद गुप्त, जायसी ग्रथावली भूमिका, पृ० १०६।

२—वही, पृ० १०६।

३—सूचनात शास्त्री पदमावती, प्रीफेस, प० ६ (प्रियसन और—द्विवेदी ने सात हस्तलिखित प्रतिया चार फारसी, दो देवनागरी, एक कथी की सहायता से पाठ निर्धारण किया था)।

द्वारा सम्पादित, इसके प्रथम संस्करण में पदमावत और अमरावत दो ही ग्रंथ थे। द्वितीय संस्करण में आखिरी कवयिता को भी सम्पादित करने प्रकाशित किया गया।

- (८) पदमावत पूर्वार्द्ध १८२७ ई० लाला भगवानन्दीन द्वारा सम्पादित १ से ३३ खण्ड तक हिन्दी साहित्य-सम्मेलन प्रयाग से प्रकाशित।
- (९) संक्षिप्त पदमावत-१९२६ ई० श्री श्यामसुन्दर दाम और सत्यजीवन वमा द्वारा सम्पादित इण्डियन प्रेस, प्रयाग से प्रकाशित।
- (१०) पदमावत १९३४ ई०, १ से २५ खण्ड तक पंजाब यूनिवर्सिटी लाहौर द्वारा प्रकाशित और सूयका न शास्त्री द्वारा सम्पादित।
- (११) प० भगवती प्रसाद द्वारा सम्पादित नवलकिशोर प्रेस, तखनऊ द्वारा प्रकाशित।
- (१२) 'पदमावती' की लिग्निस्टिक स्टडी आफ् टी सिक्स्टीथ सेचुरी हिन्दी (अवधी) डा० लक्ष्मीधर (द्वारा सम्पादित केवल १०६ छंदा का पाठ सम्पादन)। और ल्यान्क एण्ड कम्पनी लन्दन से १९४९ ई० में प्रकाशित।
- (१३) जायसी ग्रंथावली (डा० माताप्रसाद गुप्त हिन्दी-स्तानी ऐक्टमी १९५१ ई०)।
- (१४) जायसीकृत 'पदमावत सजीवनी' यास्मायुक्त सम्पादन डा० वासुदेव शरण अग्रवाल १९५५।
- (१५) चित्ररेखा-१९५८-५९ ई० प० निवेशहायक पाठक द्वारा सम्पादित हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय वाराणसी से प्रकाशित।

डा० प्रियसन और सुधानर का संस्करण-सर जाज प्रियसन ने पदमावत का सम्पादन और पाठ निर्धारण करते समय दस प्रतियों का उपयोग किया था। सात प्रतियों (जिनका उल्लेख पहिले हो चुका है) के अतिरिक्त तीन कवी लिपि की तथा एक उदयपुर राज्य वाली नागरी लिपि की प्रतियाँ उनके समक्ष थीं। तीनों कवी प्रतियों के पाठ एक जैसे थे अतः कवी की तीन प्रतियों में से कबल एक के पाठांतर उन्होंने अपने संस्करण में लिए हैं। उदयपुर की नागरी प्रति के पाठांतर उन्होंने दिए हैं। प्रतियों का बहुमत और तृतीय प्रति ३ के पाठ को उन्होंने सामान्यतः ग्रहण किया है।

प० रामचन्द्र शुक्ल का संस्करण-शुक्ल जी के समय पदमावत के चार संस्करण प्रस्तुत थे—१ नवलकिशोर प्रेस का; २ प० रामानन्द मिश्र का ३

बानपुर के किसी प्रस का और ४ म० म० प० सुधाकर द्विवेदी और ग्रियसन का । इनके अतिरिक्त शुक्ल जी के पास कथी लिपि में लिखी एक हस्तलिखित प्रति भी थी, जिससे पाठ के निश्चय करने में कुछ सहायता मिली है ।^१

उपयुक्त विवेचन के आधार पर निम्नलिखित निष्कर्ष निकलते हैं—

(१) शुक्ल जी के समग्र प्रत्यक्षत अप्रत्यक्षत कुल मिलाकर लगभग १६ प्रतियाँ थीं—(क) नवलकिशोर प्रस की प्रति (ख) रामजसन मिश्र का संस्करण (ग) बानपुर के किसी प्रेस का संस्करण, (घ) ११ प्रतियाँ के आधार पर पाठ निर्धारित और प्रकाशित ग्रियसन और सुधाकर त्रिवेदी वाला संस्करण जिसमें संपादक ने विभिन्न प्रतियों के पाठांतर भी लिए हैं (ङ) एक हस्तलिखित कथी अक्षरो वाली प्रति अर्थात् शुक्ल जी के समक्ष ग्रियसन आदि के संस्करण की हस्तलिखित प्रतियों का रूप भी विद्यमान था । डा० माताप्रसाद गुप्त का आक्षेप है कि हस्तलिखित प्रति का नाम पर केवल एक प्रति का उपयोग उहोने किया था । प्रतिनिधि परम्परा प्रथम परम्परा, पाठांतर परम्परा आदि के आधार पर ग्रंथ के पाठ निर्धारण की बात ही शुक्लजी के संस्करण के विषय में नहीं सोचनी चाहिए क्योंकि प्रति का नाम पर केवल एक हस्तलिखित प्रति का उहोने उपयोग किया । ग्रियसन की भाँति ही शुक्ल जी का ध्यान भी इस बात की ओर नहीं गया कि वास्तव में पदमावली की आदि प्रति उद्धू नहीं नागरी लिपि में थीं इसलिए वे भी उसी प्रकार भाग के बीच में रह गए जस ग्रियसन । जायसी की भाषा और छन्द योजना के स्वस्था का भी ठीक ठीक परिचय उनके संस्करण में नहीं दिखता है । जिनका (ग्रियसन और बानपुर वाला संस्करण का) इतना ऋण शुक्ल जी पर है, उनकी जिन शक्तियों में खतर शुक्ल जी नहीं लेते, वह शक्तियों जैसे समानोच्चक के लिए ही संभव था ।

यह कथन उपयुक्त नहीं है कि शुक्ल जी के सामने केवल एक हस्तलिखित प्रति थी । डा० ग्रियसन और प० सुधाकर द्विवेदी की ग्यारह हस्तलिखित प्रतियाँ की चर्चा स्वयं डा० गुप्त ने की है यह भी स्पष्ट है कि ग्रियसन ने अपने संस्करण में प्रतियाँ के पाठांतर भी लिए हैं और इस प्रकार शुक्ल जी के समग्र ये पाठांतर और निर्वा

१—पदमावली, सर जाज ग्रियसन और सुधाकर द्विवेदी ।

२—रामचन्द्र शुक्ल—वक्तव्य प्र० स० प० ५ ।

३—माताप्रसाद गुप्त—ज० ग्र०, भूमिका पृ० ११५।

४—डा० माताप्रसाद गुप्त जायसी ग्रन्थाली, भूमिका पृ० ११४ ।

रित पाठ भी विद्यमान थे ।

शुक्ल जी ने प्रियसन और सुधाकर जी की 'लम्बी चौड़ी टीका-टिप्पणी' की आलोचना की है । शब्दाथ टीका और टिप्पणियाँ की अशुद्धता और भ्रमपूर्णता का उद्घोष अवश्य उल्लेख किया है । शब्दों की गलत 'युत्पत्ति' पर वे अवश्य बहसलाए हुए थे—जो एक आचार्य के लिए स्वाभाविक भी था । प्रियसन वाले सस्करण के पाठ निर्धारण में शुक्ल जी सहमत थे—कही कही अथ ठीक बठाने के लिए पाठ भी विवृत कर दिया गया है ।^१ कुछ ऐसे स्थल अवश्य थे, जिनका उल्लेख शुक्ल जी ने किया है ।

जहाँ तक पाठ-निर्धारण का प्रश्न है शुक्ल जी ने लिखा है कथी प्रति में पाठ-निर्धारण में कुछ सहायता मिली । पाठ अवधी-याकरण और उच्चारण तथा भाषा-विकास के अनुसार रखा गया है । कभी-कभी किसी चौपाई का पाठ और अर्थ निश्चित करने में कई दिनों का समय लग गया है । काव्य भाषा के प्राचीन स्वरूप पर भी पूरा ध्यान रखना पड़ा है ।^२ इसलिए यह कथन कि 'शुक्ल जी के सस्करण में पाठ-निर्धारण की बात ही न सोचनी चाहिए' समीचीन नहीं प्रतीत होता । यह अवश्य है कि शुक्ल जी के समय 'तनी हस्तलिखित प्रतियाँ नहीं थी और कही-कही डा० गुप्त के पाठ अच्छे हैं पर सत्र स्थानों पर ऐसी बात नहीं है । आदि प्रति नागरी अक्षरों में थी या पारसी लिपि में या कवी लिपि में यह एक जटिल प्रश्न है । जब तक कोई अत्यन्त सुदृढ़ प्रमाण न हो या जब तक आदि प्रति में मिन तब तक तीन नागरी प्रतियों के आधार पर (और वे भी भ्रमण सं० १८१८ नागरी लिपि, सं० १८४२ कथी अक्षरों में लिखी हुई तीसरी या लिपिकाल नहीं दिया गया है, यह नागरी अक्षरों में है सं० १८१८ वि के पश्चात् की प्रतिलिपि की हुई है) बिना पर्याप्त कारण के आदि प्रति को नागरी अक्षरों में लिखी हुई कहना और शुक्ल-प्रियसन की माँग में ही चटकते रह गए कहना ठीक नहीं जचता । जहाँ तक जायसी की भाषा और छन्द-योजना के स्वरूपों के ठीक-ठीक परिचय और शब्दों के सस्करण में उनके अभाव का आक्षेप है यह भी ठीक नहीं है क्योंकि डा० गुप्त ने आदि प्रति की भाषा-छन्द-योजना^३ पर जो कुछ लिखा है वह शुक्ल और गुप्त दोनों के सस्करणों में एक जमा है । शुक्ल जी जबकी भाषा और छन्द-योजना के समझें थे—इसमें दो मत नहीं हैं ।

इस विषय में आचार्य प. विश्वनाथप्रसाद मिश्र का मत विशेष रूप से उल्लेख

१—प० रामचन्द्र शुक्ल जा० प्र० प्र० सं०, वक्तव्य, पृ० १ स ५ तक ।

२—वही पृ० ३ ।

३—वही, पृ० ५, ७, ८, ।

४—द्रष्टव्य, इसी प्रबंध में पत्रमावन की लिपि 'गीपक' ।

५—डा० मानाप्रसाद गुप्त, जा० प्र०, भूमिका पृ० २६-२४ ।

वनीय है— “आचार्य शकन ने पद्मावत का जो पाठ दिया है वह बर्णानिक बसोती पर बहुत बरा न उतरे, पर मेरी धारणा है कि डा० गुप्त का पाठ की अपेक्षा उनके पाठ अधिक सुसंगत हैं। कही-कही गुप्त के पाठ भी अच्छे हैं। यह गड़ मूल के निकट होने की बात। छान-रीन करने से मरी अब भा निश्चित धारणा यही है कि अवधी का स्वरूप के निकट गुवनजी के पाठ अधिक हैं। अवधी का नकटय जापसी के मूल पाठ का नकटय भी हो सकता है।”

डा० सूयवान् गास्त्री द्वारा संपादित पद्मावति गास्त्रीजी ने ‘प्रिफस’ के अंतगत लिखा है कि इस सम्स्करण का पाठ मावधानी के साथ प्रियसन के सस्करण पर आधारित है। उन्होंने प्रियसन के पाठ को प्रामाणिक माना है क्योंकि वह पञ्जाब यूनिवर्सिटी लाहौर के पुस्तकालय में सुरक्षित एक हस्तलिखित प्रति के पाठ से मिलता है। उन्होंने पद्मावति के अंत में एक महत्वपूर्ण इन्डेक्स (शब्द-सूची) भी दी है।

प० भगवतीप्रसाद पांडेय का पद्मावत—पांडेय जी ने दी बाघे’ में चार (नवल किशोर प्रस का बानपुर का प्रियसन का और गुवनजी का) सस्करणों का उल्लेख किया है। प० रामचंद्र गुवन का सस्करण के विषय में उनका मत उल्लेखनीय है— इसमें कोई शक नहीं कि पण्डितजी (प० रामचंद्र गुवन) मौसूफ न ससनीकृत जापसी की तालाफ करपा कर जो एहसान अदबी दुनिया पर कर माया है उसकी तारीफ करना आफताव को बिराग लिखाना है। पांडे जी के सस्करण का मूल आधार गुवनजी का सस्करण है।

प० लक्ष्मीधर का सस्करण—प० लक्ष्मीधर ने कुल ६ हस्तलिखित प्रतियों का एक गुचलगी के सस्करण का उपयोग किया है। इस सस्करण के लिए उन्होंने इण्डिया आफिस लंदन का ही नहीं, इण्डिया आफिस लंदन की भी कुल प्रतियां को देखने की आवश्यकता नहीं समझी। आश्चर्य यह है कि इसी को समा लोचनाराम संपादन कहा गया है और इसा पर संपादक को लंदन यूनिवर्सिटी का पी एच०डी० की उपाधि मिला है। लखनऊ की इस ग्रंथ पर १९४० ई० में लन्दन विश्वविद्यालय से पी एच०डी० की उपाधि मिला थी। उसने २९ पृष्ठा में जापसी की भाषा के ‘याचरणिक् रूपा का परिचय दिया है। पाँच छह हस्तलिखित प्रतियों का आधार पर पद्मावत के १०६ छंदों का संपादन किया है। इन छंदों के अर्थ भी दिए गए हैं। चौथे खण्ड में १३० पृष्ठा में लेखक ने गनोमरी (शब्द सूची) दी है। यह परिश्रमपूर्वक प्रस्तुत किया गया महत्वपूर्ण बाध है। स्पष्ट है कि लक्ष्मीधरजी ने अपने विषय का सम्यक प्रतिपादन और अनुशीलन किया है।

१—आचार्य प० विश्वनाथ प्रसाद सिध, ७। १२। ६० ई० का पत्र, पृ० १।

२—डा० माताप्रसाद गुप्त जा० प्रयागवासी भूमिका, पृ० ११७ १८

जायसी ग्रन्थावली डा० माताप्रसाद गुप्त हिन्दुस्तानी एकेडेमी प्रयाग, १९५१ ई०—डा० गुप्त के सस्करण म जायसीकृत चार ग्रंथ सपादित हैं—पदमावत अखरावट आखिरी कलाम और महरि बाईसी। इस सम्बन्ध म डा० गुप्त ने लिखा है कि 'इस ग्रन्थावली के अखरावट का पाठ अय प्रतियो के अभाव म प० रामचन्द्र शुक्ल के सस्करण के अनुसार रखा गया है पश्चात गोपालसिंह जी से एक प्रति मिली किन्तु छपाई आरम्भ हो जाने के कारण उसका इससे अधिक उपयोग नहीं किया जा सका कि ग्रंथ के अन्त म परिशिष्ट जोड़कर इस प्रति का पाठान्तर माय दे दिया जाय।' किन्तु शुक्लजी के अखरावट और डा० गुप्त के अखरावट (जो मूलतः शुक्लजी का ही है) के पाठों का भिन्नान करने पर स्पष्ट हो जाता है कि डा० गुप्त ने अनेक स्थलों पर अपनी ओर से परिवर्तन कर दिये हैं। उन्होंने ऐसा क्यों किया है कारण अज्ञात है। कम से कम डा० गुप्त नागराप्रचारिणी सभा काशी की अखरावट वाली प्रति का तो उपयोग कर ही सकते थे। इसी प्रकार उन्होंने आखिरी कलाम का भी पाठ शुक्लजी का ही रखा है।^१ (पर अनेक परिवर्तनों के साथ)। इस ग्रन्थावली म सवप्रथम महरि बाईसी नामक जायसी की एक अप्रकाशित रचना का प्रकाशन किया गया है। स्पष्ट नामोल्लेख के अभाव म सपादक ने महरि बाईसी नाम दे दिया है और लिखा है 'इस कृति म कुल बाईस शीत हैं।' इस ग्रंथ की प्रस्तुत विचार्यों के पास तीन अत्यन्त महत्वपूर्ण प्रतियाँ हैं। एक अय प्रति आनन्द भवन पुस्तकालय विसवा, सीतापुर म है। गुप्तजी द्वारा प्रकाशित महरि बाईसी के पाठ असतोपजनक हैं।

डा० वासुदेवशरण अग्रवान का कथन है कि डा० गुप्त ने इस सस्करण को तयार करने म बहुत ही परिश्रम किया है। पदमावत के मूल पाठ पर जमी हुई बाई के पाठ सशोधन की वैज्ञानिक युक्ति से हटाकर श्री गुप्त ने हिन्दी साहित्य के क्षेत्र म महत्वपूर्ण काय किया है। जब भी कोई विद्वान पदमावत या अय किसी ग्रंथ के पाठ निणय का काय हाथ म लेगा उसे इसी युक्ति का आश्रय लेना पडगा। गुप्तजी ने सोलह प्रतियो के आधार पर पाठ सशोधन का काय किया था जिनम से पाँच प्रतियाँ बहुत ही अच्छी थीं। उनम से चार प्रतियाँ लन्दन के कामनवेल्व रिसेचर्स आफिस मे हैं। पाँचवीं प्रति श्री गोपालचन्द्र जी के पास थी।^२ हो सक्ता है कि भविष्य म और भी अच्छी प्रतियो के प्राप्त होन पर कहीं-कहीं पाठों

१—डा० माताप्रसाद गुप्त जा० प्र० चतुर्थ पृ० ३।

२—वही, पृ० १०४।

३—वही पृ० १४।

४—ना० प्र० सभा, त्रयोदश प्रकाशित विवरण (सन १९२६ स २७ तक) पृ० ४३१

५—डा० वासुदेवशरण अग्रवान, पदमावत, प्राक्खन पृ० ६-१०।

म मुधार की आवश्यकता जान पड़े।”

इतना लिखने के बावजूद डा० अश्रवाल जी ने गुप्त जी के अनब पाठों के स्थान पर दूसरे पाठ दिए हैं (जस डाड के स्थान पर दुआलि इमी प्रकार के बहुत म पाठ हैं) और इ गित किया है कि—‘पदमावत के मूल पाठ और अय के विषय म श्री माताप्रसादजी और मरे इस प्रयत्न के बाद भी साज क लिए अभी अवकाश बना हुआ है।’ इस बात के स्पष्टीकरण के लिए अश्रवालजी ने कई उदाहरण भी दिए हैं। अन्त म उन्होंने स्पष्ट लिखा है कि “जायसी के पाठ-संशोधन और अय विचार के सम्बन्ध म जो काय अब तक हुआ है उस अभी और बढ़ाने की आवश्यकता है। इमी प्रकार जायसी की भाषा के व्याकरण का गहराई स निष्पत्त आवश्यक होगा, जो पाठ निष्पत्त में सहायक हो सकेगा। स्पष्ट है कि विद्वान लक्ष्म की दृष्टि म डा० गुप्त के पाठ-संशोधन-काय का अभी और आग बढ़ान तथा जायसी के मूल पाठों तक पहुँचने का पूरा अवकाश है। गुप्तजी न बिना कारण दिये लिख लिया है कि इन तीनों कृतियाँ (अखरावट, आखिरी कताम और महरी बार्दसी) की प्रामाणिकता के बारे म मुझ सन्देह है।” इन कृतियों म स अखरावट और आखिरी कताम म जायसी का अपने जन्म जीवन आदि के विषय म उल्लेख, जायसी की भाषा जायसी की छाप और जायसी के ही प्रत्येक शब्द आदि स स्पष्ट है कि ये कृतियाँ जायसी की ही हैं—इसम दो मत नहीं। परम्परा और प्रामाणिकता भी यही है।

डा० माताप्रसाद गुप्त के पाठों के विषय म चाल्म नेपियर^१ का आक्षेप है कि वह सब पाठ नागरी अक्षरों म लिखता है, फलस्वरूप उन शब्दों के रूप पारसी अक्षरों म लिख गये शब्द स भिन्न हा गये हैं और पाठकों को भ्रम सामर्थी नहीं मिलती। रचना का अध्याया में विभाजन नहीं हुआ है। ऐसा विभाजन उपयुक्त भी था, चाह जायसी ने न भी किया हो। गुप्तजी का कोई छद्म किसी दूसरे सस्वरण म पाना कठिन है, विशेषकर जब वे कोई अनुक्रमणिका या समन्वय-सूची नहीं देते। गुप्तजी पदमावत के पहले सम्स्वरणा का बणन करत हैं पर तात्ता भगवानदीन के अध्याय ३३ तक के सस्वरण की कान्द चर्चा यहा नहीं है। डा० ग्रियसन और गुप्त ऐम महानुभावा के धर्म की विनयपूजक चर्चा असंगत न होती। मुद्रण की भूलों की यथेष्ट सम्बन्धी सूची दा गई है किन्तु खेद है कि फिर भा बड़ भूलें रह गई हैं,

१-गो० वामुदेवशरण अश्रवाल, पदमावत, प्राक्वचन, पृ० २५।

२-वही, पृ० २६।

३-वही, पृ० २७।

४-वही पृ० २८।

५-वही पृ० १०४।

६-ना० प्र० पतिवा, वय ५७, स० २००६, पृ० ३३२।

वसे जो उस सूची में नहीं हैं जैसे पृ० ४३० स्वामिहि के स्थान स्वामिहि ।^१
 ' लिपि के विषय में डा० गुप्त का पहला उद्देश्य इस बात को प्रमाणित करना है कि
 नागरी और ब्रह्मी प्रतियाँ सबकी सब फारसी प्रतियों की प्रतिलिपियाँ हैं । इसके बाद
 उनको प्रस्ताव है कि सब वर्तमान प्रतियाँ फारसी तथा नागरी भी नागरी की एक
 मूल प्रति की प्रतिलिपियाँ हैं । परन्तु वे प्रस्ताव करके बात को छोड़ जाते हैं ।^२

डा० गुप्त के पाठ भी वहीं कहीं अच्छे हैं । अबधी के निकट गुन जी के
 पाठ अधिक है अबधी का नकट्य जायसी के पाठ का भी नकट्य हो सकता है ।^३
 ।। डा० गुप्त ने इस सस्वरण में वनानिक प्रणाली से पाठ-निर्धारित किया है ।
 उनके पास प्राचीनतम प्रति ११०७ हिजरी की थी । उस प्रकार स्पष्ट है कि यह
 प्रति पदमावत की रचना के १६० वर्ष बाद की है । निश्चित है कि इस प्रति में
 भी मूल प्रति का रूप अनेक स्थलों पर विकृत कर दिया गया है । अब प्रश्न यह है
 कि पदमावत के सपादन में वनानिक प्रणाली का क्या महत्व है ? इसका उत्तर है
 कि केवल वनानिक प्रणाली ही सब कुछ नहीं है भाषा और साहित्य की प्रणालियाँ
 अधिक महत्वपूर्ण हैं । जब तक कोई सपादक मूल ग्रन्थ के विषय का ममत्त न हो
 तब तक वनानिक प्रणाली के पाठशास्त्र के जड़त्व के साथ चेतन प्रक्रिया का याग
 नहीं होता । वनानिक छाननी से छान लेने पर ही कोई पाठ मूल के निकट हो जाय
 ऐसा नहीं होता । गुप्तजी ने चेतन प्रक्रिया से कम काम लिया है । इसलिये उनके
 सस्वरण में अनेक भद्दी भूनें हा गई हैं । इन समस्त भूतों और त्रुटियों के होने
 पर भी डा० गुप्त की जायसी ग्रन्थावली का स्वागत प्राचीन हिन्दी के सब प्रेमी
 करेंगे । सपादक अपने धर्म के लिये धन्यवाद का पात्र है ।

उपयुक्त विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि यद्यपि जायसी के
 जीवन और कृतित्व पर पर्याप्त काय हुआ है तथापि कुछ ही काय ऐसे हैं जिन्हें
 प्रामाण्य और उपादेय माना जा सकता है । उस क्षेत्र में सर जाज प्रियसन प
 सुधाकर द्विवेदी प० रामचन्द्र गुन डा० माताप्रसाद गुप्त डा० वासुदेवशरण
 अन्नमाल और डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी के ग्रन्थ जायसी के खोजिया के लिये पथ
 निर्देशन का काम करते हैं । इन विद्वानों की कृतियों का स्थायी महत्व है । इनमें
 अनेक महत्वपूर्ण सूत्र ऐसे हैं जिनके आधार पर खोज की जा सकती है ।

१-ना० प्र० पत्रिका वर्ष १७ पृ० ३३२-३३ ।

२-वही पृ० ३३६ ।

३-आचार्य प० विश्वनाथप्रसाद मिश्र (या पत्र ७।१२।६०) ।

मलिक मुहम्मद जायसी . जीवन-व्यक्तित्व एव गुरु-परम्परा

नाम, जीवन, व्यक्तित्व

मलिक मुहम्मद जायसी मलिक वंश से थे। मिश्र म मलिक सेनापति और प्रधान मंत्री को कहते थे। खिलजी राज्यपाल मे अलाउद्दीन ने बहुत स मंत्रियों को अपने चचा को मारने के लिए नियत किया था। इससे इस बाल में यह शब्द प्रचलित हो गया। ईरान में मलिक जमींदार को कहते हैं। मलिकजी के पूर्वज निगलाम देश ईरान से आये थे और वही स इनके पूर्वजा की पदवी मलिक थी। 'हजिनतुन असफिया' के लेखक ने मलिकजी के मुहम्मदक तर्हिदी की उपाधि से विभूषित किया है। मलिक जी के वंशज भी अशरफी खानदान के चैन थे और मलिक कहलाते थे। तारीफ पीरोज शाही में है कि बारह हजार के रिसानादार को मलिक कहते थे। मलिकजी के हकीकी वारिस मलिक थे। इसलिए खानदान भर मलिक कहनाता था। मलिक जी स्वयं चंद बीघ मीरुसी जमीन पर अपना निर्वाह करते थे।^१

सूनत मलिक अरबी भाषा का शब्द है। अरबी में इसके अर्थ स्वामी राजा सरदार जादि होते हैं। मलिक (म० १० व०) धातु से 'युत्पन्न बताया जाता है। इसमें वन अनेक शब्द हैं, जमे- मलक = परिश्रता मुल्क = देश, मिल्क = सम्पत्ति, मलिक = बादशाह सुल्तान। फारसी भाषा में मलिक का अर्थ है अमीर और बड़ा 'यापारी'।^२

१-सयद आले मुहम्मद मेहर जायसी बी० ए० मलिक मुहम्मद जायसी का जीवन चरित नागरीप्रचारिणी पत्रिका वर्ष ४५ अंक १ वशास १९६७ पृ० ४५-४६।

२-नूरुल्लुगात, भाग ४ पृ० ४६७।

विद्वानों का विचार है कि जायसी का पूरा नाम मलिक मुहम्मद जायसी था। मलिक इनका पूज्य से चला आया 'सरनामा' (सरनेम) है। इससे प्रकट है इनके पूज्य अरब थे। इनके पिता माता के विषय में कहा जाता है कि वे जायस के बचाने 'मुहल्ले में रहते थे। इनके पिता का नाम मलिक गेख ममरेज था। इन्हें लोग मलिक राजे अशरफ भी कहा करते थे। इनकी मां मानिकपुर के शेख अलहदाद की पुत्री थी। इनकी माता का नाम ज्ञात नहीं है। मलिक इनके वंश की उपाधि-परम्परा है और 'जायस नामक स्थान से सम्बद्ध होने के कारण इन्हें जायसी कहा जाता है। इस प्रकार इनका पूरा नाम है मलिक मुहम्मद जायसी।

जायसी को बुरूप और काना भी कहा जाता है। कुछ लोगों का विचार है कि वे जन्म से ही ऐसे थे पर अधिकांश विद्वानों का विचार है शीतना या अर्द्धांग रोग के कारण उनका शरीर विकृत हो गया था। जायसी है कि बालक मुहम्मद पर शीलता का भयकर प्रकोप हुआ। माता पिता को निराशा हुई। मां ने पाक साफ दिन से शाहमदार की मनोती की। पीर की दुआ बानक बच गया, किन्तु इस बीमारी के कारण उनकी एक आँख जाती रही। उसी ओर का बाया कान भी जाता रहा। अपने काने होने का उल्लेख उन्होंने स्वयं ही किया है -

एक नयन कवि मुहम्मद गुनी । सोइ विमोहा जेइ कवि सुनी ॥^१
चाद जइस जग विधि औतारा । दीह कलक कीह उजियारा ।
जग सूना एवह ननाहा । उवा सूक अस नखतह माहा ॥
जो नहि अ बहि डाभ न हाई । तो नहि सुगध वसाइ न सोई ॥
कीह समुद्र पानि जो खारा । तो अति भएउ असुझ अपारा ।
तो सुमेरु तिरमूल विनासा । भा कचनगिरि लाग अवासा ।
जो सहि घरी कचक न परा । वाच होइ नहि कचन करा ।
एक नन जस दरपन औ तेहि निरमन भाउ ।

सब रूपवत पाव गहि मुख जीवहि कै चाउ ॥

मुहम्मद कवि जो प्रम भा ना तन रवत न मासु ।

जेइ मुख देखा तेइ हसा मुना तो आये आसु ॥^२

—ना० प्र० पत्रिका भाग २१ पृ ४६ ।

२-म० मु० जायसी समय कल्बे मुस्तफा पृ० २० ।

३-जा० प्र० मा० प्र० गुप्त, पृ० १३३ ।

४-जा० प्र० मा० प्र० गुप्त पृ० १३३-३४ ।

५-वही, पृ० १३५ ।

जायसी वामभाग को स्वीकार नहीं करते और यही मूलभूत कारण है कि उन्होंने बाईं दिशा ही त्याग दी। जन्म से उनका प्रियतम उनके अनुकूल हुआ, तब से उन्होंने एक श्रवण — एक दृष्टि वाली बत्ति अपना ली अर्थात् उन्होंने एक का ही देखना गुरु किया और एक का ही सुनना भी गुरु किया —

‘मुहम्मद बाईं दिसि तजी एक सरवन एक आखि ।

जब ते दाहिन होई मिला, बोलु पपीहा पाखि ॥’

एक नन कवि मुहम्मद गुनी — — — । इत्यादि से स्पष्ट है कि — ‘एक आखवाले मुहम्मद का काय जितने सुना, वही मोहित हो गया। उन्होंने मानो अपने इस एकांगी रूप की समीक्षा की — अवश्य ही विधाता न एक कान और एक आख हरण करके मुझ कुरूप बना दिया, किंतु विधाता जिसे बलक देता है उसे कोई न कोई महान वस्तु भी देता है। उसने चाद को बलक दिया है, किंतु इस बलक के साथ उसे उज्ज्वल भी बनाया है। मुझे कुरूप बनाया और साथ ही काव्य गुण भी ता प्रदान किया। इस एक आख से मुझ सारा ससार दिखाई देता है। इस एक आखवाले का तेज नक्षत्रों में शुक्र के सदृश भास्वर है। आम की जिस मुर्गाधि से सारा आम जानन महमह हो उठता है उसने पहले आम में नुकीली डाम का जन्म आवश्यक माना जाता है। मीठे पानी के सरोवर तो छोटे हाते हैं किंतु विधाता ने समुद्र में खारा जल भर दिया है इसी से तो उरुआ अत नहीं दिखाई देता, अर्थात् खारे जल के कारण विधाता ने उसे अनत-असीम बना दिया है। गुमेरु गिरि पर त्रिगूल (बज) का प्रहार हुआ, इसी से तो वह सोने का पहाड़ बन कर आकाश से सलग्न हो गया। यह तो प्रकृति का नियम है कि दोष के साथ गुण और गुण के साथ दोष मिला ही रहता है। जब तक रासायनिक प्रक्रिया में घरिया में बलक नहीं पड़ता जब तक वाच शुद्ध काचन की बला को नहीं प्राप्त करता। विधाता ने विवृत शरीर बनाकर मरे ऊपर बड़ी कृपा की है क्योंकि इसी एक नेत्र से मने सारा ससार देखा है। यह दपण जसा है इसका भाव बड़ा ही निमल है। बड़े उड़े रूपवत इस एक आख वाले के चरणा को स्पर्श करत हैं और उमंगित होकर अत्यन्त मुग्ध भाव से मुक्त की ओर निहारा करते हैं।’

जैइ मुख देखा तेइ हसा सुना तो आए आसु। जो जायसी की कुरूपता को देखकर हँसे थे व ही उनके काय को सुनकर आसू भर लाते हैं। शोध में नवो पल्लव काय चित्ररेखा’ में भी जायसी ने अपने शुत्राचार्यत्व की बात कही है

मुहम्मद सायर दीन दुनि मुख अ भ्रित बनान ।

बदन जइस जग चद सूपरन सूक जइस ननान ॥’

स्पष्ट है कि जायसी का बदन पूनम के चान जसा था (भले ही उनमें थोड़ा

कलक रंहा हो) और व सुनाचाय की तरह एक चक्षुवाने थे - गुर्काचाय की तरह इसलिए कि विद्वाना म गुनाचाय अयतम है और अयतारा की अपेक्षा उनकी भास्वरता भी अधिक है। सयद कल्वे मुस्तफा के अनुसार जायसी लूले और कुवडे भी थे - मनिव लले लगडे कु जापुस्त भी थे। 'किंतु अभी तक प्राप्त हुए प्रमाणों और जायसी के चित्रों से यह बात प्रमाणित नहीं होती। उनके पिता का स्वगवास पहले ही हो चुका था।' बड़ दिना के परवान माना का भी 'स्वगवास हो गया। उस प्रकार बाल्यावस्था में ही वे अनाथ हो गये। फिर ये फकीरो और साधुओं के साथ रहने लगे थे।^१ किसी किसी जनश्रुति में उनके बवाहिक जीवन और सात पुत्रों का भी उल्लेख है।^२

जायसी बाल्यावस्था में ही अनाथ हो गये और साधु फकीरो के साथ दर दर भटकते फिरे। कुछ दिनों तक अपने ननिहाण में मानिकपुर अपने नाना अन्ह दाद के साथ रहे। एक तो अनाथ दीन हीन अवस्था दूसरे साधु फकीरो का संग तीसरे उनकी तीव्र बुद्धि और सर्वोपरि सहजात ईश्वरीय प्रेम - सब ने मिनकर उह अन्तमंसी और चित्तनशील बना दिया। साराश यह कि परम सत्ता की जोर आकृष्ट करने वाली परिस्थिति मिनने पर उहाने अपनी सारी शक्ति उस ओर लगा दी। सयोगवश उह सुयोग्य गुरु भी मिन गये।

जायसी मत्यु के समय अत्यंत बद्ध और सतानहीन थे।^३ उनके सतान थी या नहा इस विषय में विद्वाना में मतभेद है। कहा जाता है कि उनके साथ पुत्र थे। खाना खाते समय भवान की छत्र गिर जाने से दबकर व सब एक साथ ही मर गए।^४ इस दुषटना से जायसी और भी विरक्त हो गये। इसी विरक्ति पीर और प्रेम पीर ने धीरे धीरे जायसी का अपने समय का एक सिद्ध-प्रसिद्ध फकीर बना लिया।

जायसी की प्रसिद्ध जनश्रुति है कि जायसी एक बार गेरशाह के दरवार में गये थे। गेरशाह उनके भद्र चेहरे का देखकर हम पडा। मुल्तान का हमना दर बारियो के जटटहास्य का साधन था। साग दरवार ठहाका में गुज उठा किंतु जायसी ने अत्यन्त सयत मिनम्र स्वर में पूछा - माहि का हसति कि काहरति ? अर्थात् तू मगपर हम या उस बुम्हार (गढनेवाले - ईश्वर) पर ? इस पर

१-म० मु० जायसी सयद कल्वे मुस्तफा पृ० २१

२-ना० प्र० पत्रिका, भाग २१।

३-बह पृ ४३।

४-वही पृ० १०।

५-पदमावत मा० प्र० प० ५५५-५६ चित्ररेखा प ७२।

६-ना० प्र० पत्रिका भाग २१।

शेरशाह अत्यन्त लज्जित हुआ। उसने जायसी के चरणों में सिर गिराकर क्षमा की प्रार्थना की। कुछ लोगों का विचार है कि व शेरशाह के दरबार में नहीं गए थे शेरशाह ही उनकी रपानि सुनकर उनके पास आया था। सम्भवत इमी घटना को थोड़े परिवर्तन के साथ मीर हान देहलवी ने अपनी मसनवी रिमुजुत आरिज (रमुजे उन-आरपीन) में लिखा है—

ये मलिक नाम मुहम्मद जायसी ।
 वह कि पन्नावत जिहोंने है लिखी ॥
 मैं आरिफ ये वह और साहब कमाल ।
 उनका अकबर ने किया दयाफत हान ॥
 होने मुश्ताफ बुलवाया सितान ।
 ताकि हो सोहबत ने उनकी फायदा ॥
 साफ बातें ये वह और मस्त-अलमस्त ।
 लकि दुनिया तो है जाहिर परमन ॥
 ये बहुत बदनाम और वह बदबवी ।
 दस्त ही उनके अकबर हस पन्ना ॥
 जा हसा वह तो उनको देखकर ।
 या कहा अकबर का होकर चश्मेतर ॥
 हस पड माटी पर ए तुम शहस्पार ।
 या कि मेरे पर हसे व अलियार ॥
 कुछ गुनह मेरा नही ए बादशाह ।
 मुख बामन तू हुआ औ मैं सियाह ॥
 असल मे माटी तो है सब एक जात ।
 अलियार उसका है जो है उसक हाथ ॥
 सुनते ही यह हफ रोया दादगर ।
 गिर पडा उनके कर्म पर जानकर ॥
 अलगरज उनको ब एजाजे तमाय ।
 उनके घर भिजवा लिया फिर वस्लनाम ॥
 साहब तासीर है जो ऐ हमन ।
 दिन प करता है असर उनका सुखन ॥^१

अठारहवीं शती के इस आवर का कथन है कि जायसी 'बादशाह अकबर के दरबार में गए थे। कुछ लोगों का अनुमान है कि यह राजा मुगल मन्नाट अकबर

नहा हो सकता, क्योंकि जायसी अकबर के जन्म के समय ही १५४२ ई० में सत्तार से चल बसे थे। शायद यह अवध का कोई छोटा सा राजा था जिसका नाम अकबर रहा होगा।^१

मीरहसन देलहवी ने सुनी सुनाई बातों के आधार पर जायसी के दरबार में जानेवाली बात का सम्बन्ध अकबर बादशाह से जोड़ दिया है। चाहे यह दिल्ली का बादशाह अकबर हो, चाहे अवध का कोई छोटा राजा अकबर और चाहे गैरशाह पर इतना अवश्य स्पष्ट है कि जायसी का वास्तव रूप आकषक न था। पदमावत के प्रारम्भ में ही कतिपय पंक्तियाँ इसी कथा के मूल की ओर संकेत करती हुई जान पड़ती हैं। उदाहरणार्थ -

दीह असीस मुहम्मद करह तुगहि जुग राज ।

पातसाहि तुम जगत के जग तुम्हारा मुहताज ॥^२

वरनो सूर पुहुमिपति राजा । पुहुमि न भार सहइ सो माजा ॥^३

जो गन नए न काऊ चलत हाहि सनचूर ।

जबहि चढइ पुहुभीपति सेरसाहि गगसूर ॥

सब पिरयिमी असीसइ जोरि जोरि क हाय ।

गाग जउ न जो नहि जल तो लहि जम्मर माय ॥^४

पुनि रूपवत वखानो काहा । जावत जगत सबइ मुख चाहा ॥

सौह दिस्टि बइ हेरि न जाई । जेइ देखा सो रहा सिर नाई ॥^५

सेरसाह सरि पूजि न कोऊ ।

अइस दानि जग उपना सेरसाहि मुलतान ।

ना अस भयउ न होइहि ना कोइ देइ अस दान ॥

इन पंक्तियों में जायसी ने गैरशाह की प्रशंसा करते हुये लिखा है कि मुहम्मद ने उसे आशीर्वाद दिया तुम युग-युग तक राज करो। तुम जग के बादशाह हो जग तुम्हारा मुहताज है। जब तक गंगा यमुना में जन है तब तक तुम्हारा मस्तक अमर रहे। इसमें स्पष्ट लगना है कि जायसी गैरशाह के दरबार में गए

१-सूफी महाकवि जायसी डा० जयदेव प० ५४ ।

२-जा० प्र० (हि० ए०) (१३।दो १) पृ १२८ ।

३-वही १४।१ पृ १२६ ।

४-वही दो० १४ ।

५-जा० प्र० (हि० ए०) दो० १५ प० १३० ।

६-वही दो० १६।५ ६

७-वही दा० १७।३ प० १३१ ।

८-वही, दो० १७ ।

थे। उन्होंने हाथ उठाकर आशीर्वाद भी दिया था।

महारमा तुनसीदास की ही भाँति इनकी भी वात्स्यावस्था अनाथावस्था रही। इसी कारण से इनकी प्रवृत्ति अतः मुखी हो गयी। इनके हृदय की नम्रता अपार थी। वे अपन विषय में गर्वोक्ति नहीं लिखते। वे स्पष्ट कहते हैं—

हैं सब कविन कर पद्यिनगा। विष्णु कहि चला तबल देइ उगा^१ ॥^२

उनका कहना है कि 'मैं सभी कवियों के पीछे चलने वाला हूँ। नक्कारे की ध्वनि हो जाने पर मैं भी आगे वाना के साथ पर उगकर कुछ कहने चन पड़ा हूँ। सबमुच उनके समस्त काय में एक उक्ति भी निज के विषय में गव का नहीं है।

जायसी इस्लाम धर्म और पगम्बर पर पूरी आस्था रखते थे। उन्होंने ईश्वर तक पहुँचने के अनक मार्गों को तत्काल स्वीकार किया है, इन असंख्य मार्गों में वे मुहम्मद साहब के मार्ग को सुगम और सरल कहते थे।

विबिना के मारग है तेत। सरग नखत, तन रोवा जेत ॥

तिह मह पय कहीं भल भाई। जेहि दूनो जग छाज बडाई ॥

स बड पय मुहम्मद बेरा। है निरमल कबितास बसेरा ॥^३

जायसी बड़े भावुक भगवत्भक्त थे और अपने समय में बड़े ही निष्ठ और पहुँच हुए पकीर माने जाते थे। वे विधि पर आस्था रखने वाले थे। सच्चे भक्त का प्रधान गुण दय उनमें पूरा पूरा था। उनकी वह उदारता थी जिससे कट्टरपन को भी चोट नहीं पहुँच सकती थी। प्रत्येक प्रकार का मन्त्र स्वीकार करने की उनमें क्षमता थी। क्षीरता, धीरता एवम्, रूप गुण, शील सबके उत्कृष्ट पर मुग्ध होने वाला हृदय उन्हें प्राप्त था 'तनी पदमावत' ऐसा चरित्र-काव्य लिखने की उत्कृष्टा उन्हें हुई। वे जो कुछ जानते थे उसे नम्रतापूर्वक पण्डितों का प्रमाद मानते थे।

वे बड़े ही सच्चरित्र वतथ्य निष्ठ और गुरुभक्त थे। ईश्वर के प्रति उनकी आस्था अपार थी। उनका विश्वास था कि परम ज्योति-स्वरूप उस जगत के वरतार

१-डा० मुशीराम शर्मा ने एक बार इस विनम्रोक्ति के विषय में मेरा ध्यान आकृष्ट किया था। उन्होंने क्या था कि मैंने इमवा अथ सहजत्प में किया है। उनका अर्थ स जायसी की नम्रता और अधिक स्पष्ट हो जाती है। 'मैं पण्डितों से अपनी त्रुटियाँ मवारने तथा उन्हें सजाकर ठीक करने के लिए विनती करता हूँ। जैसे तबल की सम के पीछे उगा का टोका चलता है वैसे ही मैं पण्डितों का अनुचर हूँ। अब जा कछ मैं कहता हूँ वह उहा से सोला हुआ है, उही की कपा से मैं कुछ कहने में समथ हुआ हूँ।' पद्मावत डा० मुशीराम शर्मा प० ११

२-आ० प्र० मा० गु० आखिरी कनाम २५।२-५, ६६३-६४।

के नियंत्रण में ही समस्त सृष्टि वर्तमान है—गतिमान है। वे महान मन थे। सहजता सहृदयता, सारप्राहिता अनुभव गम्भीरता लोक और वाच्य का गहन अध्ययन आडम्बरहीनता, समय और पवित्र भक्ति उनके चरित्र के विशेष आकर्षण हैं।

जन्म स्थान -

जायसी ने पदमावत की रचना जायस नामक स्थान में की—

जायस नगर धरम अस्थानू । तहवा यह कबि कीह बखानू ॥^१

जायसी के जन्म स्थान के विषय में विद्वानों में मतभेद है कि जायस ही उनका जन्म स्थान था या वे वही अयत्र से आकर वहाँ रहने लगे थे। जायसी ने अयत्र भी लिखा है—

जायस नगर मोर अस्थानू । नगर क नाव आदि उदयानू ॥

तहाँ देवस दस पहुने आएउ । भा वराग बहुत सुख पायउ ॥^२

प० रामचन्द्र गुक्ल^३ का अनुभव है कि पदमावत की कथा को लेकर थोड़े से पद्य जायसी ने रचे थे। उसके पीछे वे जायस छोड़ कर रहने लगे तब उन्होंने इस ग्रन्थ को उठाया और पूरा किया। सुकन जी को इस बात का संकेत तहाँ आइ कबि कीह बखानू । मे मिया था । डा० माता प्रसाद गुप्त^४ और वासुदेव शरण अप्रवाल^५ ने तहवा यह कबि कीह बखानू । पाठ को शुद्ध माना है। प० सुधाकर द्विवेदी^६ और डा० प्रियसन ने यह अनुमान किया था कि मनिव मुहम्मद किसी और जगह से आकर जायस में बसे थे। पर यह ठीक नहीं। जायस वाले ऐसा नहीं कहते। उनके कथानुसार मनिव मुहम्मद जायस ही के रहने वाले थे।

प० सूयकान्त शास्त्री^७ ने भी लिखा है कि इनका जन्म जायस शहर के कचाना मुहल्ला में हुआ था। डा० मुशीराम शर्मा का मत है कि जायस का पूर्व नाम उद्यान था। यहाँ पर वे थोड़े दिनों के लिये पाहन के रूप में आए थे—बाद में बरागी हो गए थे।^८ अतः जायस उनका धर्म स्थान है। कहा जाता है कि

१—पदमावत (हि० ए० २३।१) प० १३४।

२—आखिरी कलाम १०।१-२।

३—जा० प्र० (भूमिका) प० रामचन्द्र गुक्ल पृ० ६।

४—जा० प्र० डा० मा० प्र० गुप्त (२३।१) पृ० १३४।

५—पदमावत डा० वासुदेव शरण अप्रवाल (२३।१) पृ० २२।

६—पदमावत डा० प्रियसन और पण्डित सधाकर द्विवेदी (१९११) । ७—वही

८—पदमावत प्रो सूयकान्त शास्त्री प्रोफम पृ० ५।

९—पदमावत डा० मुशीराम शर्मा प्राक्कयन 'उ

मानिक मुहम्मद गाजीपुर के एक दरिद्र मुसलमान के पुत्र थे। कई विद्वाना ने जायसी के विषय में कहा है कि ये गाजीपुर में पैदा हुए थे। मानिकपुर (जिला प्रतापगढ़) में अपने ननिहाल में जाकर कुछ दिना तक रहे थे।

इस प्रसंग में डा० वासुदेव शरण अग्रवाल^१ का मत विशेष रूप से उल्लेख्य है।

जायसी ने लिखा है— जायस नगर में मेरा स्थान है। मैं वहाँ दस दिन के लिए पाहुने के रूप में आया था, पर वही मुझे बराम्भ हो गया और सुख मिला। तब दस का अर्थ पदमावत में थोड़ा समय के लिये है। (६९।१) पाहुने आयज का सकेत कुछ विद्वाना ने ऐसा माना है कि कवि ने जायस में जन्म लिया था। किन्तु इन शब्दों का सीधा अर्थ भी लिया जा सकता है कि सचमुच मलिक मुहम्मद जायसी किसी दूसरी जगह से जायस में कुछ दिना के लिए पाहुने के रूप में आये थे किन्तु वहाँ आकर उनके जीवन में एक ऐसी घटना घटी जिसने जीवन के प्रवाह को ही बदल डाला और उन्हें अनुभव ने एक नए लोक में पहुँचा दिया।

इस प्रकार स्पष्ट है कि जायसी का जन्म जायस में नहीं हुआ था बल्कि वह उनका घम स्थान था और वहाँ कथा से आकर वे रहने लगे थे।

गाहँस्थ्य बैराम

जायसी एक किसान गृहस्थ के रूप में जायस में रहते थे। वे आरम्भ से बड़े ईश्वर भक्त और साधु प्रकृति के थे। उनका नियम था कि जब वे अपने खेतों में होते तब अपना खाना वहाँ भगा लिया करते थे। खाना वे अकेले कभी न खाते थे, जो आसपास दिखाई पड़ता उसके साथ बैठकर खाते थे। एक दिन उन्हें इधर उधर कोई नहीं दिखाई पड़ा। बहुत दूर तक आगरा स्थित देवत अन्न में एक काढ़ी दिखाई पड़ा। जायसी ने बड़े आग्रह में उसे खाने को अपने पास बिठाया और एक ही बरतन में उसके साथ भोजन करने लगे। उसके शरीर से कोढ़ चूर रहा था। कुछ थोड़ा सा मवाद भोजन में भी च पड़ा। जायसी ने उस अन्न को खाने के लिए उठाया पर उस कोढ़ी ने हाथ धाम लिया और कहा—‘इस में खाऊँगा, आप साथ हिस्सा खाइए।’ पर जायसी इत से उस भा गए। इसके पीछे वह कोढ़ी अदृश्य हो गया। इस घटना के उपरान्त उसकी मनोवृत्ति ईश्वर की ओर और भी अधिक बलवती हो गई। उक्त घटना की ओर सकेत लोग अक्षरावत के इस दोहे में बताते हैं—

१-ना० प्र० पत्रिका १४ ३६१।

२-वही भाग २१ पृ० ४३।

३-डा० वासुदेव शरण अग्रवाल पदमावत, प्रा० पृ० ३५।

। । बुद्धि ममुद समान यह अचरज कासों वहाँ । - -

जो हेरा सो हेरान, मुहमद आपुहि आपु मह ।^१

“कहते हैं कि जायसी के सात पुत्र थे, पर व मकान के नीचे दब कर या ऐसी किसी और दुघटना से मर गए । तब वे जायसी ससार से और भी विरक्त हो गए और कुछ दिनों में घर तार छाड़ कर इधर उधर फकीर होकर घूमने लगे ।^२

जायसी के विराग का जो भी कारण रहा हो पर इतना निश्चित है कि जायसी में उनके जीवन में एक ऐसी घटना घटी जिसने उन्हें प्रेमानुभव के एक नवीन लोक में पहुँचा दिया उनके हृदय में वराग्य का एक प्रबल स्रोत फूट निकला । हृदय किसी अपूर्व ज्योति से उदभासित हो उठा । उसी का रूप नयनों में समा गया । सबत्र उसी सौंदर्य और प्रेम सत्ता के दर्शन होने लगे । ससार के मानदंड बदल गए । विषयो से मन हट गया । हृदय में एक ही आकुलता छा गई कि किस प्रकार उस परम ज्योति या रूप की साक्षात् प्राप्ति हो । जायसी ने अपनी उस वराग्य अवस्था का सच्चा वर्णन किया है ।

तहा देवस दस पहुने आएउ । भा बराग बहुत सुख पाएउ ।

सुख भा सोच एक दुख माना । ओहि बिनु जिवन मरन क जाना ॥

नन रूप सो गएउ समाई । रहा पूरि भरि हिरन छाई ॥

जहव देखीं तहव साई । और न आव न्निट तर कोई ॥

आपुन देखि देखि मन राखीं । दूसर नाहि सो कासो भाखी ॥

सब जगत दरपन कर लेखा । आपुन दरसन आपुहि देखा ॥

स्पष्ट है कि वराग्य की तीव्र धारा के स्पर्श से एक धार ही उनका मन आनन्दप्लावित हो गया । प्रियतम का जो रूप नयनों में समा गया था वही भीतर और बाहर का आनन्द था और वही मित्र की वेदना का कारण बना । रत्नसेन का वराग्य मानों कवि का अपना ही अनुभव है जिसमें ससार का मोह छूट जाता है और परमात्म ज्योति रूनी प्रमिता से मिलने के लिए हृदय में आकुलता भर जाती है ।^३

सचमुच वराग्य के अनंतर जायसी को महान आत्मिक सुख हुआ होगा । उन्होंने परमारमत्तत्व के दर्शन अवश्य किए थे । उसे उन्होंने विश्व व कण-कण में

१-जा० ग० प० रामचंद्र शुक्ल भूमिका पृ० ७ ।

२-वही ।

३-पदमावत डा० वामुदेवशरण अग्रवाल प्राक्कथन, प० ३५ ।

४-जा० प्र० डा० माताप्रसाद गुप्त (आखिरी क्लाम १ । २-७) प० ६९० ।

५-पदमावत डा० वामुदेवशरण अग्रवाल प्राक्कथन प० ३५-३६ ।

देखा और अनुभव किया था ।

मित्र

जायसी न बड़े ही उल्लसित बठ से अपने चार मित्रों का उल्लेख किया है—
मित्रक यूसुफ, सातार कादिम मलोने मिया और बड शख ।

परमावत के प्रारम्भ में ही जायसी न अपने इन चारों मित्रों की प्रशंसा की है—

‘चारि मीत कवि मुहमद पाए । जोरि मिताई सरि पहुचाए ॥

यूसुख मत्रिक पंडित बी पानी । पहिल नद वात उम्ह जानी ॥

पुनि सातार कात्न मतिमाहा । साड दान उभ निति बाहा ॥

। मित्रा सलोने सिध अपाहू ॥ वीर सत रन खरग जुगारू ॥ ।

। शैल बडे बड सिद्ध बरान । बड अदस मिदहन बड माने ॥

चारिउ चतुर दसौ गुन पडे । औ सग जोग गोसाई गढा ॥

विरिस जो आछाहि चदन पासा । चदन हाहि वेधि तहि वासा ॥

मुहमद चारिउ मीत मिलि, भए था एकइ चित्त ।

। एहि गग साथ निराहा ओहि जग विछुरन चित्त ॥’

नागरीप्रचारिणा पत्रिका के साक्ष्य पर कहा जा सकता है कि यूसुफ मित्रक, पट्टी कचाना के रहने वाले थे । अब उनके वंश में कोई नहीं है । सातार कादिम सातार पट्टी के रहने वाले थे और व शाहजहाद वक्त तक जीवित रहे । वे पुत्रहान थे । उनकी लड़की के वंशज आज भी कचाना कला मुहल्ले में बसे हुए हैं । ये अत्यन्त बुद्धिमान तलवार कर्तवी जमादार और दानी भी थे । सलोने मिया नाम के तीन व्यक्ति जायसी के समय में जायस में थे । जनश्रुति है कि जायसी से इन तीनों का स्नेह सम्बन्ध था, तीनों सज्जनता वीरता और धर्मभक्त से सम्पन्न थे । बड़े शैल नाम के पांच व्यक्ति कहे जाते हैं । जिस बड शैल से जायसी की मन्त्री थी व बड़े मिदह पुरुष थे ।

मृत्यु

सयद कब्र मुस्तफा ने लिखा है कि जब मुरीनी बरते बहुत दिनों बीत गए, तो जायसी और उनके साथी हजरत निजामुद्दीन व मीनी उत्तर अभिलाषा

१-जो० प्र डो० मानाप्रसाद गुप्त (परमावत २२१) पृ० १३८ ।

२-ना० प्र० पत्रिका भाग २१, पृ० ५३-५६ ।

३-म० मु० जायसी सयद कब्र मुस्तफा पृ० ३८ ।

हुई कि हम भी अपनी गद्दी स्थापित करके शिष्य बनाए । इस इच्छा को इन लोगो ने गुरु के चरणा म उपस्थित होकर कहा । इनने गुरु ने आज्ञा दी कि अमेठी चले जाओ, यह सुनकर दोनों शिष्य मौन हो गए । प्रश्न था कि एक ही स्थान पर दो गुरु किस प्रकार रहेगे ? गुरु की आज्ञा म भीन-मेख निकानता अनुचित है अत जायसी ने विवक से काम लिया । गुरु के उस आवास मे¹दो द्वार थे एक पूव का द्वार और दूसरा पश्चिम की ओर । उन्होंने पश्चिम वाल द्वार से बग्गी मिया को भेजा और वे लखनऊ वाली अमेठी की ओर गए । आज भी उस अमठा को लोग लखनऊ मिया की अमेठी कहते हैं । जायसी पूर्वी द्वार से गत् अमेठी की ओर गए । गढ अमेठी के पास के जगन मे उन्होंने अपना स्थान बनाया ।

दूसरी जनश्रुति है कि जायसी अपने समय के एक महान फकीर माने जाते थे । चारो ओर उनकी श्रानि प्रख्याति थी । उनके शिष्य उनके मान सम्मान का और वद्धित-सर्वद्धित कर रहे थे । ये शिष्य पदमावत के अशा को गा-गाकर मिया मागा करते थे । एक दिन जायसी के एक शिष्य ने अमेठ नरेश रामसिंह को नाग नती का वारहमासा सुनाया—

कवन जो त्रिगसा मानसर त्रिनु जल गयेउ मुखाइ ।

सूखि बेति पुनि पतुहै जो पिउ साच आइ ॥ आनि

उस भीख मागने वाने से राजा ने पूछा कि यह किस कवि की रचना है तो उसने जायसी का नाम बताया । रामसिंह बड सम्मान के साथ जायसी को अमेठी गत् म लिया आये¹ । अपने जीवन के अन्तिम समय तक व गमठी मे ही रहे । अमेठी के राजा रामसिंह उन पर बडी धडा रखते थे ।¹

“ सपद कल्वे मुस्तफा ने एक बहेनिया के द्वारा जायसी के मारे जाने की घटना का अत्यन्त मनार जक वणन किया है । इस घटना का उल्लेख प रामचन्द्र गुप्त ने भी किया है ।¹

अमठी नरेश जब जायसी की सवा म उपस्थित होते थे ता उनका एक तुफगचवी (बहेलिया) भी उनके साथ जाता था । जायसी बहेलिया का विशेष सत्कार करते थे । लोगो के वारण पूछने पर उन्होंने कहा कि यह मेरा कानिन है । यट सुनकर सभी लोग आश्चर्य चकित हो गए । बहेलिये ने निवदन किया कि इस पाप वम के पहने ही मुच कत्न कर दिया जाए । राजा रामसिंह ने भी यह उचित समझा परंतु जायसी ने अत्यन्त आग्रहपूर्वक अपने कानिल को कत्न होने से बचा लिया । राजा ने उस दिन से उस बहेलिए को बडूव तलवार आनि न रखने की

१-जा०प्र० (भूमिका) प० रामचन्द्र गुप्त प० ११ ।

२-वही प० ८ ।

३-वही प० ८-११ ।

आगा दी, किन्तु विधाता का लेख कौन मिटा सकता है ? एक अंधेरी रात में जब वह बहेलिया अमेठी गढ़ से अपने घर जाने लगा तो उसने दरोगा से कहा—समय तय हो गया है और मरी राह जगल में होकर है इसलिए रात भर के लिए एक बंदूक दे दो प्रातः काल में ही लौटा दूंगा। दारागा न भी इस पर कोई आपत्ति न की और एक बंदूक उस बहेलिया को दे दी। जब बहेलिया जगल में होकर जाने लगा तो उस गेर के गुराने का सा शब्द सुनाई पड़ा। शेर को पास जानकर उसने शब्द पर गोली छोड़ दी। गोली के साथ गजन का शब्द भी बंद हो गया। बहेलिए ने गेर को भरा जानकर घर की राह ली। उसी समय अमेठी नरेश ने स्वप्न देखा कि कोई कह रहा है कि आप सो रहे हैं और आपके बहेलिए ने मलिक साहब को मार डाला। राजा घबड़ा उठा। वह दौड़ा दौड़ा जायसी के आश्रम के पास गया। उसने देखा—मलिक साहब को गोली लगी है और उनका शरीर निर्जीव हो चुका है। इस दुघटना के कारण सारं राज्य में शोक छा गया। बाद में गन्धर्व के समीप ही उन्हें दफना दिया गया और उनकी समाधि बनवा दी गई।^१

जायस में यह कहानी आज भी थाड से हेरफेर के साथ सुनी जा सकती है।^२

इस कथा से पतना तो स्पष्ट हो जाता है कि जायसी का अमेठी से बड़ा महारा सम्बन्ध था। अमेठी के राजा की उनके ऊपर बड़ी श्रद्धा थी। ये अमेठी के पास वही जगल में रहते थे और किसी दुघटना के शिकार हुए।^३

मलिक जी की कब्र मगरा के बन में रामनगर (रियासत अमेठी जिला मुलतानपुर अवध) के उत्तर की ओर एक फर्मांग पर है। इसका पक्की चहार दीवारी अभी मौजूद है। इस पर अब तक चिराग जनाए जाते हैं। राजा ने एक कुरान पढ़ने वाला भी नियुक्त किया था, जिसका तिलसिला १३१३ हि० (१६१५ ई०) में बन्द हो गया।^४

जायसी की कब्र अमेठी नरेश के वर्तमान कोट में पीन मील की दूरी पर है। यह वर्तमान कोट जायसी की मृत्यु के काफी बाद में बना हुआ है। अमेठी के राजा का पुराना कोट जायसी की कब्र से डेढ़ कोस की दूरी पर था। पं० रामचन्द्र शुक्ल का कथन है कि यह प्रवाद कि अमेठी के राजा को जायसी की दुआ से पुत्र उपन्न हुआ और उन्होंने अपने कोट के पास उनका कब्र बनवाई निराधार है।^५

१-चित्ररेखा स० शिवसहाय पाठक भूमिका पृ० २६-३०।

२-वही पृ० ३०।

३-वही

४-ना० प्र० पत्रिका वष ६५ अंक १ वशात् १९८७ पृ० ५६।

५-जायसी ग्रंथावली पं० रामचन्द्र शुक्ल पृ० ८।

कोट के समीप का अथ कोट के निकट या अत्यंत निकट ही नहीं होता—कोट से कुछ दूर भी होता है—अनतिदूर भी हाता है। जायसी की कब्र देखने पर लगता है कि कब्र से कुछ ही दूरी पर अमेठी का कोट रहा होगा। जायसी की कब्र से पुराने कोट की आर चनेते समय लगता है कि घोड़ी ही दूरी के बाद कोट के ढूँढे शुरू हो जाते हैं और ढूँढा का परम्परा कुछ दूर तक चली गई है और यदि 'वैज्ञानिक चश्म को उतार कर भारतीय परम्परा और सिद्धत्व की दृष्टि से विचार करें तो जायसी की दुआ से अमेठी नरेश को पत्र प्राप्त होने वाली बात भी ठीक मानी जा सकती है।

निष्कपत कहा जा सकता है कि जायसी की मृत्यु अमेठी के समीपवर्ती जंगल म किस्ती दुधटनावश १४६ हिजरी म हुई।

मलिक मुहम्मद जायसी अत साक्षयो एव बहि साक्षयो के आधार पर जायसी का जीवन

मलिक मुहम्मद जायसी ने अपने ज म के सम्बन्ध म लिखा है —

भा औतार मोर नौ सदी । तीस वरिस ऊपर कवि बदी ।

आवत उघत चार बड टाना । भा भूकप जगत अकूताना ॥^१

प रामचन्द्र शुक्ल का कथन है कि इन पक्तियों का ठीक तात्पर्य नहा खुता। नवसदी ही पाठ मानें तो जमकाल १० हिजरी (सन १४६२ के लगभग) ठहरता है। दूसरी पक्ति का अर्थ यही निकलेगा कि जम से ३ वष पीछे जायसी अच्छी कविता करने लगे।^१

प० चन्द्रबली पाडय^१ जायसी की उपयुक्त पक्तियों का अर्थ नवी सदी हिजरी म ३० वष बीतने पर अर्थात् ८३ हिजरी मानते हुए जायसी की जम तिथि ८३० हिजरी (१४२७ ई) सिद्ध करते हैं।

डा० कमलबुल श्रिष्ठ ने लिखा है— जायसी का जम ६०६ हिजरी म हुआ था। जायसी ने यह बात स्पष्ट बतला दी है। व कहते हैं—

नौ स वरम छतिस जब भए । तब एहि कथा के आखर कहे ।

अर्थात् ६३६ हिजरी म उन्होंने आम्बिरी क्लाम की रचना की। 'भा अबतार कवि बदी। अर्थात् तीस वष की आयु म उन्होंने यह रचना की और व नव सदी म पदा हुए थे। ६३६ हिजरी म से तीस वष निकाल देने पर ६०६ हिजरी

१—जायसी ग्रथावली डा० माताप्रसाद गुप्त पृ० ६८५।४-१-२

२—जायसी ग्रथावली प० रामचन्द्र शुक्ल पृ० ५।

३—नागरीप्रचारिणी पत्रिका, भाग १४ स १६६० पृ० ३६७।

आता है। ६११ हिजरी में एक बहुत कड़ा भूकम्प आया था और सूबप्रहण भी ६०८ हिजरी में पड़ा था। जायसा इन घटनाओं को वयस्क होने पर कह सकने से कि वे उनके जन्म के समय में हुई थी। नव सन्नी का अर्थ था तो कवि को ठीक ठीक न भालूम था या नहीं सन्नी से ही उसका तात्पर्य था। नव शब्द का प्रयोग 'नव' के अर्थ में कवि ने अनेक स्थानों पर किया है। ६०६ हिजरी के विषये कवि यह कह सकता था कि उसका जन्म एक नई सदी में हुआ था और यह भा हो सकता है कि कवि नव सदी का अर्थ ६०० के बाद का समय समझता हो। 'आखिरी कलाम क साम्य में यह ६०६ हिजरी जन्म सन इतना स्पष्ट निकलता है कि सहसा उस पर बिना किसी अनि प्रबल प्रमाण के अविश्वास नहीं किया जा सकता।'

सयद कब्जे मुस्तफा ने लिखा है— 'रस्बा जायस में मुहम्मद जहीरद्दीन बाबर शाह के अहद में सन ६०० हिजरी (१४६५ ई०) में पदा हुए।'

डा० वासुदेवशरण अग्रवाल ने जायसी की 'भा अवतार मोर नव सन्नी आदि पत्तियों का उद्धृत करते हुए लिखा है नवा सन्नी हिजरी (१३६८-१४६४ ई०) के बीच में किसी समय जायसी का जन्म हुआ। नव सदी से यह अर्थ लेना कि ठीक ६०० हिजरी में जायसी का जन्म हुआ था कवि के जीवन की अन्य तिथियां से संगत नहीं ठहरता। पदमावत की रचना सन १५२७ से १५४० ई० के बीच में किसी समय हुई। उस समय में अत्यन्त वृद्ध हो गये थे। अतएव १४६४ ई० को उनका जन्म सबसे मानना कठिन है।' डा० जयदेव की जायसी की जन्म तिथि से सम्बद्ध मायता है कि जायसी का जन्म ६०० हिजरी (सन १४६५ ई०) में हुआ था जिसका ध्यान उन्होंने अपने काव्य आखिरी कलाम में किया है— 'भा अवतार मोर नव सन्नी।'

जायसी के जन्म सन में सम्बद्ध विवचना की तालिका इस प्रकार है —

८३० हिजरी	नवा सदी हिजरी में तीस	
	वय धीने पर-१४०७ ई०	प० चंद्रवली पाण्डेय ^१
६०० हिजरी	१४६२ ई० के लगभग	प० रामचन्द्र शुक्ल
९०० हिजरी	१४६५ ई०	डा० जयदेव

१-म० मु० जायसी डा० कमलानन्द श्रेष्ठ, पृ० १६।

२-म० मु० जायसा सयद कब्जे मुस्तफा।

३-पदमावत, डा० वासुदेवशरण अग्रवाल, प्राक्कथन, पृ० ३२।

४-सूफी महाकवि जायसी डा० जयदेव, पृ० ३१।

५-नागराजचारिणी पत्रिका भाग १४, पृ० ३६७।

६०६ हिजरा	डा० कमलकुल थ्रेष्ठ
६०० हिजरी १४८५ ई०	सयद कल्बे मुस्ताफा
नवीं सदी हिजरी १३६८-१४६४ ई के बीच किसी समय	डा वासुदेवशरण जयवान
६०६ हिजरी १४६६ ई	डा० विमलकुमार जैन ^१
८३० हिजरी (मृत्यु ६४६ हि)	प० सूयकान्त शास्त्री ^१

आखिरी क्लाम म जायसी ने अपने सम्बन्ध म स्वयं लिखा है—

भा औतार मोर नौ सदी । तीस बरिख ऊपर कवि बदी ॥
आवत उधत चार बड ठाना । भा भूकम्प जगत अकुलाना ॥
घरती दीर्घ चक्र विधि भाई । फिर अकास रहट क नाई ॥
गिरि पहार मदिनि तस हाना । जस चाला चरनी भल चाना ॥
मिरित लोक जेहि रचा हिडोना । सरग पताल पवन घट (खट?) डोना ॥

गिरि पहार परवत ढहि गये । सात समद्र बहुच (बीच ?) मिल भये ॥
घरती धात फाटि भहरानी । पुनि भइ मया जौ सिस्टि हठानी (दिठानी) ॥
जो अस खमहि पाइक सहस जीव (जीभ ?) गहिराइ ।
सो अस कीह मुहम्मद तो अस बपुरे काइ ॥^१

वस्तुतः जायसी की इही पत्तियो के आधार पर नौ सदी से ६० हिजरी अर्थात् १४६२ ई० या १४६४ ई० को जायसी की जन्म तिथि मानने म कवि के जीवन की अन्त्य तिथियो से सगति नही बठती ।

डा कमलकुल थ्रेष्ठ का यह कथन कि नौ सदी का अथ या तो कवि को ठीक ठीक नही मानूम था या नई सदी से ही उसका तात्पर्य था स्वयं म अशक्त है । एक तो जायसी जैसे समय भाषाविद और महाकवि के लिये इस प्रकार के कथन समीचीन नही हैं और दूसरे नौ सदी नई सदी अथ गगाने की बात भी समझ मे नही आती क्योंकि उन्होंने जायसी का जन्म काल ६०६ हिजरी माना है । ऐसा मानने पर तो नई सदी के अनुसार नव (९) सदी नही बल्कि दस सदी होना चाहिए । उनके ६०६ हि० की सगति है कि जायसी ने पदमावत की रचना २१ बप की आयु म की या प्रारम्भ की किन्तु यह बात सभव नही प्रतीत होती ।

१-सूफीमत और हिंदी साहित्य डा० विमलकुमार जैन पृ० ११६ ।

२- ही वाज बान इन ८३० (एच०) इन द कचन मुहल्ला आफ द टाउन (जायस)
पदुमावति प्रो० सूयकान्त शास्त्री प्रीप्रेस पृ० ५ ।

३-जा० प्र० डा० माताप्रसाद गुप्त प० ६८५४

'पदमावत हिन्दी के सर्वोत्तम प्रबन्ध काव्या म है।' और इस श्रेष्ठ काव्य की रचना इक्कीस वर्षीय युवक क हाया सम्भव नहा है। पदमावत म ही कुछ पक्तिया ऐसी हैं जिन्के साक्ष्य पर पदमावत का रचना क समय जायसी वृद्ध हो चल थ या वृद्ध थ।

मुहमद बिरिध चएस अष भई। जीवन हुत सो अवस्था गई ॥
बल जा गण्ड क सीन सरिरू। निष्टि गई ननन द नीरू ॥
दसन गए क तुच्चा कपोला। बन गए ते अनरुचि बाना ॥
बुद्धि गई हिरद बौराई। गरब गएउ तरट्टण मिर नाई ॥
सरवन गए ऊच द सुता। गारो गएउ माम भा धुना ॥
भवर गएउ केमह दै मुवा। जोवन गएउ जियत जनु मुवा ॥
तव लनि जीवन जावन साया। पुनि सा माचु पराए हाया ॥

बिरिध जो सीस डोलाव, सीस धुन तेहि रीस।

बूढे आते होह तुम्ह, केइ यह कीह असीस ॥ १

स्पष्ट है कि पदमावत की रचना के समय क अत्यन्त वृद्ध हो गए थे। यह एक प्रकार स अन्तर्विरोध है और इसी कारण ६०० हिजरी या ६०६ मिजरी को जायसी का जन्म तिथि मानना युक्ति सगत नहीं जचता।

इस प्रसंग म एक बात और द्रष्टव्य है कि जायसी की मृत्यु तिथि के विषय म भी अनेक सन लिए गए हैं —

कई विद्वान जायसी की मृत्यु तिथि १६२६ ई० मानते है। श्री गुनाम सरवर ताहरी इनका मृत्यु तिथि १६३६ ई० मानते हैं। श्री वाजी नसरहीन हुसेन जायसी ने जिन्हें अवध के नवाब गुजाउद्दौला स सनद मिली थी, अपनी याददाश्त म इनका मृत्युकाव ५ रजब ६४६ हिजरी (१५४२ ई०) दिया है।

यह काल कहा तक ठीक है नहीं कहा जा सकता। इस तक मानने पर जायसी दीर्घायु व्यक्ति नहीं ठहरत। उनका परलोकवास ४६ बप स भी कम की अवस्था म सिद्ध होता है पर जायसा ने पदमावत क उपमहार म वद्धावस्था का जा ध्यान किया है वह स्वत अनुभूत-सा जान पढता है।

१-जा० प्र० प० रामचन्द्र शुक्ल वक्तव्य, प० १।

२-पदमावत टी० वामुदवशरण अग्रवाल पृ० ७१४-७१५।

३-वही, प्राक्कथन पृ० ३२।

४-जा० प्र० पणिका भाग २१ प० ५८।

५-सज्जीनतुल असफिया सरवर, प० ४७३।

६-जा० प्र० प० रामचन्द्र शुक्ल, प० ८। ७-वही प० ८।

प० चंद्रवली पांड्य^१ का मत है कि काजी नसरुद्दीन हुसन जायसी ने जो मृत्यु तिथि (५ राब ६४६ हिजरी, सन १५४२ ई०) दी है वह ठीक और प्रामाणिक है ।

यहां पर विशेष द्रष्टव्य है कि जायसी ने पदमावत की सजना १५४० ई० के आसपास की थी । अतः १६३६ ई० या १६५६ ई० को जायसी का मृत्युकाल मानना समीचीन नहीं है । पूर्वोक्त पक्तियों में लिखा जा चुका है कि पदमावत की रचना के समय कवि अत्यंत वृद्ध हो चला था । और अत्यंत वृद्ध होने के पश्चात् वह ६६ वष या ११६ वष तक और जीवित रहा—यह बात गल के नीचे नहीं उतरती ।

सयद कल्बे मुस्तफा साहब ने लिखा है कि जिस वष व दरबार में बुलाए गए थे उसी वष उनकी मृत्यु हुई ।^२

मुस्तफा साहब ने गुनाग सरवर लाहौरी और अब्दुल कादिर के साक्ष्य पर जायसी की मृत्यु तिथि सन १०४६ हिजरी को ही स्वीकार किया है । मुस्तफा साहब की दी हुई तिथि को भी स्वीकार करने में अनेक आपत्तियाँ हैं । उनके मत के अनुसार जायसी का जीवनकाल १४६ वष का ठहरता है । यदि यह असंभव नहीं तो असाधारण बात अवश्य है किन्तु अतः या बहि किसी साक्ष्य से आज तक यह बात ज्ञात नहीं हुई कि व नगभग डढ़ सौ वष के हाकर मरे और यदि १०४६ हिजरी तक बतमान थे और ६४७ हिजरी (१५४० ई० के आसपास) पदमावत की रचना कर चुके थे तो शेष १०० वष से अधिक लंबे अवकाश में अखरावट के अतिरिक्त अन्य पुस्तक का न लिखना उन जैसे क्रियाशील सूफी के लिए असंभव ही प्रतीत होता है । इस विवचन के पश्चात् यह निश्चय ठीक प्रतीत होता है कि मलिक मुहम्मद जायसी ६४८ हिजरी में राज्य की ओर से अमली में आमंत्रित किए गए और ६४६ हिजरी में उनका शरीरगत हो गया ।

पुन यदि ६०० हिजरी या ६०६ हिजरी (कमश प० रामचंद्र शुक्ल और श्री कमलकुल श्रष्ट के मतानुसार) को जायसी की जन्म तिथि माने तो मानना पडगा कि उनकी मृत्यु ४३ या ४६ वष की आयु में हुई । इस मत के विरोध में (पदमावत के उपसंहार में वर्णित वृद्धावस्था के वर्णन के अतिरिक्त) एक और प्रबल तर्क है । पदमावत के स्तुति-खण्ड में कवि ने शाहे-तस्ल गेरशाह को आशीर्वाद देने का उल्लेख किया है—

१—ना० प्र० पत्रिका भाग १४ प० ४१७ ।

२—म० मु० जायसी सयद कल्बे मुस्तफा पृ० ७५ ।

दीह असीस मुहम्मद करहु जुगहि जुग राज ।
पातसाहि तुम जगत के जग तुम्हार मुहताज ॥^१

दिल्ली की गद्दी पर बठन के समय शेरशाह की अवस्था ५३-५४ वष की हो चुकी थी, शेरशाह बादशाह का आशीर्वाद देनवाला कवि अवश्य बढ रहा होगा। अतः पदमावत के अंतिम छंद में कवि का स्वतः अनुभूत बढावस्था का वर्णन मानना ही ठीक है। पदमावत लिखत समय जायसी बढ हो चुके होंगे। उह अपने जन्म सबत का स्वयं ठीक पता न रहा होगा इसलिये उन्होंने 'मा औतार मोर नौ सत्नी लिखा होगा। उनका जन्म नौवीं शताब्दी हिजरी में अर्थात् १३६८ और १४६४ ई० के बीच कमी हुआ।^२ इसलिये ६०० हिजरी या ६०६ हिजरी को जायसी का जन्म काल नहीं माना जा सकता।

सन १६५७-५८ ई० में प्राफसर सयद हसन अस्करा को मन्जर शराफ से कई ग्रंथों के साथ पदमावत और अखरावट की हस्तलिखित प्रतियाँ प्राप्त हुई। ये प्रतियाँ शाहजहाँ-कालीन बनाई गई हैं। 'अखरावट की प्रति की पुष्पिका में जम्मा ८ जुल्वाद, ६११ हिजरी का उल्लेख है। "तमाम सुन् पोथी अखरीनी बज्रवाने मलिक मुहम्मद जायसी कितायें हिंदवी कितायुल मिक व कालिये हुरफ फकीर हकीर मोहम्मद माकीन साकिन टप्पा नदानू उफ बकामू पास अमला परगना निजामाबाद व सरकारे जौनपुर सूबे इलाहाबाद बख्ते जोदर जुमा जकी शहरे मुल्वाद सन ६११। दर मौजे खास दीया मुकाम कनौरा अमला परगना नेहू खसरा मस्तूर अस्त तहरीर थाफन जिय गुपनार नविस्तन इजहार नोस्त। डा० रामसेनावन पांडेय का कथन है कि इलाहाबाद की प्रतिष्ठा ६८१ हि० में होती है। अतः यह प्रति ६८१ हि० के पूर्व की नहीं हो सकती। उन्होंने इसके लिए और भी तक दिए हैं। यह मन मूलतः मूल प्रति या उसकी किसी प्रतिनिधि का है जिसे लिपिकार ने ज्या का त्या स्वीकार करके उतार दिया है। अतः यह प्रति ६११ हि० की है प्रतिनिधि बन की है यह पातय है। प्रो० अस्करा, डा० वामुदेवशरण अग्रवाल और श्री गोपाल राय इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि 'सभवतः जिस मूल प्रति से यह प्रति लिखी गई थी उसकी पुष्पिका में यह निधि लिखी हुई थी जिसे प्रतिनिधिकार ने ज्या का त्या उतार दिया

१-जा० प्र० डा० माताप्रसाद गुप्त प० १०८।१३

२-पदमावत-मार इद्रचंद्र नारग प० ३।

३-हिंदी अनुशीलन, धीरन्द्र वर्मा विद्यापक प० ३५६।

४-नौ जनल आफ दी बिहार-रिसच सोमाइटी भाग ३६, प० १६।

५-पदमावत डा० वामुदेवशरण अग्रवाल प्राक्कथन प० ३२।

६-ना० प्र० पत्रिका, अंक ३-४ म० २०१६।

है। इन विद्वानों का विचार है कि मनेर शरीफ की इस प्रति के साक्ष्य पर अखरावट का रचनाकाल ६११ हिजरी माना जा सकता है। अखरावट जायसी की प्रारम्भिक रचना है जिस भूकम्प का जीवित चित्र जायसी ने आखिरी क्लाम में किया है और जिसे डा० कमलकुल अष्ट प० परशुराम चतुर्वेदी^१ आदि विद्वानों ने जायसी के जन्म के समय घटित मान लिया है—उससे भी स्पष्ट सिद्ध हो जाता है कि जायसी कृत अखरावट का रचनाकाल ६११ हिजरी है।

भा भूकम्प जगत अकुलाना। वाले भूकम्प को इन विद्वानों ने जायसी के जन्म के समय में घटित कहा है। तारीखे-दाऊनी (अदुल्लाह) मसजद-अफागिना (नियमनुल्लाह) और मुत्तखबुत्तवारीख (बदायूनी) के अनुसार ६१-११ हि० में उत्तर भारत में एक भयानक भूकम्प हुआ था और कल्पित इससे इतनी हानि पहुंची थी, कि इतिहासकारों ने भी जा इस प्रकार की घटनाओं पर विशेष ध्यान नहीं देते इसका वर्णन किया है।

६११ हिजरी (सन १२०५) में एक भयंकर भूकम्प आगरे में आया था।^२ बाबरनामा^३ और अल्बदायूनी के मुत्तखबुत्तवारीख से भी स्पष्ट है कि ६११ हिजरी में एक भूकम्प आया था। यदि अखरावट के भूकम्प वर्णन को ध्यानपूर्वक पढ़ा जाय तो ऐसा प्रतीत होता है जैसे जायसी ने इसे स्वयं देखा था। भूचाल का विस्तृत वर्णन इस बात का सकेत है कि जायसी ने उसे देखा और उसकी विकरालता का अनुभव किया था।^४ जायसी के जन्म के समय भूकम्प हुआ था या नहीं किन्तु यह स्पष्ट है कि अखरावट में जिस भूकम्प का उल्लेख है उसमें और ६१० हिजरी के आसपास आए हुए भूकम्प के उल्लेख में साम्य है। इसमें यह बात प्रमाणित होती है कि

१-म० मु० जायसी डा० कमलकुल अष्ट प० ७।

२-सूफी काय सग्रह प० परशुराम चतुर्वेदी प० १४।

३-ने जनल आफ दी बिहार रिसर्च सोसाइटी भाग ३६ प० १६।

४-३ सफर सन ६११ (६ जुलाई १५०५ ई) को भूकम्प आया था, आइने अकबरी प० ४२१।

५- दूसरे वर्ष १५०२ ई० में आगरा में एक भयंकर भूकम्प आया था। इससे धरती कांप उठी थी और अनेकानेक मस्जिद इमारतें और मकान धराशायी हो गए थे।

डा० ईश्वरी प्रसाद ए शाह हिस्ट्री आफ मुस्लिम इल इन इंडिया प० २३२।

६-बाबर ने लिखा है— तीसरी सफर को तीसरे घण्टे लगे और प्रायः एक मास तक दो तीन घण्टे लगते रहे। इनिक्ट भाग ४ प० २१८।

७-मुत्तखबुत्तवारीख (अल्बदायूनी) अग्रजी अनुवाक रविग कृत भाग १ पृ० ४२१।

८-हिंदी अनुशीलन गोपाल राय प० ६।

अखरावट ८११ हिजरी में लिखा गया। अतः जायसी का जन्मकाल-८०० या ८०६ हिजरी मानना असंगत है। किन्तु यह है कि ११ वष की अवस्था में अखरावट जैसे सिद्धान्त प्रधान ग्रन्थ की रचना संभव नहीं है।

पूर्वांकित पत्रिका में डा० वामुणेश्वर अग्रवाल, प्रो० अस्करी, इन्द्रचन्द्र नारंग आदि कर्मियों का उल्लेख किया गया है कि ये विद्वान् नौ सदी का अथवा ८०१ हिजरी से ९०० हिजरी तक का समय लेते हैं अर्थात् इसी सदी (नौ वष) के बीच किसी समय जायसी का अवतार हुआ था।

प० चन्द्रबली पाडय^१ न नागरीप्रचारिणी पत्रिका में एक लेख लिखकर इसी दृष्टिकोण के अनुसार अपने मत की पुष्टि की थी। वे मानते हैं कि जायसी की जन्मतिथि नवा सदी में तीस वष बीतने पर मानी जानी चाहिए अर्थात् ८३० हि० को जायसी का जन्म मान लिया जाय तो उनकी उम्र ११९ वर्षों की ठहरती है। जायसी जैसे महान् सन के लिए यह अवस्था असम्भव नहीं है।

उक्त मत को मान लेने में एक भारी आशंका है। पद्मावत का रचनाकाल १५४० ई० में स्पष्ट है। यदि प० चन्द्रबली पाडय के मतानुसार ८३० हिजरी को जायसी का जन्मकाल स्वीकार करें तो इसका अर्थ हुआ कि पद्मावत की रचना (९४७ हि०) के समय उनकी अवस्था ११७ वर्षों की थी अर्थात् जायसी ने ११७ वष की अवस्था में इस ग्रन्थ की रचना प्रारम्भ की। जायसी ने पद्मावत में जिस स्थानुभूत बद्धावस्था का वर्णन किया है वह सम्भवतः इसी अवस्था की बद्धावस्था है (?) स्पष्ट ही यह मत समीचीन नहीं प्रतीत होता। मनेर शरीफवाली प्रति के साक्ष्य पर विद्वानों का विचार है कि अखरावट का रचनाकाल ९११ हिजरी है। ९११ हि० में तीस हिजरी वष घटाने पर ८८१ हिजरी आता है और अखरावट में कवि कहता है —

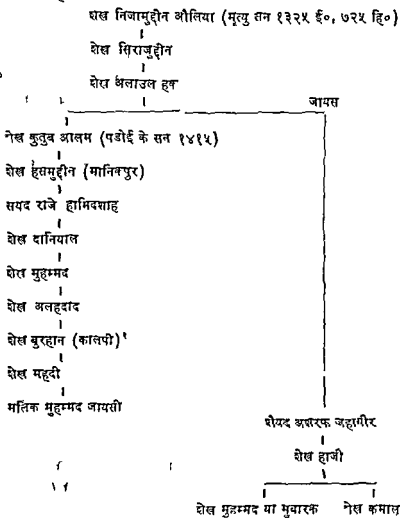
भा औतार मोर नौ सनी । तीस वरिम ऊगर कवि बदी ॥

तो स्पष्ट हो जाता है कि ८८१ हि० के लगभग ही जायसी का अवतार हुआ था। इस गणना के अनुसार मयू के समय जायसी की अवस्था लगभग ६८-७० वष की थी। इस प्रकार ८८१ हि० (सन १४७६ ई०) को जायसी की जन्मतिथि मानने पर उनके जीवन की आयु निश्चय की गति आसानी से बँट जाती है।

निष्पत्तः हम यह सकते हैं कि जायसी का जन्म ८८१ हिजरी (१४७६ ई०) में और मृत्यु लगभग ७० वष की अवस्था में ४ रजब ९४९ हिजरी (१५४२ ई०) हुई थी।

जायसी गुरु-परम्परा

मलिक मुहम्मद जायसी निजामुद्दीन औलिया की शिष्य परम्परा में थे। इस परम्परा की दो शाखाएँ हुई—एक मानिकपुर-कालपी की और दूसरी जायसी की। जायसी ने पहली शाखा के पीरों की परम्परा का उल्लेख करते हुए उनका स्तवन किया है। सूफी लोग निजामुद्दीन औलिया की मानिकपुर कालपी वाली परम्परा इस प्रकार बतलाते हैं



शेख अशरफ जहागीर

|

शेख हाजी

शेख मुहम्मद या मुबारक

शेख कमाल

'पदमावन और अक्षरावट दोनों में जायसी न मानिकपुर-कालपी वाली गुरु परम्परा का उल्लेख विस्तार से किया है, इसने डा० प्रियसन न रोस मोहिदी को ही उनका दोन्ना-गुरु माना है।

रामचन्द्र शुक्ल ने अनुमान लगाते हुए कहा था—गुरुत्वना से इस बात का टीक-ठीक निश्चय नहीं होता कि वे मानिकपुर के मुहीउद्दीन के मुरीद थे अथवा जायस वे सयद अशरफ़ थे। 'पदमावन य दोन्ना पीरो का उल्लेख इस प्रकार है—

सयद अशरफ़ पीर पियारा। जेहि मोहि पय दीह उजियारा ॥

गुरु माहिदी खेवक में सवा। बले उताइल जेहिकर खेवा ॥

निजामुद्दीन औलिया की पूर्ववर्ती गुरु-परम्परा इस प्रकार है—

मुहम्मद

।

अली

।

इमाम हमन बमरी

।

अब्दुल वाहिद

।

स्वाजा पुजल बिन अयाज

।

सुनतान इब्राहीम बिन अपम बरशी

।

स्वाजा आफिज अलमरशी

।

स्वाजा हवेर अल् बसरी

।

स्वाजा अनुब (अबू ?) ममगद

।

स्वाजा बु-अम इसाक शामा

।

स्वाजा अबू अहमद अल्लात चिश्ती

।

स्वाजा मुहम्मद जाहिद मनबूल चिश्ती

।

स्वाजा यूसुफ़ नामिउद्दीन चिश्ती

।

स्वाजा कुतुबुद्दीन मोद्दू चिश्ती

।

ख्वाजी हाज शरीफ, जिदनी

ख्वाजा खसमान हरवनी

ख्वाजा मुईनुद्दीन घिश्नी

ख्वाजा कुतुबुद्दीन

गेल फरीदुद्दीन शकरगज

हजरत निजामुद्दीन औलिया

आखिरी कलाम में केवल सयद अशरफ जहागीर का ही उल्लेख है। पीर शब्द का प्रयोग भी सयद अशरफ के नाम के पहल किया है और अपने को उनके घर का बच्चा कहा है इससे हमारा (पं. रामचन्द्र शुक्ल का) अनुमान है कि उनके दीक्षा गुरु तो वे सयद अशरफ पर पीछे से उन्होंने मुईनुद्दीन की सेवा करके उनसे बहुत कुछ ज्ञानोपदेश और शिक्षा प्राप्त की। जायस वाले तो सयद अशरफ के पोते मुबारक शाह बोदले को उनका गुरु बताते हैं पर यह ठीक नहीं जचता।

शुक्ल जी ने जायसवानी गुरु परम्परा में केवल चार नाम दिये हैं। जायस वाली परम्परा इस प्रकार है—

सयद अशरफ जहागीर

शाह अब्दुरज्जाक

शाह सयद अहमद

शाह अब्दुरज्जाक

शाह सयद हाजी

शाह जनाल (प्रथम)

शाह सयद कमाल

शाह मुबारक बोदले

यहाँ पर विनाना का ध्यान एक अत्यन्त महत्वपूर्ण तथ्य की ओर आकृष्ट करना अपेक्षित है। 'गुरुजी ने जायसी प्रयावली की भूमिका में उपयुक्त बातें लिख दीं तब से लेकर आज तक' इस विषय के (प्रायः सभी) शोधका ने धुवलजी के ही वाक्यों का घुमाफिरा करके शोध के नाम पर प्रस्तुत किया है। क्या सचमुच सयद अशरफ और महीउद्दीन कोना जायसी के गुरु थे? क्या मुबारक शाह योदने भी जायसी के गुरु थे? जायसी ने गुरु-विषयक क्या क्या बातें लिखी हैं?

ऐतिहासिक प्रमाणा से सिद्ध हो चुका है कि सयद अशरफ एक महान् सूफी सत थे और उनकी मृत्यु ८०८ हिजरी में हुई थी।^१ जायसी का उनकी मृत्यु के काफी बान्धन अवतार' हुआ था। जायसी ने उन्हें पूज्य पीर माना है। उन्होंने पदमावत में ही अपनी गुरु-परम्परा और अपने गुरु की बान्धन स्पष्ट रूप से लिख दी है—
सयद अशरफ पीर पियारा । तिह माहि पय दीह उजियारा ।

जहागीर आइ विस्ती निहकलक जस चाद ।

ओइ मसदूम जगत के हौं उहके घर बान्ध ॥

वे सयद अशरफ जहागीर निश्चिती बश के थे और चाद जैसे निष्कलक थे। वे जगत के मसदूम (स्वामी) थे और मैं उनका घर का सेवक हूँ।

इससे स्पष्ट है कि जायसी स्वयं को उनके घर का सेवक के रूप में मानते थे। वे आगे और लिखते हैं —

'उह घर रतन एक निरमरा । हाजी सख सभागइ मरा ॥

तिह घर दुइ दीपक उजियारे । पथ देइ वह दइअ सवारे ॥

सख मुबारक पूनिउ करा । सख कमान जगत निरमरा ॥'^२

मुहम्मद तहा निश्चित पथ जेहि सग मुर्मिद पीर ।

जेहि रे नाव करिया औ खेवक देग पाव सो तीर ॥'

उस समय अशरफ जहागीर के घर में एक निमल रतन हाजी नेख' हुआ जा सौभाग्य सम्पन्न था। उनके घर में माग दिखलाने के लिए दो उज्ज्वल दीपक सवारे। एक नेख मुबारक जो पूनम की कला के समान था और दूसरा नेख कमान जो नसार भर में निमल था। मन्त्रिक मुहम्मद का कथन है कि विश्व में जिसके सग में मुर्मिद (गुरु) और पीर (सत) हों, वह माग में निश्चिन्त रहता है। जिसकी नाव में पत बरिया और खिवया दोना हा वह शीघ्र तीर पर पहुँच जाता है।

१—अब्बावर उल अख्यार क अनुसार इनकी मृत्यु ८४० हि० में हुई।

२—हिंदी अनुशीलन धीरेन्द्र वर्मा विद्यापान, पृ० ३६८।

२—जा० ब्र० डा० माताप्रसाद गुप्त पृ० १३२ ।

३—जायसी प्रयावली डा० माताप्रसाद गुप्त पृ० १३२, दो० ११

इतना लिखने के पश्चात् उ होने तुरन्त लिखा -

गुरु मोहदी खेवक में सेवा । चल उताइन जिह कर सेवा ॥
 अगुआ भण्ड सेख बुरहानू । पथ लाइ जेहि दीह गियानू ॥
 अलहदाद भल तिहवर गुरू । दीन दुनिया रोसन मुरखुरू ॥
 सयद अहमद के ओइ चेना । सिद्ध पुरष सग जेहि खेला ॥
 दानिआन गुरु पथ लखाए । हजरति स्वाज खिजिर तिह पाए ॥
 भए परसन ओहि हजरत स्वाज । लइ मेरए जह सयद राजे ॥
 उह सौ में पाई जब करनी । उवरी जीभ प्रम कवि बरनी ॥

आइ सौ गुरु हौं खेला निति बिनवी भा चेर ।

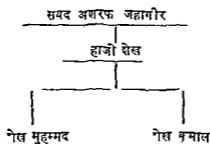
उह हुति देखइ पावौ दरस गोसाईं केर ॥

गुरु 'मोहदी खेनेवाले है । मैं उनका संवक (शिष्य) हूँ । उनका डाढ़ शीघ्रता से चलता है । शेख बुरहान अगुआ (माग दर्शक) हैं । उ होने माग पर लाकर ज्ञान लिया । बुरहान के गुरु अलहदाद थे जो दीन दुनिया में सुविदित तेजस्वी थे । वे सयद मुहम्मद के शिष्य थे जिनकी सगति में पहुँचे हुए लोग रहते थे । उन्हें गुरु दानियाल ने माग दिखाया था । हजरत स्वाजा खिज से कही उनकी भेंट हो गई थी । वे हजरत स्वाजा उनपर प्रसन हो गये और जहा सयद राजे थे वहा ले जाकर मिला दिया । उन गुरु महीउद्दीन से जब भने कम की योग्यता पाई तो मेरी जीभ खुल गई (वाणी फूट निकली) और वह प्रम काव्य का वणन करने लगी ।

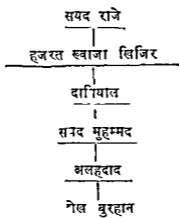
'य हमारे गुरु हैं मैं उनका चेला हूँ मैं नित्य उनका सेवक बनकर उनकी वन्दना करता हूँ । उनकी ही कृपा से मैं भगवान के दर्शन पा सकूँगा ।

पन्मावत के अनुमार जायसी द्वारा दी गई पीर परम्परा और गुरु परम्परा इस प्रकार है -

(१) पीर-परम्परा



(२) गुरु—परम्परा



[मोहदी (मुहीउद्दीन मेहदी) ?]

अखरावट म वर्णित परम्परायें भी लगभग इसी प्रकार की हैं। अन्तर यह है कि प्रथम परम्परा म निजामुद्दीन चिश्ती और अशरफ जहांगीर की ही स्मरण किया है और गुरु मेहदी वानी दूसरी परम्परा हजरत स्वाजा खिजिर तक ही है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि जायसी के दो तीनों गुरु नहीं ये एक ही गुरु थे — गुरु मोहदी। यह कहना उचोने एक गुरु से दोधा ती और तत्पश्चात् दूसरे 'दूसरे' गुरु से भी दोधा लेकर लाभ उठाया — निराधार है। जायसी ने अन्यत्र भी स्पष्ट लिखा है —

महदी गुरु शेख बुरहानू । कालपि नगर तेहिक् अस्थानू ।

सो मोरा गुरु हों तिहू बेला । धावा पाप पानि सिर मला ॥ १

अत स्पष्ट है कि इनके गुरु प्रसिद्ध सूफी फकीर 'शेख मोहदी थे ।'

गुरु—परम्परा (निष्कर्ष)

भारतवर्ष म सूफी धर्म का प्रवेश ईसा की बारहवीं शताब्दी मे हुआ । यह मूलतः चार सम्प्रदायों के रूप म आया जो समय समय पर दश म प्रचारित हुए । उनके नाम और समय निम्नलिखित हैं —

(१) चिश्ती सम्प्रदाय — सन बाहरवी शताब्दी का उत्तरार्द्ध ।

(२) सुहरावर्दी सम्प्रदाय — सन तेरहवी शताब्दी का पूर्वार्द्ध ।

१—चित्ररेखा स० शिवसहाय पाठक, प० ७४ ।

२—हिंदी साहित्य डा० श्यामसुन्दरदास प० २६४ ।

३—हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास डा० रामकुमार वर्मा, प० ३०४ ।

(३) कादरी सम्प्रदाय - सन पन्हवी शताब्दी का उत्तरार्ध ।

(४) नवशक्ती सम्प्रदाय - सन सोलहवी शताब्दी का उत्तरार्ध ।

आइने अकबरी में अबुल फजल^१ ने अपन समय में चौहू सूफी सम्प्रदायों का उल्लेख किया है - चिश्ती सुहरावर्दी हबीबी तूफूरी करवी सक्ती, जुनेदी काजली तूसी फिरदौमी, जदी इयादी अयमी जीर हुवेरी । इनकी भी अनेक शाखाएँ फली । भारतीय सूफी सम्प्रदायों में चिश्ती सम्प्रदाय को बड़ी ख्याति मिली है । 'इसके पश्चात् कादरी सुहरावर्दी सत्तारी और नवशक्ती सम्प्रदाय भी अत्यन्त प्रसिद्ध सम्प्रदाय रहे हैं ।'

चिश्तिया^१ सम्प्रदाय के मूल संस्थापक अबु अब्दुल्ला चिश्ती बारहवा शती के अन्त में भारत आए और अजमेर में रहने लग । इन्हीं की शिष्य परम्परा में निजामुद्दीन औलिया हुए । निजामुद्दीन की शिष्य परम्परा में शख अलाउल हक हुए । उन्हीं से अलाई चिश्तिया की एक शाखा मानिकपुर में स्थापित हुई । इसके आरम्भ वर्तमान शोख निजामुद्दीन थे जिनकी मृत्यु १४४९ ई० (८५३ हिजरी) में हुई । उनके शिष्य सयद राजे हामिदशाह अपने पीर की आज्ञा से जौनपुर में आ बसे थे किन्तु फिर मानिकपुर लौट गये । वही १४६२ ई० (९०१ हि) में उनका देहांत हुआ । इनके शिष्य शोख दानियाल हुए जो खिजरी विस्तर में प्रसिद्ध थे । कहा जाता है कि हजरत ख्वाजा खिज्र से उनकी भेंट हो गई थी जिनसे उन्हें ज्ञान प्राप्त हुआ । दानियाल सुलतान हुसन शर्ही (८६२-८४ हि०) के राज्यकाल में जौनपुर में बसे थे । उनके अनेक शिष्यों में एक सयद मुहम्मद हुए जिन्होंने महदी हाने का दावा किया और वे अपने शिष्यों में महती नाम में ही विख्यात हो गये । बदायूनी ने भी जौनपुर के सयद माहम्मद महदी का सम्मानपूर्वक उल्लेख किया है उनकी मृत्यु १५०४ ई० में हुई । इनके शिष्य शख अलहान हुए और अलहान के शोख बुरहान उद्दीन असारी हुए जिन्हें जायसी ने शोख बुरहानू कहा है । गुक्नजी ने बुरहान के शिष्य रूप में शख मोहिनी या महीउद्दीन का उल्लेख किया है । श्री हुसन असक्री ने सिद्ध किया है कि माहदी या मुहीउद्दीन कोई अलग व्यक्ति न थे बल्कि सयद मोहम्मद की ही सत्ता महती थी ।

अखराबट और मनर शरीफ की प्रतियों का पाठ महती ही है-

गुरु महदी खेवत में रावा । २०।१

चले उताइन महदी रोवा अखराबट २७।५

१-ऐन इन्डोडक्शन टू दी लिस्टी आफ सूफीयम आथर ज० आखेरी

(इन्डोडक्शन) प० ८८ ।

२-आउटलाइन्स आफ इस्लामिक लिचर वाल्थूम २ ए० एम० ए० गुस्तरी प० ५४६

३-पन्मावत ड० वासुदेवशरण अग्रवाल प्राक्कयन प० ३७ ।

चित्ररेखा मे भी जायसी ने महदी या महदी गुरु का उल्लेख किया है—

महनी गुरु शैख बुरहान । चित्ररेखा प० ७४।१

'पा पाएउ महनी गुरु मीठा । मिला पथमह दरसन दीठा ॥ (छ० २७)

चित्ररेखा की नवोपलब्धि से जायसी—विषयक नवीन तथ्यों की उपलब्धि होता है । 'जायसी के गुरु कौन थे ? इस विषय को लेकर हिन्दी के अनेक विद्वानों ने बड़ी दूर की कौड़ी लाने के प्रयत्न किये हैं । चित्ररेखा से यह निःसंदिग्ध रूप से सिद्ध हो जाता है कि जायसी के वास्तविक गुरु निःसंदिग्ध रूप से कालपी वाले मुहम्मदजीन—महदी थे ।'

महदी गुरु सख बुरहानू । कालपी नगर तेहिक अस्यानू ॥

मन्कइ चौबहि कहि जस लाग । जिह व हुए पाप तिह भागा ॥

सो मोरा गुरु तिह हीं चेला । घोवा पाप पानि सिर भेला ॥

येम पिदाना पथ लखावा । आपु चाखि मोहि बूद चखावा ॥'

हम चित्ररेखा के प्रस्तुत उद्धरण से अत्यन्त स्पष्ट रूप से जायसी के गुरु के सम्बन्ध में प्रचलित विवादा का पूरा समाधान मिल जाता है ।

'यह अवश्य सत्य है कि जायसी ने सयद अशरफ जहाँगीर की पीर परम्परा का भी उल्लेख किया है । यह फजाबाद जिले में कछोजा के चिरती सम्प्रदाय के सूफी महात्मा थे । य आठवीं शती हिजरी के अन्त और नवमी शती के आरम्भ में जायसी से बहुत पहिले हुए थे ।' जायसी उनके घराने के बड़े श्रद्धालु भक्त थे ।

जायसी कब्र-थो से स्पष्ट है कि उनके हृदय में सयद अशरफ जहाँगीर के प्रति अपार श्रद्धा थी । पदमावत 'अखरावत' 'आखिरी कताम' और चित्ररेखा चारों ग्रंथों में उल्लेखित उनका उल्लेख किया है ।

ए जी० शिरेफ न अशरफ जहाँगीर चिरती को गैल निजामुद्दीन औलिया

१-चित्ररेखा एक बोल आचाय, प० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र पृ० १० ।

२-चित्ररेखा स० शिवमहाय पाठक पृ० ७४ ।

३-सयद अशरफ की मृत्यु के विषय में दा सन दिये गये हैं । एक ८४० हि०

अखबार उल अखबार । राजपूताना गजेटियर के अनुसार उनकी मृत्यु ८०८ हि० में हुई ।

४-सयद अशरफ पीर पियारा । पदमावत स्तुति खंड १।१८।

५-उपरि अशरफ ओ नहगीर । अखरावत दो० २६ ।

६-आखिरी कताम ६।१०२

७-चित्ररेखा ।

८-पदमावत का अंग्रेजी अनुवाद ए० जी० शिरेफ पृ० १७ ।

की चौथी पीढ़ी में और गैस अनाजल ह्व वा शिष्य 'कहा है। राजपूताना गजेटियर के अनुसार सयद अशरफ की मृत्यु कछोछा नामक स्थान पर हुई थी जहाँ उनकी समाधि है। कहा जाता है कि उन्होंने जौनपुर को ही अपना स्थान बनाया था। डा० कमनकुल थ्रॉट ने एक और भ्रम की उदभावना की है। उनका कथन है कि जायसी के गुरु शेख मुबारक थे। उन्होंने प्रमाण दिया है कि अन्त साक्ष्य में हों उन्हें घरबाद कहा गया है। 'गैस मुबारक' के पश्चात् गैस कमाल वा उल्लेख है। इस प्रकार यदि ऐसा ही अर्थ लना हो तो गैस कमाल जायसी के गुरु हुए मुबारक नहीं।

कहा जा चुका है कि सैयद अशरफ जायसी के प्यारे पीर थे। जायसी ने गुरु को खेवक और पीर को पतवरिया या करिया कहा है। अपने गुरु के विषय में उन्होंने लिखा है—

पा पाएउ महती गर भीठा। मित्रा पथ मह दरसन दीठा ॥ अखरावट ।

गुरु मोहदी खेवक म सेवा। चल उताइल जिहकर खावा ॥
अगुआ भएउ सख बरहानू। पय नाइ जहि दीह गियानू ॥

पन्मावत १।२०

अखरावट वाले पाठ का सीधा अर्थ है कि गुरु महदी अर्थात् ईश्वर का सदेश-वाहक है और उस सबके जीवन-नीया के सने वात का मैं सबक हूँ। उस शैवक का नाम गैस बुरहान है और मैंने कालपी को गुरुस्थान बनाया है (अर्थात् कालपी नगर मेरा गुरु स्थान है)। 'गैस' रामशेलावन जी का कथन है कि यहाँ गुरु का महदी कहा गया है और इसमें न तो भाटिउद्दीन चिरती के संकेत हैं और न पीर सैयद मुहम्मद से तात्पर्य। जायसी के अगुआ अर्थात् पय प्रदर्शक हैं गैस बुरहान।' अखरावट और चित्ररेखा में यह कथन स्पष्ट है—

नाय पियार सख बुरहानू। नगर कानपी हुत गुरु यानू ॥ अखरावट ।
महदी गरु शेख बुरहानू। कानपि नगर तेहिक अस्थानू ॥ चित्ररेखा ।

बदाऊनी के अनुसार बुरहान बारी के मियाँ अलहदाद के सम्पर्क में रहे जो पीर सैयद मुहम्मद जौनपुरी के आध्यात्मिक उत्तराधिकारी थे। श्री अस्करी को फुलवारी शरीफ के सानकाट में अरिस्तु छंद में कुछ रचनाएँ मिली हैं। बदाऊनी को इनकी रचनाओं में ईश्वर प्रेम उपदेशात्मक, वराम्य सूफीमत प्रतिपादन और ईश्वर प्राप्ति के लिए आत्मा की व्याकलता का ध्यान मिला था।^१ सन १६७७ हिजरी में बदाऊनी ने इनका सा तात्कार किया था और उनके साक्ष्यानुसार उनकी

१-डा० रामशेलावन पाण्डेय हिन्दी अनुशीलन पृ० ३७२ ।

२-बदाऊनी, भाग ३ पृ० १०, हिन्दी अनुशीलन, धीरे-धीरे वर्मा विशपात्र पृ० ३७२ ।

मृत्यु सन ६७० हि० म (१५६२-६३ ई०, मं) प्राप्त सी षण्ठी की आधु म हुई !, इस प्रकार उनका जन्म ८७० हिजरी के आसपास ठहरता है। उन्होंने कालपी में अपना निवास स्थान बनवाया था। मृत्यु व अनंतर वही इन्हें समाधि दे दी गई। आइने-अकबरी में भी इन्हें कालपी निवासी कहा गया है। तबकाते अकबरी में इन्हें काली बाल कहा गया है जो लिपिकार का प्रमाद है। इनका पूरा-नाम था शेख इब्राहीम दरवेश बुरहान। डा० रामखेलावन पाडेय ने ग्रैंड कांड लाइन पर 'सैयदराजे' नामक स्टेपल व समीपवर्ती ग्राम में किसी मीयद रजा की छोटी सी दरगाह का उल्लेख किया है। उनका कथन है कि सैयद रजा या राजू से आपसी सम्बन्ध थ। टाक्टर साहब को कोई ऐसी जनश्रुति भी उस ग्राम में मिली है उनका कथन है कि जायसा का जन्मस्थान जायस नहा है। सासाराम में उनका जन्म हुआ था और व शेरशाह के बाल सहचर थ। इनका वास्तविक नाम था मिया मुहम्मद; पीछे चलकर शेख की उपाधि से विभूषित हुए। हाजी शेख के एक शिष्य का नाम था शेख मिया मुहम्मद। वह हुमेनशाह जौनपुरा का प्रियपात्र था, शेख हाजी की इस व्यक्ति पर पत्रवत ममता थी। शेख हाजी की मृत्यु ६७६ हिजरी में हुई। बदाऊनी और मिया मुहम्मद का साक्षात्कार बारी में ६७४ हिजरी में हुआ था। बदाऊनी ने शेख मुहम्मद को कविद्वय शक्ति, प्रतिभा और घामिक प्रवृत्ति का सविस्तार उल्लेख किया है। शेख हाजी के परिवार में इनके विवाह होने की संभावना है और तदा दिवस दस पहने आएउ म इसक संकेत देवे जा सकते है। शेख मुबारक के पाठान्तर रूप में मुहम्मद भी मिला है। इस प्रकार शेख मुहम्मद और मलिक मुहम्मद में अभिन्नता मिलती है। जायसी की मृत्यु ६४८ हिजरी में नहीं हुई। सन ६७४ हिजरी तक उनका जीवन रहना संभव है। जायसी ने दीर्घायु प्राप्त की थी और अत्यन्त बढ़ावस्था में उनकी मृत्यु हुई।

शेख मुहम्मद और मलिक मुहम्मद जायसा की अभिन्नता यदि ठीक होती तो बहुत ही उत्तम होता, पर यह बादरायण सम्बंध ठीक नहीं है। पहली बात तो यह कि पाडेय जी कहते हैं कि बदाऊनी के बहुत से लेख प्रामाणिक नहीं हैं दूसरे जायसी ने ६४० हि० में पदमावत लिखकर स्थानि प्राप्त की थी। यदि अल्बदायूनी ६७४ हि० में शेखमिया मुहम्मद से मिला था और वह भा 'बारी' में तो उसने पदमावत, अखरावट, आखिरी कलाम आदि ग्रंथों का नाम क्या नहीं लिखा? यदि मिया मुहम्मद ही मलिक मुहम्मद जायसी होते तो अल्बदायूनी अवश्य ही उनका 'पदमावत' का उल्लेख करता, शेरशाह द्वारा प्राप्त उनकी प्रतिष्ठा का भी उल्लेख करता। वास्तविकता यह है कि ये कोई दूसरे शेख मिया है जायसी नहीं। वे शेर

शाह के बाल सहचर' थ यह बात भी ठीक नहीं प्रतीत होती जो कवि नेरशाह को बुजुग की तरह आशीर्वाद दे (दीह असीस मुहम्मद करहु जुगहि जुग राज बाद शाह तुम जगत के जग तुम्हार मुहताज) सकता हो जो शेरशाह की प्रशंसा के पुल बांध सकता हो और यदि यह 'उसका बाल सहचर होता तो इस बात का उल्लेख कवि ने अवश्यमेव किया होता। जहाँ तक शेख हाजी के परिवार में जायसी के विवाह होने की बात है उसका कोई भी प्रमाण नहीं है। वे सासाराम में ही जायस में दस दिन के लिए पाठन बनकर आए यह बात भी निराधार है। इस प्रकार स्पष्ट है कि बिना सुदृढ प्रमाणा के शेख मिया और मलिक मिया की अभिन्नता ठीक नहीं है। जायसी सासाराम से आए थे और नेरशाह के बाल्य-सहचर थे वाली बातें प्रमाणों और आधारों के अभाव में स्वीकार्य नहीं हैं। जायसी की शादी की ग़ल्ल हाजी के परिवार में सभावना वाली बात भी सभावना ही है। और जब अल्बदायूनी से मिलने वाले शेख मिया और मलिक मुहम्मद दो व्यक्ति थे दोनों में अभिन्नता नहीं है तो १७४ हि० में जायसी के वर्तमान होने की बात भी 'आधारहीन हो जाती है।^१

इस प्रकार डा० रामखेलावन पांडव जी के मत तक़्ती सभावनाओं पर आधारित होने के कारण स्वीकार्य नहीं है।

जायसी के काव्य की सामान्य रूपरेखा

गासी तासी^१ प० रामचंद्र शुक्ल^१ प० चंद्रबली पाण्डेय,^१ सयद आले माहम्मद,^१ सयद कल्वे मुस्तफा^१ प्रो० हसन अस्करी^१ प्रभृति विद्वानों की शोधो अभ्यास शोधको खोज रिपोर्टों^१ एव सूचनाओं के साक्ष्य पर हमे जायसी की निम्न लिखित कृतियों के नाम मिलते हैं-

१-पदमावत	२-अखरावत
३-मखरावत	४-चपावत
५-इतरावत	६-मन्कावत
७-चित्रावत	८-सुर्बानामा
९-मोराईनामा	१०-मुवहरानामा
११-मुखरानामा	१२-पोस्तीनामा
१३-होलीनामा	१४-आखिरी कनाम ^१

१-इस्त्वार दी ल लितौरत्यूर ऐ दूई ए उ दुस्ताना-गासाद तासी, भाग २ पृ० ६८
१८७० ।

२-जायसी ग्रंथावली, ना० प्र० सभा द्वि० स० १९३५ ।

३-ना० प्र० पत्रिका (प० चंद्रबली पाण्डेय का लेख) भाग १४ ।

४-ना० प्र० पत्रिका (श्री सयद आले माहम्मद), वष ४५, १९९७ पृ० ५७ ।

५-मलिक मुहम्मद जायसी सयद कल्वे मुस्तफा, पृ० ८३ और १६४-६५-६६ ।

६-जनल आफ दि बिहार रिमच मोभाइती, भाग ३९, पृ० १२ ।

७-ना० प्र० (सभा) पत्रिका, भाग १४, पृ० ४१८ ।

८-ना० प्र० सभा खोज रिपोर्ट १९४७ ।

९-प्रथम सख्या १ पदमावत से लेकर सख्या १४ आखिरी कलाम तक चौदह प्रथा के नाम थी सयद आले मोहम्मद न गिनाए हैं । उनके अनुसार जायसीकत यही १४ प्रथ है । तैगिए ना० प्र० प०, वष १९९७, पृ० २७ ।

शाह के बाल सहचर थ यह बात भी ठीक नहीं प्रतीत होती जो कवि शेरशाह को बुजुग की तरह आशीर्वाद दे (दीह असीस मुहम्मद बरहु जुगहि जुग राज बाद शाह तुम जगन के जग तुम्हार मुहताज) सकता हो जो शेरशाह की प्रशंसा के पुल बांध सकता हो और यदि यह उसका बाल सहचर होता तो इस बात का उल्लेख कवि ने अवश्यमेव किया होता। जहाँ तक शेख हाजी के परिवार में जायसी के विवाह होने की बात है उसका कोई भी प्रमाण नहीं है। वे सासाराम से ही जायस में दस दिन के लिए पाहुन बनकर आए यह बात भी निराधार है। इस प्रकार स्पष्ट है कि बिना सूदढ प्रमाणा के शेख मिया और मलिक मिया की अभिन्नता ठीक नहीं है। जायसी सासाराम से आए थे और शेरशाह के बाल्य-सहचर थे वाली बातें प्रमाणों और आधारों के अभाव में स्वीकार्य नहीं हैं। जायसी की शादी की श्रेष्ठ हाजी के परिवार में सभावना वाली बात भी सभावना ही है। और जब अल्बदायूनी स मिनने घाले शेख मिया और मलिक मुहम्मद दो व्यक्ति थे दोनों में अभिन्नता नहीं है, तो ६७४ हि में जायसी के वर्तमान होने की बात भी आधारहीन हो जाती है।^१

इस प्रकार डा० राममेलाराम पांडेय जी के मत तकलीफ सभावनाओं पर आधारित होने के कारण स्वीकार्य नहीं है।

जायसी के काव्य की सामान्य रूपरेखा

यासी तासी,^१ प० रामचंद्र शुक्ल^१ प० चंद्रवली पाण्डेय,^१ सैयद आले मोहम्मद,^१ सयद कल्वे मुस्तफा^१ प्रो० हसन अरबरी^१ प्रभृति विद्वानों की शार्थों अर्थात् शोधका,^१ खोज रिपोर्टों^१ एवं सूचनाओं व साक्ष्य पर हम जायसी की निम्न लिखित कृतियों के नाम मिलते हैं—

१—पदमावत	२—अलरावत
३—सखरावत	४—चपावत
५—इतरावत	६—मटकावत
७—चिन्नावत	८—खुर्बानामा
९—मोराईनामा	१०—मुकहरानामा
११—मुखरानामा	१२—पोस्तीनामा
१३—होलीनामा	१४—आखिरी क्लाम ^१

१—इस्वार दी ल लितोरत्यूर एं दूई ए ऐ दुस्तानो—गासाद तासी, भाग २ पृ० ६८, १८७० ।

२—जायसी प्रयावली, ना० प्र० सभा दि० स० १८३५ ।

३—ना० प्र० पत्रिका (प० चंद्रवली पाण्डेय का लेख) भाग १४ ।

४—ना० प्र० पत्रिका (श्री सयद आले मोहम्मद), वष ४५, १९९७, पृ० ५७ ।

५—मलिक मुहम्मद जायसी सैयद कल्वे मुस्तफा, पृ० ८३ और १६४-६५-६६ ।

६—जनल आफ दि बिहार रिलिच सोसाइटी भाग ३९, पृ० १२ ।

७—ना० प्र० (सभा) पत्रिका, भाग १४, पृ० ४१८ ।

८—ना० प्र० सभा खोज रिपोर्ट १९४७ ।

९—ग्रंथ संख्या १ 'पदमावत' में लेकर संख्या १४ 'आखिरी क्लाम तक' चौदह ग्रंथा व नाम श्री सैयद आले मोहम्मद न गिनाए हैं । उनका अनुसार 'जायमीकत्र यही १४ ग्रंथ हैं । देखिए, ना० प्र० प०, वष १९९७, पृ० ५७ ।

मलिक मुहम्मद जायसी और उनका काव्य

१५-पनावत^१
१७-जपजी^१

१६-मखरावटनामा^१
२१-स्फुट ववितायें^१
२३-सकरानामा^१

१६-सोरठ^१
१८-मनावत^१
२०-कहारनामा^१
२२-लहतावत^१
२४-मसला^१ या मसलानामा

गुजन की जायसी अनेक प्रकाशित सस्करण उपनय हैं। प० रामचन्द्र आखिरी कनाम मद्रिन हुए हैं। डा माताप्रसाद गुप्त को जायसी का नया ग्रन्थ मिना प्रा जिते, आईस छदा, में होने के कारण महरी बार्दसी नाम सज्ज होने अपने (ना प्र० के) सस्करण म प्रकाशित किया है। वस्तुतः इस ग्रन्थ का नाम कहरानामा या बहरानामा है जसा कि इनकी कई हस्तलिखित प्रतियों में अब ज्ञात हो गया है। रामपुर राजकीय पुस्तकालय की पदमावत की प्रति के अन्त म बहारानामा की भी अति सलिखित प्रतिया के आधार पर लिखी है। १६५६ ई० म प्रस्तुत विद्यार्थी ने दो हस्तलिखित प्रतिया के आधार पर विनरेखा का सम्पादन प्रकाशन किया था। प्रस्तुत विद्यार्थी को मसला की भा एक खण्डित प्रति मिली है प्रस्तुत प्रबंध व परिशिष्ट म मसला को टंकित रूप म दिया गया है। बहरानामा या बहारनामा ही आले महम्मद की सूची का मुकहरानामा और मखरानामा ज्ञात होता है। पोस्तीनामा के विषय म जन-रुति है कि जायसी के गुरु स्वयं अमल करते थे। जायसी न उन्हे ही दृष्टि म रखकर यह ग्रन्थ लिखा था। इसम उ होने अपीमचियों पर यम किया था। जब जायसी ने इस अपने गुरु को सुनाया तो व प्रोथित हो गए। उन्होंने शाप दिया कि तम्हारे सातो बच्चे छत गिरने स मर जायेंगे। पश्चात पीर ने इतना और कहा कि लवने तो नहीं बच सकतें, पर

१-इस्त्वार दी ल नितौरत्पूर ऐ दुई ऐ ऐ दुस्तानी गार्साद सासी पृ० ६८ ।
२-वही पृ० ६८ ।

४-जा० प्र० ना० प्र० सभा प० रामचन्द्र गुप्त भूमिका पृ० ६६ ।
५-ना० प्र० प० भाग १४ पृ० ४१८ ।

७-द्वैतय मलिक मुहम्मद जायसी सयद कल्प मुस्तफा पृ० १६१ ।
८-जनल आफ बिहार रिसर्च सासाइटी भाग ३६ पृ० १२१ ।
९-वही ।

१०-ना० प्र० सभा खोज रिपाट १९४७ तथा ना० प्र० सभा हस्तलिपि ग्रंथों की सूची म म० मु० जायसी कत अखरावट और मसला पृ० २५-२६ (हस्त लिखित प्रति)

मुंहारा नाम तुम्हारे १४ ग्रन्थों से चलेगा ।^१ अतः म एसा ही हुआ । ये चौन्ह प्रथ ऊपर दी हुई सूची के प्रथम चौन्ह प्रथ है । पोस्तीनामा का कुछ पंक्तियाँ मिलती ह जमे-

१ 'जब पुस्ती मा लाग पात । पुस्ती बूदे नौ-नी हात ॥

जब पुस्ती मा लाम फून । तब पुस्ता मटकाव कून ॥'^२

२ प० रामचन्द्र शुक्ल^३ ने जायस में प्राप्त जन-रति के आधार पर लिखा है कि जायसी ने 'ननावत नाम' की एक प्रेम कहानी भी लिखी थी । सम्भव है 'ननावत म रानी ननावती की प्रेम कहानी लिखी गई है ।

३ जायसी के पदमावत में दोहा १८३-१८९ तब का वजन अलग कर दिया जाय, तो वह 'होरीनामा के ढग की कति हो जाती है । गार्साँद तामी ने लिखा है कि सोरठ और जपजी की प्रतिष्ठा बंगाल का रायल एशियाटिक सोसाइटी में है और घनावत की प्रति डा० स्ट्रेंगर के पास है । जायसी की रचनाओं के विषय में डा० वासुदेवशरण अग्रवाल^४ का कथन उल्लेखनीय है । सम्भव है जाग की त्वाज में इन ग्रन्थों पर कुछ प्रकाश पड़ । वस्तुतः उम युग की यह पद्धति थी कि महाकवि मुख्य ग्रन्थ के अनिर्दिष्ट लोक में प्रचलित विविध काव्य रूपों पर भी प्रायः कुछ लिखा करते थे । कबीर वन कहरानामा और वसंत एव चाचर पर फुटकर कविता बीजरु म सगनीत हैं । तुलसी के ग्रन्थ रामायण नहछू और मंगल काव्य साहित्य के नौव श्यों की पूर्णिक रूप में लिखे गये थे । मुमलमानी धर्म के विविध अंगों पर काव्य लिखने की परम्परा जायसी में शुरू होकर बाद तक चलती रही । आखिरी कलाम में जायसी ने क्यामत के दिन का चित्र स्वर्णानुयायियों के लिए प्रस्तुत किया था । रीवा के जेहर अलीशाह ने तमल्लुदनामा नामक शब्दों काव्य में मुम्मद साहब का जीवन चरित्र लिखा । अल्लु समद के किशोर भागलपुरी शिष्य ने स० १८१० में मराजनामा नामक अवध काव्य में स्वर्ण का पूरा वजन किया है । किन्तु काव्य गुणों की दृष्टि से इन रचनाओं का विशेष महत्त्व नहीं है ।

अक्षरावट

अभी तक मुख्य रूप से 'अक्षरावट' के दो सम्पादित रूप हिन्दी जगत् के समक्ष आए हैं-

१-ना० प्र० पत्रिका, भाग २१ वर्ष ४२ पृ० ४७ ।

२-म० मु० जायसी सपद कल्प मस्तका, पृ० १६४ । -

३-आ० प्र० ना० प्र० सभा, भूमिका पृ० १२ ।

४-इस्त्वार दी-श नितरत्पूर ऐ दुई ऐ ए दुस्तानी गार्साँदतासी, पृ० ६८-६९ ।

५-डा० वासुदेव शरण अग्रवाल, पदमावत, प्राक्कथन पृ० ३२ ।

(१) जायसी ग्रन्थावली के अन्तगत संपादित (प रामचन्द्र शुक्ल द्वारा) अखरावट सं १९८१ वि ।

(२) जायसी ग्रन्थावली के अन्तगत सम्पादित प्रकाशित (डा० माताप्रसाद गुप्त द्वारा) सं २००८ वि ।

इन दोनों संपादकों के विषय में डा० माताप्रसाद गुप्त^१ ने लिखा है— इस ग्रन्थावली में सम्मिलित अखरावट का पाठ अथ प्रतियों के अभाव में पहिले प० रामचन्द्र शुक्ल के संस्करण के अनुसार रखा गया था किन्तु सयोग से अखरावट की छपाई प्रारम्भ हो जाने पर उसकी एक प्राचीन हस्तलिखित प्रति प्रान्तीय सेक्रेटेरियट के अनुवाद विभाग के विशेष कार्याधिकारी श्री गोपालचन्द्र सिंह जी से मिल गई। इस प्रति का पाठ शुक्लजी द्वारा दिये गये पाठ की अपेक्षा अधिक सतोषजनक प्रतीत हुआ। किन्तु छपाई आरम्भ हो जाने के कारण उसका इससे अधिक उपयोग नहीं किया जा सका कि ग्रन्थ के अन्त में परिशिष्ट जोड़कर इस प्रति का पाठांतर मान्य द दिया जाय ।

शुक्लजी ने यह नहीं लिखा है कि किस मूल प्रति के आधार पर उन्होंने अखरावट का संपादन किया। डा० माताप्रसाद गुप्त ने भी शुक्ल जी द्वारा दिये गये पाठ को ही अपने संपादन में स्थान दिया है। उहान श्री गोपाल चन्द्र सिंह द्वारा प्रदत्त अखरावट की एक प्राचीन प्रति के पाठांतर भी आठ पृष्ठों में दिये हैं ।

प्रो० श्री हमन अस्करी^२ के प्रयत्न से बिहार में मनेर शरीफ के खानवाह पुरतकालथ की फारसी लिपि में लिखित अखरावट की एक प्रति मिली है। उनके मत से यह प्रति सत्रहवीं शती में शाहजहाँ के समय में लिखी गई थी ।

१९५९ ई० में प्रस्तुत विद्यार्थी की नागरीप्रचारिणी सभा काशी में 'अखरावट' की एक प्रति नागरी लिपि में लिखी हुई मिली। यह प्रति प्राचीन है और किसी शीतलदास जी द्वारा नागरी लिपि में लिखित है। अखरावट का नाम उन्होंने 'अखरावती' दिया है और इसकी पुष्पिका में लिखा है— लिपा है शीतल दास महम्मद कत अखरावती ग्रन्थ केर एह नाम ।'^३

१—जायसी ग्रन्थावली डा० माताप्रसाद गुप्त वक्तव्य पृ० १ ।

२—दृष्टव्य—जनन आफ बिहार रिसर्च सोसाइटी भाग ३९ १९५३ (प्रो० अस्करी प 'युली डिसकवर्ड बाल्यूम आफ अवधी बकम इनकनडिग पदमावन एण अखरावट आफ म० मु० जायसी) ।

३—ना० प्र० सभा काशी हस्तलेख—विभाग अखरावट और मसना की प्रति, पृ० २५ ।

जायस क्षेत्र के समरौता जू० हाई स्कूल के प्रधान अध्यापक श्री त्रिभुवन प्रसाद त्रिपाठी के पास एक हस्तलिखित जायसी ग्रन्थावली है। इसमें नागराक्षरों में लिखित अखरावट की भी एक प्रति है। जायस के ही मौलवी बसी नकवी के पास भी एक जा० ग्र० है। इसमें भी अखरावट की नागराक्षरों में लिखित एक प्रति है।

डा० कमल कुल श्रेष्ठ की निराधार कल्पना

अखरावट जायसी का एक सिद्धांत प्रधान ग्रन्थ है। प० रामचंद्र शुक्ल और डा० माताप्रसाद गुप्त के सम्पादनो के अनुसार इस काव्य में कुल ५४ दोहे ५४ सोरठ और ३७१ अर्द्धालिया हैं। इसमें दोहा चौपाई और सोरठ छंदों का प्रयोग हुआ है। एक दोहा पुन एक सोरठा और पुन ७ अर्द्धालियों के क्रम का निर्वाह आदि में लेकर अंत तक किया गया है। विषय की दृष्टि में इस काव्य को अध्ययन की सुविधा के लिए दो भागों में बाटा जा सकता है—(१) पूर्वार्द्ध प्रारम्भ से लेकर अतिमातर न (अ) के पश्चात और (२) उत्तरार्द्ध—गुरु चेला सवाद—जो ४४वें सोरठ के पश्चात प्रारम्भ होता है और अंत तक चलता है। गुरु चेला सवाद के विषय में डा० कमलकुल श्रेष्ठ का अनुमान है कि संभव है कि यह जायसी की कहीं पर अलग स्फुट रचना किसी को मिली हो उसने बाद में इस पदमावत या आगिरी का नाम में न जम सन्ने के कारण इसमें जोड़ दिया हो। 'कई अर्थ लोग' भी इस मत का समर्थन करते हैं। परन्तु अभी तक अखरावट की जो भी हस्तलिखित प्रतिया प्राप्त हुई हैं उनसे स्पष्ट है कि यह बात निराधार एवं कोरी बनना मात्र है।

अखरावट का रचनाकाल

जायसी ने इस ग्रन्थ में रचना से सम्बद्ध तथ्य निर्देश नहीं किया है। सत्य बल्ब मुस्तफा का कथन है कि यह जायसी की अंतिम रचना है—अल्फाज का इतिहास जुवान की खानिगी विदेश की चुस्ती पता दती है कि यह नज्म शायर जायसी के दौर आखिर का नतीजा है। इसके यह कथन हैं कि अखरावट पदमावत के बाद तथ्यनीक हुई है। 'कुछ लोग इही के मत का समर्थन करते हुए तर्क उपस्थित करते हैं कि इस काव्य में छन्दगत दोष यूननतम हैं। दोहे चौपाइयों में माधुय भी अधिक है और भाषा भी अधिक सुस्विर और व्यवस्थित है। कवि ने

१-म०मु० जायसी डा० कमल कुल श्रेष्ठ पृ० ४९।

२-सूफी महाकवि जायसी डा० जयन्त प० १३८।

३-मलिक मुहम्मद जायसी सत्य कब्र मुस्तफा पृ० १६०।

एक नवीन छन्द सोरठ का भी सफन प्रयोग किया है। कुछ सोरठों के चारो धरणों की तुलना में साम्य है जिससे यह छन्द विशेष श्रुतिमयुर बन गए हैं। ' प्रायः यह भी दखा जाता है कि कवि अपनी ध्यतिक भावनाओं का स्पष्टीकरण अतः म ही करते हैं यद्यपि उनका यत्र-तत्र समावेश तो उनकी समस्त रचनाओं में प्राप्त रहता है। उसी प्रकार की रचना अखरावट है। जनश्रुति के आधार पर शैली की प्रौढता एवं विशदता के समथन से तथा अध्यात्मिकता के विनोप सुवाव के कारण हम (डा० जयदेव) इस काव्य को पदमावत के वात की ही रचना मानते हैं। ए० जी० शिरेफे ने लिखा है कि अखरावट की रचना अमठी के राजा के कहने पर हुई थी। राजा का जायसी से परिचय पदमावत के द्वारा हुआ था। अतः अखरावट पदमावत के बाद की ही रचना ठहरती है।'

ध्यानपूर्वक विचार करने पर स्पष्ट हो जाता है कि अखरावट की रचना तिथि से सम्बद्ध ऊपर दी हुई समस्त बातें पुष्ट प्रमाणों से रहित एवं अनुमानमात्र है। जनश्रुति का कोई प्रमाण नहीं मिलता। शैली की प्रौढता एवं विशदता की दृष्टि से पदमावत को अखरावट से हीन कोटि का मानना समीचीन नहीं है। 'ध्यतिक भावनाओं का स्पष्टीकरण कवि अतः म ही नहीं अपितु कभी भी कर सकते हैं। इस सिलसिले में अखरावट की निम्नलिखित चौपाई भी उद्धृत की जाती है— वहा मुहम्मद पेम कहानी। सुनि सो ज्ञानी भए धियानी ॥' और अथ लगाया गया है कि वह कौन सी कहानी है जिसको सुन कर ज्ञानी लोग भी परम प्रिय के प्रेम में ध्यानावस्थित हो जाते हैं। निश्चय ही जायसी की वह प्रेम कहानी पदमावत है। इस प्रकार अखरावट पदमावत के पीछे की रचना है। 'जायसी की प्रस्तुत चौपाई के प्रेम कहानी का पदमावत से सबन्ध जोड़ना बादरायण सम्बन्ध से भी महान आकाश कुमुमत्व की बात है। वस्तुतः वहा मुहम्मद पेम कहानी का सम्बन्ध और अथ इन्ही पक्तियों के पूर्व और पश्चात मिल जाता है। यह प्रेम कहानी तो वही पर दी गई है—

१. तसमा दुइ एक साथ मुहम्मद एको जानिए ॥
 २. वहा मुहम्मद पेम कहानी। सुनि सो ज्ञानी भए धियानी ॥
 ३. चेल समुनि गुरु सो पूछा। देखहु निरखि भरा ओ छूछा ॥
 ४. वसे आपु वीच सो भेटे। वसे आप हेराइ सो भेट ॥

१-सूफी महाकवि जायसी डा० जयदेव १३५-१३६।

२-पदुमावती भूमिका पृ० ५।

३- जा० प्र० ना० प्र० सभा ।

४-सूफी महाकवि जायसी, डा० जयदेव प० १३६।

जो सहि आपु न जीयत मरई । हस दूरि सौं बान न करई ॥

सो तो आपु हरान है तन मन जीवन खोइ ।

खेला पूछ गुरु कह तेहि बस अगरे हाइ ॥”

नव रस गुरु पह भीज गुरु परसाद सो पिउ मिल ॥४६॥

यस्तुत 'कहा मुहम्मद पेम कहानी की बात वही पर और स्पष्ट कर दी गई है—

कहा न अहै अकय भा रहई । बिना विचार समुझि का परई ॥

सो ह सो ह बसि जो करई । जो बूझ सो धीरज धरई ॥

कहे प्रेम क बरनि कहानी । जो बूझ को सिद्ध गियानी ॥”

स्पष्ट है कि 'कहा मुहम्मद पेम कहानी' का अर्थ सोह वानी कहानी से है, जीव और ब्रह्म के प्रेम विरह की कहानी से है जिसे ऊपर उद्धृत पक्तियों में जायसी ने स्पष्ट रूप से लिख दिया है ।

प्रा० शैयद हसन अस्वरी^१ को मनेर शरीफ से कई ग्रंथों के साथ पदमावत और अखरावट की हस्तलिखित प्रतियाँ प्राप्त हुई हैं । इन प्रतियों के विषय में लिखते हुए उन्होंने अखरावट के रचनाकाल का भी उल्लेख किया है । अखरावट की हस्तलिखित प्रति की पुष्पिका में जम्मा ८ जुल्काद ९११ हिजरी का उल्लेख है । विद्वानों का विचार है कि सम्भवन जिस मूल प्रति से इस प्रति की नकल की गई थी, उसकी पुष्पिका में यह तिथि निखी हुई थी और जिसे प्रतिनिषिद्धार ने ज्यों का त्यों उतार दिया है । इससे अखरावट का रचनाकाल ९११ हिजरी या इसके आसपास प्रमाणित होता है ।^२ अखरावट जायसी की प्रारम्भिक या प्रथम रचना है । “जिस भूकम्प का उल्लेख जायसी ने आखिरी कलाम में किया है और जिसे अनेक विद्वानों ने जायसी के जन्म-समय घटित मान लिया है । उसमें ऐसा प्रतीत होता है कि जिस समय जायसी का कवि-जीवन प्रारम्भ हुआ था उसी समय वह भूचलन आया होगा । अखरावट का पुष्पिका में लिखित ९११ हि० और ९१०-११ में घटित भूकम्प का उल्लेख में अदभुत साम्य है और यह आकस्मिक नहीं प्रतीत होता, । जायसी के इस वर्णन से यह बात प्रमाणित होती है कि अखरावट ९११ हिजरी में लिखा गया ।

१—जा० प्र०, ना० प्र० सभा, अखरावट प० ३३८, ५३५ ६७ ।

२—जे० बी० आर० एस०, भाग ३९ । ३—वही ।

४—क—जायसी की जन्म तिथि, अध्याय १ ।

ख—मुतसव्वतवारीख (अल्बदायूनी) रैकिंग कृत अनुवाक भा० १ पृ० ४२१—
(३ सफर ९११ हिजरी को भूकम्प हुआ था) ।

ग—बाबरनामा—इलियट भा० ४, पृ० २१८ ।

कयावस्तु

अखरावट का प्रारम्भ जायसी ने सृष्टि की आदि कयावस्था से किया है जब न गगन था और न धरती न सूर्य था और न चन्द्र । ऐसे अधकूप में कर्तार ने सबप्रथम मुहम्मद पगम्बर की ज्योति उत्पन्न की । ' उसी आदि गोसाई ने ही समस्त सत्ता की सृष्टि लीलाध की है ।' इस तीला ज्ञान की कथा को कवि ने 'ककहरा रूप में कहा है । कवि ने अपनी अपार नमता भी प्रदर्शित की है— पंडित पठ अखरावटी, टूटा जोरेहु देखि ॥ जब सबत्र शूय शूय था नाम, स्थान सुर शब्द पाप पुण्यादि कुछ नहीं था ईश्वर की कलाएँ उसमें ही लीं थीं सृष्टि रूप में उनका विस्तार नहीं हुआ था—एक अल्ताह तत्व स्वयं में समाया हुआ था—इस सत्ता रूपी वृक्ष का वृक्ष के समान त्रियर बीज मात्र था परन्तु उस बीज का न रंग था और न रूप ।' तब ईश्वर में मुहम्मद साहब की प्रीति के कारण सृष्टि की सजना की । स्वर्ग पिता हुआ धरती माता हुई । आरम्भ में ही दो विभाग (द्वन्द्व) हुए और सृष्टि का क्रम आगे बढ़ चला । पुन उसने इबलीस (शैतान) को बनाया । एक आत्मतत्व या परमात्म तत्व अठारह सहस्र योनियों में प्रकट हुआ । पहिले ही उसने चार फिरिश्ते रचे । इन चारों ने चार तत्वा को ईश्वर की आज्ञानुसार मिलाकर शरीर बनाया । उसमें पच भूतात्मक इंद्रिया रख दी । उस शरीर में नव द्वार बनाया और दशम द्वार को मूद कर कपाट दे दिया । अभी तक आदम और कर्तार में अभिन्नता थी जन्मे माता के गर्भ में बच्चा रहता है किन्तु उसे जग में मृत्यु ने ला दिया । इसी से तो प्रियतम से विछोडते ही ' इस सत्ता में आते ही बच्चा रोने लगता है । स्वर्ग में ही आदम की उत्पत्ति हुई । आमा हुई कि सब लोग मिलकर प्रणाम करो पूजा भी करो । नारद (शैतान) के अतिरिक्त सबों ने नमन किया । ईश्वर ने नारद को अनन्य भक्त समझ कर दशम द्वार का रक्षक नियत किया । पश्चात् आदम हीवा की सजना हुई । उन्हें स्वर्ग में भेजा गया । शैतान के बहकावे में आकर आदम ने गहूँ खा दिया—ईश्वर ने इसे खाने का निषेध किया था अतः वे स्वर्ग से निकाल दिये गए । वे दोनों विछोह में तड़पते रह । अन्ततः ईश्वर की कृपा से दोनों मिले । उनसे सत्तानों की उत्पत्ति हुई । अपने-अपने धर्म वाले हिन्दू और तुर्क दोनों हुए ।

दो पक्षों से युक्त शरीर की रचना, शरीर में ही 'पुने सरात' स्वर्ग-नरक

१—जा० प्र० ना० प्र० सभा पृ ३०२ दोहा १ ।

२—जा०, प्र० ना० प्र० सभा पृ० ३०२ ११ चौपाई ।

३—वही, अखरावट ।

सूर चन्द्र आदि की रचना 'जो कुछ पिंड सोइ ग्रहण्ड' की बात मन की चंचलता का ध्यान देखहु परम हंस परछाही की बात काया-नगरी के अगम पथा और चारि घसरे का भेद उसी के सात खण्डों में सात ग्रहों की परिवर्तना अपनी ही भाँति सृष्टि की मजता करने वाले बड़ ठाकुर की प्रणति समार की असारता और तप-साधना की बात हम वहाँ से आये हैं और हम वहाँ जाना है ? के बाद गुरु की महत्ता की बात इस्लाम की ध्येष्ठता, अपने गुरु मोहदी और उनकी परम्परा का गुणगान, हंस रूपक शय निरूपण पत रूपक एव दीपक-रूपक के बचन, कबीर की प्रशंसा गुरु शिष्य सवाद-रूप में अहंकार-विनाश प्रम घणा तत्वा की स्थिति के प्रश्न एव गुरु द्वारा स्पष्टीकरण गुरु द्वारा ईश्वर के गौरव का गान इत्यादि के पश्चात् कवि कहता है कि यह गूढ बात बिना चिन्तन के समझ में नहीं आ सकती। जीव का चाहिये कि इस मिट्टा के शरीर को लेकर प्रेम का खेल खेल डान क्योंकि प्रेम प्रभु प्रेम से ही प्राप्त होता है।

अखरावट के दार्शनिक आध्यात्मिक विन्दु

१-सृष्टि-जायसी ने अखरावट के प्रारम्भ में सृष्टि के उत्पन्न और विकास की जो कथा दी है वह मूलतः सनातनी धर्मग्रन्थों और विश्वासों के आधार पर आधारित है। सृष्टि के आदि में जो महापुरुष था उसी से वर्तमान सृष्टि की रचना हुई। सवत्र पुरुष पुरुष था नाम स्थान सुर, शब्द पाप पुण्य आदि कुछ भी नहीं था। ईश्वर की भी कलायें ईश्वर में ही लीन थीं। उस समय गगन धरती, सुम चन्द्र आदि कुछ भी नहीं था। ऐसे शून्य अकार में ईश्वर ने सबसे पहले मुहम्मद पगम्बर की ज्योति उत्पन्न की—

‘गगन हुता नहिं महि हुती हुते चद नहिं नूर।

ऐसइ अरूप मह रचत मुहम्मद नूर ॥”

दुरान शरीफ एव इस्लामी रवायतों (कथाओं) में यह कथा है कि जब कुछ नहीं था, तो केवल अल्लाह था। सवत्र घोर अंधकार था। उमन कहा—
‘कुन’ (प्रकाश हो) और कहने के साथ ही प्रकाश हो गया। इस सृष्टि के मूल में आदि गोसाईं का श्रीडा (खल) है। पुन उसने ही अठारह सहस्र योनियों की रचना की। इस प्रकार उस आदि गोसाईं की सत्ता इन अठारह सहस्र जीवकोटियों में प्रकट हुई है। भारतीय साहित्य में भी इस ससार की कल्पना अश्वत्थ के रूप

१-जा० ग्र० ना० प्र० सभा, अखरावट) पृ० ३०४।१।

२-वही, पृ० २०३।

३-जा० ग्र० ना० प्र० सभा० पृ० ३०३, १।१।

४-वही—‘रहा जो एक जल मुपुत समुदा। बरसा सहस्र अठारह बुन्दा ॥’

से की गई है। श्रीमद्भगवद्गीता^१ और रामचरितमानस^२ में भी सृष्टि प्रसंग इसी रूप में वर्णित है। सो उस ठाकुर ने एक बार ऐसा किया पहल उसने नाम रूप में मोहम्मद को रचा। उनकी ही प्रीति के कारण दुनिया पदा की गई। उसी प्रेम बीज से दो अकुर निकले एक श्वेत और दूसरा श्याम। श्वेत अकुर से निकला पान धरती बना और श्यामाकुर वाला पात आकाश बन गया। पश्चात् इसी द्वत के आधार पर सूरज चांद, दिन रात पाप पुण्य, सुख दुःख आनंद-सताप, नरक-बकुण्ठ अच्छे बुरे, झूठ सत्य आदि की सृष्टि हुई^३।

इबलीस आदम होवा फिरिस्ते हिंदू तुक — इसके बाद उसने इबलीस को रचना का आदम का निर्माण किया। चार फिरिस्तो को बनाया चार तत्व और पचभूतात्मक इन्द्रिया से 'काया' की रचना की उसमें नव द्वारों को बनाया दसवें द्वार को मूढ़ करके कपाट दे दिया और फिरिस्तो से कहा कि इसका सिजदा (नमन) करो। फिरिस्तो ने नमन किया किन्तु इबलीस ने नमन नहीं किया। अतः वह स्वर्ग से निकाल दिया गया। करतार न इबलीस को दशम-द्वार का रक्षक बनाया^४। इस प्रकार जिस इबलीस ने धर्म मार्ग से हटाकर पापी कर दिया उसका और आदम का साथ हो गया। इसके बाद होवा की रचना की गई और आदम होवा को स्वर्ग में विहार करने के लिये भेज दिया गया। इबलीस के बहकावे में आकर आत्म ने गेहूँ खा लिया जिसके खाने का निषेध ईश्वर ने कर रखा था और इस अपराध के कारण उह स्वर्ग से निकाल दिया गया। व बहुत पढ़नाए रोए और अन्त में उहोने मिलकर सृष्टि बनाई। हिंदू-तुक उही से उत्पन्न हुए हैं। जो

१-श्रीमद्भगवद्गीता बानगगाधर तिलक अध्याय १५ -

उध्वमूनमध शालिमश्वत्थ प्रादुरन्ययम् ।

छदासि मस्य पर्णानि यस्त वदंस वदवित ॥

अधश्चोध्व प्रसतस्तस्य शाखा गुण प्रवद्धा विषयप्रवाहा ।

अधश्चमूला सततानि कर्मानुबधीनि मनुष्य लोके ।

२- अयत्क मूलमनादि तद त्वच चारि निगमागम भने ।

पटकथ शाखा पचवीस अनेक पन सुमन घने ॥

फल जुगल त्रिधि कटु मधुर बलि अनेनि जेहि आश्रित रहे ।

पल्लवन फूलन नवल नित ससार बिटप नमामहे ॥ - रामचरितमानस ।

३-जा० प्र० ना० प्र० सभा पृ० ३०४-५ ।

४-जा० प्र० ना० प्र० सभा पृ० ३०५ (पुनि इबलीस सचारेउ) ।

५-वही पृ० ३०६ ।

६-वही, पृ० ३०७ ।

७-वही, पृ० ३०८ ।

८-वही पृ० ३०८ ।

ब्रह्माण्ड सो पिण्ड है — उपनियदो म ब्रह्म और जीव, आत्मा और परमात्मा की एकता को बार बार समझाया गया है। अर्थात् जो पिण्ड' म है वही ब्रह्माण्ड म हैं। वस्तुतः पिण्ड और ब्रह्माण्ड की एकता का अर्थ है अनत और अत की परस्पर अयोग्यता। इस तथ्य को लेकर साधना के क्षेत्र म एक विलक्षण रहस्यवाद की उत्पत्ति हुई, जिसकी प्रेरणा मे योग म पिण्ड या घट के भीतर ही ब्रह्म का एक विगिष्ट स्थान निर्दिष्ट हुआ और उससे पास तक पहुँचने की कल्पना की गई। जायसी ने स्पष्ट कहा है —

सातौ दीप नवौ खड आठौ दिसा जा आहि ।

जो बरह्माण्ड सो पिण्ड है हेरत अत न जाहि ॥^१

एक पूरा रूपक बाधकर जायसी ने जो कुछ पिण्ड ब्रह्माण्ड का प्रतिपादन किया है —

टा टुक झाँकहु सातौ खडा । खट रट लखहु बरह्माण्डा ॥

— — —

सातव साम कपार मह कहा जो दसव दुवार ।

जा वह पधरि उधार सा घट सिद्ध अपार ॥^२

इन पंक्तियों म कवि न मनुष्य शरीर के पर गुह्य द्विज नाभि, स्तन कठ भोहो के बीच के स्थान और शपान प्रवेशो म क्रमशः शनि वहस्पति मंगल आदित्य शुक्र बुध और सोम की स्थिति का निरूपण किया है। यहाँ यह विशेष द्रष्टव्य है कि कवि द्वारा दी गई यह घट स्थिति म्य सिद्धान्त प्रमति ग्रन्थो के ही अनुकूल है। ब्रह्म अपने व्यापक रूप म मानव देह म भी समाया हुआ है—

माय सरग घर घरती भयऊ । मिलि तिह जग दूसर होइ गयऊ ॥

मागी मासु रकत भा नीरु । नस नदी द्विज समुद गभाहू ॥

— — —

सातौ दीप नवौ खड आठौ जिहा जो आहि ।

जो बरह्माण्ड सो पिण्ड है हेरत अत न जाहि ॥

। आगि वाज जल, धूरि चारि भरइ भाडा गण ।

यापु रहा भरि पूरि मुहमद आपुहि आपु मह ॥^३

इस्लामी धर्म के तीर्थ आदि का भी कवि ने शरीर म ही प्रदर्शित किया है।

१—वही पं० २०६।१।

२—जा० प्र०, ना० प्र० सभा, पं० ३१५—३१६।

३—वही, पं० ३०६।

इस शरीर को ही जगत मानना चाहिए। धरती और आकाश इसी में अनुस्यूत हैं। मस्तक मक्का है हृदय मदीना है जिमम नबी या पगम्बर का नाम सदा रहता है, श्वण आस नाक और मुख का क्रमशः जिवराईन मकाईन इसराफील और इज राईल समझना चाहिए। इसी प्रकार अन्य वस्तुओं का शरीर में ही गिनाने हुए कवि ने कहा है—

नाभि कवल तर नारद लिए पाच कोतवार ।

नबो दुवारि फिर निति दसई कर रखवार ॥^१

अर्थात् नाभि कमन (कुडलनी) के पास कौतवाल के रूप में शैतान का पहरा है। वह नबो द्वार पर नित प्रति घमता है और दशम द्वार (ब्रह्म रघ्न) की रक्षा बड़ी मुस्तदा से करता है।

उपयुक्त विवेचन से स्पष्ट है कि कवि ने विश्व-यात्री ईश्वर तत्व को घट घट में समाया हुआ माना है। उसकी मायता है कि बाह्य सृष्टि मानव शरीर में भी विनिर्मित है। ब्रह्म की साधना के लिए तीर्थादि में जाने की आवश्यकता नहीं है सब कुछ काया नगरी में ही स्थित है जो कुछ पिंड सो ब्रह्म ढ।

२—जीव ब्रह्म — जायसी का कथन है कि ब्रह्म से ही यह समस्त सृष्टि आपूरित है — चौख मुवन पूरि सब रहा^२। उसने ही इस समस्त सृष्टि की सजना की है^३। वस्तुतः जीव बीज रूप में ब्रह्म में ही था। ब्रह्म से ही अगारह सहस्र जीव योनियों की उत्पत्ति हुई है^४। वस्तुतः वही सब कुछ वर्ता है जीव बुद्ध करता धरता नहीं —

व सब किछु करता किछु नाही। जम चन मेघ परिछाही ॥

परगट गुपुत विचारि सो बूझा। सा तजि दूमर और न सूझा ॥^५

जीव पहले शरीर में अभिन्न था बाद में उनका विद्योह हो गया। जीव में ब्रह्म में मिलने की जो पीर और तड़पन है उसका कारण यही विद्योह है —

हूता जो एकटि सग हौं तुम्ह काहे बीछरा ?

अब जिउ उठ तरण मुहम्मद कहा न जाइ कछु ॥^६

ईश्वर का कुछ अश घट घट में समाया है —

सोई अस घट घट मेला। जो सोई बरत-बरत हाइ मना ॥

१—जा० प्र० ना० प्र० सभा प ३१०। २—वही प० ३०३।

३—वही (जेद सब खेल रचा दुनियाई)।

४—वही (एक अकेन न दुमर जावी। उपजे महम अठारह भागी ॥)

५—वही प० ३०३।

६—जा० प्र०, ना० प्र० सभा प ३०५ (सोरठा ३)।

जायसी ने जीव, ब्रह्म और प्रकृति (सृष्टि) की अभेदता का भी प्रतिपादन किया है। सम्पूर्ण जगत ईश्वर की ही प्रभुता का विकाश है। नाना योनियों में वही परमात्म तत्त्व ही प्रकट हुआ है -

जो उत्तपति उपराज चहा । आपनि प्रभुता आपु सो कहा ॥

रहा जो एक जन गुप्त समुदा । बरसा सहम अठारह बुला ॥^१

ब्रह्म ही इस जगत का बड़ा सजक है। बरतार है, धारण करने वाला और हरण करने वाला भी है -

'तुम करता बड़ मिरजन हारा । हरता धरता मव ससारा ।'^१

इस प्रकार जायसी ने जीव और ब्रह्म के अभेदत्व की स्थापना की है। दोनों में अंतर इतना ही है कि जीव में अत्लाह के अमाल एव जलाल^१ (सौन्दर्य-माधुर्य एव शक्ति प्रताप और ऐश्वर्य पक्ष) का लोप हो जाना है। यह बड़े आश्चर्य की बात है कि एक तूट में समुत्त समाधा हुआ है अर्थात् मनुष्य पिंड के भीतर ही ब्रह्म और समस्त ब्रह्माण्ड है जब अपन भीतर ही ढूँढा तो वह उसी अनंत सत्ता में विलीन हो गया -

कुर्त्त समुत्त समात यह अचरज कासी कहौ ?

जा हेग सो हेरान मुहम्मत्त आपुहि आपु मह ॥

साधक के लिए इसी अभेदता का स्पष्टीकरण करते हुए कवि का कथन है कि जैसे दूध में घी और समुद्र में मोती की स्थिति है वैसे ही वह परम ज्योति भा इसी जगत के भीतर भीतर भासित हो रही है।^१ कवि कहता है कि वस्तुतः एक ही ब्रह्म के वित और अवित दो पक्ष हुए, दोनों के मध्य तेरी अलग सत्ता वहाँ से आई। जीव त्रय अपनी अलग सत्ता व अहंभाव या नम को मिटा देना है तो वह ब्रह्म में मिलकर एव हो जाता है -

एकहि त दुण होइ दुइ सा राज न चरि सक ।

बाचवै आपुहि खोइ मुहम्मत्त एक होइ रह ॥^१

टकार के विलीन में भी जायसी ने जीव ब्रह्म और सृष्टि के वियोग में अपना मत व्यक्त किया है -

ठा - टाबुर उठ आप सोमाई । जहि मिरजा जग अपनिहि नाई ॥

आपुहि आपु जो दख चहा । आपनि प्रभुता आप सो कहा ॥

१-आ० प०, ना० प्र० सर्मा पृ० ३०५।

२-वही पृ० ३०५।

३-वही पृ० ३०८

४-वही पृ० ३०८ (सोरठा)।

५-वही पृ० ३१४।

६-वही पृ० ३१४। (सोरठा १५)।

सब जगत दरपन क लखा । आपुहि दरपन, आपुहि देखा ॥
 आपुहि बन ओ आप पखेरू । आपुहि सीजा, आपु अहेरू ॥
 आपुहि पुहुप फूलि बन फूल । अपुहि भवर वास रस भूले ॥
 आपुहि फन आपुहि रखवारा । आपुहि सो रस चाखनहारा ॥
 आपुहि घट-घट मह मुख चाहे । आपुहि आपन रूप सराहे ॥

आपुहि वागद आपु मसि आपुहि लखनहार ।

आपुहि लिखनी आखर आपुहि पडित अपार ॥'

कवि निखिल सष्टि म उसी एक सत्ता को सप्रसारित पाता है ।

३-साधना-मूलत सूफी साधना प्रम प्रभु की साधना है । विरहानुभूति एवं प्रियतम की प्राप्ति के लिए प्रम-पथ का अवलम्बन इस साधना के केन्द्र है । माधुक अपने भीतर विछुड़े हुए प्रियतम के प्रति प्रम की पीर को जगाता है । पहले जीव-ब्रह्म (बाना-अल्वाह) एक थ । पश्चात् इस अद्वैत या अभेद स्थिति में भेद की निष्पत्ति हुई । अब जीव इस विरह-जय तडपन की स्थिति में है वह पुन अपने विछुड़ हुए प्रियतम से मिलकर अभेदता का आनन्द पाना चाहता है-

'हुता जो एकहि सग हम तुम काहे बीछुरे ।

अब जिउ उठ तरग मुहमद कहा न जाइ किछ ॥'

यह भावतरंग मूलत विछोह की तीव्र अनुभूति से उत्पन्न है । कबीर की ही भांति जायसी ने भी इसे एक महान प्रम भावना और शीश का सौग कहा है-

पर प्रेम के झल पिउ सहु घनि मुख सो करै ।

जो मिर सँती खेल मुहम्मद खेल सो प्रम रस ॥

इस वाया नगरी में ही प्रियतम मिल सकता है हा यह अश्वय है कि उसे खोजने में स्वयं खा जाना चाहिए उनमें खो जाने पर ही पिउ मिनता है-

आपुहि खोइ ओहि जो पावा । सो बीरी मनु लाइ जमावा ॥

जो ओहि हेरत जाइ हेराई । सो पाव अमृतफन खाई ॥

१-जा० प्र० ना० प्र० सभा प० ३१६ ।

२-जा० प्र० ना० प्र० सभा प० ३५ ।

३-जह तो घर है प्रम का साता का घर नाहि ।

सौर उतार भई घर सो पसे घर माहि ॥ कबीर ।

४-जा० प्र० ना० प्र० सभा प० ३०६ ।

५-हेरत हेरत हे सखी रहया कबीर हेराइ । बूद समानी समन म सोकत हेरी जाइ ॥

हेरत हेरत हे सखी गया कबीर हेराइ । समद समाना बूद म सोकत हेरया जाय ॥

-कबीर प्रपावली, प० १७, ३-४ ।

भापुहि खाए पिउ मिलै, पिउ खोए सब जाइ ।

देखहु बूझि विचारि मन लेहु न हरि हिराय ॥^१

प्रियतम की यह खोज साधारण जन व वश की बात नहीं है। काई 'मर जिया' ही उभे पाता है -

बटु है पिउ कर खोज जा पावा सो मरजिया

तहँ नहि हसी न रोज, मुहम्मद एमे ठाव वह ॥^२

गुरु की कृपा से ही शिष्य सम्यक् कर इम प्रम पथ पर चन्ता है। यह पथ भी अजब विकट है - सात खण्ड हैं, चार मीठियाँ हैं अगम्य चढ़ाई है त्रिवेणी (इना पिंगला सुपुम्ना) का पथ है इस पर वही चन्ता है जिम गुरु चन्ताता है जो अपन बल पर चढ़ा वह गिर पड़ा नारद दौडकर सग म हो जाते हैं उस साथ लेकर कुमांग पर चलते हैं धामे फिर तो तेरी के बम की तरह वह निशित्ति फिरता रहता है पर एक पग भी और नहीं बढ़ता^३

या तो जायसी उदारतापूर्वक विधिना तक पहुचन के अनक मागों की स्वीकार करते हैं, फिर भी य मुहम्मद व पथ (स्वर्गीय प्रम पथ या इस्लाम) को श्रद्ध मानते हैं उस माग को जा पाता है वह पार उतर जाता है और जा अ वत्र भूला होता है वह बटपारो द्वारा लूट लिया जाता है -

'विधिना के मारग है तेते । सरग नयत तन रोवा जेते ॥

तेहि मह पथ कहीं भल गाई । जहि दूनी जग धाज बढाई ॥

सो बड पथ मुहम्मद केरा । है निरमन कबिलास वसेरा ॥ -

वह 'मारग' जो पाव सा पहुचे भव पार ।

जो भूला होइ अततहि, तेहि लूटा बटपार ॥^४

जायसी मुहम्मद के पथ को श्रेष्ठ मानने हैं। जायसी ने नमाज, तरीकत हकाकत, मारिफत और शरीअत का इस पथ का महत्वपूर्ण अंग कहा है। इस्लामी सृष्टि रचना की कल्पना से उनका कोई मतभेद नहीं है। कुरान^५ म आत्म को खुदा के रूप रग का कहा गया है। जायसी न भी लिखता है कि उहै रूप आदम अवतरा।^६ आदम के स्वर्ग स निष्कामन की कथा का भी जायसी ने ज्यों का त्या स्वाकार किया है। जायसी ने आदम के अब्लाह से बिछोह के दुख की साधारण जीव के विमोग

१-जा० प्र० ना० प्र० सभा प० ३१६-२० ।

२-जा० प्र०, ना० प्र० सभा प० ३१६-२० ।

३-यही पृ० ३२० (दा दाया जा कह गुरु करई आदि) ।

४-यही पृ० ३२१ ।

५-कुरान शरीफ - (हिंदी) ।

६-जा० प्र० ना० प्र० सभा प० ३०८ ।

का दुःख मान कर इस्लामी कल्पना पर सूफीमत की प्राणप्रतिष्ठा कर दी है। घस्तुत बग्दा और अल्लाह म 'जमाल जलान' के ही अस्तित्व और अनस्तित्व का भेद है। जीव इस ससार में आते ही अल्लाह के जमाल-जलाल से अलग हो जाता है। और इस कारण वह दुःखी होता है—

आँडि जमान जनालहि रोवा। कौन ठाव तें दब बिछोवा ॥

सूफी साधकों ने विवि विहित पथ को स्वीकार किया है। जायसी ने भी अथ सूफी साधकों की भाँति नमाज मक्का मदीना, परिशतो और इमाम में विश्वास प्रकट किया है, किन्तु उनकी पाख्या नवीन प्रकार की है। ये सब कायानिष्ठ हैं अतः उनके मत से इनके लिए हज (तीर्थ यात्रा) और वृच्छ-साधना की आवश्यकता नहीं है।

यद्यपि कायानिष्ठ ब्रह्म की प्राप्ति के लिए चारि बसरे सो चढ सत सा उतर पार वाली सूफी साधकों की विशिष्ट साधना पद्धति है तथापि जायसी ने याग मार्ग की साधना की भी बातें स्वीकार की हैं। उन्होंने स्थान स्थान पर योगियों के पारिभाषिक शब्दों के प्रयोग भी किए हैं। अनहदनाद इला पिगला, सुपुम्ना बङ्गनादि शून्य सहस्रार चक्र, वमन कूडलिनी नौ पौरी दशम द्वार आदि अनेक योगसाधना-ग्रन्थ शब्द अक्षरावट में मिलते हैं।

शून्यवाद-यागमत में शून्य की महत्ता है। विद्वानों का विचार है कि सम्भवतः बौद्ध शून्यवादी सिद्धों के दाय के रूप में उन्होंने इसे प्राप्त किया था। जायसी ने इस 'शून्यवाद' का इस प्रकार निरूपण किया है—

इहै जगत क पुनि यह जप-तप यह साधना ।

जानि पर जेहि सुन, मुहमद सोई सिद्धभा ॥

भा भल सोइ जा सुन्नहि जान । सुनहि तें सब जग पहिचान ॥

सुन्नहि ते है सुन उपाती । सुनहि तें उपजहि बहु भाती ॥

सुन्नहि मांश इन्द्र बरम्हडा । सुनहि ते टीने नवल्लव ।

सुन्नहि ते उपजे सब काई । पुनि बिनाइ सब सुन्नहि हाई ॥

सुन्नहि सात सरग उपाराही । सुनहि सानौ धरति तराही ॥

सुन्नहि ठाट लाग सब एका । जीवहि लाग पिड सगरे का ॥

सुन्नम सुन्नम सब उतिराई । सुनहि मह सब रह समाई ॥

सुन्नहि मह मन हल जस काया मह जीउ ।

काठी भाज आगि जस दूध माह जस पीउ ॥ १

हिंदी में सम्भवतः सर्वप्रथम शून्यवाद की बातें सिद्ध सरहपाद की बानी में मिलती हैं—

‘जहि मण पवण ण सचर’ रवि-ससि णाह पवेस ।
तहि बड । चित्त बिसाम कर सरह कहिउ उएस ॥
आइ ण अन्त ण मज्ज णउ णउ भव णउ णिज्वाग ।
एहु सो परम महासुह, णउ पर णउ अप्पाण ॥’

इस तिलसिल म नागाजुन के शून्यवाद का महत्व है। नागाजुन का शून्यवाद बुद्ध के प्रतीत्यसमुत्पाद का ही तक प्रनिष्ठित एक विवास प्राप्त रूप है। उसने प्रतीत्यसमुत्पादवाद, शून्यवाद और मध्यममार्ग भी कहा है। ‘दार्शनिक दृष्टि से जागतिक पदार्थों को न सत् कह सकते हैं और न असत्। और न उनके विषय में शून्यवाद या उच्छेदवाद की ही स्थापना की जा सकती है।’ न तो हम सत्कारक पदार्थों के कारण से उत्पन्न होने के कारण ऐकात्मिक असत् कह सकते हैं और सापेक्ष होने के कारण उन्हें ऐकात्मिक सत् भी नहीं कह सकते।’

‘शून्यमिति न वस्तुमय अशून्यमिति एव च ।’

नागाजुन ने तो यहाँ तक कहा है कि तत्व जमा है वसा उबका वणन करना असंभव है। वह शून्य है। शून्य से ही समस्त पदार्थों की निष्पत्ति हुई है अन्त में वे शून्य में ही लीन भी हो जाते हैं। इस शून्य रूप की अनिवचनीय सत्ता की अनुभूति होने के ही कारण बुद्ध तथागत हैं। समस्त दृश्य वस्तुएँ (पदार्थ) भी शून्य हैं। यह शरीर भी शून्य है। मही शून्यवाद नाथपन्थी योगियों के माध्यम से कबीर आदि निगुनियों सन्तों और जायसी आदि सूफियों को प्राप्त हुआ है। भवर गुफा, शहराध्व-दशम-द्वार, अनाहतनाद इला पिंगला-सुषुम्ना आदि शून्यवादी शब्द इन तीनों मतवालों में एक ही प्रकार से प्रयुक्त मिल जाते हैं। जायसी ने शून्यवाद का जो महत्व प्रतिपादन किया है उसके मूल में भारतीय-योग साधना है। उन्होंने अक्षरावट में नाथों और योगियों की साधना-पद्धति को स्वीकार कर लिया है। क्या प्राणायाम और क्या आसन ममाधि, क्या इला पिंगला या सुषुम्ना की बात

१-हिंदा के विकास में अपभ्रंश का योग नामवर सिंह परिशिष्ट, पृ० ३२४।

२-मूल माध्यमिक काविका, नागाजुन (चन्द्रकीर्ति की वृत्ति महिम्न २४।१८)

य प्रतीत्यसमुत्पाद शून्यता ता प्रचदमहे ।

सा प्रवृत्तिसंपादाय प्रतिपत्सव मध्यमा ॥

महायान, भग्न शास्त्रिभिक्षु प० १६।

३-ए हिं० इ० कि०, सुरद्रनाथ दाम गुप्त वा० १ प० १४३।

४-मूल माध्यमिक कारिका वृत्ति पंचम प्रकार, पृ० १४५।

५-जा० प्र०, ना० प्र० मभा (अक्षरावट) प० ३३४।

और क्या ब्रह्मरन्त्र की महत्ता क्या अनहदनाद^१ और क्या सोहिम^२ क्या पिंड ब्रह्माण्ड की एकता^३ और क्या इनका सूक्ष्म विवेचन यह सब मूलतः हठयोगियों की साधना का ही प्रभाव है। एक उदाहरण पर्याप्त होगा—

‘तब बठहुह बज्यासन मारी। गहि सुखमना पिगला नारी ॥’

जायसी ने कबीर के विषय में लिखा है कि वे बड़ भारी सिद्ध थे—

ना—नारद तब रोइ पकारा। एक जो नाहै सो म हारा ॥’

कबीर की धारणा पर योग संप्रदाय की गहरी छाप है। जायसी द्वारा कबीर को बड़ा सिद्ध कहना और उनकी महत्ता को स्वीकार करना इस दान की ओर इंगित करता है कि जायसी पर भी योगमन का पर्याप्त प्रभाव पड़ा है।

‘चारि। बसेरे (अवस्थाए)

सूफी मत के साधक की क्रमशः चार अवस्थाएँ^४ कही गई हैं (१) शरीरगत धर्म ग्रन्थों के विधि निषेध का सम्यक् पालन (कमवाण्ड) (२) तरीकत (बाह्य क्रिया कलापा से परे होकर हृदय की शुद्धता द्वारा ईश्वर का ध्यान (उपासना काण्ड) (३) हकीकत (भक्ति और उपासना के द्वारा सत्य का सम्यक् बोध—जिससे साधक तत्व दृष्टि सम्पन्न और त्रिकालीन हो जाता है (ज्ञानवाण्ड) और (४) मारिफत (सिद्धावस्था) —कठिन व्यत्तोपवाम द्वारा साधक की आत्मा का परमात्मा में लीन हो जाना) इस प्रकार साधक ईश्वर की सुंदर प्रथमयी प्रकृति का अनुसरण करता हुआ प्रथमयी हो जाता है।

अबरावट में जायसी ने इन अवस्थाओं का स्पष्ट उल्लेख किया है—

(शरीरगत) कही शरीरगत चिसती पीरू। उधरित असरफ औ जहगीरू ॥

तहि के नाव चढ़ा हौं धाई। देगि समुद जल जिउ न डराई ॥

(तरीकत मारिफत) राह हकीकत पर न चूकी। पठि मारफत मार बुहुकी ॥

साँची राह शरीरगत जेहि बिसवास न होइ।

पाव रख तेहि सीढी निभरम पहुच सोइ ॥

स्पष्ट है कि जायसी सच्चे मुसलमान की भाँति विधि विधान गरज को मानते थे। उनकी शरीरगत पर आस्था थी। इन अवस्थाओं के नाम मात्र के ही ध्यान

१—पही पृ० ३०७, ३१२ ३१६ ३३८।

२—वही पृ० ३०६ (दोहा)।

३—वही पृ० ३२८।

४—वही पृ० ३३१।

५—पद्मावत का काव्य सौंदर्य पृ० १२५।

६—जा० प्र० हिन्दुस्तानी एन्सेक्लोपी पृ० ६६४।

दखरावट म मिलते हैं । वे चागे मुकामा और ताता मुकामा के महार को भी स्वीकार करते हैं—

“खान खड और चार नसना । प्रथम चढ़ाव पथ तिरखेनी ॥
बाँक चढ़ाव मान खर ऊचा । चारि वमेरे आइ पहुँचा ॥”

नैतिक मतवाद एवं आध्यात्मिक वैशिष्ट्य

क्या कबीरदास और क्या सूरदास क्या तुलसीदास और क्या जायसी— वस्तुतः भक्तियुगीन इन सन्तों, भक्ता और सूक्तियों में विचार और भावना की मकीलता नहीं है । यद्यपि वे अपने-अपने धर्म और पथ पर दब है फिर भी वे उन्हें एकात्मिक एकमात्र पथ के रूप में नहीं कहते । वे मत्त और परम सत्ता का किसी मत विशेष में बाधना नहीं चाहते । प्रमाभिन्नाय की प्रेरणा से प्रमा भक्त उम अखंड ज्योतिरूप की किसी न किसी कला से दर्शन के लिए स्रष्टि का योन्म-कोना प्रकाशा है, प्रत्येक मत और सिद्धांत की ओर आध उठाना है और सबके जिधर दखता है उधर उसका कुछ न कुछ आभास पाता है । यही उदार प्रवृत्ति सब सच्च भक्तों की रही है । जायसी की उपानता माधुम्य भाव से प्रमा जीर प्रिय के भाव से है । उनका प्रियतम सनार के परते के भीतर दिया हुआ है । जहा जिस रूप में उसका आभास कोई लिखाता है वहा उसी रूप में दख के गन्ग होने हैं । वे उसे पूणतया श्रय या प्रमय नहीं मानते । उन्हें यही निश्चिद पडता है कि प्रत्येक मत अपनी पहुँच के अनुसार अपने भाग के अनुसार उसका कुछ अंग वणन करता है । किसी सिद्धांत विषय का यह मत या आग्रह कि हीतर ऐया ही है धर्म है । जायसी कहते हैं—

मुनि हस्ती कर नाव अवरन टोवा घाइ क ।

जेइ टोवा जइ टाव मुहम्मद सा तम वर ॥

एकाग्र श्रमिनों' (एकाग्रदर्शियों) का यह श्लोक सबके पहन बुद्ध न दिया था । इसका जायसी ने बड़ी मार्मिकता से अपनी उदार मनोवृत्ति की व्यञ्जना के लिए लिया है । इससे यह स्पष्ट हाता है कि प्रत्येक मत में मत्त का कुछ न कुछ अर्थ रहता है ।

इसी कारण जायसी मुहम्मद' के मत को श्रष्ट मानते हुए भी विधना के अनेक भागों की स्वीकार करते हैं । वे अखरावट में विनी विशिष्ट सिद्धांतवा

१—जा० प्र०, ना० प्र० सभा, प ३०० ।

२—वही प० ३१५ ।

३—जा० प्र०, ना० प्र० सभा, पृ० १५६-५७ ।

म वधना नहीं चाहते। अपनी उत्तर जोर शारग्रहिणी बुद्धि के फलस्वरूप योग उपनिषत् अद्वैतवाद भक्ति इस्लामी एकेश्वरवात् आदि स बहत कुछ ग्रहण करते हैं। उनके लिए वे सभी तत्व ग्राह्य हैं जो प्रेम की पीर उगाने में समय है। अलग अलग पथों की ओर भावनाओं अनेक विचारावृत्तियाँ, अनेक सूक्तियाँ, जायसी की धर्म साधना में मिलकर इतनी एकाकार हो गई हैं कि साधारण बुद्धि समझत हो उठती है। ब्रह्मवाद (अद्वैत) योग (हठ योग चक्रभेद और आनन्दवाद) और इस्लामी-सूफी सिद्धांतों का समावयव जायसी की अपनी विनोदता है।^१ सच्च साधक को इन्द्रियोपभोग से ऊपर उठना आवश्यक है। साधना के माग में नारद तो पथ भ्रष्ट करने के नियम ही ही चंचल मन^२ भी एक प्रबल शत्रु है इसका नियंत्रण साधक के लिए अत्यंत आवश्यक है। खरबट में साधना पथ के कतिपय रूपक (धी रूपक, धन दरपन रूपक और जोलाहा कम रूपक) भी साथ पथी साधकों की शैली के ही अनुरूप लिए गए हैं—

(क) धी रूपक

मा मन मथन र तन खीरु । पुहे साइ जो जाय अनीरु ॥
 पाचौ भूत जातमहि मार । गरन दरब करसो क तार ॥
 मन माठा-सम अरा क धाव । तन सता तहि माह त्रिनाव ॥
 जपह बुद्धि क दुइ सन फेरहु । म्ही चूर अम हिया अभरहु ॥
 पछवा कटुई कसाह फेरहु । आहि जोति मन् जोति अभेरहु ॥
 जस अतपन् सानी फून् । निरमा होइ मया सब दून् ॥
 मखनमूल उठ लेइ जोती । समुन् माह जस डाट बाती ॥

जस घिउ होइ जराद क तम जिउ निरमन होइ ।

महै महरा हरि करि भोग कर सुख साइ ॥^३

गोस्वामी तुलसीदास न भी इसी प्रकार के धन रूपक की भावना का वर्णन किया है—

सात्त्विक श्रद्धा धनु सुहाई । जा हरि कृपा हृदय बस जाई ॥

जस तप धन जम नियम अपारा । ज सुनि कह मुम धम जचारा ॥

तेइ तृन हरित कर तब गाई । भाव बच्य सिमु पाइ पिहाई ॥

१—जायसी डा० रामरतन भटनागर प० १७७

२—चन्दन हि मन कण प्रमथि बलवत्तरम

तस्माह निग्रह मय वायोरिव मुत्पत्तरम

अभ्यासेन तु कौन्तेय वरायण च युज्यते । श्री मत्भागवदगीता ।

३—जा० प्र०, ना० प्र० सभा, पृ० ३२४ २५ ।

नाइ निवति पात्र विस्वामा । निमल मन अहीर निज दासा ॥
 परम धममय पय दुहि भाई । अबट अनल अकाम बनाइ ॥
 तोप मस्त तब क्षमा जुडाव । घत सम जावुन दह जमाव ॥
 मुदिता मय बिचारि मधानी । दम अधार रजु सत्य सुधानी ॥
 तब यधि काँरे लेइ तवनीवा । विमल विराग सुमन सुपुनीवा ॥
 जोग अगिनि वरि प्रगट तब कम सुभामुभ लाइ ।
 बुद्धि सिराव ग्यान घन समता मल जरि जाइ ॥^१

(२) दीपक-रूपक

दीपक जस बरत हिय आरे । सब घर ठजियर तेहि उजियारे ॥
 तेहि मह अस समानउ आइ । सुन्न सहज मिलि जाव जाई ॥
 तहा उठ धुनि आपकारा । अनहूद सबद होइ क्षनकारा ॥

सुनहु बचन एक मोर दापक जस आरे बर ।
 सब घर होइ अजार मुहमद तस जिउ हीय मह ॥^१

एँ विधि लसेँ दीप तज रासि विग्यान मय ।
 जानहि जासु समीप जरसि मदादिक सलभ मय ॥

साहमतिम इनि वति अलडा । दीपसिवा साइ परम प्रचडा ॥
 जातम अनुभव सुख सुप्रवाना । तब भव मूल भेद भम नासा ॥
 प्रयन अविद्या कर परिवारा । मोह आदि तम मिट् अपारा ॥
 तत्र आइ बुद्धि पाइ उजियारा । उर गह वठि यत्रि निरआग ॥
 छोरन ग्रथि पाव जौ सोई । नब यह जाव कृतारथ हाई ॥

—रामचरितमानस उत्तरकांड ।

जीर (३) जालाहा-रूपक

प्रमत्तनु निल ताना तनई । जप तप साधि मकरा भरई ॥
 नरब गरब सत्र देइ विधानी । गनि साधा सब लहि मभारी ॥—
 सूत-सूत मौ क्या मजाई । सीझा काम बिनत सिधि पाई ॥

भर सासि जब नाव नरी । निसर छूछी पठ भरी ।
 साइ-ना क नरी चलाई । इतलिनाह क दारि चढाई ॥^१

१-रामचरितमानस गो० तुलसीदास (उत्तरकाण्ड), दाहा ।

२-जा० प्र० ना० प्र० सभा पृ० ३२५ ।

३-जा० प्र०, ना० प्र० सभा, काशी, पृ० ३३२ (४३।४४) ।

हम घर भूत तनहि नित ताना ॥'

इ गला पिगला ताना भरनी सुखमन तार से बीनी चदरिया ॥

बीनी झीनी बीनी चदरिया ।

—बबीरनास ।

इन उदाहरणों के प्रकाश में स्पष्ट हो जाता है कि मध्ययुगीन भक्तों के भावों में एक अदभुत साम्य है और यह यथार्थिक एकता आश्चर्यजनक नहीं है। यह उस समय के विद्वानों साधकों योगियों और सत्ता में समान रूप से पाई जाती है। इन साधकों ने धर्म और शांति से बहुत ऊपर उठकर परम सत्ता के साक्षात्कार की बातें स्पष्ट की हैं। इन बातों में अनंत शांति और शाश्वत सत्य का निर्देश मिलता है।

'अखरावट के जाघार पर जायसी के आध्यात्मिक विचारों को संक्षेप में इस प्रकार रखा जा सकता है—

(१) सृष्टि के आन्विकाल में एक गासाई था उसे चित्तता नूर सुध भी कहा जा सकता है। उसने ही यह सिद्धायुक्त सृष्टि उत्पन्न की है।

(२) जीव और ब्रह्म में अभेद या कित्तु नारद के बहकाने के कारण जीव की अभेदता समाप्त हो गई वह स्वर्ग से बहिष्कृत हुआ और ईश्वर के जमाल जलाल से वंचित हुआ। वस्तुतः जीव में जो प्रेम विरह की तड़पन है वह इसी विषय के ही कारण है। वह इसी तड़पन और प्रेम पीर की साधना से पुनः ईश्वर के जमान जलाल की अधिपति चाहता है। जीव जब अल्लाह को पुनः पा लेगा तो यह अभेदता मिट जायगी।

(३) मन का परिष्कार इसके लिए एक मुख्य साधन है। मात्र मन के परिष्कार से ही सब कष्ट नहीं होता। साधकों को कतिपय विशिष्ट साधनाओं की भी आवश्यकता पड़ती है। जायसी विधिना के अनेक मार्गों को स्वीकार करते हैं फिर भी इस्लाम को सर्वोपरि मानते हैं। यद्यपि उन्होंने इस्लाम पर्य पर सूफी साधना का रंग चला दिया है।

जायसी का सूफी पर्य सूफी मत को उनकी अपनी देन है। इस्लाम न केवल शास्त्रीय सूफी सिद्धांत है और न भावनात्मक रहस्यवादिता। नमाज तरीकत मारिफत, हकीकत और शरीअत इस्लामी साधना के विधि विधान हैं। जायसी ने इनकी नवीन व्याख्या प्रस्तुत की है। जायसी यागियों की ही भांति कायानिष्ठ ब्रह्म की साधना को अत्यंत आवश्यक मानते हैं—'जो कछु पिठ सो ब्रह्मण्ड उनकी साधना का एक मूल मंत्र है। त्रिकटी चक्रभेद इला पिगला सुपम्ना, नौपीरी, दशम द्वार ब्रह्मरंध्र प्रभृति योगिक साधनाओं द्वारा उसे प्राप्त किया जा

सकता है। हृदय मन की शुद्धता के साथ ही साधक को नित्य आचरण की भी आवश्यकता है। साधक के लिए सर्वश्रेष्ठ साधना है प्रेम पीर की साधना—वस्तुतः इसी के माध्यम से जीव ब्रह्म की परम-योति साक्षात्कार करता है।

(४) यह सबविदित है कि जायसी ने प्रेम की पीर को सर्वाधिक महत्व दिया है। सूफ़ी साधक एकमात्र प्रेम का ही मानता है। पदमावन में तो प्रेमपीर ही काव्य का विषय है—पदमावत की कहानी प्रेमपीर की ही कहानी है।

इस साधना कक्ष में गुरु का बड़ा महत्व है। वही विरक्त का प्रदीप्त करता है। उस 'चिन्ता को सुलगाने का काम ता चला का है। इस दुःखमय पर साधक को अकेले ही चरना पड़ता है—

कठिन खेल औ मारग सकरा । बहुत-हू खाइ फिरे गिर टकरा ॥

मरल खेल देखा जो हूमा । होइ पतग दीपक मह घसा ॥

तन पतग भिरग क नाई । सिद्ध होइ सो जुग जुग ताई ॥

बिनु जिउ लिए न पाव कोई । जो मरजिया अमर भा साई ॥

जायसी ने अपनी समय तूलिका में प्रेम-मय के साधक का एक अलग-अलग जीवन चित्र दिया है—

प्रेम तत्तु तस लाग रहू, करहु ध्यान बित बाधि ।

पारधि जस अहेर वह, वाम रहे सर साधि ॥

'यह प्रेम की एक लज्जत साधना ही रूप-रूप में रत्नमन की पदमावती प्राप्ति की कहानी बन गई है।

(५) जायसी दर्शन के क्षेत्र में जीव, ब्रह्म और प्रकृति को तत्त्वतः एक मानते हैं। जहाँ-वहाँ वे प्रकृति को 'उसकी छाया कहते हैं वहाँ प्रनिबिम्बवान् की झलक आ गई है। जो अन्तर है वह माया के कारण नहीं है, शीतान की बग्नी है। शीतान के ही भुलावे में जाकर जीव अपने जतात और जमान का भूत गया है। इसी से उमके, अल्लाह के और प्रकृति के बीच में परदा पड़ गया है।

जायसी ने मूलतः अद्वैतवाद के आधार पर ही अपने अध्यात्म जगत का निमाण किया है—

'अस वह निरमल घरति अवासा । जम मिली फूल मह वासा ॥

सब ठाँव औस सब परलारा । ना वह मिना, न रहै निनारा ॥

ओहि जोनि परछाहीं नबी खण्ड उजियार ।

सृज खद क गोती, उन्ति अह ससार ॥'

जायसी जीव और ब्रह्म के बीच में माया की सत्स्थिति का स्वीकार नहीं करते। अक्षरावट में एक स्थान पर माया का उल्लेख अवश्य है परन्तु शक्य अद्वैत के

अर्थों में नहीं। सूफियों के एक प्रधान गण का मत है कि नित्य पारमार्थिक सत्ता एक ही है। इस दृश्यमान अनेकत्व के बीच उसी का ही आभास मिलता है। यह नाम रूपात्मक दृश्य जगत उसी एक मत की बाह्य अभिव्यक्ति है। परमात्मा का बोध इही नामों और गुणों के द्वारा हो सकता है। इसी बात को ध्यान में रखकर जायसी ने कहा है —

दीह रतन विधि चार नन बन सरवन मुख ।

पुनि जब भेटिहि मारि मुहमद तब पछिताव मैं ॥

इस परम सत्ता के दो स्वरूप हैं — नित्यत्व और अनन्तत्व दो गण हैं — जनकत्व और जयत्व। शुद्ध सत्ता में न तो नाम है न गुण। जब वह निर्विगेपत्व या निगुणत्व से त्रमश अभिव्यक्ति के क्षेत्र में आती है तब उन पर नाम और गुण लगे प्रतीत होते हैं। इही नाम-रूपा और गुणों की समष्टि का नाम जगत है। सत्ता और गुण दोनों मूल में जाकर एक ही हैं। दृश्यजगत भ्रम नहीं है उस परम सत्ता की आत्माभिव्यक्ति या अपर रूप में उसका अस्तित्व है। वेदान्त की भाषा में यह ब्रह्म का ही कनिष्ठ स्वरूप है। हत्लाज के मत की अपेक्षा यह मत वेदान्त के अद्वैत के अधिक निकट है। मूल-अमूल सबका उस ब्रह्म का यत्क-अयत्क स्वरूप मानने वाले जायसी यदि उस ब्रह्म की भावना अनन्त सौंदर्य और अनन्त गुणों से सम्पन्न प्रियतम के रूप में करें तो उनके सिद्धांत में कोई विरोध नहीं आ सकता। उपनिषदों में भी उपासना के लिए ब्रह्म की सगुण भावना की गई है। जायसी सूफियों के अद्वैतवाद तक ही नहीं रहे हैं वेदान्त के अद्वैतवाद तक भी पहुँचे हैं। भारतीय मत मतांतरों की उनमें अधिक झगक है।^१

सूफी साधक भी अह ब्रह्मास्मि की ही भांति अनन्तक का प्रतिपादन करते हैं और इस प्रकार वे ब्रह्म की एकता और अपरिच्छन्नता का भी प्रतिपादन करते हैं। जीव और ब्रह्म की अद्वैत स्थिति का एक बड़ा बाधक तत्व अहकार है। अहकार के कुहासे के फटते-छूटते ही इस ज्ञान का उदय हो जाता है कि सब मैं ही हूँ मुझसे अलग कुछ नहीं है। जायसी सोऽहम की अनुभूति को इस प्रकार स्पष्ट करते हैं —

(अहकार)

हैं — हों कहत सब मति खेई । जो तू नाहि आहि सब कोई ॥

आपुहि गुरु सो आपुहि चेला । आपुहि सब और आपु अकेला ॥

(सोऽहम्)

सोह सोह बसि जो करई । जो बूझ सो धीरज धरई ॥

जीव ईश्वर की एकता के साथ ही जायसी जगत को ब्रह्म से अलग नहीं

मानते । जगत की जो सत्ता प्रतीत हो रही है यह तो अवभास या छाया मात्र है, पारमार्थिक नहीं -

जब चीहा तब और न कोई । तन मन जिउ, जीवन सब सोई ॥

हो - हो कहत घोख पतराही । जब भा सिद्ध कहा परछाहा ?

स्पष्ट है कि जो नाम रूपात्मक दृश्यमान जगत है वह न तो ब्रह्म का वास्तव स्वरूप ही है और न ब्रह्म का काय या परिणाम ही है । वह है केवल अध्यास या ध्यातिज्ञान । उसकी कोई अनग सत्ता नहीं है । नित्य तत्त्व ब्रह्म एक ही है ।^१

'प्रतिबिम्बवाद की ओर जायसी न पदमावत म वड ही अनूठे ढग स सकेत किया है -

सरग आइ घरती नह छावा । रहा धरति प धरत न आवा ॥

'स्वर्गीय अमल-तत्व धरती म ही टाया हुआ है, पर पकड म नहीं आता । इस भाव को कवि ने अखरावत म अधिक स्पष्ट रूप म प्रकट किया है -

आपुहि आप जो देख चहा । आपनि प्रभुना आपु सी कहा ॥

सब जगत दरपन क नखा । आपुहि दरपन आपुहि देखा ॥

आपुहि बन और आपु पखरू । आपुहि सौजा आप अहेरू ॥

आपुहि पुहुप फूलि बन फूल । आपुहि भवर बास रस भूल ॥

आपुहि घट घट मह मुख चाहे । आपुहि आपन रूप सराहै ॥

दरपन शानक हाथ मस देखै दूसर गन ।

तस भा दुड एक माय मुहमद एक जानिग ॥

'आपुहि दरपन आपुहि देखा स दृश्य और द्रष्टा, चय और ज्ञाता का एक दूसरे से अनग न हाना सूचित होता है । इसी अर्थ का लेकर वेदांत म यह कहा जाता है कि 'वि ब्रह्म जगत का केवल निमित्त कारण ही नहीं उपादान कारण भी है । 'आपुहि आप जो देख चहा का मतलब यह है कि जब अपनी ही शक्ति का लीला विस्तार देखना चाहा । शक्ति या माया ब्रह्म ही की है । ब्रह्म स पृथक् उसका कोई अस्तित्व नहीं । 'आपुहि घट घट मह मुख चाहे । अर्थात् प्रत्येक शरीर म जो बुद्ध सौंदर्य दिखाई पड़ता है वह उसी का है । किस प्रकार एक ही अखण्ड सत्ता के अलग-अलग अनेक प्रतिबिम्ब दिखाई पड़ते हैं यह बनाने के लिए जायसी यह पुराना उदाहरण देत हैं -

गगरी सहस पचास जो कोठ पानी भरि घर ॥

सूरुज दिप अकास मुहमद सब मह देखिए ॥^१

१-जा० प्र० ना० प्र० सभा भूमिका प० १८७ ।

२-जा० प्र० ना० प्र० सभा, प० १४७-४८

अखरावट म जायसी न उदारतापूर्वक इस्लामी भावनाओं के साथ भारतीय हिंदू भावनाओं के सामञ्जस्य का प्रयत्न किया है। स्पष्ट है कि वह इस्लाम पर पूरा आस्था रखते हैं किंतु उनकी यह इस्लाम भावना सूफी मत की नवीन 'याख्याओं' से सबलित है योगमत के योगाचार विधानों से मण्डित है और हिंदू मुस्लिम दोनों एक ब्रह्म की ही सतान हैं की भावना से अलंकृत है। ब्रह्मा विष्णु और महेश के उल्लेख प्रसंग वश अलिफ एक अल्ता वड मोई केवन एक स्थान पर अल्लाह का नामोल्लेख कराने के लिये कुरान और पुरान के नामोल्लेख स्वर्ग या विहित के लिए सबत्र कलाश या कबिनाम के प्रयोग अह ब्रह्मास्मि या जनलहक के लिये सो ह का प्रयोग इ नीस या शैतान के स्थान पर नारद का उल्लेख योग साधना के विविध ध्यान प्रभृति बात इस बात की ओर इंगित करती है कि जायसी हिंदू मुस्लिम भावनाओं में एकत्व को नष्ट न रखते हुए समवय एव सामञ्जस्य का प्रयत्न करते हैं। महात्मा कबीर ने भी इस दिशा में प्रयत्न किया था। कबीर ने बड़ी ही नापरवाही और अक्खडता से इसी सामञ्जस्य भावना की ओर इंगित किया था जो तू तुख तुखनी जाया। आन बाट होइ काहे न आया ॥ (कबीर) और जायसी ने भी हिंदू मुसलमानों की एकता के विषय में अत्यंत नम्रता पूर्वक कहा—

तिह सतति उपराजा भातिह भाति कलीन ॥

हिंदू तुख दुवो भए अपने अपने दीन ॥

मातु क रक्त पिता क बिंदू। अपने दुवो तुख जो हिंदू ॥^६

जायसी की यह सामाञ्जस्य भावना उनमें उदार मानवतावादी दृष्टिकोण की परिचायिका है—

आखिरी कताम

हस्तलिखित प्रतिया और सम्पादन

सबप्रथम आखिरी कताम का प्रकाशन फारसी त्रिपि में हुआ था। यह बहुत पुरानी छपी हुई थी सयद कल्बे मुस्तफा साहब के परिश्रम के परिणाम स्वरूप

१—जा० प्र० ना प्र० सभा (अखरावट) प० ३०४।

२—वही, प० ३३०।

३—वही प० ३२१ ३३०।

४—वही, प० ३०७।

५—वही प० ३१२ ३२८।

६—वही प० ३०५-३२ (इवनीस) ३३१ (ना नारद तब रोद पुकारा)।

७—वही प० ३०८।

८—वही प० ३१३।

९—जा० प्र०, ना० प्र० सभा (वत्तव्य द्वितीय संस्करण, प० १)।

दस नियामतुल्लाह साहब की कृपा से यह पुस्तक प्राप्त हुई और जायसी ग्रन्थावली के तृतीय संस्करण में (१९३५ ई०) प्रकाशित होकर हिन्दी जगत के समक्ष आई।

डा० माताप्रसाद गुप्त ने जायसी ग्रन्थावली के संस्करण में लिखा है कि उन्होंने अपने सम्पादन में आखिरी क्लाम का भी पाठ गुप्तजी के संस्करण का ही रखा है। 'उमरी एक लीयो प्रति लखनऊ के श्री सयत कत्वे मुस्तफा जायसी से मिल गई। श्री कवे मुस्तफा जायसी का कथन था कि इसी प्रति से गुप्तजी ने भी उसका पाठ अपने संस्करण में लिया था। गुप्तजी का पाठ जो इस प्रति के पाठ से मिलाने पर यह बात ठीक पात हुई किन्तु इस प्रति में प्रायः प्रत्येक पंक्ति में एक से अधिक व्यक्तियाँ द्वारा किए गये मशावन भाँ हैं जिनका आधार मशोधकों की कल्पना के अनिश्चित कदाचित्त और कुछ नहीं है। गुप्तजी ने अविश्वर सशोधनों को स्वीकार करते हुए और अपनी ओर से भी कुछ संपादन करते हुए रचना का पाठ अपने संस्करण में लिया है।'

निर्माण काल

जायसी नीस वष की आयु में काव्य रचना करने लग थे। आखिरी क्लाम का निर्माण उन्होंने १५३२ ई० (९४२ हि०) में किया। उमर पहिले बादशाह बाबर दिल्ली की गद्दी पर बैठ चुके थे जिसका उल्लेख कवि ने किया है—

बाबर साह छत्रपति राजा । राजपाट उन कह विनि साजा ॥
मुनुक मुलमा कर ओहि दीहा । अदल दुनी ऊमर जस कीहा ॥
अती केर जस कीहेसि खाडा । लाहंसि जगत ममुद भरि डाडा ॥
बल हम जाबर जस समारा । नो बरियार उठा तेहि मारा ॥
पहलवान नाए सब आगी । रहा न कतहु बाद करवागी ॥'

जायसी ने शाहजहाँ बाबर की जो प्रशंसा की है वह यथायथ है। बाबर ने २१ अप्रैल १५२६ ई० को पानीपत के युद्ध में इब्राहीम लोदी को परास्त करके दिल्ली और आगरे पर अधिकार प्राप्त किया था। १५३० ई० तक बाबर ने सभी प्रतिद्वन्द्वियों का पराजित कर लिया था।'

कुछ लोग का यह अनुमान है कि सम्भवतः जायसी बाबरी दरबार में सम्मिलित हुए हों, क्योंकि उम समय तक मुगल राज्य जायस तक नहीं फैला

१—जायसी ग्रन्थावली (हि० एकेडमी) पृ० ३ ।

२—जा० पृ० ना० प्र० सभा पृ० ३४१-४२ ।

३—ऐन एम्पायर बिल्डर आफ सिक्किमीय सेन्चरी—बिनिमम रजामूक पृ० १३२-३५

४—दि मुगल एम्पायर फ्रॉम बाबर टू औरंगजेब श्री एस० एम० जफर पृ० २१ ।

था। आखिरी कलाम की पक्ति जायस नगर मोर अस्थान प्रकट है कि जायसी इस पक्ति की रचना के समय जायस से भिन्न स्थान पर निवास कर रहे थे और वह स्थान सम्भवतया शाही दरवार या जिसकी प्रशंसा उन्होंने मुकनकण्ठ से की है तथा जिस राजा की दान वीरता को जी खोलकर सराहा है।^१

मसनवी पद्यनि के अनुसार यह शाहनशा की प्रशंसा है। किन्तु किसी सुदृढ प्रमाण के अभाव में यह मानना कठिन है कि वह बाबरी दरवार में निवास कर रहे थे। आखिरी कलाम में ही जायसी ने निर्माग निधि भी दी है—

‘नौ स बरस छतीस जा भए। तब एहि कया क आखर कहे ॥’

अर्थात् यह काव्य १३६ हिजरी में लिखा गया।

आखिरी कलाम की कथा

जायसी ने इस काव्य के प्रारम्भ में मसनवी शैली के अनुसार ईश्वर स्तुति की है। अपने ‘नौ सती’ में अवतार धारण करने का उल्लेख करके उन्होंने भूकम्प और सूर्य ग्रहण का भी उल्लेख किया है। मुहम्मद रसुलि शाहेतकन बाबरशाह की प्रशंसा और सयद अशरफ की बन्दना जायस नगर का परिचय १३६ हिजरी में इस काव्य के प्रणयन के उल्लेखों के पश्चात् कवि ने अत्यन्त हुलसित भाव से प्रलय काल का वर्णन किया है। धरती को आना हुई और उसने द्रव्य उगाना शुरू किया। मार्जारी के सूँघने मात्र से ही लाग मरने लगे। पुन मकाइल का अनुमति मिली। उन्होंने अग्नि की घोर वर्षा की। सारी पृथ्वी जलने लगी। शत शत मन की शिनाए बरसी टूटी। यह क्रम चालीस तिनो तक चला। सत्तार के समस्त जीव जंत इसमें मर गए। जिवर ईल ने इस दृश्य को दस्ता जोर ईश्वर से निवेदन किया कि चलकर देख लीजिए सत्तार में कोई भी जीवित नहीं बना है। मुर्तों के आविषय के कारण धरती की मिट्टी तक नहीं दिखाई देती।

पुन मकाईल नामक फिरफते को बनाकर पृथ्वी पर जल बरसाने की आज्ञा दी गई। चालीस तिनो तक धारासार जल बरसित होती रही। संपूर्ण सत्तार जलमग्न हो गया।

तत्पश्चात् इसराफील को आज्ञा दी गई। उन्होंने सूर (तूय) नाद से सारे

१—मुल्तान पुर गजेटियर भाग ३६ १९०३ प० १३४ (नी मुगल टू इन देयर फस्ट इनबशत डू नाट सी टू हैव टूटुड मुलतानपुर)।

२—आखिरी कलाम — दाहा ८ २४१-४२।

३—जा० प्र० ना० प्र० समा, प० ३४३ (१३।१) डा० मानाप्रसाद गुप्त ने तब एहि कविना आखर, कहे। पाठ दिया है—जा प्र० हि ए० प० ६९१ (१३।१)।

मसार को उड़ा दिया पृथ्वी एवं आकाश बानने लगे, चौथी भुजत घूले की तरह झूलने लगे। उनकी प्रथम फूक से नदी-नाले समतल हो गए। दूसरी फूक पर पहाड़ और समुद्र एक हो गए। बाद सूय तारे सब टूट-टूट कर गिर गए।

इसके पश्चात अजराईल का आज्ञा हर्ष कि समस्त जीवा का न आए। अजराइल ने एक एक करके जिवराइल मराईन और पसरफीन का मार डाला। तब ईश्वर ने उम यम-अजराईन-स पूछा- अब तो कोई नहीं बचा। उसने कहा 'अब मरे और आपका सिवा कोई नहीं बचा। ईश्वर ने अजराईन के भी प्राण ले लिए।

चालीस वर्षों तक ऐकान्तिक जीवन के पश्चात ईश्वर ने मोचा मँते ही यह सम्पूर्ण ससार बनाया है किन्तु अब कोई भेरा नाम लेनवाला भी नहीं है। मैं इन समस्त पड़े हुआ को पुन उठाऊंगा और सरात के पुन पर स चलाऊंगा कौसर म स्नान कराके तीवा को बकुठ म भेज गा।

सबप्रथम चारो फिरिश्ते जीवित किए गए। जिवराइल ने पृथ्वी पर आकर मुहम्मद को पुसारा। लाखो स्वरा ने समवेत भाव म उत्तर दिया। उन्होंने घबडा कर ईश्वर के पाम जाकर निवेदन किया, हे गुसाई मैं उह कहा पाऊ ? धरती पर मरा पुकार न उतर म लाखो स्वर एक साथ गुनाई पाने हैं। मैं किने यहा लाऊ ?

पुन जिवराईन को भेजा गया उन्होंने मुहम्मद का टूट निकाला। वे अपने अनुयायियों के साथ उठ। वे सब नम थ। उन सब के तालू म आखें थी। सब स्वर्ग की ओर दंग रहे थे। एक ओर मुहम्मद दूसरी ओर जिवराईल और बीच म वे सब सब के सब तीम सत्रम कोस लम्बे पुन सरात के अत्यन्त सखरे पय पर चन। पापी पुन के नीचे पीप के सागर म गिर पन्।

ईश्वर की आज्ञा स सूय फिर स द त्पमान हुआ। उमी आज्ञा म समस्त सत्र जीवो का लेखा जाखा हान लगा। सूय तगानार छ मनीन तक चमकता ही रहा और वहा प्रकाश ही प्रकाश-तिन ही दिन रहा। कुछ ताप म यान्कुल जल रहे थे कुछ पिपासा से पीडित हुए जीर जा धर्मी थ उनके गिर पर द्राह थी-उह किसी प्रवार का कण नहीं था। मवा ताल्य पगवर भी क्या थ। मुहम्मद साहब को आज्ञा दी गई कि वे अपने अनुयाइयो को सामन लाए। मुहम्मद ने निवेदन किया कि यदि आपकी आज्ञा हा तो धर्मी जना को पहले ले आऊ। ईश्वर ने कहा कि मैं पहले पापियो को दड देता चाहता हू। जन उह हा न जाआ। पश्चात मुहम्मद साहब ने आदम ईसा ब्राह्मी नूह आदि का एक एक पगवर के पास जाकर उनकी ओर से ईश्वर से विनती करन का कहा। परनु कोई प्रस्तत न हुआ। आत्म न कहा मैं तो स्वय दुख में हू, गेहू खाकर जशट म फम गया हू।' भूसा ने कहा

हे रसूल, मैं फरऊ बादशाह से झगडा करके स्वयं विपत्ति में फसा हूँ । जब किसी ने साथ नहीं किया तो रसूल ने ईश्वर से आकर स्वयं प्रार्थना की । ईश्वर ने श्रोत्रित होकर फातिमा बीबी को बुलवाया । सब न जाखें बाद करना । फातिमा बीबी ने हसन हुसेन को ईश्वर के यहाँ प्रस्तुत करते हुए याय की याचना की । उन्होंने कहा कि यदि मेरा याय न किया गया तो शाप दूँगी और सारा आसमान जल जायगा । ईश्वर ने मुहम्मद से कहा कि यदि वे अपनी बेटी को शाप न करेंगे, तो उनके सब अनुयायी नरक में डाल लिए जाएंगे । फातिमा ने जब देखा कि अय पगम्बर तो अहम हैं और उसके पिता (मुहम्मद) धूम में अपने अनुयायियों के सुख के लिए मारे मारे फिर रहे हैं तो मुहम्मद और उनके अनुयायियों के सकट को देखकर बीबी फातिमा का हृदय पानी पानी हो गया । ईश्वर मुहम्मद साहब पर प्रसन्न हो गए । हसन हुसन को मारने वाले यजीत् को ईश्वर ने नरक में डाल दिया । ईश्वर ने मुहम्मद साहब के कारण सबको क्षमा कर दिया । कौसर के पवित्र जल में सबको स्नान कराया गया । मुहम्मद साहब और उनके अनुयायियों की इस प्रसन्नता के उपलक्ष्य में ईश्वर ने दावत दी । भाति भाति के स्वर्गीय भोजना के पश्चात् सबको शराबुतहूरा (स्वर्गीय शराब) दी गई । स्वर्ग में जाने के पहले मुहम्मद साहब की प्रार्थना पर ईश्वर ने अपने दिव्य स्वरूप के दर्शन दिए ; दर्शन की मूर्च्छना में सब तीन दिन तक मूर्च्छित पड़ रहे । जिवराईल ने सबको जगाया और दिव्य वस्त्र पहन कर सब स्वर्ग में गए । स्वर्ग में सबके लिए आनन्द और हूँ प्रस्तुत थी ।

इस काव्य का अन्त जायसी ने स्वर्ग के अनन्त विलास और अनन्त आनन्द के वर्णन के साथ किया है । स्वर्ग में न नीद है न मृत्यु न दुःख है न शक्ति, सबत्र आनन्द ही आनन्द है—

नित पिरित नित नित नव नेहू । नित उठि चौगुन होइ सनेहू ॥

तहा न भीचु न नीद दुख रह न देह मह रोग ।

सदा अनन्द मुहम्मद सब सुख मान भोग ॥

—ज० प्र० प० ३६१ दोहा ६० ।

नाम

जब कि जायसी ने इस ग्रंथ के प्रारम्भ में शाहेनशान बाबर शाह की प्रशस्ति की है तब नवस छनीस जब भए । तब एहि क्या क आखर कहे ॥ प्रभति पत्निया निखी हैं । तब भी हिदी के नामी गरामी कई लोगा न आनोचक बाने के जोश में यह मान ही लिया है कि यह जायसी का आखिरी कवनाम है अर्थात् 'अंतिम रचना है ।

वस्तुतः ऐसा कहने का एतद्विद्वाना के पास कोई आधार नहीं है । कई लोगों ने तो आखिरनामा य आखिरियत नामा को ही अधिक समीचीन नाम माना है और

कहा है कि "लेखक की असावधानी से किंवा जनश्रुति व आधार पर परिवर्तित नाम 'आखिरी कलाम' प्रसिद्ध हो गया है। ग्रंथ के वष्य विषय के विचार से भी आखिरनामा बहुत ही उपयुक्त जचता है।^१ कुछ लोग का 'आखिरी कलाम का शब्द' अथ ठीक बठता दिखाई नहीं देता^२ कौन-सा नाम अधिक समीचीन है कौन सा नाम किसी आलोचक को अधिक जचता है और लेखक (जायसी या प्रतिलिखिकार) की असावधानी से नाम आखिरी कलाम हो गया हो, ऐसी कल्पनाएँ उचित नहीं हैं। वस्तुतः यह प्रलय (आखिरी समय) के वणन स सम्बद्ध जायसा का कलाम है।^३ यह कहना कि जायसा के अथ काव्यों के अनुकरण पर इसका भी नाम आखिरीनामा होना चाहिए,^४ यह प्रस्ताव ही असंगत है। स्पष्ट है कि इस ग्रंथ में सष्टि के अन्तिम दशक का वणन हान से अन्तिम वणन का काव्य अर्थात् 'आखिरी कलाम' नाम देना ही जायसी ने उचित समझा था। यह कहना कि यह नाम निस्सन्देह नाम की शिथिलता, अपरिपक्व विचारधारा आदि का द्योतक है,^५ कवि के प्रति अयाय है। क्योंकि आज तक के प्राप्त उल्लेख, परंपराया, ग्रंथनामा और हस्तलेखों में सब 'आखिरी कलाम' ही नाम मिलना है और इस नाम में कोई भी अपरिपक्वता नहीं है। इस नाम में वष्य-वस्तु का पूण इ गित है यह नाम पूणन कलात्मक और कवित्वपूण है अथवत्ता और य जचता भी इस नाम में दर्शनीय है और इस नाम में एक दर्शन का कमाल भा है।

कलाम स 'युत्पन्न कलाम पाक कलाम मजीद कलामुल्ला' प्रभति शब्दों का विशिष्ट अर्थ कुरान से लगाया जाता है। कुरान का इस्लाम में आखिरी कलाम भी कहा जाता है। कुरान में अन्तिम रसूल पर अल्लाह की कपाया और नियामतों का उल्लेख है। प्रलयकाल का पूण विवरण भी दिया हुआ है। जायसी ने अपने 'आखिरी कलाम' का इस्लाम के आखिरी कलाम (कुरान) व ही अनुकरण पर बनाया है। प्रलय और अन्तिम याय के दशक पूणत इस्लाम-नम्नन है। यह अवश्य है कि प्रस्तुत काव्य में मुहम्मद साहब की महत्ता का मुख्य रूप में प्रतिपादन किया गया है। कुरान और प्रस्तुत ग्रंथ आखिरी कलाम दोनों के प्रलय वणन आदि एक स हैं। इस्लाम मजहब के अनुयायियों के लिए जायसी ने मुहम्मद साहब के प्रति

१-मूफी महाकवि जायसा डा० जयदेव पृ० ६२ ६३।

२-म० मु० जायसी डा० कमल कुल श्रेष्ठ, पृ० ४६।

३-आदर्श हिंदी शब्दकोश रामचंद्र पाठक पृ० १८६ (कलाम वचन कथन, वक्तव्य वातचीत) तथा हिन्दुस्तानी ग्लिस डिक्शनरी (कलाम वक्तव्य साहित्यिक कति अथवा आपत्ति)।

४-मूफी महाकवि जायसी डा० जयदेव, पृ० ६४।

जिस भक्ति और आस्था विश्वास का प्रतिफल न प्रस्तुत काव्य में किया है वह उम्ह आखिरी कलाम के समक्ष ही प्रतीत हुआ था और यही कारण है कि जनता के विश्वास और महम्मद साहब के प्रति आस्था का दबतर करने के लिए जायसी ने आखिरी कलाम नाम ही अत्यन्त उपयुक्त समझा था।

पीर महिमा

‘आखिरी कलाम में लगता है कि कवि बिन गुरु ज्ञान मिलत नाही का समर्थक हो चुका है। पीर की महत्ता पर उसकी पूर्ण आस्था है। सयद अशरफ उसके प्यारे पीर है। पीर के द्वार की सेवा (मरीदी) से ही मनवाञ्छित फल की प्राप्ति हो सकती है —

मानिक एक पाएउ उजियारा । सयद अशरफ पीर पियारा ॥
जहागीर चिस्ती निरमरा । कल जग मह दीपक विधि धरा ॥
समुत् माह जो बाहति फिरई । तेत नाव सौह होइ तरई ॥
तिह घर ही मुरीद सो पीरू । सवरत बिनु गुरु लावत तीरू ॥
जो अस पुरपहि मन चित नाव । रूच्छा पूज आस तुलाव ॥
जो चालिम दिन सेव वार बुहार कोइ ।
दरसन होइ महम्मद पाप जाइ सब धोइ ॥ १

प्रस्तुत पक्तियों में जो अस — — तलाव विषय द्रष्टव्य है। अनेक लोग सयद अशरफ जहागीर को भी जायसी का गुरु मानते हैं। गुरु परम्परा के सिलसिले में स्पष्ट किया जा चुका है कि जायसी के जन्म के बहुत पहले ही सयद अशरफ की मृत्यु हो चुकी थी। वे तो स्पष्ट रूप में जायसी के पूज्य पीर थे जिनका मनचित से ध्यान लाने मात्र से ही रूच्छाए पुण हो जाती हैं।

आखिरी कलाम में कुल मिलाकर ४२० अर्द्धालिया और ६ दोहे हैं। वास्तव में आखिरी कलाम कवि की अग्रोत् रचना है। कवि न कुरान में आखिरी दिन का जो वणन पढ़ा था उस स्वात सुखाय और बहुजन हिताय आखिरी कलाम में दाहे चौपाई और सहज अबधी भाषा के माध्यम से कह दिया है। इस प्रकार हिन्दू और मुसलमान—द्वाना के लिए आखिरी कलाम सुनभ हो गया।

शिया विचारधारा

कहा जा चुका है कि प्रलय (क्यामत) के दिन का वणन कुरान-सम्मत है। सूफी मत विशय रूप से शिया मुसलमानों में प्रिय रहा है। यहाँ पर फातिमा—पुत्र

हमन हुमेन की मयु के लिए मुहम्मद माहब के अनुयायिया की गुनहगार ठहराया गया है। रसूल के आग्रह पर और बीबी फातिमा का वृषा पर उह क्षमा भिन गई है। यजीद का सजा भिनी है। मूलत यह शिया-शखा की विचारधारा है। इसीलिए गता है कि जायसी शिया थे या शिया सम्प्रदाय की ओर उनका शुकव था।

इस्लामी धम-दशन

आखिरी कनाम की कथा ही इस्लामी मजहब के हथ (प्रलय) तिन का कथा है। प्राय सभी सामी मता म ईश्वर को एक कठार शासक के रूप म माना गया है। सबत्र उसक जातक और प्रकाप की ही प्रधानता है। इस काव्य म जायसी न लिखा है, जब सूय चद्र प्रभनि सबका को ग्रहणात्ति का नाम भिनता है ता जन सामान्य की कथा दान ?—

तकह अँसा तरामै, जो मेवक अम नित ।

अवहु न डरसि मुहम्मद काह रहमि तिहचित्त ॥

जा० प्र० ना० प्र० सभा पृ० ३४० ।

उसने ही धरता गिरि भरु पहाड स्वग सूय चाद तार और अठारह महस्र योनिया को बनाया है जो जीवन म उसका नाम नहा सेता उस वह तक म डाल देता है—

“सहस्र अठारह दुनिया सिर । आवत जात जातना करै ॥

जेइ नहि लीह जनम मह नाऊ । सहि अह कीह नरक मह ठाऊ ॥

सो अम दउ न राग्या जेइ कारन सब की ॥

दहै तुम काह मुहम्मद एहि पृथवी चित दीह ॥ १

ईश्वर का उसकी आज्ञा का उल्लंघन पूषन अमहा है—

आपसु इवलीसहु जो टारा । नारद होइ नरक मह पारा ॥”

उसने फरऊ बादशाह का धोर नरक दिया है। शताद न विहिषन के नमूने पर अपना स्वग बनवाया था। ईश्वर न उस द्वार क अदर पत्तन ही मार डाला—

‘ जो शदाद बकुष्ठ सवारा । पठत पोर बीच गहि मारा ।

जा ठाकुर अस दाफन सबक तइ निरदोख ।

माया कर मुदम्मद तौ प होइहि मास ॥ १

इवलीस न ईश्वर से प्रतिद्व द्विता की। उसन आदम को वहका कर गहूँ खिता

१-जा० प्र०, ना० प्र० सभा पृ० २४१ (७) ।

२-वही ।

३- वही ।

दिया । ईश्वर सत्कार का कर्ता पालक और सहारक है—

‘ भजन गढ़न सवारन, जिन खेला सब खेन ।

सब कह टारि मुहम्मद अब होइ रहा अकेल ॥ ’

उसने सपूर्ण सृष्टि का उद्भव और विकास मुहम्मद साहब की प्रीति के लिए ही किया है—

‘ जेहि हित सिरजा सात समुदा । सातहुदीप भए एक बुदा ।

नर पर चौह भुवन उसारे । बिच बिच खड बिखड सवारे ॥

सो अस दउ न राखा जेहि कारन सब कीह ।

तुम तह एता सिरजा आप क अतर हेद ।

देखहु दरस मुहम्मद आपनि उमत समेत ॥ ’

जायसी ने ‘पुले—सिलवान एव कौसर—स्तान का उल्लेख किया है—

पुल सिलवात पुनि होइ अमरा । लखा ने अब (उमत ?) सबवेरा ॥ ’

आखिरी कलाम में अन्तिम दिन के याद का चित्रण कवि का प्रतिपाद्य है । ईश्वर के चार फिरिष्ता और उनके कार्यों के भी उल्लेख इसमें मिलते हैं ।

जायसी के मानस में बिहिश्त के लुत्फ शराबुतहूरा हूर गिल्म, विलास एव परमानद—भोग आदि झूल रहे थे । आखिरी कलाम के अंत में इन सब के उल्लसित वणन मिलते हैं—

‘ चालिस चानिस हूर सोई । औ सगलागि बियाही जोई ॥

औ सेवा कह अछरिह केरी । एक एक जनि कह सो सी चेरी ॥ ’

पठि बिहिस्त जो नौ निधि पहे । अपने अपने मन्दि सिधहैं ॥ ’

नित पिरीन नित नव नव नेहू । नित उठि चौगुन होइ सनहू ॥

नितइ नित जो बारि बियाहै । बीसौ बीस अधिक ओहि चाहै ॥

तहा न मीचु न नीद दुष्य रह न देह मह रोग ॥

सदा अनद मुहम्मद सब सुख मान भोग ॥”

१—जा० प्र० ना० प्र० सभा भूमिका पृ० ३४१—४२ ।

२—वही, पृ० ३३६ (दोहा १२)

३—वही पृ० ३५७ ।

४—वही पृ० ३४१ ।

५—वही पृ० ३५७ (दोहा ५) ।

६—वही ।

७—वही पृ० ३५७ (दोहा ५०) ।

८—वही प० ३५६ (दोहा ५६ ५७) ।

९—वही पृ० ३५८ (दोहा ५३ । ६—७) ।

१०—वही पृ० ३५६ (दोहा ५७।१) ।

११—वही पृ० ३६१ (दोहा ६०) ।

जीव-सृष्टि-ब्रह्म

जायसी ने कुरान एव अ-याय इस्लामी धर्म ग्रंथों को ही आधार मानकर 'आखिरी कलाम' की रचना की है। जायसी मुसलमानी एकेश्वरवाद पर विश्वास रखते थे। इस ग्रंथ में 'सूफी'-सिद्धांत और मता का प्रतिपादन नाम मात्र का ही है। वस्तुतः इसमें मुहम्मद साहब की प्रशस्ति का गान ही मुख्य विषय रहा है।

इस काव्य के अध्ययन से लगता है कि जायसी पर अद्वैतवाद का जादू पूरा चला हुआ था—

अद्वैतवादी के अनुसार— ब्रह्म सत्य जगत्मिथ्या जीवो ब्रह्म बनापर
अर्थात् ब्रह्म के अनिरिक्त समस्त सत्ता मिथ्या है—

'साचा सोइ और मव यूठ । ठाव न कतहु ओझि के रुठ ॥''

यह सत्ता मिथ्या किंवा असात स्वप्नवत है—

यह सत्ता सपनवर लेखा^१

इस दृश्य जगत में जो बुद्ध है सब में ईश्वर का प्रतिबिम्ब है—

'सब जगन दरसन क लखा । आपन दरसन जापुहि देखा ॥'

ईश्वर या ब्रह्म अकेला था। उसने अपने कौतुक के लिए सम्पूर्ण सत्ता को बनाया सजाया है—

"अपने कौतुक कारण मीर पर्यारिन हाट"^२

बठारह सहस्र योनियों का बरतार भी वही है। सब में उसी का प्रतिबिम्ब दर्शनीय है। वही इन समस्त जीवों का निर्माण करता है पालन रक्षण करता है और संहार करने के परचात अंकुश रहता है—

'भजन गठन सवारन जिन सेला सब खेल ।

सब कह टारि, मुहम्मद, अब होइ रहा अवन ॥'

'आखिरी कलाम' में आए हुए जीव ब्रह्म एव सृष्टि स सबद्वय व सावैतिक विद्वु हैं जिनका विकास पदमावत में हुआ है।

'आखिरी कलाम' मूलतः एक कथा प्रधान रचना है। इसमें इस्लाम धर्म के अनुसार अन्तिम दिन की कथा कही गई है। इसकी भाषा साधारण है। अलकति

१-जा० प्र० ना० प्र० सभा प० ३४० (४) ।

२-वही ।

३-वही प० ३४२ (दाहा १०।७) ।

४-'स एकाकी न रमते तस्मात्तेनत द्वितीयम ऐक्यत ।' एको ह ब्रह्म्याम की इच्छा से ही ब्रह्म ने लीलाय सृष्टि की है।

५-जा० प्र० ना० प्र० सभा प० ३४२ ।

६-वही प० ३४७ ।

और रसमयता का इसमें प्रायः अभाव है। वणनात्मकता का ही सबत्र प्राधान्य है। इस ग्रन्थ की अवधी में फारसी अरबी और कुरान के शब्द भी पर्याप्त मात्रा में मिलते हैं। काव्य सौन्दर्य की दृष्टि से यह विशेष महत्त्वपूर्ण नहीं है।

चित्ररेखा

चित्ररेखा की प्रतिया

चित्ररेखा के संपादन में दो हस्तलिखित प्रतियों का उपयोग किया गया है। हैदराबाद के सालार - ए - जग सग्रहालय वाली प्रति का नाम सुविधा के लिए 'प्रतिक और अहमदाबाद' वाली प्रति का नाम प्रति स रख लिया गया है। अहमदाबाद वाली प्रति के अंतिम पृष्ठ गायब हैं, कुछ स्थल क्षीमकों के शिकार हो चुके हैं फिर भी उसके पाठ शुद्ध हैं और निस्संदेह सुंदर हैं।

चित्ररेखा की एक हस्तलिखित प्रति 'उस्मानिया विश्वविद्यालय के पुस्तकालय' में है, सुना है यह प्रति पूर्ण और सुन्दर है। चित्ररेखा का रचना - काल अज्ञात है पर इतना अवश्य है कि इसकी रचना के समय कवि बूढ़ हो चुका था -
जेव जेव यूना तेव तेव नवा

प्रतिलिपिकाल

सालार - ए - जग सग्रहालय वाली प्रति में उसके लिपिक ने अंतिम में लिखा है।

तम्मन तमाम गुद पोधी चित्ररेखा सित तसनीफ मनिक् मुहम्मद जायसी दर अहद मुहम्मद शाह वाशाह गाजी वतारीख दो आज दहम सहर रजब मुआफिक ११२७ फगनी मुनाबिक ११३३ हिजरी बरोज मगरवार बबक दोपत्री अजसन कमतरीन दयाराम भटनागर वातमाम रमीन।

इस प्रकार इसका प्रतिलिपिकाल ११२७ हि है।

चित्ररेखा की कथा

जायसी ने पदमावत की ही भांति चित्ररेखा का प्रारम्भ भी इस समस्त जगत के एक सज्जनता की वृत्ता के साथ किया है। उन एक वरतार राजा ने ही चौहान भुवने का राजा है अठारह सहस्र योनिषा उसी ने रची हैं उसी ने स्वर्ग बनाकर धरती को रचा है उसी ने चान, भूय तारे वन समुद्र और पहाड़ सज्जन किये हैं उसी ने वण-वण की मृष्टि उन्नत की है। उसने ही जीवों की

१-चित्ररेखा हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय निवेशन-भूमिका।

२-उस्मानिया यूनिवर्सिटी लाइब्रेरी हस्तलिखित प्रति।

घोरासी लाख योनिया बनाई हैं उसने सबके लिए भुगुति (भोजन) और निवास भी लिये हैं उसने मनुष्य रचा और उसे बढपन देते हुए सवथेष्ठ बना दिया^१। समस्त सृष्टि - सूरज चाद तारे, धरती भगन विद्युत मेघ - मानो एक डोर से बाध हुए हैं और ये सब डोर मे नाथे हुये काठ की भाति नतन करते रहते हैं^२। पहले सबत्र ग्य था पुन स्थूल रूप मे उसने जगत का निर्माण किया। उस घोर अघ कून म ज्योति हुई, ज्योति से एक मोती वा निष्पत्ति हुई मोती से अपार जल हुआ फेन राशि उठी और आकाश उठ गया -

दूसरे फेन उहै जल जामा। मैं धरती उपजइ सवनामा ॥

एक वक्ष की दो डारें हुई उन दोनो से अय-अय प्रकार प्रादुभूत हुए। वह तख्खर फलता है झरता है लोग फूल भी कहते हैं ससार की अठारह सहस्र शाखायें (योनिया) हैं और वह (ईश्वर) स्वय रसभून है^३।

इसके बाद जायसी ने सृष्टि के उदभव की कहानी कहते हुए करतार की प्रशंसा मे बहुत कुछ लिखा है। इसके बाद मुहम्मद साहब और उनके चार यारो का वणन करके पूरे दो दोहो मे जायसी ने अपनी गुरु-परम्परा वा उल्लेख किया है। सबप्रथम कवि ने अपने प्यारे पीर सयद अशरफ जहागीर चिश्ती को अपना पीर बहवर स्वय को उनके द्वार वा मुरीद कहा है।

'कालपी के शेख बुरहान महदी गुरु हैं उहोने ही मुझे प्रम-प्याला पय'^४ दिखाया है^५। इसके पश्चात कवि ने अपन विषय म एक वित्तप्रोक्ति दी है -

मुहमद मलिक पेम मधु भोरा। गाउ बडरा दरसन थोरा^६ ॥ आदि।

इस सक्षिप्त भूमिका के साथ कवि ने चित्ररेखा की कथा प्रारम्भ की है। चद्रपुर नामक एक अत्यन्त सुन्दर नगर था। वहा के राजा वा नाम चद्रभानु था। यह नगर गामती के तट पर सुशोभित था। वहा के सभी मन्दिर मणि खचित थे - चाहे वे राजा के हो या रक के। उन प्रासादो के कलश सोने के ढले हुये थे। वहा की स्त्रिया तो साक्षात स्वर्ग की अप्सराओ के समान थी। राजमन्दिरों मे ७०० रानिया थी। उनम प्रधान पट्टरानी थी - रूपरेखा - वह अत्यन्त लावण्यमयी थी। उसके गम के बालिका का जन्म हुआ आनन्द - बघाये बजे। ज्योतिपी और गणक आये। उहोने उसका नाम चित्ररेखा रखा और कहा कि यह निष्कलक चाद के समान अवतरित हुई है, रूप, गुण एव शील में यह अयतम होगी। आज इसका जन्म तो चद्रपुर मे हुआ है किन्तु यह कनौज की रानी होगी। धीरे धीरे चाद की

१-चित्ररेखा हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय सं० - प० शिवसहायक पाठक।

२-वही पृ० ६६।

३-वही पृ० ६७।

४-चित्ररेखा - शिवसहाय पाठक, पृ० ७४। ५- वही प० ७५।

कला के समान वह बढ़ती ही गई। दसए वष के आते - ही पूनम के घाँ जसा घसका बदन प्रकाशमान हो उठा भौरे सप और गेप नाग जसे उसरे देश हो गए। उस मोरी की ज्योति शरद पूनम की ज्योति थी। उस खजन नयन की भौहें घनुप के समान, वरुनी बाणो के समान और पलकें तलवार के समान हो गई।

सावन में वह सखियो के साथ हिडोला झूलती थी। जब वह सयानी हुई, तो राधा चन्द्रभानु ने वर खोजने के लिए अपने दूत भेजे। वे दूढते-दूढते सिहद देश के राजा सिघनदेव के यहा पहुचे और उसके कुबड बेटे के साथ सम्बध स्त कर दिया।

कन्नौज के राजा थे बल्यानसिह। उनके पास अपार जन धन एव पदाति हस्ति आदि सेनायें थी। सब सम्पन्न होने पर भी एक पुत्ररत्न के अभाव में वे बड़े दुखी थे। घोर तप के उपरांत उनके यहा एक राजकुमार का जन्म हुआ। पंडित और सामुद्रिक आए। उन्होंने कहा कि इस बालक का जन्म उत्तम घरी मे हुआ है, उसका नाम प्रीतम कुँवर रखा और कहा कि यह भाग्यवान अल्पायु है उसकी आयु केवल बीस वष की है। जब उसे इस बात का पता चला और उसकी आयु के केवल अढाई दिन शेष रह गये, तो वह राज पाट छाडकर घोड पर सवार होकर काशी मे अत गति सने के लिए चल पडा। उधर राजा सिघनदेव अपने कुबडे बेटे का विवाह राजकुमारी चित्ररेखा के साथ करने के लिए आए। राजा उसी बाग में आकर उतरे जहाँ कन्नौज का राजकुमार घूप और यात्रा के श्रम से विकल होकर एक पेड की मुखद छाया-नले सो रहा था। राजकुमार उठा तो सिघन देव ने उसके पर पकड़ लिए और उसकी पुरी और नाम पूछा और विनती की कि हम इस नगर म ब्याहने आये हैं। हमारा वर कुबडा है तुम आज रात विवाह कराकर कल चले जाना।

सिघनदेव ने उसे वीर लिया उस वर के रूप म सजाया गया। उसने सोचा कि वहाँ हम काशी-गति के लिए चले ये और कहा बीच मे ही विवाह होने लगा। राजा चन्द्रभानु के अगुआ लोगो ने दूल्हे को देखा तो वे कूले नहीं समाये। बारात चन्द्रभान के द्वार पर पहुची। सखियो ने दूल्हे को देखकर चित्ररेखा से बड़ी-बड़ी बातें कीं। बड ठाट-बाट से विवाह हुआ। घोरहरे के सातवें सण्ड म उन दोनों को मुलाया गया। प्रीतमसिह के हृदय म अपनी आसन्न मृत्यु का स्मरण करके बड़ी विचलता हुई। उसे घन वहाँ ? वह पीठ देकर लेटा रहा। पिछना प्रहर होने लगा। राजकुमारी के अचन पट पर प्रीतम सिह ने लिखा- मैं कन्नौज के राजा का पुत्र हूँ। जो विधाना ने लिख दिया है वह अमिट है। मेरी मात्र २० वष की आयु थी। वह पूष हो गई अब वह पुन नाई नहीं जा सकती। कल दोपहर के पूष मैं काशी में मोक्ष-गति प्राप्त करगा। मैं तो सहज ही काशी जा रहा था कि सिघनदेव ने

आकर मेरा तुम्हारे साथ विवाह करा दिया। तुम्हारे लिये यह सखना हुआ— और मुझे यह दोग लगा। यह लिखकर वह घोड़े पर बैठकर काशी को चल पड़ा। प्रातः काल जब तारे डूबने लगे तो सखिया आई। उन्होंने देखा कि घग्घा सोई हुई है—उसके सब साज सिंगार अछूते हैं। उन्होंने उसे जगते हुए कहा कि उठो प्रातः काल हो गया। तुम्हारा कात किपर है? तुम्हारी सज पर फूल बसे ही हैं जब हमने विद्याएँ ये। तुम्हारे अंग भी अछूते—अनालिंगित हैं। तुमने किस अवगुण के कारण पति की सज का स्वीकार नहीं किया। चित्ररेखा ने कहा— मुझे कुछ भी श्रात नहीं। मुझे उसका दर्शन नहा मिला। केवल पीठ ही देखी। यह कहते समय उसकी दृष्टि अचल पट के लेख पर पड़ी और उलने कहा— कुँवर तो सहज स्वभाव से काशी बसे गये। अब मैं अप्सरा बनकर उनकी सेवा करूँगी और चिता में जल कर स्वर्ग में उनसे मिलूँगी। इतना कहकर उसने अपना सिधोरा मगवाया और माँग में सिद्ध भरकर एव पति के पठ के अचल में गाँठ जोड़कर वह चिता में बैठ गई। उसने कहा—प्रियतम ने यह फेंग'दकर मेरा सम्मान किया है। अब इसी फेंग का गहीत करके मैं स्वर्ग में जाऊँगी। प्रिय तुमने मुझे इस प्रकार भुला दिया पर मैं नारी हूँ। मैं स्वयं को जलाकर तुमसे मिलूँगी।

प्रीतम कुँवर ने काशी में आकर मरण के लिए चिता बनाई। मरण से पहले खूब दान दना शुरू किया। बड़े-बड़े सिद्ध महात्माओं ने आकर उसे घेर लिया। उहाँ में व्यास जी भी आये। सबको दान देने के पश्चात् राजकुमार ने कहा 'गुसाई, आप भी लीजिये। उसने 'भर मूठी दान दिया। व्यास जी के मन में प्रेम उमड़ आया और 'उन्होंने चिरजीव रूप होहु' का आशीष दे ही दिया। राजकुमार ने साश्चर्य कहा— मैं तो जल मरने को प्रस्तुत हूँ। हे गुसाई यह चिरजीव कैसा। यदि जीवन मोल मिल सकता, तो किसी को भी देते हुए न खटक्ता। पर वह कहीं नहीं मिलता। फिर भी तुमने मरते हुए मुझे जीवने का आशीष दिया है। अतः सगता है कि तुम कोई बड़े पिता हो, पालक हो—जिनके दर्शन का सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ है। व्यास जी ने भी इस बात को मन में समझ लिया और उन्होंने कहा कि जो मुख से निकल गया वह अयया नहीं हो सकता। मैं व्यास हूँ और विधाता ने मेरे मुख से वह बात कहवा कर तुम्हारे जीवन की अवधि को बढ़ाया है। हे कुँवर, पर जाओ। तुम्हारा नया जन्म हो गया है।

व्यास जी के चरणों का स्पर्श करने वह घोड़े पर चढ़कर चन्द्रपुर की ओर चला। इधर चित्ररेखा के लिये चिता सजाई जा चुकी थी। वह उस पर बैठ चुकी थी, केवल आग लगाने भर की देर थी। चित्ररेखा अचल पर निचे हुए लेख को पढ़कर सोच रही है— प्रियतम के मरण की घड़ी आ जाय तो मैं भी चिता में धाग देकर उसके साथ ही जल जाऊँ। अब वह घड़ी पूरा होने को आई और यह इच्छा

कर रही थी कि आग लेकर चिता में लगा दू ठीक इसी समय प्रीतमसिंह का आग-मन हुआ। उन दोनों की आँखें मिली। उसके हाथ की अग्नि हाथ में ही रह गई। उसने लज्जावश अपना सिर ढक लिया। वह चिता से उतर कर मन्दिर की ओर चली। राजकुमार के चिरजीवी होने की बात चारों ओर फैल गई। बाजे बजने लगे। दब ने आज शोक के मध्य सुख और भोग की निष्पत्ति की। जिनके हृदय में सच्चा वियोग होता है वे वियोगी अश्वमेव मिनते हैं।

सखियों ने चित्ररेखा को पुनः जडाऊ हार आदि से खूब अलकत किया और कहा— आज तुम्हारे कात तुम्हें भेंटना चाहते हैं। समस्त सताप आज मिट जायेंगे। प्रियतम की सेवा में जिसका मन लगा है उसका सोहाग दिन पर दिन बढ़ता ही रहता है। जो सेवा करते हैं व दसवीं दशा तक पहुँच जाते हैं और जो खलते रहते हैं वे पीछे पड़ताते हैं।

चित्ररेखा के कुछ विशिष्ट आकषण

आदि एक बरनी सो राजा मसनवी पद्धति एव मगलाचरण विधान के अनुसार जायसी ने चित्ररेखा के प्रारम्भ में करतार राजा की बदनामी की है—

आदि एक बरनी सो राजा ।

जाकर सब जगत यह साजा ॥

वह सब-यापी है—

चौदह भुवन पूरे क साजू । सहस्र अठारह भूजइ राजू ॥

सरग साजि क धरती साजी । बरन बरन सिष्टी उपराजी ॥^१

स्पष्ट है कि उसी करतार राजा ने ही समस्त जगत का साजा है चौदह भुवन उसी ने साजा है अठारह सहस्र योनिया उसी ने रची हैं—

साज चाद सुख औ तारा । साजे बन कह समुद पहारा ॥

जीया जोनि लाख चौरासी । जल धन माह कीह सब बासी ॥

सब कह दीहेउ भुगुति निवासू । जो जिह धान सो ताकर बासू ॥

सब पर मानुस सरा गासाई । सब सरा मानुष क ताई ॥

यह द्रष्टव्य है कि जायसी ने इस्लाम के अनुसार सहस्र अठारह और हिन्दूत्व के अनुसार जीया जोनि लाख चौरासी दोनों की बातें कह दी हैं। इस सार में ईश्वर ने जितनी वस्तुएँ बनाई हैं सब अस्थिर हैं। उसने इस सृष्टि के पीछे एक 'ताजन (कोडा) लगा रखा है—

तिह ताजन डर जाए न बोला । सरग फिरद जो धरती बोला ॥^२

१—चित्ररेखा — शिवसहाय पाठक पृ० ६५ ।

२—वही, ।

३—वही पृ० ६६ । ११-१२

चाद सूर्य मघ, विद्युत, धरती स्वग - सभी उसी के इ गित से परि
चालित है-

‘ नाये डोर काठ अस नाचा । खेल मैलाइ फेरि गहि खाचा ॥’

सृष्टि का उद्भव - (जगत)

जायसी ने लिखा है कि आदि म सबत्र महाशूर्य था-

औ सुन भा जो अहा अचीहा । फुन अस्थूल भएउ जग कीहा ॥’

उस निराकार ब्रह्म (अचीहा) ने स्थूल (व्यक्त सत्ता) होते हुए जगत का
रचना की। उस अत्ररूप (महाशूर्य) में उसने ज्योति की आलोकित किया। उस
ज्योति में एक मोती की निष्पत्ति हुई। उस मोती से अपार जन गशि हुई। फुन
उठा और मेघ या आकाश भी उठ गया। वही फेन जम कर धरती के रूप में परि
णित हो गया। जब ब्रह्म ने इस सम्पूर्ण जगत का निर्माण किया, तो उसे नमूने या
अम्यास की आवश्यकता न हुई।^१

वह आदि मत्ता इन अठारह सहस्र जीव काटिया में व्यक्त हुई हैं।^२ यह
जगन उसने द्विधामूलक बनाया है-

जीव चित्त नें चरइ औ चल । होइ दा पाइ मत्इ औ गल ॥

सुख दुख पाप पून यवहारू । हाइ दोइ चल चलेउ ससारू ॥

सत स्थाय रचना औ रगा । जहा पड छाह तिन सगा ॥

धरती सरग देवस औ राती । दुहुन डार साखा सब भानी ॥’

एक वक्ष की दा शाखायें हुँ उन दोना से अयाय शाखायें हुई।^३ उसने
जगत को द्वैतमूलक बनाया। सुख-दुख पाप-मुष्य, श्वेत श्याम धरती स्वग
दिन रात इसा इ त क आकार पर ससार चलता है।^४

जाव, ब्रह्म और जगत की एकता के विषय में जायसी की आम्या है।
स्वर्गीय अमल तत्व इसी जगत में परिव्याप्त है, पर पकड में नहीं आता-

आपु आप चाहेसि जो देखा । जगन सानि दरपन क लखा ॥

घट घट जम तरपन परछाही । नाहे भिला दूर फुनि नाही ॥

१-वही, पं० ६६। ११-१२।

२-चित्ररेखा शिवसहाय पाठक, ६७। ३-४।

३-कुंगनशरीफ।

४-चित्ररेखा, शिवसहाय पाठक पं० ६७।

५-वही पं० ६७ (सहस्र अठारह साखा आपु भएउ रस मूलु)।

६-वही पं० ६८।

७-वही, पं० ६७।

८-वही, पं० ६८।

हों तो दोड़ बीच की काई । जब छूटी तब एक होइ जाई ॥

हिय कर दरपन मन कर मजन । देखु आपु मह आपु निरजन ॥^१

इन पक्तियों से स्पष्ट है कि दृश्य और द्रव्य जग और पाता एक दूसरे से अभिन्न हैं । आपु आप चाहेसि जब देखा अर्थात् जब ब्रह्म ने अपनी ही शक्ति की लीला का विस्तार देखना चाहा । वह प्रत्यक्ष घट में दरपन परछाई की भाँति ध्यात् है । उस निरञ्जन निराकार को अपने में देखा जा सकता है ।

उस ईश्वर की सत्ता काष्ठ में अग्नि और दूध में घी के सदृश अनुस्यूत है जो मनसा मयन करता है वही उसे पाता है । जो भीर के समान केतकी के काटे से अपना हृदय प्रम की पीर से छत्र प्रेष करता है वही दुःख सहने के पश्चात् उसे पाता है जस चीटा गुड को —

अग्नि काठ घिय खीर सा क्या । सो जानी जो मन दइ मया ।

भवर भयउ जस केतकि काटा । सो रस पाइ होइ गर चाटा ॥^१

प्रेम की सर्वोच्चता

विरह प्रेम की निष्पत्ति एवं वाह याडम्बर तथा निष्प्रेम साधना की निस्सारता —

जायसी प्रेम पथ के एक महान साधक — सत थे । प्रेम पथ में उठाने प्रेम पीर की महत्ता का प्रतिपादन किया है । व्यथ की तपस्या काय केश एव वाह या डम्बर को व महत्वहीन मानते थे । व प्रेमप्रभु की प्राप्ति के लिये हृदय में विरह का होना अत्यन्त आवश्यक मानते थे —

का भा परगट क्या पखारे । का भा भगति भुइ सिर मारे ॥

का भा जटा भभूत खड़ाए । का भा गेरू कापरि नाए ॥

का मा भेस दिग्बर छाटे । का भा आपु उलटि गए काटे ॥

जो भेखहि तजि मौन तू गहा । ना घग रहैं भगत वे चहा ॥

पानिहि रहइ मडि औ दादुर । टागे नितहि रहहि फुनि गादुर ॥

पसु पछी नागे सब सरे । भसम कुम्हार रहइ नित भरे ॥

वर पीपर सिर जटा न थोरे । अइस भस की पावसि भोरे ॥

जब लगि विरह न होइ तन हिये न उपजइ पम ।

तब लगि हाथ न आव तप-करम-धरम-सत नेम ॥^१

जायसी ने अपने समय में कृच्छ्र-काय क्लेश और नाना विष वाह याडम्बर

१-चित्ररेखा — शिवसहाय पाठक, पृ० ६९ ।

२-वही, पृ० ६६ ।

३-चित्ररेखा शिवसहाय पाठक पृ० ७० ।

वानी साधनाओं को देखा था उहे लक्ष्य करके वे कहते हैं कि प्रकट भाव से काया प्रशालन से कोई फायदा नहीं। धरती पर सिर पटकने वाली साधना व्यर्थ है। जटा और भभूत बनने चटाने का कोई मूल्य नहीं है। गरिक वमन धारण करने से क्या होता है? दिगंबर योगियो का-सा रहना भी बेकार है। काटे पर उत्तान साना और साधक होने का स्वांग भरना निष्प्रयोजन है। देश-त्याग कर मौन व्रती हीना भी व्यर्थ है, कहीं बगुला भी मोती बनकर भगत होते हैं? पानी में ही तो मछली और मत्क भी रहते हैं (अतः जल में तगातार रहना और साधक होने का श्म भरना निस्सार है) क्षमगाण्ड पछी भी तो अपने को टागे रहता है (अतः पर ऊपर करके सिर नीचे करने वालों की शीर्षसिनी साधना में भी कुछ नहीं होता)। पशु पत्नी नग वदन रहते हैं (अतः मनुष्य की नगे वदन रहने वाली दिगम्बरी साधना से भी कद नहीं होता) कुम्हार भी तो मस्म से नित्य प्रति सना रहता है (अतः भसम रमान से क्या होता है?) क्या बट और पीपल में कुछ कम जटायें हैं? अरे भोले ऐस क्या वेश से कहा ईश्वर मिलता है? जब तक विरह नहीं होता - हृदय में प्रेम की निष्पत्ति नहीं हो सकती। बिना प्रम के तप कम धम और सत नेम की सच्चे अर्थों में प्राप्ति नहीं होती। स्पष्ट है कि जायसी सहज प्रम विरह की साधना को ही सर्वश्रेष्ठ साधना मानते हैं।

चित्ररेखा का मार्मिक सदेश

चित्ररेखा मूलतः एक छोटी सी प्रम-कथा है। देव की कृपा से कभी-कभी शोक के भीतर में सुख और भोग का अदभुत संयोग उत्पन्न हो जाता है। वे विद्योही प्रमी अवश्यमेव मिलते हैं जिनके हृदय में सच्चा वियोग होता है अर्थात् सच्चे प्रमियों का विद्योह मिलनजय आनन्द में बदल ही जाता है—

‘दई आन उपराजा सोगे माह सुख भोग ।

अवस ते मिल विद्योही जिह हिय होइ वियोग ॥’

दुःख में सुख का भोग उत्पन्न होना तो भगवान की ही कृपा का परिणाम है। यह वह कृपा है जो सच्चे प्रेमी की प्रेम परीक्षा के पश्चात् अनायास मुलभ होती है।

इस विधामूलक सृष्टि के विषय में निम्नलिखित हुए उन्होंने प्रेम के विषय में लिखा है—

दुहुन जो वार एक दिसि राखे । सो फल प्रेम प्रीति रस चाखे ॥’

१-चित्ररेखा-शिवसहाय पाठक पृ० १११ ।

२-वही पृ० ६८।११-१२ ।

वस्तुतः ईश्वर की सत्ता काष्ठ में अग्नि और दूध में घी के समान है, जो मन देकर उसका मयन करता है वह उसे जानता है। इसके लिए जो साधक और के सदश केतकी के काटे से अपना हृदय प्रेम की पीर से छेद वेध लेता है वही दुःख सहने के पश्चात् उस रम का आस्वाद पाता है।

अग्नि काष्ठ धिब खीर सोक था । सो जानी जो मन देइ मया ॥

भवर भएउ जस केतकि काग । सो रम पाइ होइ गर चाँटा ॥^१

जो प्रेम प्रभु आज प्रकट रूप में मिला हो, उससे क्या न मिन लिया जाय ? कल मिलने की आशा लिए हुए पुन अवधि रखने का क्या प्रयोजन ?^२

जायसी ने जगत निर्माण की बात लिखते हुए कहा है—

प्रम पिरीति पुरुष एक लिया । नाउ मुहम्मद हुहु जग दिया ॥

अधकूप भा अहा निरासा । ओनक प्रीति जोनि परवासा ॥^३

अर्थात् ईश्वर ने प्रेमपूर्वक मुहम्मद को बनाया और उस महापुरुष में उही की प्रीति के कारण ज्योति प्रकाशित की। अपने महदी गुरु गेख बुरहान की प्रशस्ति करते हुए उन्होंने प्रम के विषय में कहा है कि उन्होंने ही मुझ प्रम प्याला पय 'लखाया है—इस झूठे जग के घघ को तजकर जिसने सच्चा प्रम पय पा लिया जिसने प्रेम-प्याना पी लिया और प्रम में चित्त को बाध दिया वही सच्चा प्रमी और साधक है।

अपने विषय में कवि ने कहा है कि मैं प्रम प्रभु भोरो हूँ। हाथ में प्याला और साथ में सुराही है—प्रम प्रीति का पूणत (बहुत दूर तक) निर्वाह कर रहा हूँ।^४ 'वे स्वयं प्रम पय के पथिक हैं घर में ही उदास हैं उस प्रम प्रभु का वे कभी मन से स्मरण करते हैं और बबहु टपक उत्राम रहते हैं।^५

सावन और हिंडोले का वणन करते हुए जायसी ने प्रम के खेल की महत्ता स्पष्ट की है—जब तक यह नहर है तभी तक यह प्रम का खेल है अतः जबतक यहा हो—खूब खेल लो। सभी रानिया नवल प्रम रम राची और प्रेम प्यारी थी व सब की सब प्रेम रम राची अभय भाव से नाच रही थी।^६

कनौज में कल्याण सिंह नामक राजा के घर में पुत्र उपपन्न हुआ उसका नाम भी प्रम और प्रीति से ही सम्बद्ध प्रीतम कुवर रखा गया। जब प्रीतमकुवर

१—वही पृ० ६६ । ११-१४।

२—चित्र रेखा—शिवसहाय पाठक पृ० ९ १५-१६।

३—वही प ७१।१-४।

४—वही पृ० ७४।७ से १६ तक।

५—वही पृ० ७५।

६—वही पृ० ७६। १५-१६।

७—वही पृ० ८४।

८—वही, पृ० ८३।

काशी गति व लिए रानी चित्ररेखा को मोता छोड़कर चला गया तो रानी न कहा कि ह प्रियतम जा तुमने मुन इस प्रकार भुला दिया है तो मैं भी सच्ची पतिव्रता बहलाऊंगी जब अपने आपको जलाकर तुम स मिलूंगी। यहाँ पर रानी चित्ररेखा की प्रीति का उच्चल पानिग्रय रूप प्रस्तुत किया गया है

‘जो तुम पिउ हों अक्स विमारी । आपुहि जाति मिलौ तो नारी ॥’

चित्ररेखा प्रसादान या प्रेमात कथा-काव्य है जायसी ने इस कथा का अत अवध भोजपुर जनपद म लोक-ख्यातिलेख और प्रेम महत्ता की प्रतिपादिका उक्ति स ही किया है-

‘काटिक पोथी पति मरे पडित भा नहि कोइ ।

एक अच्छर प्रेम का पद सो पडित होइ ॥

इस प्रकार उपयुक्त विवेचन के आधार पर हम कह सकते हैं कि चित्ररेखा म आदि से लेकर अत तक प्रेम की ही महत्ता का गुणगान किया गया है।

मुहम्मद साहब और उनके चार भीत

सृष्टि के आदि म ईश्वर ने एक पुरुष रचा उसका नाम मुहम्मद रखा। उही की प्रीति के कारण उसने उस अथकूप (महापूय) मे ज्योति को प्रकाशित किया। वे स्वत अपी ज्योति से प्रदीप्त थे उही की ज्योति से अय सब प्रकाशित हैं। यह एक सूक्ष्म बात है कि उनमे ही यह संपूर्ण ससार हुआ है वे हजरत नबी रसूल सब के अगुआ हैं-

‘प्रेम पिरीति पुरुष एक किया। नाउ मुहम्मद दुहु जग दिया।

अथकूप भा अहा निरासा। ओनक प्रीति जोति परकामा ॥

उनतें भा ससार सपूरन सुनहु बन अस्थूल।

वे ही सब के अगुआ हजरत नबी रसूल ॥’

हजरत मुहम्मद के चार भीत (चार यार या चार खलीफा) उत्तराधिकारी हुए। उन चारो को दोनो लोको म प्रतिष्ठा दी। उनम प्रथम अतूबकर सिद्दीक थे, उन्होंने इस्लाम म सत्य की प्रतिष्ठापना की है दूसरे हैं उमर अदन वे जय दीन में आए ता जगत म याय (अदन) फला उन्होंने अयाय की बात सुनकर अपने पुत्र को मरवा डाना। तीसरे खरीफा मित्र है उसमान। ये बडे विद्वान और गुणी थे। उन्होंने सुदर पुराण कुरान लिखकर सुनाया। और चौथे हुए रणगाजी अली जो सिंह की तरह शक्तिपन्न थे। जायसी ने इन चार भीनो की प्रशस्ति म

१-चित्ररेखा-शिव सहाय पाठक पृ० १ ११५-१६-१०७ तथा प० १०७ ६-११ ।

२-चित्ररेखा-शिवसहाय पाठक पृ० ७१ ।

३-वही प० ७२ ।

लिखा है—

चारिहू चहू खण्ड भुइ गहै । दौलत अहे जो अस्थिर रहै ॥

। , पापन रहा मारि सब काग । भा उजियार धरम जग वाग ॥

हुए भीत अस चारा जो मति करहि न टोल ।

। , पढ़हि सारे अर्या वही चारि जरय एक बोल ॥^१

पीर परम्परा का उल्लेख

जायसी ने पदमावत—अखरावट की ही भांति चित्ररेखा में भी पीर (सत) परम्परा का विशद उल्लेख किया है—सयद अशरफ अत्यन्त प्यारे पीर हैं मैं उनके द्वार का मुरीद हूँ । वे जहागीर चिश्ती वश वे थे ससार सागर के बीच उनका धम कायान सजा है । हाजी अहमद, गल कर्मान जलाल और शेख मुबारक का जायसी ने प्रशस्तपूर्ण उल्लेख किया है—

सयद अशरफ पीर पियारा । हौं मुरीद सेवो तिन वारा ।

जहागीर चिश्ती व राज । समुद माहि बाहित किन साज ॥

उलधि पार दरियाव गहे । भए सो पार करी जिन गहे ॥

हाजी अहमद हाजी पीरू । दीह बाह जिन समद गभीरू ॥

शेख कर्मान जलाल दुवारा । दुआँ सो गनन बहुत बहु वारा ॥

असमलदूम बोहित लाइन धरम करम कर चाल ।

करिआ सत मुबारक खबट सेस जमाल ॥^२

जायसी ने यहाँ पर सयद अशरफ जहागीर चिश्ती की पीर परम्परा का उल्लेख किया है । ये फजावान जिल के कछीटा के चिश्ती सप्रदाय के सूफी सत थे जो आठवीं शती हिजरी के अन्त और नवमी शती के आरम्भ में जायसी ने बहुत पहले हुए थे । जायसी उनके घराने के बड़ भक्त थे ।^३

जायसी जायस में रहते थे । सयद अशरफ साहब की दरगाह बहा अब तक विद्यमान है । पंडित रामचन्द्र सुन्न ने सयद अशरफ को जायसी का दीक्षा गुरु माना है । सुन्नजी के अनेक नकलची विद्वानों ने भी सुन्नजी के वाक्य को अपना बना लिया है, पर वस्तुतः ऐसी बात नहीं है । जायसी सयद अशरफ को अत्यन्त प्रिय पीर मानते थे । सयद अशरफ की मृत्यु जायसी के जन्म से काफी पहले ८०८ हिजरी

१—वही पृ० ७२ ।

२—चित्ररेखा—शिवसहाय पाठक पृ० ७३ ।

३—पदमावत—श० वामुदेवशरण अग्रवाल पृ० ३८ ।

में हो सकी थी। कुछ लोग उनकी मृत्यु तिथि ८४० हिं मानते हैं।^१ अतः^२ जे जायसी के दीक्षा गुरु नहीं हैं। हां यह मंच है कि जायसी अक्षरपी परम्परा के प्रति अत्यन्त वृत्तज्ञ हैं।^३

गुरु-परम्परा

जायसी ने पद्मावत^४ एव अक्षरावट के अतिरिक्त चित्ररेखा म भी अपनी गुरु-शिष्य-परम्परा का वर्णन किया है। उहा न त्रिखा है-

महनी गुरु सेख बुरहानू। कालपी नगर तहिक अस्थानू ॥
मक्कइ चौथहि कह जस त्यागा। जिह व छुए पापतिह भाग्य ॥
॥ सो मोरा गुरु तिह ही चेला। घोवा पाप पानि सिर मेला ॥
पेम^५ पियाला पथ लखावा। आपु चाखि मोहि वू द चखावा ॥
सो मधु चन्ग १ उतरइ कावा। परेउ माति पाएउ फेरि आवा ॥
माता धरती सो भइ पीठी। लागी रहइ सरग सो दीठी ॥

सयद राजे हामिन् शाह मानिकपुर के दूर्त बड सूफी सत थे एव उनके शिष्य दानियान खिच्ची थ एव उनके शिष्य सयद मोहम्मद महनी हुए। इनका १५०४ ई० म देहांत हुआ था। इनके शिष्य चलहानू हुए और उनके शिष्य नेख बुरहान कालपी वाले हुए जो महदी की परम्परा म होन के कारण स्वयं भी महदी गुरु कहलाए। महदी गुरु गल बुरहानू ने पद्मावत की निम्नलिखित पक्तिया धारित हो उत्पत्ती है-

गुरु महदी खेवक में सेवा। बन उताइल जिहकर सेवा ॥

अगुआ भएउ नेख बुरहानू। पय खाइ जेहि दीन गियानू ॥^६

इम प्रकार चित्ररेखा के प्रकाशन मे यह सिद्ध हो जाता है कि कालपी नगर के सख बुरहानू के पश्चात कोई महनी या महदी नामक सत जायसी के गुरु नहीं थ बल्कि शेख बुरहानू के दादा गुरु और गल अतहदान के गुरु सयद मोहम्मद महनी के विरुद्ध के अनुसार स्वयं गल बुरहान की महदी गुरु के विरुद्ध से प्रसिद्ध हो गए थे।^१

१-अक्षरवार उल अख्यार-धीरेद्र वर्मा विशेषान-जठ रामखेलावन पाण्डेय।

२-जा० प्र०, स० डा० माताप्रसाद गुप्त (पद्मावत) १३१-३२।

३-जा० प्र० ना० प्र० सभा, (पद्मावत) प० ८ (दोहा २०)

४-वनी (अक्षरावट), पृ० ३२२ (दोहा २७)।

५-जा० प्र० ना० प्र० सभा प० ८ (दोहा २०।१२)

६-चित्ररेखा-शिवसहाय पाठक भूमिका प० १४-१५

कवि का अपने विषय में कथन

सबप्रथम जायसी ने अपने विषय में लिखा है कि सयद अशरफ प्यारे पीर हैं और मैं उनके द्वार का मुरीद हूँ ।^१ पश्चात् शेख बुरहान महेदी गुरु का स्तवन करते हुए उन्होंने कहा है—

सो मोरा गुरु तिह हौं खेला । घोवा पाप पानिसिर मला ।
पेम पियाला पथ लखावा । आपु चाखि मोहिं बूद चखावा ॥
जो मधु चढा न उतरइ कावा । परेउ माति पाएउ फरि आवा ॥^२

इसने पश्चात् तो उन्होंने बड़ ही विनम्र ढंग से अपने विषय में लिखा है—

मुहम्मद मलिक पेम मधु भोरा । नाउ बडरा दरपन घोरा ॥
जेव जेव बूडा तेव-तेव नवा । खूदी कई खयाल न कवा ॥
हाथ पियाला साथ सुराही । पेम पीतिलइ ओर निवाही ॥
बुधि छोई और लाज गवाई । अजहू अइस धरी सरिकाई ॥
पता न राखा दुहवइ आता । मता कलालिन के रस माता ॥
दूध पियावइ तस उवारा । बालक होइ परातिह बारा ॥
रोवउ लोटउ चाहउ खेला । भएउ अजान चार सिर मेला ॥

पेम कटारी नाइक मता पियावइ दूध ।

बालक पीया चाहइ क्या मगर क्या बूध ॥^३

इन पक्तियों से लगता है कि ये प्रेम मधु के भ्रमर थे (प्रेम मधु माते थे) उनका नाम तो बहुत बड़ा था पर वे दरसन घोरा थे । ज्या-ज्यो वृद्धावस्था आ रही थी त्यो-त्यो उनमें अभिनवता का सन्निवेश हो रहा था । अजहू अइस धरी सरिकाई । से स्पष्ट है कि इनकी अवस्था अधिक हो चली थी और 'चित्ररेखा इनकी वृद्धावस्था की रचना है । ससार की अस्थिरता का घणन करते हुए जायसी ने एक अर्थ स्थल पर भी इसी प्रकार का इ गित किया है—

यह ससार झूठ बिर नाही । तरुवर पखि तार परछाही ॥
मोर मोर कह रहा न कोई । जोरे उवा जग अथवा सोई ॥
समुद तरंग उठ अध कूपा । औ बिलाहि सब होइ होइ रूपा ॥
पानी जइस बुलबुला होई । फूट बिलाहि मिलइ जल सोई ॥
मलिक मुहम्मद पपी घर ही माहि उदास ।
कबहू सवरहि मन क कबहू टपक उवास ॥

१—चित्ररेखा—शिवसहायक पाठक भूमिका पृ० ७३ ।

२—चित्ररेखा शिवसहाय पाठक प० ७४ ।

३—वही पृ० ७५ ।

४—वही पृ० ७६

यद्यपि इन पक्तियाँ मं सत्तार की अस्थिरता (जन्म मर्त्यु) एवं वराम्य विषयक बातें कही गई हैं बुल्ले, तरंग आदि प्रतीका के माध्यम से जन्म के पश्चात् विलाने (विलीन होने) की बातें स्पष्ट की गई हैं ता भी जोरे उवा जग अयवा सोई क द्वारा कवि ने अपनी बढावस्था की ओर इ गित कर ही दिया है क्योंकि वे गत जीवन का मानो सर्वेक्षण करते हुए कह रहे हैं—'जो जग नीक होत अवतारा । होतहि जनम न रावत बारा ॥

चित्ररेखा म उहोने अयत्र भी अपने विषय म लिखा है—

मुहमद सायर दीन दुनि मुख अन्निन बनान ।

बदन जइस जग चंद सपूरन सूक जइस बनान ॥'

स्पष्ट है कि उनका बदन तो सम्पूर्ण चंद्र के सदृश था पर नेत्र शुभाचाय जस ही थे ।

दोहा चौपाई

'चित्ररेखा' की कथा मसनवी शैली में लिखी गई है । दोहे-चौपाई वाची छन्द परम्परा को ही जायसी ने यहा भी गहीत किया है । सम्भवत जायसी ने सात अर्द्धालियों के पश्चात् एक दाहे का विधान किया था, किन्तु जिन दो प्रतियों के आधार पर 'चित्ररेखा' का सम्पादन हुआ है, उनमें इस क्रम का निर्वाह सबत्र नहीं है ।

मुझ प्रो० राजकिशोर जी पाण्डेय से पात हुआ है कि उस्मानिया विश्व विद्यालय वाली हस्तलिखित प्रति पूरा है और उसमें सात अर्द्धालियों के पश्चात् एक दोह का विधान आद्यत मिलता है । 'चित्ररेखा' की प्रतियाँ फारसी अक्षरों में है कछ तो प्रतिलिपिकार के अधिक गच पच और कुछ पुरानी लिखाइ और इन सबने मिलाकर कही कही मात्रा-सम्ब धी कमी वेशी का दोष उपस्थित कर दिया है । यों डा० माताप्रसाद गुप्त ने लिखा है कि पदमावत आदि में जायसी ने दोह-चौपाई का स्वतंत्र प्रयोग किया है । फिर भी 'चित्ररेखा' में जहा भा यह दाहा था प्रस्तुत विद्यार्थी ने विचार विमर्श किया है । स्वयं डा० माताप्रसाद जी गुप्त ने एक पत्र भेजकर कुछ स्थलों के स्थान पर अपना प्रस्तावित पाठ भेजा है ।

कहरानामा

कहरानामा की एक हस्तलिखित प्रति 'कामनवल्थ रिलेशंस आफिस,

१-चित्ररेखा शिवसहाय पाठक पृ० ७७ ।

२-डा० माताप्रसाद गुप्त का पत्र, दिनांक १७।६।६० ।

कहरा का अर्थ कहार (जाति विशेष) कष्ट-दुःख या कहर और गीत विशेष है। 'कहारो के गीता में बहुत स गीत निरगुन कहलाते हैं। मलिक कहार कह उठते हैं अज्झा भव कोई निरगुन कहरवा सुनाओ। इस प्रकार कहरवा गीत में निगण ब्रह्मा का गुणगान करना, आत्मा और परमात्मा के प्रेमपरक गीत गाना हमारे देश की एक अत्यन्त प्राचीन लोक परम्परा है। जायसी कबीर आदि ने उसे गहीत करके काव्य रूप में निबद्ध किया है।

महरी बाईसी का प्रकाशन

सन १९११ ई० में डा० माताप्रसाद गुप्त ने जायसी ग्रन्थावली का संपादन किया था। उसमें उन्होंने महरी बाईसी नामक जायसी की एक अनुपलब्ध प्रति को भी छापा था। उन्हें इस ग्रन्थ की एक प्रति कामनवेल्य रिलिफ स आफिस लन्दन से प्राप्त हुई थी। उन्होंने लिखा है - महरी बाईसी नाम मराठिया हुआ है। स्पष्ट नामोल्लेख कृति में नहीं है। केवल महरी गाने का उल्लेख कृति में जहा-तहा हुआ है और इस कृति में कुन बाईस गीत हैं इसलिए यह नाम दे दिया गया है। सम्भव ही नहीं आशा भी है कि आगे की खोज में इस कृति का ठीक नाम ज्ञात हो जावेगा।'

यह कृति केवल सन ११६४ हिजरी की एक प्रति के आधार पर सम्पादित हुई है। लिखावट प्रायः शिक्ल है और दिया हुआ पाठ अत्यन्त कठिनातापूर्वक उससे प्राप्त किया गया है।'

डा० गुप्त का कथन है कि इस प्रति में अनेक स्थानों पर शब्दों और पंक्तियों भी छूनी हुई हैं।'

वस्तुतः इस ग्रन्थ का नाम 'कहरानामा या कहारानामा है। यह नाम इस ग्रन्थ की अनेक प्राप्त हस्तलिखित ग्रन्थों में मिला है। रामपुर स्टेट लाइब्रेरी में पन्मावत के प्रति के अन्त में कहारानामा की भी एक पूरा और सुलिखित प्रति मिली है। यह प्रति १०२६ हिजरी (१६७५ ई.) में लिखी गई थी। मनरशरीफ के खान का पुस्तकानय की फारसी निधि में लिखित प्रति में पन्मावत अखरावट और कहरानामा की प्रतियाँ मिली हैं। यह प्रति काफी उच्च श्रेणी की और सुलिखित है। यह सत्रहवीं शताब्दी में शाहजहाँ के समय में लिखी गई थी।

१-जा० ग्र० (भूमिका -) डा० माताप्रसाद गुप्त प० १०४।

२-वही, प० १४।

३-पदमावत - डा० वासुदेवशरण अग्रवाल प्राक्कथन प० १०१।

४-जे० वी० आर० एम (प्रो० हसरत अस्करी का लेख) भाग ३६ १९५३

पृ० १०-४ (अवधी ग्रन्थों की एक नई हस्तलिखित प्रति)।

मनेरशरीफ वाली प्रति रामपुर वाली प्रति और कामनवेल्य रिलेशंस आफिम वाली प्रति, इन प्रतियों को देखने पर पात हुआ कि डा० माताप्रसाद गुप्त ने जो पाठ दिया है वह सतोपजनक नहीं है। इसका पुनः सम्पादन आवश्यक है।

कहरानामा की कथा

कहरानामा तीस पदों की एक प्रेम कथा है। इसे निगुण-प्रेम कथा भी कह सकते हैं। भूल से इसका नाम मट्टी-भाईमी रखा गया है। इसमें वाईस छंद नहीं हैं—तीस छंद हैं। सत्तार एक सागर के समान है। इसमें घम की नौका पडो हुई है। केवट एक ही है। नहर से महाराई कमे आई? कौन केवट है? कौन बहरा है? कौन गुण लानार पथ को सिर पर रखना है? कौन गुन (रस्सी) से नौका को तट पर खींचता है? कोई इस पथ को तलवार की धार कहता है तो कोई सूत जसा। मैं नरक का फंद नहीं देखा है जाल में उतझ गया हूँ। कोई इस सागर में परते-तरते हार गया है और बीच में खड़ा है, कोई मध्य सागर में डूबता है और सीप ले आता है कोई टक्कड़ करके छेड़े ही लौटता है कोई हाथ झार कर पड़पाता है मुहम्मद कहते हैं कि सभाल रहो टोई गई पाव उतारो नहीं तो खाल में पडो।

जायसी गुरु की जागा पानन करने की वान लिखते हैं कि साधना पथ पर गतिमान होने वाले साधक के लिए गुरु की आज्ञा या गुरु का साथ होना आवश्यक है। अन्त में तो एक ही आश्रय रह जाता है ईश्वर। कहरानामा में कई बार इस अतिम आश्रय की ओर संकेत किया गया है।

जो नाव पर चढ़ता है वह पार उतरता है और नाव चली जाने पर जो बाहू उठाकर पुनारता है और केवट पीटता नहीं तो पछताता है लोग उसे भूल-अनाथी कहते हैं। बटुत दूर जाना है रोने पर कौन सुनता है? जो गेंठ पूरे हैं, जो दानी हैं, उनमें हाथ पकड़ कर केवट नाव पर चढ़ता है, वहा कोई भाई, बधु और सथाती नहीं। मन जकेन विमूरता है मुहम्मद कहते हैं। इस भाग पर चलो मयघार मन डूबा। साधक को इस सत्तार-पागर में पार सभाल कर रखना चाहिए नयथा पदम्रण होने का भय है।

वर्षाश्रुतु में नदी के पाठ को देखकर मन आतन्त्रित हो जाता है पवन द्वारा उद्वेलित तहरें हृदय को प्रवर्षित कर देती हैं। सूस मगर गाह, घरियार पद-पद पर उछलने उतराते हैं सबट पडने पर केवट को बहुत से लोग पुकारते हैं परन्तु वह सबको नहीं मिनता, ऐम भीषण प्रवाह में केवट के बिना नाव का पार नगना बडा मुश्किल है। जायसी ने योग मुक्ति मा की चञ्चलता को दूर करने, भोगों से दूर रहने और प्रेम प्रभु में मन रमाने की बातें कही हैं। जायसी ने महरी महरा

के विवाह के बहाने आत्मा परमात्मा के विवाह का वणन किया है। आत्मा का श्र गार वणन वसा ही है जसा सूर सागर म राधा का श्र गार—

साजइ माग शारि दुइ पाटी चतुरि न चीर सवारहु रे

बेनी मू थहु इ गुर लावहु रचि रचि सेंदुर सारहु रे ।

जायसी ने भी यहाँ वे ही उपमायें दी हैं जो सूरदास ने वे ही आभूषण हैं जो राधा के। आत्मा स्त्री प्रिया अपन प्रिय परमात्मा का गम्भीर गुणों से सयुक्त और महनीयरूप में अनुभव करती है। यह प्रिय पूरव पश्चिम उत्तर दक्षिण, सभी दिशाओं में गतिमान है। उसकी प्राप्ति तभी होती है जब अपने आपको समाप्त कर दिया जाता है।

अन्त में कवि ईश्वर के प्रेम का निरूपण करते हुए कहता है कि जिसे वह अपना सेवक समझता है उसे दरिद्र और भिखारी बना देता है। उसकी सृष्टि की विपरीतता भी दर्शनीय है—जिसे वह अपना सेवक जानता है उसे भीख मगाता है कवि और पंडित दुःख और दरद में जीते हैं और वह मूरख का राजभाग दे देता है। जहाँ चंदन है वहाँ नाग हैं, जहाँ फूल है वहाँ कृत्त भी हैं जहाँ मधु है वहाँ माखी भी हैं और जहाँ गुर है वहाँ चीटा भी हैं—

जा सेवक आपुन न जाने तहि घरि भीख मगाव रे ।

कबिता पंडित दुःख—दरद मह मूरख के राज कराव रे ॥

चंदन जहाँ नाग है तहवाँ जहाँ फूल तह काटा रे ।

मधु जहवा है माखी तहवा गुर जहवाँ तह चाटा रे ॥

विशेष

कहरानामा में कहारा के जीवन और ववाहिक वातावरण के माध्यम से कवि ने अपने आध्यात्मिक विचारों को अभिव्यक्त किया है।

आत्मा और परमात्मा के मिलन—विवाहों की बात को कवि ने कहार जीवन के विवाह के बहाने स्पष्ट किया है—

भा भिनुसारा चल कहारा होतहि पाछिन पहरा रे ।

सखी जी गावहि हुडुक बजावहि हमि के बोना महरा रे ॥

हुडुक तवर औ चाझ मजीरा दामुरि महअर बाज रे ।

सबद मु ावा सन्धियह गावा घर घर महरि साज रे ॥

पूजा पानी दुनहिन आनी, चूनह भा असवारा रे ।

बाजन बाज केवट साज, भा बसन्त ससारा रे ॥

मगलचारा होइ शवारा औ सग सेन सेहली रे ।
 जनु फुलवारी फूली वारी जिह कर नहि रस केली रे ॥
 सेंदुर ल-ल मारहि ध ध, राति माति चुन डोली रे ।
 भा सुम मसू फूला टेसू जनहु फाग होइ होरी रे ॥
 कहै मुहम्मद जे दिन अनदा सो दिन आगे आवे रे ।
 हे जाग नग रनि सबहि जग दिनहि साहाग को पाव रे ॥

इस पद्य में हड़क तब्रर थाय मजीरा, वासुरी महवर, महरा महरी, फाग खेतना टेम्, सेंदुर मगलाचार आदि के द्वारा कवि ने फागुन में कहारो के विवाह और ईश्वरगय अर्थों में आत्मा का परमात्मा के रग में रग जाने का वणन बड़ा ही तलित रूप में प्रस्तुत किया है। कहारानामा के सभी पद गय तलित और आध्यात्मिक अर्थों की 'जजना से सबलित हैं। अनुपास और श्लेष के सौंदर्य प्रायः सबत्र दर्शनीय है। जैसे कबीर कहत ह कि 'दुलहिन' गावहु मगलाचार। आजु घर आए राजा राम भरतार। उसे ही जाप्रमी ने भी इग छोट म ग्रथ में निगुण ब्रह्म का प्रियतम और भक्त या आत्मा को प्रियतमा मान कर दानो के चिर मिलन का बड़ा ही मनोमय वणन किया है।

मसला'

नागरी प्रचारिणी सभा में जायसी कृत 'अखरावती' की एक हस्तलिखित प्रति है। इस प्रति के लिखन वाले हैं सीतलदास। अखरावती की पुष्पिका में उन्होंने लिखा है—

निपा है सीतलदास महमद कृत अखरावती यथकेर एह नाम जी मसला आय लिखव ।^१

अखरावती की पुष्पिका के पश्चात् सीतलदास जी ने जायसीकृत मसला^१ को लिखा है। नागरीप्रचारिणी सभा में मसला के केवल तीन पृष्ठ ही मिले हैं। एक तो प्राचीन लिखाई, दूसरे पढ़ने की कठिनाई तीसरे लिपिक की असावधानी और चौथे खण्डित प्रति—एन सभी कारणों से इस कृति की पूर्णरूपरेखा स्पष्ट नहीं हो पाती। इतना स्पष्ट है कि 'मसला में अवध जनपद' के मुहायरे लोकोक्तियाँ, कहावतें आदि सुंदर रूप से प्रयुक्त हैं।

१—ना० प्र० सभा खोज रिपोर्ट १६७।

२—नागरीप्रचारिणी सभा काशी के पुस्तकालय की 'जायसीकृत अखरावती और मसला की प्रतिया पृ० २५।

३—महतगुहचरन प्रसाददास के पास जायसी का कई हस्तलिखित प्रतिया के साथ मसला भी है।

प्रस्तुत खन्ति प्रति नागरी अक्षरा में है। (परिशिष्ट म मसला या मसलानामा को दिया गया है)।

बर्ण्य और उसका वशिष्ट्य

मसला की कथा अनात है। किसी अय प्रति के प्राप्त होने पर ही निश्चय पूर्वक कुछ कहा जा सकता है। फिर भी प्राप्त खंडित प्रति के आधार पर कहा जा सकता है कि इस ग्रंथ में जायसी ने मसला (—मसल या मसतो) के सुंदर प्रयोग किये हैं। अवधी भाषा और अवध जनप्रद में प्रयुक्त मसला को जायसी ने अत्यंत जीवन्त रूप में उपस्थित किया है। इन प्राप्त मसला के आधार पर यह भी कहा जा सकता है कि मसला की प्रति से मुहावरे लोकोक्तिओं और कहावतों के क्षेत्र में एक नवीन अध्याय का आरम्भ हुआ है। आरम्भ में कवि ने अल्लाह से मन लगाने की बात कही है—

यह तन अन्ह मिया सा लाई । जिहि की पाई तिहि की गई ॥^१

यहां यह कह देना समीचीन है कि प्राप्त प्रति की प्रत्येक पंक्ति में कोई न कोई कहावत या लोकोक्ति अवश्य प्रयुक्त है। इन कहावतों के कतिपय प्रयोग अत्यन्त भव्य जीवन्त और लोक जीवन के प्रतिनिधि हैं। ज्ञान का सागर अथाह और अनंत है—इसके विस्तार की कोई सीमा नहीं है—इतनी बड़ी सना में एक व्यक्ति का क्या विस्तार—भना जिस घर में सामुनी तरुगी हो उस घर में बहुआ का कौन सिंगार ?

बुधि विद्या के बटक मो हौं मन का विस्तार ।

जेहि घर सामु तरुगि है बहुअन कौन सिंगार ॥^१

जो जिस को पाना चाहता है पाकर ही रहता है। अनाज छाड़कर नोग धुन को पकड़ ही लेता है—

जासा प्रेम सो ध ध पर । नाज छाणि धुन विनिया कर ॥

बहुत सी बातें बनाकर कही जाती हैं किंतु क्या उन बहुत बनाकर कही गईं बाना में कुछ सार अण भी होता है ? छूछ पछोरते समय उड़ उड़ जाता है—

बात बहुत कहे बनाई । छूछ पछोर उडि उडि जाई ॥

इस पंक्ति में बात बहुत बनाकर बहना और छूछ पछोर उडि उडि जाय इन दो

१—मसला की दो हस्तलिखित प्रतियां जायस से प्राप्त हुई हैं। देखिए पा० प्र०

पत्रिका २०१७ अंक १ जनवरी—मार्च।

२—मसला (हस्तलिखित प्रति) पृ० २४।

३—वही पृ० ३।

बहावतो के सुन्दर एव दृष्टांतमूलक प्रयोग दर्शनीय हैं। सत्कार म जीवन अल्पकाल का है और उपहास बहुत है— जीवन थोर बहुत उपहास ।'

यदि निष्प्रेम भाव से जीवन निर्वाह किया जाय तो वह 'यथ है' जिस हृदय में प्रेम नहीं बहा (ईश्वर मा अय) कोई किस प्रकार आ सकता है? भला सुने गाव म कोई जाता है—

बिना प्रेम जो जीव निर्वाहा । सुने गाउ म आव काहा ॥

बुद्ध लोग प्रियतम और प्रेम में प्राथम्य बननाते हैं, किंतु क्या ये दोनों पथक हैं? धान के खेतों के होने की पुष्टि प्यार (पुआन) से ही हो जाती है—

प्रीतम प्रेम कोई कहै आना । धान क धन प्यारहि जाना ॥

यहां प्रियतम और प्रेम की एकता कोई कहै जाना (अय कहना) और धान क खेत प्यारहि जाना, लाकातिया के प्रयोग दर्शनीय हैं।

जहां पाच भूत है वहां सुमति बहा? चाहे फिर ये पाच भूत हो या पाच भूत (इन्द्रिया)~

पाच भूत कोई सुमति न करै ।

घेत को अधिक गहराई पर खादन और गहराई में बीज डालने से अनाज सहज ही उत्पन्न होता है—अकुरित भी नहीं होता—

सहज नाज जाइ सब जर । अधिक पेत जो नीव पन ?

यदि तून अत (परिणाम) को नहीं समझा तो 'यथ बठ रहने का क्या प्रयोजन? अरे अभी ठी तुम कल साधारण से बनिया थे और आज बड़ घना सठ हो गए—

अत न समुनु करसि का बठ । काल्हिहि बनिया आजुहि सठ ॥

अन्त में समझना हाथ पर हाथ धर बठ रहना और 'कल के बनियाँ और आज के सठ मुहावरे यहाँ प्रयुक्त हुए हैं। बसे हा रहना करनी करना और जिसकी लाठी उसकी भंस मुहावरो का प्रयोग—

करनी करहु रहहु का बस । जिसकी लाठी तिसकी भंस ।

पुण्य-पाप एक रूप न जानना, दूध का दूध पानी का पानी मुहावरो के प्रयोग—

पुण्य पाप एक रूप न जानी । दूध क दूध पानी क पानी ।

कवि भाई से नहीं करने की बात कहता है और इ गित करता कि जब कालक्षण (अंतिम क्षण) आ जायगा, तो क्या हो सकता है?

अब साईं सो नेह करे, फिर न यह संगोग ।

काल्हि (?) ते (जो?) पनी उतरी, भई व सही जोग ॥'

साधक कवि कहता है कि अवश्य ही मैंने 'पतनुकवा आम की तरह तुम्हारे रूप को

'हरे लिया है अब या तो आम आएगा या लवेदा अटक जाएगा—

निश्च तोर रूप में हेरा । अब अब कि जाइ पवरा ॥

बिना स्वामी के और कुछ सुहाता नहीं । घया हत्ता—सूखा ही खाती है—

बिनु साईं नहिं और सोहाई । घन जिज (हों तो) रूपा पाई ॥

यदि कर सको तो कुछ नेकी कर तो —

सकहु कछू नेकी ले साधा । पावा भात उडावा पाता ।

'नेकी साथ लेकर चलना और भात खा कर पान उडा देना मुहावरा के प्रयोग यहा दर्शनीय है ।

स्वय देखकर दूसरा को दिखाना ही बुद्धिमानी है—

आपु देखि और सो सिपाव ।

आज जो करना है कर तो अथवा मह सात्तारिक धधा छोड कर तो मरना ही है—

करि ल आजु जहे जो करना । घघा छाडि जाखिर है मरना ।

तू ईश्वर—परम रूपमय—को छोडकर इस माया मोह के जाल में नुब हुआ है

रूप निरजन द्यौं क माया देखि रोमान ।^१

प्राप्त हस्तलिखित प्रति की ये ही उपलब्धि म्या है । १६ वीं शती की अवधि भापा भापा की 'यजवता पुष्य पाय एक रूपन जानी दूध का दूध पानी का पानी, 'जा सो प्रम सो ध ध पर बिना प्रम जो जीन निवाहा बुबि विद्या के कटक म हौ मन का विस्तार जहि घर सामुहि तरुणि है बहुवन कौन सिगार प्रीतम प्रम को" कह आना, अब साईं सो तह कर फरि न यह सयोग निश्च तोर रूप में हेरा, बिन साईं नहिं और सोहाई आपु देखि सो और सिखाव प्रभति तथ्या के प्रकाश म कहा जा सकता है कि यह कृति सबया जायसी की भापा के सच्चि म डली हुई है और है अत्यन्त मनोरजक ।

घाघ और भडूरी की कहावतें हिन्दी म प्रख्यात हैं फिर भी दृष्टाता लोकोक्तियो मुहावरो एव कहावता की दृष्टि से यह ग्रंथ महत्वपूर्ण है । कहावता क आधार पर इस प्रकार उपदेशमूलक दृष्टाता के उत्स्थापन स सम्बद्ध सभभवत यह हिन्दी का अपने ढंग का प्रथम अनमान ग्रंथ है ।^२

१—इसका आग की पक्ति (हस्तलिखित प्रति म) नहा है ।

२—दृष्टय—मसला या 'मसलानामा ।

कथावस्तु का सघटन • मूल स्रोत और अन्य उपकरण

(हस्तलिखित प्रतिया, रचनाकाल और लिपि)

पदमावत की प्राप्त हस्तलिखित प्रतिया

हिंदी साहित्य के विद्वानों के अत्यंत सौभाग्य की बात है कि जायसीकृत पदमावत की हस्तलिखित प्रामाणिक प्रतियाँ पयाप्त सङ्ग्रह में मिली हैं। और शोध करने पर और भी अनेक प्रतियों के उपलब्ध होने की संभावना है। गायान्ताजी प० रामचंद्र गुप्त डा० माताप्रसाद गुप्त प्रो० अस्वरी प्रभति विद्याना की शोधाक परिणामस्वरूप पदमावत की अनेक बहुमूल्य प्रतियों का पता चला है।

प० रामचंद्र गुप्त ने पदमावत का सम्पादन करते हुए चार मुद्रित प्रतियाँ और एक कधी लिपि में लिखित हस्तलिखित प्रति का सहारा लिया था किन्तु उन्होंने इस प्रति का कोई विवरण नहीं दिया है। डा० माताप्रसाद गुप्त ने जायसी कथावली का सम्पादन में सोनेहूँ प्रतियों के आधार पर पाठ-संशोधन का काम किया है। इनमें पाँच प्रतियाँ बहुत ही अच्छी थीं। उनमें से चार प्रतियाँ लन्दन के कामनवेल्थ रिलेशंस आफिस में हैं।

(१) कामनवेल्थ रिलेशंस आफिस, लन्दन की प्रति—मह २१८ पन्ना में है और पूर्ण है। इसमें अनेक चित्र भी दिए गए हैं। इसके प्रतिलिपिकार (इबादुल्लाह अहमद) खान मुहम्मद गोरखपुर के थे। उन्होंने शब्दान ११०७ हि० में किर्ही दीनानाथ के लिए यह पुस्तक लिखी थी।

(२) महाराज वाशीरेश ने सरस्वती-भवन (पुस्तकालय) की प्रति—इसमें कुल २१६ पन्ना हैं। यह प्रति भी पूर्ण है। यह नागरामरो में है। यह फाल्गुन

स० १८१८ की लिखी हुई है।

(३) एम्बिनवरा विश्वविद्यालय के पुस्तकालय की प्रति-इसमें कुल ३३८ पत्र हैं। यह प्रति भी पूरा है। प्रतिलिपिकाल सन ११४२ हि० है। डा गुप्त का कथन है कि यह प्रति अत्यन्त त्रुटिपूर्ण है।

(४) कामनवेलथ रिलेशंस आफिस नदन की प्रति-इसमें कुल १८० पत्र हैं। प्रति पूरा है और फारसी अक्षरों में अत्यन्त सुलिखित है। प्रतिलिपिकाल १११४ हि० है।

(५) कामनवेलथ रिलेशंस आफिस लन्दन की प्रति-इसमें कुल १८४ पत्र हैं। प्रति पूरा है। अक्षर फारसी हैं और लेख अत्यन्त सुन्दर हैं। लिपिकार रहीम दाद खा शाहजहापर। प्रतिलिपिकाल ११६६ हि० है।

(६) काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की प्रति-यह प्रति लीथो प्रेस द्वारा छापी हुई है। इसमें कुल ६३६ पृष्ठ हैं। प्रति फारसी अक्षरों में है। अहमद अली मुंशी द्वारा उद्धृत किया हुआ अनुवाद भी इसी में है। इसका प्रकाशन बानपर से शेख मुहम्मद अजीमल्लाह पुस्तक विक्रेता द्वारा १३२३ हि० में हुआ था। इसकी एक प्रति श्री सयद कल्ले मुस्तफा जायसी के पास भी है। विश्वविद्यालय की प्रति में ७३ से १०४ तक के पृष्ठ नहीं हैं। मुस्तफा साहब की प्रति में ये पृष्ठ हैं।

(७) मुंशी नवलकिशोर की तीसरी प्रति-इसमें कुल ३५३ पृष्ठ हैं। लिपि फारसी है। हाशिए में उद्धृत भावार्थ भी लिखा गया है। टीकाकार हैं श्री हसनअली। प्रकाशन लिपि १८७० ई० है। प्रथम संस्करण १८६५ में छपा था। यद्यपि यह प्रति मुद्रित है किन्तु ऐसा बात हाता है कि इसका पाठ भी मूलतः किसी एक हस्तलिखित प्रति के अनुसार है।

(८) कम्ब्रिज विश्वविद्यालय (किंग्स कॉलेज) की प्रति-यह प्रति भी पूरा और फारसी अक्षरों में सावधानी के साथ लिखी हुई है। सम्भवतः यह प्रति ११५३ हि० की है।

(९) रायन एशियाटिक सोसाइटी बंगाल की प्रति-इसमें कुल १७ पत्र हैं। प्रथम पत्र गायक है। शायद प्रति पूरा है। प्रति कभी अक्षरों में लिखी हुई है। लिपिकार हैं शम्भूनाथ कायस्थ मौजा शरीतारा सलेमपुर ब्राह्मपुर सरकार मुवा विहार मुकाम-अजीमाबाद महान-मुननागज। प्रतिलिपि की लिपि ११६८ हि० स० १८४२ जठ बनी दो, मगनवार है।

(१०) कामनवेलथ रिलेशंस आफिस नदन की प्रति-इसमें कुल २१३ पत्र हैं। प्रति फारसी अक्षरों में सुलिखित है। प्रति पूरा है। सम्भवतः यह प्रति

लगभग २०० वर्ष प्राचीन है ।^१

(११) कामनवेलथ रिलेशंस आफिस लन्दन की प्रति—इसमें २११ पत्र हैं । प्रति फारसी लिपि में है । लिपिकाल नहीं दिया गया है । संभवतः वह १७वीं या १८वीं शताब्दी की प्रतिलिपि है ।

(१२) कामनवेलथ रिलेशंस आफिस लन्दन की प्रति— इसमें कुल ३४० पत्र हैं । प्रति नागराक्षरो में मुलिखित और पूण है । यह सचित्र प्रति है । इसमें ३४० पृष्ठ मूल पदमावत के हैं और ३४० चित्रों के पृष्ठ हैं । चित्र अत्यन्त कलापूर्ण हैं । लिपिकार हैं थान कामथ मिर्जापुर ।

(१३) श्री गोपलचन्द्र सिंह की प्रति (उत्तरप्रदेश सरकार, आफिसर आन स्पेशल ड्यूटी सेक्टरियट लखनऊ)—इसमें पृष्ठसंख्या नहीं दी गई है । प्रति फारसी अक्षरो में अत्यन्त मुलिखित और पूण है । लिपिकार ईश्वरप्रसाद निवास स्थान—गंगा गौरीनी है । लिपिकाल ११६५ हि० और लिपिस्थान वरतारपुर विजनौर है ।

(१४) कामनवेलथ रिलेशंस आफिस लन्दन की प्रति—फारसी अक्षरो में मुलिखित है और पूण है । लिपिकाल सन ३६ (?) दिया हुआ है । लिपिकार का नाम तो नहीं पर पता दिया गया है—मुहम्मद नगर परगना सिधौरा सरकार लखनऊ ।

(१५) महन्त गुरुप्रसाद की प्रति—प्रति नागराक्षरो में और पूण है । लिपि काल स० १८५८ है । मह प्रति हर गाव के डा० जगसरगज जिला मुल्तानपुर के महन्त गुरुप्रसाद के पास है ।

(१६) समद कल्बे मुस्तफा की प्रति—प्रति खडित है । खडित अशा को मुस्तफा साहब ने किसी अय प्रति से पूण करा लिया है ।^१

(१७) मनर शरीफ की प्रति—यह प्रति फारसी अक्षरो में है । इसमें पदमा वन अखरावट और कहारानामा नामक अय हैं । अखरावट की पुणिका में ६११ हि० दिया हुआ है । प्रो० हसन अस्करी का विचार है कि यह प्रति शाहजहाँ के काल में १७वीं शती में लिखी गई थी । इस प्रति के पाठ अत्यन्त उच्च कोटि के हैं ।^१ पटना विश्वविद्यालय ने इसकी एक प्रति कराई है ।

१—जा० ग० डा० माताप्रसाद गुप्त प० ५ (भूमिका) ।

२—जा० प्र० डा० माताप्रसाद गुप्त पृ० ७ ।

३—प्रस्तुत प्रति के अखरावट और कहारानामा वाले अश की फोटो लिपि मरे पास भी हैं । पाठ की दृष्टि से ये प्रतिमा अत्यन्त शुद्ध हैं ।

४—जनन आफ बिहार रिमच सोसाइटी भाग २६ १६५३ पृ० १०४० ।

प्रो० अस्करी का लख अवधी ग्रंथ की एक नई हस्तलिखित प्रति ।

(१८) बिहार शरीफ की प्रति - यह प्रति फारसी लिपि में है। यह ११३६ हि० (सन १७२४) में मुहम्मदशाह बादशाह के राज्य सक्त के पाचवें वर्ष में लिखी गई थी। यह प्रति भा सम्पूर्ण है सुलिखित है और पाठ की दृष्टि से भी मूयवान है। यह प्रति अस्करी पटना विश्वविद्यालय के पास है।

(१९) रामपुर गाय पुस्तकालय की प्रति - यह प्रति अत्यन्त सुन्दर प्रामाणिक और सुलिखित है। लिपि फारसी है। अरबी के जबर जेर पेश आदि के उपयोग में अवधी, भाषा के दोहे चौपाई अत्यन्त सावधानी के साथ लिखे गये हैं। इसमें कुल ६५९ दोहे हैं। चौपाइयों के नीचे प्रत्येक शब्द का फारसी में पर्याय भी दिया गया है। इस प्रति के अन्त में कहरोनामा की एक सम्पूर्ण प्रति है।

(२०) पेरिस की प्रति फ्रांस (पेरिस) के राजकीय पुस्तकालय में भी नागरी अक्षरों में लिखित एक प्रति है।

(२१) लीड की प्रति - लीड के पुस्तकालय में कभी नागरी अक्षरों में भी एक प्रति सुरक्षित है जो बिनगैट पर आधारित है।

(२२) ईस्ट इण्डिया हाउस पुस्तकालय की प्रति - अपने पृष्ठों की प्रत्येक पंक्ति पर चमकीले चित्रों से सुसज्जित यह ७४० फोलियो पृष्ठों की एक सुन्दर पुस्तक है। यह नागरी अक्षरों में लिखी गई है।

(२३) उदयपुर वाली प्रति - महाराज उदयपुर पुस्तकालय में भी पदमावत की एक पूर्ण और सुलिखित प्रति है। इसका लिपिकार १८३८ ई० है।

(२४) बिहार रिसर्च सासाइटी पटना की प्रति - यह प्रति प्रो० अस्करी को मिली थी और उस सासाइटी के पुस्तकालय में सुरक्षित है। यह उर्दू लिपि में लिखी गई है। इसके लिपिकार हैं पटना के भोतानाथ। यह १८वीं शती में लिखी गई थी।

(२५) बसी नक्वी की प्रति - जायस के श्री बसी नक्वी के पास पदमावत की एक सुलिखित और पूर्ण प्रति है। इसकी लिपि नागरी है। गयावनी

१-रजा लाल्मरी रामपुर स्टेट की प्रति - राम कर्तारनामा की प्रति भी है। बम्बई विश्वविद्यालय के पुस्तकालयाध्यक्ष की कृपा से मद्रास इसकी एक भाइयो फिल्म कापी प्राप्त हुई है।

२-जाती सग्रह न० ३१ (गामांदासी ने अपने इस्त्वार दी न तिनरत्पूर ऐ दुई ऐ ऐ दुस्लानी मून के त्तीय सस्करण में इमे फारसी अक्षरों में लिखी गयी कृता है।

(दखिए - हिंदुई साहित्य का इतिहास - गामांदासी पृष्ठ ८४)।

३-लीड के पुस्तकालय के सूची पत्र की संख्या १३४-१३५।

४-इस्त्वार द ता तिनरत्पूर ऐ दुई ऐ ऐ दुस्लानी, वा० १ जायसी।

के रूप में इसमें पद्मावत अक्षरावट कहारानामा और, मसलानामा नामक ग्रंथ संगीत हैं। इसमें लिपिकाल नहीं दिया गया है।

(२६) श्री त्रिभुवन प्रसाद त्रिपाठी का प्रति - जायस धन के सेमरोता जू० हा० स्कूल के प्रधानाध्यापक श्री त्रिभुवन प्रसाद त्रिपाठी के पास भी 'पद्मावत' की एक सुलिखित प्रति है। सम्पूर्ण ग्रंथ में ३३० पृष्ठ हैं। इसमें पद्मावत कहारा नामा मसलानामा एवं अक्षरावट क्रम से संग्रहीत हैं। लिपिकार हैं मदनदास जी।

(२७) उदयपुर स्टेट लाइब्रेरी में पद्मावत की एक हस्तलिपि प्रति है। यह कथी लिपि में है। प्रियमन ने अपने सम्पादन में इसका उपयोग किया था।

(२८) महंत गुरुचरण प्रसाद दास स्याम डाक्टर बद्धरावा, जिना राय बरेली के पास 'पद्मावत' की एक सुलिखित प्रति है।

(२९) न० प्र० सभा खोज रिपोर्ट १९४७-२८७ व पद्मावत की एक हस्तलिखित प्रति का विवरण दिया हुआ है। सभा की खोज रिपोर्टों में पद्मावत के हस्तलेखों की सूची इस प्रकार है-

२०	१०६
२५	२८४ ए० बी०
२६	२८६ बी०
२९	२२५
४२	५३७
४७	२८७ ख

एक नए हस्तलेख का विवरण १९४७-४८ वाली खोज रिपोर्ट में है। इसका प्रतिलिपिकार १९३५ वि० है। यह फारसी लिपि में नागरा में लिखा गया है। लेखक प० रामदीन द्वि० (खो० रि० ४८-४९-५० ई०)।

३०-३१-३२ कथी लिपि की तीन प्रतियाँ का उल्लेख डा० रामकुमार वर्मा ने किया है जिसमें प्रति न० १ का प्रतिलिपिकाल १७५५ ई० है। बतालगढ की (अपूर्ण) प्रति का लिपिकार १७०१ ई० है और प्रति न० २ का लिपिकार १८२२ है। इनके विषय में डा० रामकुमार वर्मा का कथन है कि ये प्रतियाँ बहुत अपुष्ट हैं और इनमें पाठान्तर भी अनेक हैं।

(३३) भारत कला भवन कागा वाली प्रति - यह प्रति कथी लिपि में है।

इधर शांति के सिलसिले में पद्मावत की ओर भी कई हस्तलिखित प्रतियाँ का पता चला है।

पदमावत का रचनाकाल

जायसी ने पदमावत के रचना-काल का उल्लेख करते हुए लिखा है—

सन नौ स सतालिस अह। क्या अरम्भ बन कवि कह।^१

नौ स सतालिस हिजरी (१५४० ई०)^१ में शेरशाह दिल्लीपति हुमायूँ को परास्त करके दिल्ली का सम्राट बन चुका था। इस समय तक वह दिल्ली का सम्राट ही बना था। उसका राज्याभिषेक ७ शवाल ९४८ हि० (अर्थात् २५-२६ जनवरी १५४१ ई०) को हुआ था।^१ जायसी ने शाहे वस्त के रूप में दिल्ली के सुल्तान शेरशाह के बंधव का अत्यंत बंधववत् उल्लेख किया है—

सेरसाहिं दिल्ली सुल्तानू। चारिउ खण्ड तपइ जस भानू ॥^१

९४७ के अनक पाठांतर पदमावत की प्रकाशित-अप्रकाशित अनेक प्रतियों में मिलते हैं।

(१) ग्रियसन तथा सुधाकर द्विवेदी ने ९४७ हि० पाठ ही स्वीकार किया है।

सन नौ स सतालिस अहा। क्या अरम्भ बन कवि कहा ॥^१

(२) जायसी ने ९४७ हि० (१५४०-४१ ई) में अपने पदमावती काव्य की रचना की थी।^१ मिथ्र बघुओ न ९२७ पाठ माना है।

(३) प० रामचंद्र शुक्ल ने जा० प्र० के प्रथम संस्करण में सतालिस पाठ

दिया था किंतु द्वितीय संस्करण में उन्होंने नव स सत्ताइस पाठ को ही स्वीकार किया और लिखा कि 'नव स संतालिस' पाठ माना गया था। फारसी लिपि में सत्ताइस और सत्तानिश्च में भ्रम हो सकता है। इस पदमावत का एक पुराना बगला अनुवाद है उसमें भी नव स सत्ताइस पाठ माना गया है।

शेख मुहम्मद जाति जखन रचित ग्रय सख्या सप्तविंशतवशत।

यह अनुवाद अराकान राज्य के वजीर मगन ठाकर ने सन १६५ ई के आसपास आला-उजालो नामक एक कवि से कराया था।^१

१-जा० प्र० हिन्दुस्तानी एकेडमी पृ० १३१ (२४।१)।

२-एलिमेटस आफ यूइश ऐण्ड मोहमडन कनडस पृ० ४६१।

३-ना० प्र० पत्रिका भाग १२ पृ० १४२ (पदमावत की तिथि और रचनाकाल)।

४-पदमावत (स्तुति खण्ड) १३।१ से आगे।

५-पदमावति ग्रियसन तथा सुधाकर द्विवेदी पृ ३५।

६-हिंदुई साहित्य का इतिहास गार्साँद तासी पृ ८६।

७-मिथ्र बघुविनोद भाग १, पृ० २६० (प्र० स०)।

८-जा० प्र०, प० रामचंद्र शुक्ल (भूमिका) पृ० ६।

डा० माताप्रसाद गुप्त का भा कुछ प्रतियो (द्वि० ५, त० २, प० १) में नौ म सत्ताइस पाठ मिला है, किन्तु जा० ग्र० म उहोंने नौ स सतात्रिस' पाठ का ही मूल पाठ माना है।^१ डा० गुप्त का दो प्रतिया म (द्वि० ७ और ३) पँतालिश पाठ मिला है।^१

(५) प० चन्द्रवली पाण्डय न भी ६२७ हि० की पदमावत का रचनाकाल माना है।^१

(६) ए० जी० शिरफ और डा० रामकुमार वर्मा ने भी नौ म सतालिस पाठ उपयुक्त माना है।

(७) आचाय हजारीप्रसाद द्विवेदी^१ प० परशुराम चतुर्वेदी,^२ डा० कमलकुल थ्रष्ट प्रभृति विद्वानो ने ६२७ हि० का ही पदमावत का रचनाकाल माना है।

गोपालचन्द्र जी^१ की प्रति म नौ स सत्ताइस' पाठ है। भारत कलाभवन, काशी की कथी प्रति म ६३६ हि० (१५३०) पाठ मिलता है।

सन नौ स छत्तीस जब रहा। कथा उरेहि वएन कवि कहा।^१

बिहार शरीफ^{११} की प्रति म ६४८ हि० पाठ मिलता है। रामपुर स्टेट पुस्ताकलय^{११} की प्रति म ६७७ हि० पाठ है।

उपयुक्त विवचन स स्पष्ट है कि विभिन्न प्रतियो के माध्यम स पदमावत की रचना नियि से सम्बद्ध पाच नियियाँ - ६२७ हि०, ६३६ हि० ६४५ हि० ६४७ हि० और ६४८ हि० म हमारे समक्ष विद्यमान हैं। इस सम्बन्ध म डा० वासुदेवशरण अग्रवाल का मत विशेष उल्लेखनीय है।

१-जा० ग्र० डा० माताप्रसाद गुप्त पृ० १३५।

२-वही (पाद दिष्पणी)।

३-ना० प्र० प० नाग १२, पृ० १४२।

४-पदुमावति ए० जी० शिरफ भूमिका।

५-हि० सा० का आ० इ०, डा० रामकुमार वर्मा, पृ० २३-२४।

६-हिदी साहित्य, आचाय डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी, पृ० २६०-४१।

७-सूफी काव्य-मयह प० परशुराम चतुर्वेदी, पृ० १०४।

८-हिदी प्रेमाख्यानक काव्य (प० ४१-४२) और म० मु० जायसी, डा० कमल कुल थ्रष्ट, प० २४-२५।

९-पदमावत (प्राक्कथन) डा० वासुदेवशरण अग्रवाल प० ३३।

१०-भारत कला भवन की कथी प्रति।

११-त्रै० बी० एस० आर भाग ३६,।

१२-पदमावत डा० वासुदेवशरण अग्रवाल, प० ३३।

१६२७ हि० पाठ के पक्ष में एक तक यह भी है कि अपेक्षाकृत किनष्ट पाठ है। विपक्ष में यही युक्ति है कि शेरशाह के राज्यकाल से इसका मूल नहीं बढता। मैंने अब करते समय शेरशाह वाली युक्ति पर ध्यान देकर १४७ पाठ को समीचीन निखाया किन्तु अब प्रतियों की बहुल सम्मति और किनष्ट पाठ की युक्ति पर विचार करने से प्रतीत होता है कि १६२७ मूल पाठ था और जायसी ने पदमावत का आरम्भ इसी तिथि में अर्थात् १५२१ ई० में कर दिया था। ग्रन्थ की समाप्ति अब हुई कहना कठिन है किन्तु कवि ने उस काल के इतिहास की कई प्रमुख घटनाओं को स्वयं देखा था। बाबर के राज्यकाल का तो स्पष्ट उल्लेख है ही (आखिरी क्लाम ८।१)। उसके बाद हुमायूँ का राज्यारोहण चौसा में शेरशाह द्वारा उसकी हार (१५५५ हि०) कन्नौज में शेरशाह की उस पर पण विजय (१५७७ हि०), फिर शेरशाह का दिल्ली के सिंहासन पर राणाभिषेक (१५८८ हि०) ये घटनाएँ उनके जीवन-काल में घटीं। मेरे मित्र श्री शम्भुप्रसाद बहुगुणा ने मुझ एक बुद्धिपूर्ण सुचाव दिया है कि पदमावत के विविध हस्तलेखों की तिथियाँ इन घटनाओं से मेल खानी हैं। हि० १६२७ ई० में आरम्भ करके अपना काव्य कवि ने कुछ वर्षों में समाप्त कर लिया होगा। उसके बाद उसकी हस्तलिखित प्रतियाँ समय-समय पर बनीं रहीं। भिन्न तिथियाँ वाला सब संस्करण समय की आवश्यकता के अनुकूल चानू किये गये। १६२७ वाली कवि लिखित प्रति मूल प्रति थी। १६३६ वाली प्रति २ की मूल प्रति हुमायूँ को राज्यारोहण की स्मृति रूप में चालू की गई—हि० १५५५ वाली प्रति जिसका माताप्रसाद जी गुप्त ने पाठान्तर में उल्लेख किया है। शेरशाह की चौसा-युद्ध में हुमायूँ पर विजय प्राप्त करने के उपरांत चालू की गई। १५७७ वाली चौथी प्रति शेरशाह की हुमायूँ पर कन्नौज-विजय की स्मृति का संकेत देती है। पाचवीं या अन्तिम प्रति १५८८ हि० की है जब शेरशाह दिल्ली के तख्त पर बैठकर राज्य करने लगा था। मूल ग्रन्थ जमे का तसा रहा। केवल शाहे वरून बाहा अश उस समय जोड़ा गया। पदमावत जैसे महाकाव्य की रचना के लिए चार-पाँच वर्षों का समय लगा होगा। (और शेरशाह को आशीर्वाह देनेवाली) घटना के पश्चात् ही शाहे वरून की प्रशंसा बाना अश शरूम जोड़ा गया होगा।

इस विषय में निवेदन है कि जब जायसी ने 'मसनवीशीली' में और चार-पाँच वर्षों के समय में पदमावत की रचना की थी और समय की आवश्यकता के अनुसार पाँच प्रतियाँ चानू की गईं तो स्पष्ट है कि पदमावत की एक नहीं अपितु पाँच प्रतियाँ प्रामाणिक हैं और जब कि इन प्रतियों में पर्याप्त पाठभेद भी मिलता है, तो यह भी स्पष्ट है कि ये अश प्रनिप्त नहा है—ऐसी स्थिति में हिन्दी में एक

नहीं अपितु जायसी कृत पात्र 'पदमावत' हो जाते हैं। डा० माताप्रसाद गुप्त या किसी अन्य विद्वान्' के पदमावत के वज्ञानिक सम्पादन का पुन क्या अर्थ। दूसरा जबलन्त प्रश्न है शाहेवकन का। मसनवी पद्धति के अनुसार प्रायः सूफी कवियों ने प्रथम में ईश्वर गुरु आदि के स्तवन के अनंतर शाहेवकन का उल्लेख किया है और '६२७ हि० में आरम्भ करके जायसी के ४-५ वर्षों के समय में इसे पूरा किया तो अवश्य ही तत्कालीन बादशाह का उल्लेख किया होगा - किन्तु पदमावत की किसी भी प्रति में सिक्न्दर लोदी या इब्राहीम लोदी (६२७ हि०) बाबर (१५२६) या हुमायूँ (६३६ हि०) में से किसी का भी उल्लेख नहीं मिलता। पुन यदि ये सस्करण समय की आवश्यकता के अनुकूल चालू किये गये' ता इन विभिन्न तिथियों वाले पदमावतों में उनके शाहेवकन कहा हैं ? उनके वणन भी तो अवश्य अपेक्षित हैं ? इस कथन से यह भी निष्कर्ष निकलता है कि जायसी एक ऐसे दरबारी कवि थे, जो अनेक युद्धों और अनेक बादशाहों की विजय या राज्याभिषेक के उपलक्ष्य में अपने काव्य के नये नये सस्करण निकालते चलते थे। ६३६ ६४५ और ६४८ का समयन जो एक एक प्रतिपा में मिलता है - हम किसी निश्चित परिणाम तक नहीं पहुँचाता। इसलिए स्पष्ट है कि यह मात्र प्रतिलिपिकारों का प्रभाव है।

आचाप प० चन्द्रवली पांडेय का कथन है कि सन ६२७ हि का जीवन-काल १२ दिसम्बर सन १५२० स ३० नवम्बर १५२१ ई० तक था। यह वह समय था जब इब्राहीम लोदी और उसका सहोदर भाता जलाल परस्पर सिंहासन के लिए लड़ रहे थे जा सिक्न्दर के नाम पर रो रहा था। अब मथुरा के हिन्दू यमुना में स्नान करन का साहस कर लेते थे, बाल बनवा सकत थे और अपनी भृतियों को बूधर खाने में जाने से रोक सकते थे। सिक्न्दर का जातक इब्राहीम भोग रहा था। जनता उससे प्रतिकूल पडती थी। अनादर अपमान एवं अत्याय में वह सिक्न्दर का चचा निकला। बगाल का हुसेनशाह कभी सत्य पीर की उपासना कर सदा के लिए सो गया था। साराश यह कि एक भी बादशाह उस समय ऐसा न था जो जायसी का शाहेवकन होता। सम्भव है कि जायसी ने पवित्र पदमावत को उन शासकों का वचाकर रखना ही उचित समझा हो और उनकी बदनामी में शाहेवकन को स्थान न दिया हो।

प० चन्द्रवली पांडेय की उपयुक्त सम्भावना विशेष महत्व नहीं रखती। जायसी ६२६ हि० वाली प्रति में शाहेवकन स रूप में हुमायूँ का उल्लेख कर सकते थे अथवा इसके पूर्व के बादशाह बाबर का उल्लेख कर सकते थे (जब कि उन्होंने आखिरी बलाम ८१ में बाबर साह छात्रपति राजा कहकर उसका उल्लेख भी किया है।) परन्तु अभी तक प्राप्त समस्त प्रतियों में केवल गैरशाह का उल्लेख है।

दिल्ली के मुनतान-पद पर शेरशाह का अभिषेक २५ जनवरी १५४२ ई०

का (ता० ७ शवाल हि० सन ६४८) को हुआ था।^१ ६४७ हि० को पदमावत का रचना-काल मानने पर यह कठिनाई उपस्थित होती है कि जायसी ने शेरशाह को दिल्ली का सुलतान कहा है किन्तु ६४७ हि० में शेरशाह का राजतनक नहीं हुआ था। 'पदमावत का आरम्भ ग्रीष्म ऋतु में संभवतः दशहरा को ही हुआ। यदि हमारा अनुमान ठीक है तो उस समय शेरशाह दिल्ली का सुलतान नहीं था। वह तो अगस्त के लगभग दिल्ली में पहुँचता है। अतः इस दृष्टि से ६४७ हि० को ठीक मानना उचित नहीं जान पड़ता।^२

आचार्य चन्द्रबली पांडेय की संभावना के अनुसार यदि पदमावत का रचना काल ग्रीष्म ऋतु में माना भी किया जाय तो भी ६३७ हि० को पदमावत का रचना काल मानने में कोई बाधा उपस्थित नहीं होती। कन्नौज के युद्ध में हुमायूँ पर शेरशाह की विजय १७ मई १५४ ई० को (६ दिन बीते ६४७ हि०) हुई थी। अतः ६४७ हि० में शेरशाह का दिल्ली सुलतान के रूप में वभवत उल्लेख असंगत नहीं है। पदमावत का निर्माणकाल कवि ने इस प्रकार दिया है—

सन नव स सत्ताइस अहा । क्या अरभ बन कवि कहा ॥

इस का अर्थ होता है कि पदमावत की क्या के प्रारम्भिक बचन कवि ने सन ६२७ हि० (१५२० ई० के लगभग) में कहे थे। पर प्रारम्भ में कवि ने मसनवी की रूढ़ि के अनुसार शाहेबक शेरशाह की प्रशंसा की है जिसके शासन-काल का आरम्भ ६४७ हि० अर्थात् १५४० ई० में हुआ था। इस दशा में यही सम्भव जान पड़ता है कि कवि ने कुछ थोड़ा से पद्य तो सन १५२० ई० में ही बनाए थे पर पद्य को १६ या २० वर्ष पीछे शेरशाह के समय में पूरा किया। इसी से कवि ने भूतशक्ति का अहा (—या) और अहा का प्रयोग किया है।^३ 'प० रामचंद्र शुक्ल ने इस संभावना का कारण बताते हुए लिखा है— (जा प्र० के) पहले संस्करण में दिए हुए सन को शेरशाह के समय में लाने के लिये नव स सत्ताइस पाठ माना गया था। फारसी लिपी में सत्ताइस और सत्तालीस में भ्रम हो सकता है। पर पदमावत का एक पुराना बगना अनुवाद है उसमें भी नव स सत्ताइस पाठ माना गया है—

शेख मुहम्मद जानि जखन रचति ग्रंथ सख्या सपविश नवचन ।

यह अनुवाद अराकान राज्य के वजीर मगन ठाकुर ने सन १६५० ई० के आसपास आलो उजालो नामक एक कवि से कराया था।

१—ता० प्र० पत्रिका, भाग १२ पृ० १४२।

२—ता० प्र० पत्रिका भाग १२ पृ० १२६।

३—जा० प्र० प० रामचंद्र शुक्ल (भूमिका) पृ० ६। —

४—वही।

और 'कहा पुकार-पुकार कर कह रहे हैं कि जायसी भक्तकाल की बातें कह रहे हैं, वतमान की नहीं।

प० चंद्रबला पाण्डे^१ न भी इसा प्रवार की कुछ बातें कही हैं— 'अहा डा० माताप्रसाद गुप्त^२ ने १६ हस्तलिखित प्रतियों के वृत्तान्तिक परीक्षण के अनन्तर 'अहा' और कदा के स्थान पर 'अहै' और 'कहै' पाठ स्वीकार किया है। उन्हे केवल एक प्रति (प्रति १) में अहा और कहा पाठ मिला है। इस १५ प्रतियों में प्राप्त होनेवाले 'अहै' और 'कहै' पाठ को अस्वीकार करने का कोई कारण नहीं है। जत 'गुलजी और पाडपजी का भूतकाल की आधा का सहज ही समाधान हो जाता है। जहां तक आलो उजालो वाले सप्तविंश नवशत की तिथि का प्रश्न है वह अवश्यमेव मत्त्वपूर्ण है (इस पर हमने आग गहन विचार प्रस्तुत किया^३ है) इसका कारण यह है कि यह अनुवाद १२४० ई० के आसपास का है। पदमावत की अभी तक एक भी इतनी प्राचीन हस्तलिखित प्रति नहीं प्राप्त हो सकी है। यह तो सुनिश्चित है कि आलो-उजालो^४ ने पदमावत का अनुवाद किसी हस्तलिखित प्रति से ही किया होगा। फारसी विधि की धर्मोत्तरितावट के कारण अनुवादक ने सतानिस का मत्ताइस पत् लिया है। यह भी संभावना का जा सकती है कि ऐतिहासिक ज्ञान से अभाव के गेरशाह की प्रशंसा और ६२७ हि० वाले असामान्य को अनुवादक ने लक्षित नहीं किया।

डा० कमलकुल श्रेष्ठ^५ न भी ६२७ हि० की अफली में अपना राग मिलाया है। उन्होंने शुक्लजी के मत का विच्छेपण करते हुए वगला अनुवाद का उल्लेख किया है तदुपरांत वे लिखते हैं— प्रस्तुत लेखक १५२० ई०-६२७ हि० को मानने वाले विद्वानों में मतवत् रचते हुए एक और तब ६२७ हि० के पक्ष में रचता है वह यह कि जायसी न अपना अंतिम ग्रंथ 'आरारी (?) बनाम' १५०६ ई०-६३६ हि० में लिखा था। यह अन्तर्दृष्टि (?) से प्रमाणित एवं निर्विवाद है जब कि कवि का आखिरी कलाम अर्थात् कवि की अंतिम रचना ६३६ हि० की है तो पदमावती निश्चय रूप में उससे पूर्व का हागी।^६ अब मैं कुलश्रेष्ठ जी मदान छोड़कर भागते हुए (इस समस्या को छोड़कर) वह ही देते हैं, प्रस्तुत पुस्तक के लिए यह विचार विषय मत्त्वपूर्ण नहीं होना।^७ जत्र कवि ने अंतिम रचना ६३६ हि० में बनाई

१-जा० प्र० पत्रिका भाग १२ पृ १२५-२६।

२-जा० प० डा० प्र० माताप्रसाद गुप्त प० १५५। ३-दक्षिण विशेष।

४-ए हिंदी आफ बंगली लंग्वज ट्निशचंद्र सेन, प० ६।

५-हिंदी प्रेमास्पानव काय डा० कमल कुलश्रेष्ठ, प० ४१-४२।

६-वही, प० ४२।

तो ६४७ हि० म पद्मावती की कथा आरम्भ ही कस की होगी।

बहने की आवश्यकता नही कि आखिरी कलाम का कवि की अंतिम रचना कहता नितान्त भ्रात है। आखिरी कलाम का कवि कृत अंतिम ग्रन्थ (प्रलय आखिरी समय)से सम्बद्ध कलाम (कलाम-साहित्यिक कृति) है। इस ग्रन्थ म अंतिम समय का वर्णन कायात्मक शान्ति म किया गया है।^१

'आखिरी कलाम की रचना-तियि ६३२ हि० है। डा० कृष्णधर ने ही लिखा है कि बाद मे जब कि साग ग्रन्थ लिख जाना गया तो गोरशाह के समय म कवि ने उसकी भूमिका निरखी। उसम भूमिका निरखी का प्रयोग करते हुए प्रारंभ काल और सामयिक राजा के रूप म गोरशाह की प्रशंसा की।^२

इस प्रकार कृष्णधर जी ने ६२७ हि० को ही पद्मावत का रचनाकाल माना है। यहाँ पर प्रश्न यह उठता है कि जब जायसी कृत पद्मावत जा ६२७ हि० म गुरु हुआ था अथवा पडा हुआ था। जायसी को इमे भी पूरा करना था (डा० कृष्णधर के शब्दों में गोरशाह के समय मे भूमिका लिखनी थी) तो वे अपनी एक रचना का नाम अंतिम रचना क्यों रखने? यदि इमे अंतिम रचना मान भी तो यह भी मान लेना पडगा कि ६३६ हि० तक पद्मावत की रचना पूर्ण होचकी थी। स्पष्ट ही कृष्णधर जी के कथन म याघात एव असंगति दाय हैं। इतना निश्चित है कि पद्मावत की समाप्ति गोरशाह के समय म ही हुई है निष्कपत कहा जा सकता है कि आखिरी कलाम का कथन गान में कृष्णधर जी ने भूत कर दी है आखिरी कलाम जायसी की अंतिम रचना नहीं है। अन्तरी रचना के पश्चात पद्मावत और 'चित्ररेखा का रचना हुई है। अन्त दोनो ग्रन्थों के चर्चावस्था के वर्णन एव पद्मावत म आए हुए—'दोह असीस मुहम्मद करहु जगहि जगराज—गोरशाह का आशीष देने के उल्लेख अवश्य ही 'बाबरसाह छत्रपति राजा (जा० क० ८। १) के परवर्ती हैं। पद्मावत को ६२७ हि० की रचना मानने का प्राय सिद्धांत का तब है कि शाह बक्त के रूप म गोरशाह के वर्णन पराक्रम आदि के वर्णन जाना जा ६४७ हि (६४८ हि० चंद्रवती पाठ्य के अनुसार) म पद्मावत की समाप्ति के पश्चात जोड दिया गया। पद्मावत २० वर्षों म लिखा गया हो या ४-५ वर्षों के समय में यह बात स्वीकार्य है किन्तु काव्य की रचना के अनन्तर गोरशाह की प्रशंसावाता अश (भूमिका की भांति) इसम जोड दिया गया है—यह बात वर्तमान युगीन लेखकों के लिए उपयुक्त है जायसी के लिए नहीं। यह बात ६२७ हि० का कति थी सगति

१-मनिव मुहम्मद जायसी डा० कमल कृष्णधर १० २४।

२-द्रष्टव्य इमो प्रवचन का अध्याय ३ आखिरी कलाम।

३-मनिव मुहम्मद जायसी डा० कमल कृष्णधर १० २५।

बढाने के लिए कही जाती है। स्तुति-खंड के अंत में लिखी गई यह बात भी समीचीन नहीं प्रतीत होती। प्रायः सूफ़ी कवि प्रथारम्भ में ही जगत बं करतार की बढना करते हैं गुरू का स्तवन करते हैं शाहबक्त् का उल्लेख करते हैं। मसनवी शैली के प्रथम काव्य के लिए ये बातें आवश्यक मानी गई हैं। अंत स्तुति-खंड निश्चित रूप से पहले ही लिखा गया था। ६२७ हि० की अपक्षा ६४७ हि० को अधिक प्रामाणिक मानने के लिए यह भी एक अत्यंत प्रबल तर्क है। जायसी भारतीय महाकाव्य की शैली में एक मुख्य रूप से मसनवी शैली के (समवयात्मक रूप) में अपना काव्य सजित करन जा रहे थे। उन्होंने प्रारम्भ में ही नियमानुसार समस्त जगत बं करतार राजा की बढना की है। उसी ने सृष्टि की उत्पत्ति की है मुहम्मद साहब का पण्य स्मरण भी (प्रथम की निर्विघ्न समाप्ति के लिए ईश्वर और मुहम्मद पीर जानि) प्रथम के आरम्भ में मसनवी पद्धति के अनुसार किया है। मुहम्मद साहब, उनके चार पार तदनंतर ४५ पक्तियों में शेरशाह के बंभव एवं प्रताप का वर्णन पश्चात् पीर सयद अशरफ गुरू महदी आदि का उल्लेख है पश्चात् प्रथम की रचना तैयि बतार्ई गई है।

“सन नी स सतालिस अहै। क्या अरम्भ बन कवि कहै।

महात्मा तुनसीदास ने भी रामचरितमानस के प्रारम्भ में बढनादि के पश्चात् प्रथारम्भ की तैयि दी है—

सवत सोरह सत्कतीसा। करउ क्या हरिपद धरि सीसा।
नीभी भोमवार मधुमासा। एहि दिन रामचरित परवासा ॥^१

सिघल दीप वर्णन के प्रारम्भ में कवि ने लिखा है—

सिघलदीप क्या अब गावों। औ सो पदुमिनि वरनि सुनावों ॥^२

पक्ति के अब गावों औ सो पदुमिनि पद द्रष्टव्य है। इन पक्तियों के ठीक पहले कवि ने लिखा है—

सन नी स सतालिस अहै। क्या आरम्भ बन कवि कहै ॥

सिघलदीप पदुमिनि रानी। रतनसन चितउर गत् आनी ॥^३

इन पक्तियों में भी स्पष्ट है कि स्तुति खंड समाप्त करने और सो पदुमिनि का इंगित करन के पश्चात् ही कवि ने सिघल दीप वर्णन का आरम्भ किया। इस प्रकार यह कथन महत्वहीन हो जाता है कि शेरशाह वाला अर्थवाद में जोड़ा गया है और ६४६ हि० सन में जायसी के प्रथारम्भ की बात सुन्दर और प्रमाणित

१—रामचरित मानस बालकाण्ड।

२—जा० प्र० डा० माता प्रसादगुप्त पृ १३६।

३—बही, पृ १३५।

हो जाती है।

डा० माताप्रसाद के समक्ष शुक्लजी की अपेक्षा पदमावत की हस्तलिखित प्रतिया अधिक थी। शुक्लजी^१ ने चार मुद्रित एवं एक हस्तलिखित प्रति के आधार पर पदमावत का संपादन किया था। डा० माताप्रसाद गुप्त^२ के समक्ष १६ हस्त लिखित प्रतिया थी। इन सोलह प्रतियों में तीन प्रतियों में सत्ताइस और एक प्रति में अष्टा और कहां पाठ मिले थे, दो प्रतियों में सत्तालिस के स्थान पर पत्तालिस पाठ भी मिले थे। इन समस्त प्रतियों का वनानिक ढंग से संपादन करते हुए उन्होंने इन नौ से सत्तालिस अष्टा पाठको ही मूल पाठ माना है।^३

पदमावत की एक अत्यंत सुन्दर प्रति रामपुर स्टेट के राज पुस्तकालय में सुरक्षित है। यह प्रति अत्यन्त प्रामाणिक है। इसे १६७५ ई० में मुहम्मद शाकिर नामक सूफी संत भक्त ने अपने उपयोग के लिए लिखा था। डा० माताप्रसाद गुप्त के पाठों से यह विलक्षण मेल खाती है। इस प्रति में रचनाकाल ६४७ हिजरी दिया हुआ है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि त्रिपिठ और त्रिपि के ग्रंथ के कारण ६४७ मूल पाठ को ६२७ पढ़ा गया और एक बड़ा विवाद का जन्म हुआ। गार्गाद तासी ब्रियसा तथा प्रो० हसन अस्करी की मायताएँ रामपुर स्टेट पुस्तकालय की अत्यन्त महत्वपूर्ण प्रति डा० माताप्रसाद गुप्त की ११ प्रतियाँ एवं उनके संपादन आदि के साक्ष्य एवं उपयुक्त विवेचन के आधार पर निष्पत्त यह स्पष्ट है कि पदमावत का प्रारम्भ ६४७ हि० में ही हुआ था और यह ग्रंथ ६४९ हि० के पूर्व समाप्त हो चुका था।

पदमावत की लिपि एक सर्वेक्षण

हिन्दी साहित्य के विद्यार्थियों के समक्ष पदमावत की आदि प्रति के मूल अक्षरों के विषय में एक बहुत बितडावाद-सा खडा कर दिया गया है। कुछ विद्वान उसे निश्चित रूप से फारसी अक्षरों में कुछ विद्वान नागराक्षरों में और कुछ विद्वान कभी अक्षरों में लिखा हुआ कहते हैं।

सबसे पहल गार्गाद तासी ने [१८३६ ई० में] लिखा कि जायसी ने ६४७ हि० (११४०—४१ ई०) में पदमावती काव्य की रचना की। यह रचना जो हिन्दी में लिखी गई है या तो फारसी अक्षरों में या देवनागरी अक्षरों में लिखी गई

१—जा० प्र० प रामचन्द्र शुक्ल वक्तव्य प० १।

२—जा० प्र० डा० माताप्रसाद गुप्त भूमिका, पृ० २।

३—वही पृ० १३५।

है और जिसमें ६५०० के लगभग छंद हैं। 'फारसी या दवनागरी अक्षरों में लिखे जाने का कारण यह है कि उन्होंने जिन प्रतियों का उल्लेख किया है उनमें से कई फारसी अक्षरों में हैं और कई नागराक्षरों में। स्पष्ट है कि उन्होंने आदि प्रति के अक्षरों की समस्या पर गहराई से विचार नहीं किया।

डा० ग्रियसन ने लिखा है कि मूलतः पदमावत फारसी अक्षरों में ही लिखा गया था और इसका कारण उनका (जायसी का) धर्म था। 'ग्रियसन के मन से पदमावत के फारसी लिपि में लिखे जाने की बात स्वतः सिद्ध थी।

प० रामचंद्र गुप्त का (सन १८२४ ई०) मत है कि आदि प्रति की लिपि फारसी थी। यज्ञत का एक बड़ा कारण यह भी था कि जायसी के ग्रंथ फारसी लिपि में लिखे गए थे। हिन्दी लिपि में उन्हें पीछे से लागो ने उतारा है।"

बाबू श्यामसुंदरदास का कथन है कि 'पदमावत की प्रतियां अधिकतर उर्दू लिपि में मिलती हैं। संभव है, और अधिक संभव है कि जायसी ने स्वयं उसे उर्दू लिपि में लिखा हो। उर्दू में सत्ताईस और सतालीस लिखन पर उनमें अधिक अन्तर नहीं होता। थोड़े से ग्रंथ में सतालीस का सत्ताईस पढ़ा जा सकता है। उर्दू लिपि की यह कठिनाई जगतप्रसिद्ध है। इसी भूमिका में उन्होंने यह भी लिखा है कि पदमावत का एक बंगाली अनुवाद है जो लगभग सन १६५० ई० में अनुवाद हुआ था और जिसमें ६२७ पाठ हैं। उन्होंने ६२७ पाठ का फारसी में उर्दू अक्षरों के कारण विघटित पाठ समझ कर ६४७ को अधिक पसंद किया।

प० चंद्रबली पाठय ने (१९३१ ई० में) एक लेख लिखकर यह प्रमाणित करने का प्रयत्न किया कि जायसी ने पदमावत की रचना नागरी अक्षरों में की थी। पाठय जी का कथन है कि ग्रियसन, शुक्ल जी, डा० श्यामसुंदरदास आदि लक्षक इस बात पर सावधानी और वैज्ञानिक प्रकार में विचार किए बिना निश्चित निष्पत्ति कर

१—गार्सो तासी हिंदुई साहित्य का इतिहास, प० ८६।

२—इट इन आल सा ड्यू टू हिज रिलिजन दट ही ओरिजिनली गेट इट इन लि परशिफन करेक्टर—मर जाज ग्रियसन सटीक पदुमावती प० ५।

३—प० रामचंद्र गुप्त, जायसी ग्रंथावली (वक्तव्य) प० ६ (प्रथम संस्करण १९२४ त्रितीय संस्करण के प्र० सं० वाले वक्तव्य का परिवर्तित कर लिया गया है)। जा० प्र० (द्वि० सं०) वक्तव्य प० ८।

४—डा० श्यामसुंदरदास, मक्षिण पदमावत, भूमिका प० १२।

५—वही, प० १३।

६—चंद्रबली पाठय का लेख ना० प्र० पत्रिका, वाशा, भाग १२ सं० १९८८ पृ० १०१-१४५।

गय है ।

पाण्डय जी का मत संक्षेप न इस प्रकार है—

जायसी के समय में उर्दू का तो नाम भी नहीं था । 'हिन्दी भाषा को लिखने के लिए फारसी अक्षरों में आवश्यक विचार भी नहीं हुए थे ।'

अर्थात् पाण्डेय जी के मत में जायसी ने उर्दू अक्षरों का प्रयोग नहीं किया क्योंकि उस काल में ऐसे अक्षर वर्तमान नहीं थे ।

मले ही पाण्डेय जी के लेख के समय (१९३१ ई०) यह बात अज्ञान रही हो किन्तु आज तो यह स्पष्ट है कि जायसी के समय में बहुत पहले की उर्दू रचनाएँ हमारे समक्ष उपस्थित हैं । ना० प्र० सभा की खाज रिपोर्ट में पदनावत की एक हस्तलिखित प्रति दफ्तरी की गई है । इसका प्रस्तुत हस्तलेख स० १९ ५ वि० का लिखा हुआ है । इसमें पदमावत के विषय में लिखा है—

सबत पदरह स अशी सात अधिक सम होइ ।

रच्यो जगत हित याग विधि पढ़ जान पथ हाइ ॥

खाज विवरण (२६-२८६ धी) में भी २० का यही है—

सबत पदरह स अशी सात अधिक सब होइ ।

रच्यो जगत हित याग यह पढ़ जान पथ हाइ ॥

इस हस्तलेख की एक विशेषता यह है कि इसमें लिखा है कि विनस्तातीर स्थित गढ़ नामक पुरी के नवाब मुहम्मद ने प्रस्तुत श्रय को फारसी लिपि में नागरी लिपि में कराने की आज्ञा दी । राजा बहादुर बायस्थ फारसी लिपि को पढ़ रहे और प० रामदीन मिथ उस नागरी लिपि में लिखते रहे—

इति श्री जायस नगर वासी मलिक मुहम्मद वृत्त पदमावति भाषा पायी सम्पूर्णम अय लिखना प्रयोजन निष्यत्—

हिन्दी नगर नरेश अपारा । तिहकर वश भयो उजियारा ।

सरिन वितस्ता तीर गढ़ नाऊ । पुरी विन्ति सबकर बल टाऊ ॥

तहाँ नरेश महमूद नामा । मूरवीर बन सब न्ति घामा ।

ईदु तिन घनपरिहि समाना । मूय अभि समजान बपाना ॥

बुद्धि गुनी पन्ति सत्र आव । सिद्धि वीर भूपति सिर नाव ॥

भइ अना नरपनिहि विशयी । फारसी त नागरि पुनि लयी ॥

मह द्वी कातिक माग साहाई । बायथ राजबहादुर गाई ॥

सबत धोनईम स पनीसा । रामदीन द्विज मिथ निपीसा ॥

श्रवण दाम कछु माहि इता, जा मुनि सा लिपि दीन ।

समुक्ति बूनि पथित गुनी विगर बत्तावन दीन ॥

फारसी लिपि से नागरी लिपि बनने में जो कठिनाई होती है वह प्रस्तुत श्लोक से स्पष्ट है। सम्भवतः पद्ममावन के रचनाकाल को १५८७ वि० लिखने में इसके अनिश्चित उनका 'श्रवण शेष' भी कारण था। उन्होंने इस ग्रंथ का नाम 'पद्ममावता' लिखा है। उनके समय पद्ममावन फारसी लिपि में था। यदि उद्गु लिपि तब तक आविष्कृत नहीं हुई थी तो भा फारसी की विशद लिपि में पद्ममावन को लिखने में कौन सी बाधा या कठिनाई थी? पांडेय जी ने (शाहजहाँ के समय में एक ऐसी लिपि प्रचलित हुई जिसका नाम उद्गु पद गया) उद्गु की उत्पत्ति का जो यह अनुमान किया है असंगत है क्योंकि शाहजहाँ के दो-तीन सौ वर्ष पहले के उद्गु लिपि में लिखे ग्रंथ आज उपलब्ध हैं।

पांडेय जी का यह भी मत है कि जायसी का उद्गु हिन्दू जनता में सूफी मत का प्रचार था, इसलिए उन्होंने स्वभावतः नागरी लिपि में लिखा होगा। यदि यह मान लें कि जायसी (सालिकमारी की लाता प्रनिया जटो पर लदबा कर देश में बाटा गई थी) पद्ममावन को प्रकाशित करके प्रचारित करते थे 'तब तो यह बात ठीक हो सकती है, किन्तु जो प्रति जायसी ने अपना हाथ या निखी यह उद्गु की पास रही होगी और जिस लिपि से जायसी अधिक परिचित थे उसी में वह लिखी गई होगी। उन आदि प्रति की कुछ अनवृत्तियाँ की गयीं होंगी वे भले ही नागरी या कथा में लिखी गई हों यह और बात है।'

पांडेय जी का एक प्रबल तर्क यह है कि खखरावट की रचना कभी उण मारा के आधार पर हुई है। अतः जायसी को इस कथी लिपि में लिखना पड़ा। और चूँकि उन्होंने अखखरावट को कथी में लिखा, अतः पद्ममावन को भी इस लिपि में लिखना होगा। खखरावट कथा लिपि में लिखी गई हो यह सम्भव है, किन्तु इस बात में पद्ममावन के भा कथा में लिखे जाने का कोई निश्चित प्रमाण नहीं मिलता। यहाँ पर यह तथ्य भी ध्यान है कि कबीर हुए ज्ञान चौकीसा का ही शली में जायसी ने खखरावट की रचना की है। अपने मत विद्वान या प्रतिपाद्य के स्पष्टीकरण के लिए हमारे देश में प्राचीन काल से ही इस प्रकार की सजनाय की जाती रही है। जायसी ने भी इस पद्धति विनाय का ग्रहीत किया है और इसी कारण यह निश्चयपक्व नहीं कहा जा सकता कि जायसी ने नागरी या कथी लिपि में ही पद्ममावन की रचना की थी।

श्री ए० जी शिरेफ का कथन है कि लिपि के सम्प्रदाय में खखरावट पाण्डेय

१-ना० प्र० पत्रिका वर्ष ४७ सं० २००९ पृ० ३२५।

२-ए० जी शिरेफ पद्ममावनि भूमिका पृ० ४६।

के मत उन्हें ठीक नहीं जचते । पन्मावत से पूव अफरावट के निर्माण की बात वे नहीं मानते । शिरेफ ने अपने मत के समथन म पदमावन के तीन स्थानों की चर्चा की है । उनके मत से ये स्थल फारसी लिपि के मत का पयाप्त अशा म समथन करते हैं । प्रथम स्थान म अवश्य पाठ के सदेह का एक प्रमाण है जो अवश्य ही फारसी लिपि के कारण हुआ । डा० माताप्रसाद गुप्त^१ ने ऐसे अोक उदाहरण प्रस्तुत किए हैं किन्तु उनके पास कोई प्रमाण नहीं है जिसके आधार पर वे कह सकें कि वे भूलें आदि प्रति के अनुकरण करने म हुई । ये भूलें प्रतिनिधि की किसी भी परम्परा मे हुई हो सकती है । अन आदि प्रति के विषय म वन प्रमाण मत्त्वहीन है ।

द्वितीय स्थल म पन्मावन के रचनाकान के पाठ की समस्या है । डा० माताप्रसाद गुप्त की जायसी ग्रथावनी ने स्पष्ट है कि ६२७ का पाठ दो परस्पर असम्बद्ध हस्तलिखित प्रतियो म भिन्नता है । और उसी बंगाली अनुवाक म (सन १६५० ई० के लगभग) । इन परिस्थितिया स हम अनुमान कर सकते हैं कि यह भूल यि आदि प्रति से अनकरण करन म नही हुई तो भी उसके बहुत उपगान गही हुई । किन्तु इस बात से भी किसी निश्चिन निणय पर पहुचा नही जा सकता ।^२

ततीय स्थान पर खण् चाक्षीस (स्त्री भन वणन-गण्ड) के त्तीय दोहे म (४०।२।१) कवि ने सखिनी जानि की स्त्री की विशेषताआ पर प्रकाश डाला है । शुक्नजी के सस्वरण म सखिनी शन है । उन्होंने टिप्पणी म लिख दिया है कि 'कवि ने शायद सखिनी के स्थान पर सिधिनी समझा है ।' ए० जी शिरेफ का कथन है कि जायसी ने फारसी म लिखित पुराने ग्रथो का अनुकरण करते हुए इस शन को भम स पकर सिधिनी समथ और इमनिए निहिनी के गण इस छन म भर दिए । डा० माताप्रसाद गुप्त न बिना कोई भिन्न पाठ दिए सिधिनी शन दिया है । फारसी और उरू की प्राचीन प्रतिया को देखने बाने नोगा की नान है कि इन लिपियो म प्राय लिखने मे क जोर ग म भन नगी रखा गया है । प्राचीन हस्तलेखा की फारसी म सिधिनी औ सखिनी दाना शन एक ही प्रकार से लिखे जाते हैं । यह सत्य है कि इस प्रसंग म जायसी न उर अनि सुभर चीन अति नका आदि पक्तियो म ऐसी स्त्री का वणन किया है जो सिंह के गुणा से समवित है । कामशास्त्र म एने गुणों का वणन नही भिन्नता । यहाँ प्रतिपाद्य इतना ही है कि शुक्नजी का पाठ सखिनी ही प्रामाणिक पाठ है । किन्तु इस शन स या इस स्थान क छदो स जो भी अनुमान निकलने हैं उका पन्मावन की आदि प्रति स कोई सम्बध नहा

१-डा० माताप्रसाद गुप्त जा० प्र० भूमिका पृ २५ २६ ।

२-जा० प्र० पत्रिका वष १७ स० २० ६ प० १२७ ।

३-जा० प्र० (ना० प्र० सभा वाशी) दोहा २ पृ० २०७ ।

है। शिरोफ ने एव और तक लिया है — मेरी समझ में आठवें अध्याय के आठवें छन्द में निश्चित प्रमाण है। इस छन्द का आशय रस और रिस के पन पर निर्भर है। केवल फारसी लिपि में, जहाँ इन दो शब्दों का रूप एक ही है ऐसा पन हो सकता है। किन्तु उस छन्द का स्पष्ट गुण शब्दों में अनुप्रास का प्रयोग है। फारसी अक्षरों के विषय में कोई भी प्रमाण यहाँ नहीं है।

आदि प्रति की लिपि पर विचार करते हुए डा० माताप्रसाद गुप्त का कथन है कि पदमावत की प्राप्त प्रतियों में से तीन (प्र० २ द्वि० ७ त० ३) नागरी लिपि में हैं शेष फारसी या अरबी लिपि में हैं किन्तु इन तीन नागरी लिपि की प्रतियों के भी आदश फारसी या अरबी लिपि में थे।^१

इस प्रसंग में गुप्तजी का प्रथम उद्देश्य यह प्रमाणित करना है कि नागरी और कथी की प्रतियाँ फारसी प्रतियों की प्रतिलिपियाँ हैं। इस बात के स्पष्टीकरण के लिए गुप्तजी ने १३६ शब्दों के 'सामान्य पाठ और प्रति का पाठ' प्रदर्शित किया है। जिनमें नागरी प्रति का पाठ स्थापित पाठ से भिन्न है और जिनमें भेद या मूल इस कारण हो सकी है कि प्रति लेखक फारसी लिपि का अनुकरण कर रहा था। ऐसी मूल प्रधानतया ह्रस्व स्वरो की गड़बड़ी की हैं (जो फारसी लिपि में अलिखित हैं) क ग की गड़बड़ी और इन अक्षरों की गड़बड़ी जिनकी पहचान फारसी लिपि में बिन्दुओं पर निर्भर है। डा० गुप्त द्वारा दिए गए उदाहरणों से यह बात स्पष्ट है कि प्राप्त नागरी प्रतियों की भी आदश प्रति फारसी या अरबी में थी। डा० गुप्त ने इस बात को स्वीकार करने के बावजूद लिखा है — इससे भी बल्कर आवश्यक की बात यह है कि पदमावत की जितनी भी प्रतियाँ प्राप्त हुई हैं चाहे नागरी की हो चाहे अरबी की—सबका मूल आशय कवि की प्रति नागरी लिपि में थी।^२ इस बात को प्रमाणित करने के लिए उन्होंने ६६ उदाहरण दिए हैं। उनके कथन का अर्थ है कि ये पाठ की ऐसी भ्रष्टता के निरूपण हैं जो नागरी प्रति के ही अनुकरण करने में सम्भव हैं। मात्र इसी बात के आधार पर यह मानना कि आदि प्रति नागरी में थी सुसंगत नहीं जान पड़ता। डा० गुप्त ने एव और यह स्वीकार किया है कि प्राप्त नागरी प्रतियों की भी आदश प्रति फारसी थी और दूसरी ओर बिना व्याख्या दिए यह लिखा है कि नागरी की हो चाहे फारसी की सबका मूल आशय कवि की प्रति नागरी लिपि में थी। इन ६६ उदाहरणों में स ५६ ऐसे हैं जहाँ व और व और ओ (या औ) की गड़बड़ी होती है। व और व की गड़बड़ी नागरी में अवश्य होती है और कथी में उनका रूप एक ही है। किन्तु अविक्र उदाहरण व और ओ (या औ) की

१—जा० प्र० (हि० ए०) प० १६।

२—डा० माताप्रसाद गुप्त जा० प्र० भूमिका, पृष्ठ २४।

गडबडी के हैं, अर्थात्, जब और जो (या जी) इत्यादि । यहा दो बातें स्पष्ट हैं । दोना रूप के शब्द एक ही अर्थ के है और नागरी लिपि म उनके रूप समान नही । डा० गुप्त की किनी प्राप्ति के अभाव म हम केवन अनुमान कर सकते हैं कि उनका विचार यह है कि प्रतिलिपि करते समय एक मनुष्य मूल प्रति पढ देता था और दूसरा मनुष्य प्रतिलिपि लिखता था । यह यदि अनिवाय नही, तो साधारण रीति है । ऐसा होते हुए जब पाठक यत्ति नागरी की प्रति पढ देता तो जब और 'जब की गडबडी नागरी लिपि म सम्भव था और पाठक के उच्चारण मे 'जब और 'जी की गडबडी हो सकती थी ।'

इस विचार के विरुद्ध कहा जा सकता है कि व और व की गडबडी भारत की अधिकतर भाषाओं की लिखावट तथा उच्चारण म होती है और जितना पूरब की ओर हम आगे चलते हैं उतनी ही गडबडी बन्ती है यहाँ तक कि बंगाल म व और व म कोई भेद नहा होता, वे एक ही अक्षर होते हैं । पदमावत की भाषा पूरबी हिन्दी है इसलिए स्वाभाविकत व और व की गडबडी हो सकती है चाहे पाठक ने नागरी प्रति से पढ दिया हो चाहे फारसी से । इसके अनिरिक्त जब और जो लगभग समान अर्थ के हैं और जहा समानार्थक नही वहाँ अर्थ का भेद महत्वपूर्ण नही है (जसे सब और सो) हा जहाँ अर्थ समान है बहुत सम्भव है कि वहाँ प्रति लेखक ने उम रूप को ग्रहण किया होगा जिस रूप स वह अधिक परिचित था ।

अर्थ सात उदाहरणो म स चार कुरु म (कूम) और कुरु म की गडबडी के हैं । यह बात अधिक विश्वास योग्य है क्योंकि नागरी म म और म में कुछ अधिक भेद नही है तथा कयी म भेद इससे भी कम है । यह पाठ (अर्थात् कुरु म) सब प्रतियो म है - नागरी प्रतियो म भी । सम्भव है कि अनुनासिकता के आधिक्य के कारण पिछले व्यञ्जन की गडबडी उच्चारण म हुई । या सम्भव है कि कुरु म ही जायसी की बोनी का ठीक शब्द हो क्योंकि कुरु म पाठ इस ग्रंथ म वही नहीं मिलता । किन्तु अकल यही आदि प्रति की नागरी लिपि बानी बान को सिद्ध नही कर सकता ।

अर्थ तीन उदाहरणो म स एक (रई के स्थान पर रू) केवल एक नागरी प्रति में मिलता है इसलिए यह नहा कहा जा सकता कि यह भूल आदि प्रति से प्रतिलिपि करने म हुई । यह भूल उसके अनंतर की भी हो सकती है ।

दूसरा उदाहरण (छार के स्थान पर छार या धार) प्रश्नवाचक चिह्न लिए हुए है । इसका स्पष्ट अर्थ है कि डा० गुप्त ने स्वयं इस पाठ को सन्निध्य माना है । प्रश्न-चिह्न समन्वित शब्द को नागरी लिपि का पक्ष मजबूत करने के लिए प्रस्तुत

१-ना० प्र० पत्रिका पृ ५७ सम्बत २००९ प० ३३६ ।

२-डा० माताप्रसाद गुप्त जायसी श्रयावली, प० ३६० (दोहा ३५२।५७) ।

करना स्वत अत्यन्त अशक्त तक है।

(रातिहु देवस इहै मन मोरें। लागा कन छार ? जेउ तोरें।^१)
 'तीसरा उदाहरण गुप्त जी की ही भूल जान पड़ता है क्योंकि वह क और
 ग की गड़वड़ी का बात है जो फारसी लिपि का गुण है नागरी का नहीं।'

गुप्त जी ने उदाहरण की विविधता प्रामाणिता एव सख्याधिक्य से यह
 प्रदर्शित किया है कि तीना नागरी प्रतिया फारसी प्रतिया की किसी न किसी समय
 की हुई प्रतिलिपिया हैं किन्तु सभी प्रतिया नागरी मूल से उत्पन्न हैं। उनका यह
 प्रयत्न सफल नहीं हुआ, क्योंकि उनके उदाहरण विश्वासजनक नहीं हैं और गुप्त जी
 व्याख्या से उसका समर्थन नहीं करते।

आचार्य प० विश्वनाथप्रसाद मिश्र का कथन है कि जायसी ने अपनी पदमा
 वत किस लिपि में लिखी इसका विचार स्व० चंद्रवली पाठ्य ने किया है। उनकी
 धारणा यही है कि फारसी लिपि में वह जायसी द्वारा न लिखी गई होगी हा सकता
 है कि वह नागरी लिपि में न लिखी गई हो प्रयुक्त कथी लिपि में लिखी गई हो, जो
 लिखने - पढ़ने के लिए पूर्वी अचल में बहुत प्रचलित थी चूंकि उनकी रचना मुसलमान
 बघुओं के मध्य फली इसलिए उसकी अनुलिपिया फारसी लिपि में अधिक
 मिलती हैं।

आचार्य मिश्र जी ने सम्भावनाओं की ओर इंगित करते हुए लिखा है कि
 'हो सकता है कि यह नागरी लिपि में न लिखी गई हा यह तथ्य उचित और सगत
 है, क्योंकि (डा० माताप्रसाद गुप्त को प्राप्त) तीना नागरी प्रतिपां भी मूलत
 फारसी प्रति की अनुवृत्तिया हैं।'

आचार्य मिश्रजी के मतानुसार दूसरी सम्भावना है कि वह 'कथी लिपि में
 लिखी गई हो जो पढ़ने-लिखने से पूर्वी अचल में बहुप्रचलित थी। यह सम्भावना
 दृढ आधार पर स्थित है क्योंकि पदमावत की कई कथी प्रतिया भी मिली हैं। -
 उपयुक्त समस्त मतों के विवेचना के पश्चात् भी लिपि का प्रश्न बसे ही है,
 जैसे वह प्रियसन के समय था। प्रियसन का अनुमान है कि जायसी ने
 इसे फारसी लिपि में लिखा था। ए० जी० शिरेफ ने भी लिखा है कि जायसी
 ने अपनी परिचित भाषा में जन-साधारण के लिए कविता लिखते हुए स्वभावतः उन
 अक्षरों का प्रयोग किया होगा जो उनकी शिक्षा के मूल थे। जायस मुसलमानी

१-ना० प्र० पत्रिका काशी, वष ५७ स २००६, पृ ३४०।

२-यही, पृ० ३४१।

३-डा० माताप्रसाद गुप्त जा० प्र० भूमिका प० १६।

४-पदुमावति ए० जी० शिरेफ भूमिका पृ० ५-६।

शिक्षा का केन्द्र था। 'प्रतियो और पुस्तका की भी परम्परा आधुनिक कान से पहले फारसी लिपि में होनी जाती थी जिससे अनुमान निकलता है कि आदि प्रति उसी लिपि में थीं। डा० गुप्त ने प्रमाणित किया है कि सत्र हस्तलिखित नागरी प्रतियाँ फारसी प्रतियों की प्रतिलिपियाँ हैं (यद्यपि वे मूलप्रति को नागरी की मानते हैं) यह भी एक प्रमाण है। पाठ की जो विभ्रष्टता दो सौ वर्ष से कम की अवधि में हो गई वह भी फारसी लिपि का पक्ष पुष्ट करती है। सूयकांत शास्त्री का भी मत है कि पदमावत की भाषा ठेठ अवधी है और यह ग्रंथ फारसी लिपि में लिखा गया था।'

जायसी का फारसी भाषा पर असाधारण अधिकार था यह सिद्ध हो चुका है। उनकी भाषा अवधी अवश्य है पर उनकी लिपि फारसी ही थी। फारसी में ही उन्होंने अपने ग्रंथ लिखे थे। फारसी से कंधी या नागराक्षरों में उसकी प्रतिलिपियाँ-अनुलिपियाँ हुई हैं इन प्रतियों की विशाल परम्परा का मूल फारसी था और यह सम्भवतः यही कारण था कि उनकी कृति जनता से दूर ही रही। वे हिन्दी की विशाल परम्परा में उपस्थित ही रहे। अलाओल आदि के अनुवाद में जो सन की भ्रष्टता है वह भी फारसी लिपि के कारण है।

उपयुक्त विवेचन के आधार पर हम कह सकते हैं कि पदमावत की आदि प्रति फारसी में लिखी गई थी।

कथानक का मूल स्रोत

जायसी के पूर्व कई प्रमाख्यानक काव्य प्रणीत हो चुके थे। चण्डायन (१३७९ ई०) और मगावती (१५०३ ई०) के ही अनुरूप पदमावत की भी सजना हुई है।

हिन्दी साहित्य में प्रमकथाओं की एक सुदृढ़ परम्परा है। अभी कुछ समय पूर्व तक कितनी ही प्रमकथाओं के नाम मात्र ज्ञात थे कुछ के नाम तक अज्ञात थे। इधर अनेक प्रमगाथाओं का उद्घाटन हुआ है। अतः आज के शोध के छात्र के लिए पहले से बहुत अधिक प्रमकथाओं के अध्ययन का सुयोग प्राप्त है।'

प्रमगाथा-परम्परा का अध्ययन करने पर स्पष्ट हो जाना कि है प्रम गाथाओं का आधार और मूल स्रोत कोई न कोई प्रम कथा होती है - कवि उस कथा में अपने रूपना-विलास का सौन्दर्य भर देता है। इस प्रम कथा को कवि प्राय - दोहा-चौपाई छन्द में प्रबन्ध - काव्य की किसी परम्परा के अनुसार प्रस्तुत करता है इस कथा में लोकतत्व की प्रधानता होती है। ऐतिहासिक तथ्यों की भी लोकवार्ता के

१-प० सूयकांत शास्त्री पदुमावति प्रीफस पृ० ५ (१९३४) लाहौर।

२-डा० सत्येन्द्र मध्ययुगीन साहित्य का लोकतात्विक अध्ययन पृ० २७३।

माध्यम से गहीत किया जाता है।

तुलसीदास, सूरदास आदि महाकवियों ने पौराणिक आख्यानों के माध्यम से अपनी सजनाएँ की हैं किन्तु प्रमाख्यानक परम्परा के कवियों ने अपने काव्यों में कथाओं का वही रूप ग्रहण किया है जो लोक-जीवन की लोक-गीतों की तथा लोक कथाओं की मौखिक (और कभी कभी साहित्यिक) परम्परा में ढल चुका था। 'बचौरदास के निगुण भजन सूरदास के लीला गान और तुलसीदास का रामचरित मानस अपनी अतर्निहित शक्ति के कारण अत्यधिक प्रचलित हो गए और हिंदू जनता का ध्यान अपनी ओर खींचने में समय हुए। परन्तु जनसाधारण का एक विभाग जिसमें घम का स्थान नहीं था जो अपभ्रंश साहित्य के पश्चिमी आवरण से सीधे चला आ रहा था जो गावों की बटकों में कथानकरूप से और गान-रूप से चल रहा था उपेक्षित होने लगा था। इन सूफी साधकों ने पौराणिक आख्यानों के बदले इन लोक प्रचलित कथानकों का आश्रय लेकर ही अपनी बात जनता तक पहुँचाई।' आचार्य प० हजाररी प्रसाद द्विवेदी ने गम्भीरतापूर्वक विचार करते हुए स्पष्ट कर दिया है कि सूफी प्रेम काव्य गुणाडय की वहत्यकथा से चली आती हुई प्रेम-कथाओं की परम्परा में आते हैं। सूफी प्रेमकथाओं का स्रोत लौकिक है ये सभी कथाएँ लोक जीवन की परम्परा से गृहीत हैं। परिमाणत हम देखते हैं कि सभी सूफी प्रेमकाव्यों में अदभुत साम्य है। चदायन मुगावती पन्नावत मधुमालती चित्रावली कनकावली प्रभृति प्रायः सभी काव्यों की कथाओं का मूल स्रोत एक ही है - लोकजीवन की कोई प्रमकथा।

हमारा अनुमान है कि सूफी कवियों ने जो कहानियाँ ली हैं, वे सब हिंदुओं के घर में बहुत दिनों से चली जाती हुई कहानियाँ हैं जिनमें आवश्यकता अनुसार उन्होंने बहुत कुछ हेर फेर किया है। कहानियों का मार्मिक आधार हिंदू हैं। मनुष्य के साथ पशु-पक्षी और पेड़ पौधों को भी सहानुभूति सूत्र में बद्ध दिखाकर एक असंख्य जीवन-समष्टि का आभास देना हिंदू प्रेम कहानियाँ का वशिष्ट्य है। मनुष्य के घोर दुःख पर वन के वृक्ष भी रोते हैं पशु पक्षी भी सदृश पहुँचाते हैं। यह बात इन कहानियों में भी मिलती है।

हिन्दी प्रमाख्यानक परम्परा के कवियाँ में हिंदू जीवन और घम के प्रति उच्च कोटि की धार्मिक सहिष्णुता और सहानुभूति है। इसी के माध्यम से उन्होंने अपनी प्रेम पीर की अभिव्यक्ति का सहज सरल और मनोरञ्जक निरूपण किया है।

- १-डा० हजाररीप्रसाद द्विवेदी हिंदी साहित्य की भूमिका प० ६४-६५ (१९२९)।
 २-डा० हजाररी प्रसाद द्विवेदी हिंदी साहित्य का आदिमान प० ७१।
 ३-प० रामचन्द्र शुक्ल हिंदी साहित्य का इतिहास, प० ७२।

उपयुक्त विवेचन से स्पष्ट है कि लोक प्रचलित कथानक ही प्रेमास्थानको के मूल स्रोत हैं। डा० रामकुमार वर्मा का कथन है कि प्रमत्ताव्य की कथाएँ अधिकतर काल्पनिक ही हैं पर जायसी ने कल्पना के साथ साथ इतिहास की सहायता से अपने पदमावत की कथा का निर्माण किया है। रत्नसेन की सिंहल-यात्रा काल्पनिक है और अषाउद्दीन का पद्मावती के आरूपण में चित्तौर पर चढाई करना ऐतिहासिक।^१ वर्मा जी का प्रस्तुत कथन तक सगत है परन्तु इतिहास के आलोक में ध्यान देने पर स्पष्ट हो जाता है कि पदमावत में चित्तौर दिल्ली अलाउद्दीन के नाममात्र ऐतिहासिक है। गैर समस्त बातें कवि-कल्पना प्रसूत हैं। वस्तुतः जायसी ने अपनी कहानी को मनोमय और लोकाव्यक बनाने के लिए इतिहास की छौंक दे दी है। यह छौंक नाममात्र की छौंक है इसके मूल में ऐतिहासिकता ढ ढना यथ है। इनमें कतिपय नामों की इतिहास सम्मतता के अतिरिक्त सबत्र निजधरी कथाओं के सदृश कल्पना-तथ्य का (फक्ट्स ऐण्ड फिक्शन का) योग रहता है।^१

प्रेमगाथाओं की कथा वस्तु के मूल तन्तु और पदमावत —

प्रेमगाथाओं की मूल कथावस्तु सक्षप में यह है—

- १—नायक किसी दूत या अथ माध्यम से नायिका की प्रशंसा सुनता है या दशन करता है और एक दूसरे पर या दोनों एक दूसरे पर मुग्ध हो जाते हैं।
- २—नायक नायिका को प्राप्त करने के लिए गहत्याग कर चरन पडता है।
- ३—माग के प्रत्यूह—माग में अनेक विघ्न आते हैं किन्तु वह उन्हें पार कर जाता है।
- ४—उसकी रक्षा भी होनी है।
- ५—दवी या अमानवीय शक्ति उसकी सहायता करती है अतः वह नायिका को प्राप्त कर लेता है और घर लौटता है।
- ६—लौटते समय भी विघ्न आते हैं किन्तु वह पार हो जाता है।
- ७—अन्त में मिलन होता है।
- ८—(दुःखान्त)।

किसी न किमी रूप में ये तन्तु प्रायः सभी प्रेमगाथाओं में मिलते हैं। एक आठवाँ तन्तु दुःखान्त का भी हो सकता है जिसमें किसी कारण से नायक-नायिका

१—डा० रामकुमार वर्मा हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास पृ० ५१८।

२—द्रष्टव्य—(आग) पदमावत की ऐतिहासिकता एक पुनः सर्वेक्षण, पृ० १८३ और 'पदमावत का काव्य-सौंदर्य अध्याय १ (इसमें पदमावत की कथावस्तु और मूलस्रोत का सागोपाग विवेचन किया गया है)।

म ध्यवधान हो जाता है और एक या दोनो का मयु हो जाती है ।^१

इन तन्तुओ के समान ही कुछ और महत्वपूर्ण तन्तु हैं जिनका उपयोग प्रायः सभी प्रेमगाथाओ मे हुआ है—

- (१) नख शिख वणन ।
- (२) विरहवणन बारहभासा ।
- (३) युद्ध वणन और
- (४) सती होना ।

इस सूची को और बढ़ाया जा सकता है किन्तु मूलरूप से मुख्य तत्त्व इतने ही हैं । जायसी न भी इन्हीं मूल तन्तुओ के माध्यम से पदमावत का कथावस्तु का सघटन किया है ।

जायसी द्वारा गृहीत 'पदमावती' की कथा

उपर कहा जा चुका है कि भारतवर्ष के सूफी कवियो न लोकजीवन तथा साहित्य मे प्रचलित निजधरी कथाओ के माध्यम से अपने आध्यात्मिक संदेशों का जनता तक पहुँचाने के प्रयत्न किये हैं । कुतबन न मगावती मे लिखा है कि यह कथा पहले से चली आ रही थी । इसमे माग श्रुगार और विरह रस वर्तमान मे मेरे द्वारा फिर उनी कथा को निरपिद्ध किया है । कुतबन का यह दावा अवश्य है कि पहले से ही प्रचलित कथा के अंग को उन्हीने नये तारे से स्पष्ट किया है ।

'पुनि हम खोति अरघ सब कहा ।'^२

और इसी प्रकार का एक अन्त शब्द पदमावत म भी प्राप्त होता है । जो स्पष्ट इंगित करता है कि पदमावती की कहानी जायसी की निजी कल्पना की उपज नहीं है—

सल नौ स मैतारिस अहा । कथा अरम्भ वन कवि कहा ॥
सिंहलदीप पदमिनी रानी । रत्नमेन चितउर गढ आनी ॥
अलजदीन देहली मुलतानू । राघव चैतन कीहू खलानू ॥
मुना साहि गढ छकन आइ । हिदू तुरखन भई लखाई ॥
आदि अज जस गाया अहै । तिलि भाखा चौपाई कहे ॥^३

न परिक्रमो म जायसी ने यह स्पष्ट बताया है कि आदि मे अन्त तक जसी

१-श.० सत्येन्द्र मधुसुधीन हिन्दी साहित्य का लोकोत्तरिवक अध्यायन प.०२७३ २७४

२-कुतबन मृगावती स्तति खण्ड (अप्रकाशित) इस्तिलिखन प.३०

३-प.० राधा...

गाया है उसे ही वे भाखा-चोपाई में निबद्ध करके प्रस्तुत कर रहे हैं। सिंहल की पद्मिनी रानी की कहानी जायसी ने सुनी थी। यह गाथा सिंहल की पद्मिनी रानी से लेकर हिंदू तुरक-ह भई लराई। तक पूरी होती है। इसका यह अभिप्राय हुआ कि जायसी ने जो वक्त ग्रहण किया है वह आदि से अंत तक एक ही गाथा है। वह गाथा लोक-गाथा है इसमें सदेह नहीं। यह एक ऐसी लोक-कथा है जिसमें ऐतिहासिक पुरुषों और स्थानों के नाम प्रविष्ट कर दिए गए हैं।

पं० चंद्रवती पाण्डय के अनुसार जायसी का यह दावा है कि पद्मावती की कथा रसपूर्ण और अत्यन्त प्राचीन थी। काव्यबद्ध करने का प्रथम श्रेय जायसी को ही है। इस कथन की पुष्टि पाण्डय जायसी की निम्नलिखित पक्तियों से करते हैं—

कवि वियास कवना रसपूरी। दूरि सो नियर नियर सा दूरी ॥
 नियरे दूर फल जस काँटा। दूरि सो नियरे जस गुर चाटा ॥
 भवर आइ बन खड सन तेइ कवन क बास।
 दादुर बास न पावई भनहि जो थाछ पास ॥^१

कवि इसके द्वारा यह उक्त करना चाहता है कि यहाँ एक से एक बढ़कर कवि हुए हैं और यह कथा भी रस से भरी पत्नी है फिर भी किसी कवि से न बन पडा कि इस कथा को काव्य का रूप दे। यह काव्य तो मुग़ल जमाने में अहिंदू राजा बन पडा।^१

इस प्रकार इन साक्ष्यों से निष्कर्ष निकलता है कि पद्मावती की कहानी भारतवर्ष की प्राचीन कहानियाँ में से है। जायसी ने इस कहानी को (सुना भी था) पूर्ववर्ती पद्मावती रानी की साहित्यिक कहानी एवं लोक प्रचलित पद्मावती वाली कहानी की परम्पराओं में गहीन करके गहन चिन्तना विशाल कल्पना एवं महत् अनुभूति के मिश्रण से विकास एवं अनुपम काव्य सौंदर्य प्रदान किया है।

पद्मावत की कथा

कवि ने पद्मावत के प्रारम्भ में समस्त जगत के करतार की पावन बचन की है। पश्चात् मुहम्मद और उनके चार यारों का उल्लेख गुरु-स्तवन रचना तियाँ का उल्लेख और कथा निर्देश करते हुए सिंहल द्वीप उसकी सम्यक अमराई उसके राजा गयवसेन राजसभा उद्यान नगर इत्यादि का वर्णन करके कवि ने मूल कथा का वर्णन प्रारम्भ किया है।

^१—वही पृ० ६ (दोहा २४)।

२—पं० चंद्रवती पाण्डय हिन्दी कवि चर्चा पृ० १३४।

विधवा-रूप के राजा गन्धर्वमेन की पटरानी चपावती के गम से एक वामा उत्पन्न हुई। उसका रूप अप्रतिम था। उसका नाम पद्मावती रखा गया। वह बिलक्षण बुद्धि सम्पन्न और सुगुण शाला थी। जब वह ग्यारह वर्ष की सपानी हुई तो उसे एक मत्तखड़ा धवल गह आवास के लिए दिया गया। बाला पद्मावती यौवनभार से झुक गई। उस पदमगन्ध की बेणी नागिनी के सदृश उसकी पीठ मलय गिरि पर जाम्बुलायित थी। वह भीह रूप धनुष पर कटान्य बाण सन्ना करके घुमाती था। चकित चमित द्विरनी जैसे उसके नेत्र थे। मुखकानि वामन कानि थी। उसका भय भयानक, की भावि और दात हीरे की भावि थ। उस पद्मिनी का अनूप रूप देखकर समार मोहित हो गया। उसके पास उसका पालित एक स्वर्ण वण का शूफ था। यह शक अदभुत पडित चतुर और शास्त्रज्ञ था। जब रूप गुण की खान रानी पद्मिनी सपानी हो गई तब भी वभव व मद म राजा ने उसका विवाह नहीं किया। वह अल्पत व्यथित रहने लगी। वह रान तिन हीरामन से इमी वान की चर्चा किया करती थी। एक तिन वानचीन के बीच शुक ने कहा कि यदि वहा ता दश दश म धूम वर तुम्हारे योग्य वर ढूँढूँ। किसी ने राजा से यह बात कह दी। राजा ने शुक का मार डालने का आज्ञा दे दी। किसी प्रकार अनुनय विनय द्वारा पद्मावती ने उसकी रक्षा की। शुक ने विदा की प्राथना की परंतु प्रम फातर पद्मावती ने उये जाने नहीं दिया। पूर्णिमा के तिन पद्मावती मखियो-सहित मान संरोवर म जलश्रीडा और स्नान के लिए गई। मशक शुक ने उपयुक्त अवसर देखकर वन की राह ली। वन क पक्षिषा न हारामन का बडा सरकार किया। एक दिन हीरामन एक यहैलिए की जाल म फम गया। यहैतिया उस श्राव म रख कर हाट से गया। बित्ती के एक यागारी के साथ एक ब्राह्मण सिवन की हाट मे व्यापार के लिए गया था। हीरामन को पालित समझ कर उमने याध से माल ले लिया।

चिसीड व राजा चित्रमन की मन्सु क अनंतर उसका पुत्र रत्नसेन सिहा सनमान हुआ। ज्योतिषियों ने कहा कि वह सिंहल द्वीप मे जायगा और पद्मिनी से विवाह करेगा। जब वह ब्राह्मण शुक को लेकर रत्नसेन के दरबार म गया तो शुक के पाठित्य से प्रभावित होकर रत्नसेन ने उये एक नाम करण देकर हारामन को मोल ले लिया।

एक तिन जब रत्नसेन शिकार करने गया तो उसनी रत्न-भक्ति रानी नाग मनी ने शूगार मडित अपना रूप लपण से देखा। उसने हीरामन से पूछा क्या मरे समान समान स्त्री अर्थ कोई समार म है? इस पर उत्तरे हम कर कहा

तुम्हारा रूप नगण्य है। भावी सौत की चिन्ता से उद्वेलित रानी ने शुक को धार डालने की आज्ञा दी। घाय ने उसे मारा नहीं, छिपाकर रख दिया। लौटने पर जब राजा ने शुक को नहीं देखा तो वह अत्यन्त क्रोधित हुआ। अन्त में हीरामन लाया गया। राजा के पूछने पर शुक ने सारी बातें बता दी। उसने पदमावती के नख शिख का सविस्तार जीवन्त चित्र वर्णित किया। उस सौन्दर्य वर्णन को सुनकर राजा बेसुध हो गया। उसके मन में पदमावती प्राप्ति की इतनी प्रबल अभिलाषा जागी कि जोगी वेश में घर से निकल पड़ा। हीरामन माग्नशक बना। उसके साथ सोलह सहस्र कुंवर भी योगी होकर चले। माता ने विनती की। नागमती ने सीता की भाँति साथ चलने का आग्रह किया, किन्तु सब न्यथ। चित्तौड़ से चलकर अनेक नदियाँ पार कर एव सात सागरों के अनेक प्रत्यूहों का प्रत्यास्थान करते हुए जोगियों का यह दल सिंहनद्रीप पहुँचा। रत्नसेन जोगियों के साथ महादेव के मन्दिर में बैठकर तप करने लगा। हीरामन ने पदमावती सँभल ली। वह उसे देखकर बहुत रोई। हीरामन के प्रयत्न से वसन्त पंचमी के दिन पदमावती सखियाँ के साथ शिव मन्थन में गईं। रत्नसेन उसे देखते ही मूर्च्छित हो गया उसने जोगी को जगाने के लिए अनेक उपचार किए पर सब न्यथ। उसने उसके वक्षस्थल पर चन्दन से यह अंकित कर दिया कि जोगी तूने भिक्षा प्राप्त करने योग्य योग नहीं सीखा जब फल प्राप्ति का अवसर आया तो तू सो गया। वह अपने प्रासाद में चली गई।

चेतना लौटने पर रत्नसेन कर्षणा भ्रमण कर उठा। उसके विनाश और जल मरने के दृढ़ संकल्प से देवताओं में त्राहि त्राहि मच गई कि यदि प्रेम पथ का यह पथिक मरा तो विरहाग्नि से समस्त लोक जल जाएँगे।

महादेव पावती ने उसके प्रेम की परीक्षा ली। पावती ने लावण्यमयी अप्सरा का रूप धारण किया और कहा कि मुझे इन्द्र ने भेजा है। पदमावती को भूल जा। तुझे अप्सरा मानी। रत्नसेन ने कहा कि अप्सरे मुझे पदमावती के अतिरिक्त और किसी से कोई प्रयोजन नहीं। परीक्षा में सफल जानकर महादेव जी ने उसे सिद्ध गुटिका दी और सिंहलगड में घुसने का मार्ग बतलाया। रत्नसेन ने अपने साधियों के साथ सिंहलगड पर चढ़ाई कर दी। साहित्यिक अभियान में वह अपने जोगी साधियों के साथ पकड़ा गया। गणधसेन ने उन सबको गूली की आज्ञा दे दी। महादेव पावती ने भाट-भाटिन का वेश धारण करके गणधसेन को बहुत समझाया, पर वह न माना। इसी बीच हीरामन शुक से पदमावती ने सदेश भेजा कि 'मेरा मरना और जीना तुम्हारे ही साथ होगा। पुन जोगियों की वाहिनी और गणधसेन की वाहिनी के घोर घमासान की भीषण विभीषिका उपस्थित हुई। रत्न

सेन के साहाय्य के लिए महाश्व हनुमान प्रभृति देवता आ बटे। गंधवसेन की हस्तिसेना को हनुमानजी ने अपनी पूंछ में लपेट कर आकाश में फेंक दिया। महादेव के घंटे का भरव निनाद विष्णु के शक्त का भीषण नाद तथा अयाय दवा क वायों की भीषण भैरवी जोगियों की सेना में बज उठी। साक्षात् प्रचयकर शकर को समरागण में तांडव करने देखकर गंधवसेन उनके चरणा में गिर पड़ा। उसने निवेदन किया, भगवान् ! क्या आपकी है जिस चाह उसे दे दें।" हीरामन ने रत्नसेन के राग-व्यक्तित्व का परिचय दिया। बड़ी धूमधाम से रत्नसेन-पदमावती का विवाह सम्पन्न हुआ। रत्नसेन के साथी सोनह सहस्र कुबड़ों का भी विवाह पद्मिनी स्त्रियों के साथ हो गया। यत् ऋतुओं को रूपायि ने सुख पूर्वक पतीत किया।

एक ओर रत्नसेन अपनी सद्य परिणीता प्रेयसी के साथ आनन्द में मग्न था और दूसरी ओर वियोग-क्लान्ता नागमती के विलाप में पशु-पक्षी तक विकल हो गए। आधी रात के समय एक पक्षी ने नागमती के विरह का कारण पूछा। नागमती ने कहने पर वह पक्षी उसका प्रेम संदेश लेकर सिंहल द्वीप गया। शिकार खेलते खेलते रत्नसेन एक पेड़ के नीचे जा पहुँचा; पक्षी ने उससे चित्तौड़ और नागमती का दोन दशा एव दुःखकथा का वर्णन किया। रत्नसेन ने विदा लेकर पदमावती के साथ चित्तौर की ओर प्रस्थान किया।

सागर की उताल तरंगों के घात प्रत्याघाता की सहता हुआ रत्नसेन का जलयान झूमता हुआ चला जा रहा था। सत्सा विभीषण ने एक रादाम के कुचक्र के फलस्वरूप रत्नसेन का जलयान भवर वात्याचक्र के आवत विवत में पड़ गया और उस आलोडन के कारण सागर के अतल तल में खड खड हो कर सदा के लिए ममा गया। एक तरुने पर एक ओर राजा बटा और दूसरे तरुने पर दूसरी ओर रानी।

जलयान ध्वंस के पश्चात् पदमावती बहते बहते उम घाट पर जा लगी जहाँ लक्ष्मी झूला झूल रही थी। लक्ष्मी और समुद्र की सहायता से रत्नसेन पदमावती का पुनर्मिलन हुआ। समुद्र ने उनका बड़ा सत्कार किया और विदाई के समय पाच अमूल्य पदार्थ अमृत हंस, राजपक्षी शादुल और पारम-भेंट किये। रत्नसेन चित्तौर पहुँचा। नागमती की बारी पलनवित हो गई। नागमती से नागसेन और पदमावती से पदमसेन नामक पुत्र हुए।

रत्नसेन के दरबार में राघव चतन नामक एक यक्षिणी सिद्ध पंडित रहता था। उनके वेद विरुद्ध आचरण के कारण राजा ने उसे देश में निबल जाने की आज्ञा दी। पदमावती ने राघव को प्रसन्न करने के लिए अपना जडाऊ बगन दिया

राघव चेतन ने अपमान का बदला लेने का निश्चय किया। वह कगन सेकर दिल्ली की ओर चल पड़ा। उसने पदिमनी के सौन्दर्य का वर्णन करते अलाउद्दीन को आक्रमण के लिए उत्प्रेरित किया। अलाउद्दीन ने रत्नसेन को पत्र लिखकर पदिमनी की माग की। राजा न दूत से कहना लिया कि यदि उन्हें बल आना हो तो वे आज ही आयें।

अलाउद्दीन ने चित्तौर पर आक्रमण किया। आठ वर्ष तक घोर घमासान युद्ध होता रहा। अन्त में अलाउद्दीन ने संधि का प्रस्ताव भेजा। इसमें समुद्र से प्राप्त पाँच रत्न मागे गए और बालशाह न चंदेरी दान की प्रतिज्ञा की। संधि हो गई। बादशाह को दुर्ग में प्रीतिभोज लिया गया। गोरा बादल के मना करने पर भी रत्नसेन ने उनकी बात न मानी। वह अलाउद्दीन के साथ शतरंज खेलने लगा। सहसा दपण में पदिमनी का प्रतिबिम्ब देखकर वह मूर्च्छित हो गया। राघव चेतन ने बुद्धिमत्तापूर्ण ढंग से परिस्थिति सम्हाल ली। राजा उस गढ़ से बाहर पहुँचाने आया। छत्रपूषक अलाउद्दीन ने उस बंदी बना लिया। वह दिल्ली की ओर रवाना कर दिया गया। इसी बीच कुम्हार के राजा देवपाल की एक दूती न पदमावती को फुससाना चाहा। अलाउद्दीन की भेजी एक वश्या ने भी फुससाने का प्रयत्न किया पर भेद खुल जाने पर वे पीट पाट कर भगा दी गई।

पदिमनी ने गोरा-बादल से अपनी यथा कथा कही। गोरा बादल ने सहायता का वचन दिया। युद्ध की तयारियाँ हुईं। बादल ने सद्य आगत नवल वर्ष की युद्ध में न जाने की प्रार्थना अनसुनी कर ली। माता ने भी मार्गावरोध किया पर वह बीर राजपूत न रुका। सातह सौ पालकियों में सशस्त्र राजपूत बठ। पदमावती की पालकी में एक नहार बठा। यह प्रसिद्ध करा दिया गया कि रानी अलाउद्दीन के पास जा रही है। लिप्ती पहुँचकर गोरा बादल ने अलाउद्दीन से प्रार्थना की कि पदिमनी पति से अन्तिम बार मिलकर गन्त की कुजिया सौंप देना चाहती है; अलाउद्दीन ने आना दे दी। लुहार न रत्नसेन की लौह शृङ्खलायें काट दी। बाल रत्नसेन को लेकर चित्तौड़ की ओर भागा। लिप्ती में गोरा और बादशाह के वीरो में धार युद्ध हुआ। गोरा मारा गया। पदिमनी से देवपाल के छत्र की बात सुनकर रत्नसेन आग बरूना हा गया। उसने आक्रमण कर लिया। इस युद्ध में रत्नसेन के पेट में सांघातिक चोट लगी। चित्तौड़ का जिन्ना बादल को सौंप कर वह स्वर्गवासी हुआ। दोनों रानियाँ सती हो गईं। अलाउद्दीन ने पुनः आक्रमण किया। सभी स्त्रियाँ जोहर की ज्वाना में जल गईं। पुष्प युद्ध करते खेत रहे। चित्तौर पर मुसलमानों का अधिकार हा गया। अलाउद्दीन के हाथ जोहर की राख ही आई—

‘छार उठाइ लीह एक मठा ।

दीह उठाइ पिरयिमी झूठी ॥

पदमावत की ऐतिहासिकता

जायसी के पदमावत का क्या समय के साथ साथ अत्यन्त लोकप्रिय हो गई। अलाउद्दीन दिल्ली रत्नसन चित्तौड़ प्रमनि नामा से संबद्ध होने के कारण धीरे धीरे यह क्या मुखर हाती गई और इस ही ऐतिहासिक सत्य किंवा इतिहास मान लिया गया। टाड फिरिश्ता, आइने-अकबरी आदि की पदुमावती-विषयक कहानी का मूल आधार ‘पदमावत ही है। इस क्या को ऐतिहासिक एवं प्रामाणिक सिद्ध करने के अनेक प्रयत्न किए गए हैं। परिणामतः अनेक निम्न और मार्त घारणायें प्रचलित हो गई हैं। वस्तुतः पदमावत आधुनिक काल के उपवासों की सी कविता-बद्ध क्या है जिसमें कतिपय ऐतिहासिक नामों के अतिरिक्त मदन महाकवि जायसी की कल्पना और भावना का विलास और सौंदर्य दर्शनीय है।

टाड के राजस्थान का मूल आधार पदमावत है—

कनक जन्म टाड ने अलाउद्दीन के चित्तौर के आक्रमण का निम्नलिखित बताते दिया है—

‘विश्वम सवत १३३१ (१२७५ ई०) में लक्ष्मणी चित्तौर के सिंहासन पर बैठा। दो बार अलाउद्दीन ने चित्तौर पर आक्रमण किया था। (लक्ष्मणी के) छोटे हान के कारण उसका चाचा भीमसा उसका संरक्षक बना। भीमसा ने सिंहल के (चौहान) राजा हम्मीर शाक की क्या से विवाह किया था। उसका नाम पदिमनी था। यह नाम उसके अनौक्तिक सौंदर्य के कारण रखा गया था। पदिमनी की प्राप्ति ही अलाउद्दीन के आक्रमण का मूल उद्देश्य था। यद्यपि यह आक्रमण दीर्घ-कालीन और यथेष्ट रहा। अंत में उसने उसके अत्यंत सौंदर्य को मात्र देखने तक ही अपनी आकांक्षा को सीमित कर दिया और वह भाग्य दण के माध्यम से। वह थोड़े से रसक के साथ राजपूतों के विश्वास के भरोसे पर दुगम गया। अपनी इच्छा-पूर्ति के पश्चात् वह लौटा। राजा उस पर विश्वास करके दुग के बाहर तक उसका पहुँचाने आया। हिंदुओं की महान् आस्था पर विश्वास करते हुए ही अलाउद्दीन ने इस कारण यह साहित्यिक काय किया था। यहां भीमसा को कत्ल कर लिया गया उस अत्यंत शोचन सतार सिविर की ओर ले जाया गया। यह घोषित कर लिया गया कि पदिमनी के समरण पर ही उन मुक्त किया जायगा।

जब यह बात पता हुई तो चित्तौर के लोग विचलित हो उठे। पदिमनी ने अपनी ही जाति और वगैरे अपने मायके सीने के अपने चाचा गोरा और मतीजा बादल से मन्त्रणा की। जिहाने उसके जीवन या इज्जत पर आचन बाने

देने और राजा की मुक्ति हो जाए—ऐसी मन्त्रणा दी। अलाउद्दीन को सूचित कर दिया गया कि पदिमनी जायगी पर अपनी उच्च मर्यादा के साथ। पदिमनी के साथ अनेक दासिया रहेंगी बहुत सी अय सखियाँ भी होंगी जो केवल उसे पहचाने और विदा करने दिल्ली जाएगी। शाही शिविर में सात सौ से अधिक डालियाँ पहुँची। प्रत्येक डोली में चित्तौर के सरक्षकों में से एक अत्यन्त धूरवीर योद्धा बठा। एक-एक पालकी उठाने वाले छ छ कहार वेशधारी सशस्त्र सैनिक भी थे। शाही शिविर कनातो से घिरा था। डोलिया उतार दी गई। आधे घण्टे का समय हिन्दू राजा और उसकी रानी को अन्तिम भेंट के लिए स्वीकृत किया गया। उन्होंने राजा को तुरन्त एक पालकी में बठाया और चित्तौर गढ़ की ओर लौट पड़े। शेष डोलियाँ मानो पदिमनी के साथ दिल्ली जाने के लिए वही रही। किन्तु अलाउद्दीन का इरादा था कि वह भीमसी को वापस चित्तौर जाने की स्वीकृति नहीं देगा। वह ईर्ष्यालु हो रहा था कि रतनसेन इतनी देर तक भेंट का आनन्द उठा रहा था। जब राजा और पदिमनी के स्थान पर पालकियाँ से देशभक्त वीर निकल पड़े तो वह घबरा गया। किन्तु अलाउद्दीन पूणत सरक्षित था। पीछा करने की आज्ञा दी गई। पालकियों से निकले हुए राजपूतों ने वीरतापूर्वक पीछा करने वालों का कुछ देर तक सामना किया किन्तु वे अन्त में एक एक करके मारे गये।

भीमसी के लिए एक तेज घोड़ा तयार रखा था। वह उस पर सवार होकर सुरक्षित दुर्ग के भीतर पहुँच गया। फाटक पर अलाउद्दीन की सेना से घोर युद्ध हुआ। गौरा बादल के नेतृत्व में राजपूती सेना लड़ती रही। अलाउद्दीन अपने उद्देश्य में विफल रहा। गौरा इस युद्ध में मारा गया।

“क्षमाण रास में यह सुन्दर रूप में वर्णित है। वादन मात्र बारह वष का था, किन्तु राजपूत से इस छोटी अवस्था में भी आदभुत्य प्रदर्शन की आशा रखी जाती है। वह वीरता के साथ लडा घायल हुआ पर बचकर निकल आया। बादल से अपने पति के शौर्य की क्या सुनकर मेरा पति मेरी प्रतीक्षा करता होगा कहती हुई उसकी पत्नी आग की लपटों में कूट कर सती हो गई।

अलाउद्दीन सेना में नई भरती करके शक्ति बढ़ाकर अपने उद्देश्य के लिए चित्तौर की ओर लौटा। कथा के अनुसार यह घटना स १३४६ (१२६० ई०) में हुई किन्तु फिरिस्ता ने तेरह वष बाद की (१२०३ ई०) तिथि दी है। चित्तौड़ की सरक्षिका कुलदेवी ने राजा को दर्शन दिया। राना ने कहा—यद्यपि मेरे आठ सहस्र योद्धाओं ने अपना बलिदान कर दिया फिर भी तुम सन्तुष्ट नहीं हुई? वह अन्तर्धान हो गई। प्रातः उन्होंने अपने इस रात्रि के दर्शन की बात अपने प्रमुखों से कह दी, जिसे उन्होंने विश्रुसल स्मृति की धान कहकर टान दिया। अब मैं

चित्तौड़ के लिये अपना वलिदान करता हूँ कहते हुए अपने ग्यारह पुत्रों के मारे जाने के अनन्तर राणा मारे गए। राणा के युद्ध में जाने के समय पदिमनी ने जौहर किया। सहस्रो राजपूत क्षत्राणियों के साथ पदिमनी ने दहकती हुई अग्नि के उस गुप्त भूहरे में प्रवेश किया। राजपूतों ने दुर्ग की अगला का उदघाटन किया। वे सुसलमानों पर टूट पड़। भीमसी ने युद्धक्षेत्र में शरीर त्याग किया। — — — इस प्रकार अलाउद्दीन ने १३०३ ई० में इस राजधानी को जीत लिया।^१

'टाड की यह कथा राजस्थान के भाट और चारणों के आधार पर लिखी गई है। भाटों की पुस्तक में समरसिंह के पीछे रत्नसिंह का नाम न होने से टाड ने पदिमनी का सम्बन्ध भीमसी से मिलाया और उसे लखमसी की घटना मान ली। ऐसे ही भाटों के आधार पर टाड ने लखमसी का बालक होना भी लिख दिया है परन्तु न तो लखमसी मेवाड़ का कभी राजा हुआ और न उस समय वाजक था, वह सीसोदे का सामन्त था। — — — यह बात कुभलगढ़ के शिलालेख से स्पष्ट है (१४६० ई०) एकलिंग माहात्म्य के अनुसार भीमसी लखमसी का चाचा नहीं हो सकता।^२

वस्तुतः टाड का ग्रन्थ एकत्र किए गए अनेक विवरणों का ग्रन्थ है। इसमें बहुत-सी बातें सुनी सुनाई भट्ट भणत चारणों-द्वारा कथित और चारण-भाटों के आधार पर लिखी गई हैं। पदिमनी रानी की कहानी से सम्बद्ध टाड की बातें प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष पदमावत पर ही आश्रित हैं। टाड ने चारणों के इतिहास से इस कथा को ग्रहीत किया है और चारणों के वतों का मूल स्रोत पदमावत है। टाड द्वारा दी गई कथा में भी कल्पना और सम्भावना का ही प्राधान्य है। उसमें ऐतिहासिकता तो कुछ नामों और आक्रमण की बात तक सीमित है।

तारीखे फिरिस्ता के पदिमनी-वत्त का मूल आधार पदमावत है—
पदमावत की रचना के लगभग सत्तर वर्ष के अनन्तर महम्मद कासिम फिरिस्ता ने तारीखे-फिरिस्ता की रचना की थी। शेरशाह के काल में लिखे गए पदमावत की उस समय तक घूम मच चुकी थी। विद्वानों का विचार है कि सम्भवतः फिरिस्ता ने पदमावत से ही कुछ हाल लिया हो, क्योंकि अलाउद्दीन के चित्तौड़ आक्रमण के सम्बन्ध में वह रत्नसेन का नाम तक नहीं देता और फिर कई घटनाओं के वर्णन के पश्चात् ७०४ हि० (सन १३०४ ई०) के प्रसंग में वह लिखता है—

- १-न० ४० जन्म टाड ऐन्ल्स ऐड ऐ टिक्स आफ राजस्थान (टू वाल्यूम्स इन वन) वाल्यूम १, चप्टर ६, प० २१२-२१५।
२-गौरीशंकर हीराचंद बोधा उज्जयपुर राज्य का इतिहास प० १८७-८८।
३-रायबहादुर गौरीशंकर हीराचंद बोधा उज्जयपुर राज्य का इतिहास, प० १८८, ८९

इस समय चित्तौड़ का राजा राय रतन सेन जो सुल्तान ने जब उसका किला छीना तब से कब्जा था — अदभुत रीति से भाग गया । अनाउद्दीन ने उसकी एक लडकी के अनौकिक सौंदर्य और गुणों का हान सुनकर उनसे कहा कि यदि तू अपनी लडकी मुझे सौंप दे तो तू बंधन से मुक्त हो सकता है । राजा ने (जिसके साथ क़ाखान म सहनी की जा रही थी) इन्से स्वीकार करके लडकी को सौंपने के लिए बुलाया । राजकुमारी को लोग ने विप देना चाहा किंतु राजकुमारी ने युक्ति से अपने पिता को छुड़ाया । उसने अपने विचारों को अवगत करा दिया । यह आत्मरक्षणाय सल्ल वल बेरोक-टोक दिली पहुँची । उस समय रात पड़ गयी थी । सुल्तान की खास पखानगी से डोन्नियाँ क़ाखाने में पहुँची और वहाँ के रमर बाहर निकल आये । भीतर पहुँचकर डोलियों से निकल कर राजपूनों ने तलवारें सम्हानी और सुल्तान के सबको को मारने के पश्चात् व राजा सहित तयार रखे हुए घोड़ों पर सवार होकर भाग निकले । — — — राजा भागता हुआ अपने पहाड़ी प्रदेश में पहुँच गया । — — — और उसी क्षण से वह मुसलमानों के हाथों में रहे हुए मुल्क का उजाड़ने लगा । अतः म सुल्तान ने चित्तौड़ को अपने अधिकार में रखना निरर्थक समझकर खिजिर खा को हुक्म दिया कि किले को खाली करके राजा के भानजे को सुपुद् कर दे ।

पन्मावत और तारीखे फरिश्ता की कथाओं की तुलना करने पर स्पष्ट हो जाता है कि फरिश्ता ने कुछ-कुछ घटा-बढ़ी करके पदिमनी की पन्मावत वाली कथा को ही ऐतिहासिक रूप में रख दिया है । पदिमनी को राजा की पुत्री को रानी न कहकर राजा की पुत्री कहलाया है । यह राजा की पुत्री मूलतः राजकुमारी शम्श का भात अनुवाद है । विवाहिता राजकुमारियों के लिए भी राजकुमारी शम्श का प्रयोग होता है । तुन्सीदास (राजकुमारि सिखावन सुनहू अयोध्यावाण) जायसी आदि कविषा ने भी राजकुमारी शम्श का प्रयोग विवाहिता राजपुत्रियों के लिए किया है ।

फरिश्ता का यह कथन प्रामाणिक नहीं प्रतीत होता । प्रथम तो पदिमनी के दिवंगत जाने की बात ही निमूत है । दूसरी चिन्त्य बात यह है कि अनाउद्दीन जसे प्रबल प्रतापी सुल्तान की कब्र में भागा हुआ रतनसेन बच पाय और मुल्क का उजाड़ना फिरे और सुल्तान उमको सहन करके अपने पत्र का चित्तौड़ सानी करने की आज्ञा दे ले यह सम्भव प्रतीत होता है । प्रामाणिक इतिहास के साक्ष्य पर कहा जा सकता है कि फरिश्ता की ये बातें ऐतिहासिक नहीं हैं । सन् १३०४ ई० में खिजिर खा के बिना को खाली करने का डड दन की बात भी निमूत है ।^१

अलाउद्दीन के समसामयिक केवल चार इतिहासकार पाते हैं—फजलुल्ला^१ बस्ताफ जियाउद्दीन बरनी अमीर खुसरो^२ और अबुल्ला मलिक इसामी । अमीर खुसरो ने पदिमनी का नाम नहीं लिया है ।

खिलजी वंश के प्रामाणिक इतिहासों में अमीर खसरो कृत तारीखे अलाई का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है । अमीर खसरो मुलतान अलाउद्दीन के साथ इस आक्रमण में चित्तौड़ गया था । इस कारण उसका दिया हुआ वस्तु अधिक प्रामाणिक माना जाना चाहिए । उसने तारीखे अलाई में १३०३ ई० के अलाउद्दीन के आक्रमण के सम्बन्ध में लिखा है—

सोमवार ता० ८ जमादि — उस्सानी हि० स० ७०२ (वि० स० १३५६) माघ सुदि ६ ता० २८ जनवरी १३०३ ई० सुल्तान को अलाउद्दीन चित्तौड़ लाने के लिए दिल्ली से रवाना हुआ । शयबकर्ता (अमीर खुसरो) भी इस लड़ाई में साथ था । सोमवार ता० ११ मुहरम हि० सन ७०३ (वि० स० १३६०) भाद्र पद सुदि १४ ता० २६ अगस्त १३०३ ई० को किरा पतह हुआ । राय (राजा) भाग गया । परन्तु पीछे स स्वयं शरण में आया और तलवार की बिजली से बच गया । हिन्दू कहते हैं कि जहाँ पीतल का बतन होता है वहीं बिजली गिरती है और राय का चेहरा डर के मारे पीला पड़ गया । तीस हजार हिन्दुओं को बतन करने की आज्ञा देने के बाद जब मुलतान ने चित्तौड़ का राज्य अपने पुत्र खिजिर खा को दिया तब उसका नाम खिजराबाद रखा । मुलतान ने उसको एक लाल छत्र जरदोजी खिलजत और दो झंड — एक हरा और दूसरा बाना — दिए और उस पर लाल और पन्ने घोघावर किए फिर वह दिल्ली को लौटा । खुग का शुक है कि हिंद के जो राजा इस्लाम को नहीं मानते थे उन सबकी अपनी काफिरों का बतल करन वाली तलवार से मार डालन का हुक्म दिया ।
यहाँ विशेष द्रष्टव्य यह है कि अमीर खुसरो ने पदिमनी नाम तक का उल्लेख

१-तारीख-ए बस्ताफ (फारस के मुगलों का इतिहास) १३१२ ई० में पूरा हुआ ।
२-तारीख-ए फिराजशाही १३५६ ई० में पूरा हुआ ।
३-सजायनुव फतह (अलाउद्दीन की विजयों का वर्णन — १३१२ ई० में) और आशिकगह या दवल रानी (दवन और विज का — अलाउद्दीन के बेटे के प्रेम का वर्णन — १३१६ ई० में) ।

४-फुत्रहस्तानीन १३४६—५० ई० ।
५-इलियट हिस्ट्री ऑफ इण्डिया वाल्यूम ३ प० ७६—७ ।

नहीं किया है। बर्नी ने भी पत्तिमनी की कथा का नाम तक नहीं लिया है -

। जिआउद्दीन बर्नी १३०२-४ ई० में जीवित था। वह उस काल का एक प्रामाणिक इतिहास-लेखक है। बर्नी ने अपने ग्रन्थ तारीख-फ़ीरोजशाही में लिखा है - सुल्तान अलाउद्दीन ने चित्तौड़ को घरा जोर छोड़े ही अर्धे में उस अधीन कर लिया। घरे के समय चौमामे में सुल्तान की फौज का बर्नी हानि पहुँची।

जिआउद्दीन बर्नी अलाउद्दीन का समकालीन इतिहासकार है। उसने अपने इतिहास में बर्नी भी पदमावती का उल्लेख नहीं किया है। उसने कही यह भी नहीं लिखा है कि चित्तौड़ पर अलाउद्दीन के आक्रमण का कारण किसी नारी का सौन्दर्य था। यह मात्र परम्परागत जनश्रुति है।

जायसी की यह कहानी जिसमें प्रेम साहसिकता और आसादि तीना का सुन्दर सम्मिश्रण हुआ है अत्यन्त जीवन्त नाकप्रिय हा गई और अत्र-तत्र-सर्वत्र पत्तिमनी की यह कहानी कही गई - पुन पुन कही गई। परशियन इतिहासकारों ने भी जो तथ्य और कल्पना में विशेष पाथक्य नहीं करते थे तुरन्त इस कथा का सच्चे इतिहास में जिनमें फिरमना और हज़ी उद्दीन के इतिहास भी सामिल हैं ऐतिहासिक तथ्य के रूप में गृहीत कर लिया।

आईने-अकबरी की पद्मिनी-कथा

‘टाट ने जो वस दिया है वह राजपूताने के रक्षित चरणों के इतिहासों के आधार पर है। दो-चार चारों को छोड़कर तीन यही बताते आईने अकबरी में

१-इतिहास हिस्ट्री आफ इण्डिया बाल्फूर २, पृ १८६।

२- इफ टो डीशन इज टू बी विली ड इटश काज वाज हिज इनफचुयशन फार राजा रतनसिंह सक्वीन पत्तिमनी आफ एक्सक्विजिट यूटी। बट निस फुट इज नोट एक्सप्लिसिटली मश-ड इन एनो कंटेम्पारेरी त्रानिजन आर रिस्क्रिप्शन।

-ऐन ऐडवार्ड हिस्ट्री आफ इण्डिया भाग २ पृ० ३०२।

३-दिस स्टोरी आफ म मु जायसी इन द्विच रोमाश ऐडवेचर ऐड ट जेडी आर आन यूटीफुली एन्रिक्स्ड वेरी मून प्रिण्ड दी पाप्यर माइन् ऐड हियर देयर एट एन्नीह्वयर दी स्टोरी आफ पद्मिनी वाज टोल्ड ऐड रीटोल्ड। दी पर शियन बनानिवनस हू डिज नाक वेरी मच कयर टू डिस्टिन्ग्विस बिन्वीन फिक्शन ऐड फक्त् रेन्टि एवमप्टड इट ऐज टू हिम्गी सो दट आपन्नेर दी टाइम आफ मुहम्मद जायसी दी पद्मिनी एपिनाड इज मेशड ऐज ए हिस्टोरिकल फक्त् इन मनी हिस्टोरिकल बक्म इन्वर्नूडिग दोज आफ परिशता एड हज़ी उद्दीन।

-हिस्ट्री आफ इण्डिया विलीज, टा० विश्वोरीशरण सान, पृ० १२२-२३।

दिया हुआ है। आइन-अकवरी में भीमसी के स्थान पर रतनसी (रत्नसन या रत्न सिंह) नाम है। रतनना क मारे जान का चारा भी दूसर ढग पर है। आइन अकवरी में लिखा है कि अलाउद्दीन दूसरी चर्चाई में भी हार कर लौटा। वह लौटकर चित्तौड़ से सात कोस दूर पहुँचा था कि एक गया और मन्त्री का नया प्रस्ताव भेज कर रतनसी का मिलने के लिए बुलाया। अलाउद्दीन की बार-बार की चर्चाया से रतनसी ज्वर गया था। इसमें उमन मिलना स्वीकार किया। एक विश्वासघाती का साथ लेकर वह अलाउद्दीन से मिलन गया और घाब से मार डाला गया। उसका सम्बन्धी 'अरमी (?) चटपट चित्तोर के सिह'सन पर बिटाया गया। अलाउद्दीन चित्तोर की ओर फिर लौटा और उस पर अधिकार किया। अरसी मारा गया और पदिमनी सब स्त्रिया के सहित सती हा गई।'

स्पष्ट है कि टा' और आइन अकवरी के पदिमनी सम्बन्धी वृत्ता में साम्य है। अबुनफजल कृत आइन अकवरी में वही वृत्त है जो उसने सुना था। इतिहासकारों का कथन है कि सम्भवतः अबुनफजल पन्मावत से परिचित था। जो भी हा अबुनफजल के वर्णन से स्पष्ट है कि वह पन्मावत से पर्याप्त प्रभावित है।

हज्जी उद्द्वीर का पदिमनी वृत्त —

हज्जी उद्द्वीर का इतिहास अकबर के समय (१६०१ ई.) में लिखा जा रहा था। पन्मावन १५४० ई० में गोरशाह के समय में लिखा गया था। पदमावत जो गोरशाह के समय में स्याति प्राप्त कर चुका था और चित्तौड़ के राजवंश की कीर्ति का सम्बन्धन कर रहा था — निश्चय ही उस समय चित्तौड़ के राजघरान में समाप्त रहा होगा। ईडर, शावरकाठा एवं सीराष्ट के अन्य क्षत्रों का चित्तौड़ से घनिष्ठ सम्बन्ध था। उन सभी क्षत्रों में यह कथा प्रसिद्धि प्राप्त कर चुकी थी अतः ऐसी स्थिति में हज्जी उद्द्वीर अवश्य ही पन्मावन की कथा से प्रभावित लगना है। हज्जी उद्द्वीर और जायसी के पन्मावती सम्बन्धी वृत्तों में बहुत अधिक समता भी पाई जाती है।

अन्य इतिहासकारों के उल्लेख —

'वर्तमान युग के कई नामी-गरामी इतिहासकारों ने बड़ ही विचित्र तर्कों से पदिमनी की कथा की ऐतिहासिकता सिद्ध करने का प्रयत्न किए हैं। जम यदि पदिमना कथा जायसी की कारा-कल्पना है तो वह राजपूता में पत्नी कस ? यद्यपि इस कथा से उदयपुर के राजवंश की मानद्वानि हानी है फिर भी यह राजवंश पदिमनी की कथा का स्वीकार कर सकता है। अलाउद्दीन का मवाह की रानी की

और आकृष्ट होना और रानी का अपने पति को मुक्त कराने का प्रयास असम्भव नहीं जान पड़ता । ये तक अत्यन्त हल्के और आधारहीन हैं । यह कथा 'जायसी की कोरी कल्पना ही नहीं है जायसी ने इस कथा को सुना' भी था । दूसरे पदिमनी की पदमावत वाली कथा स चित्तौड़-उदयपुर के राजवंश की कीर्ति में धार चाद लगते हैं । इस कथा में मानहानि की सम्भावना ही नहीं की जा सकती । 'राजवंश इस कथा का स्वीकार करता है चित्तौड़ में पदिमनी का महल है स्नान गार है प्रभृति तक व्यर्थ है । किसी राजवंश के स्वीकार करने मात्र से ही कोई कथा प्रामाणिक नहीं मानी जा सकती ।

प्रो० श्री नेत्र पाण्डेय^१ का कथन है जि हज्जी उद्दवीर ने अपना इतिहास अकबर के समय में गुजरात में लिखा था । यद्यपि पदमावत और उसके विवरण में अन्तर है तथापि हज्जी उद्दवीर ने पदिमनी की कथा का उल्लेख किया है । मेवाड़ की परम्परागत कथाएँ भी पदिमनी की कथा को स्वीकार करती हैं — जो अत्यन्त पुरानी है । अतः प्रो० श्री नेत्र पाण्डेय ने भी इस स्वीकार किया है कि पदिमनी की कथा के विषय में बड़ा मदभेद है । इस कथा का प्रधान साधन जायसी कृत पदमावत है । विद्वान इतिहासकार का कथन ठीक ही है कि इन समस्त पदिमनी विषयक कथाओं का मूल आधार पदमावत ही है ।

सर्वेक्षण और निष्कर्ष

प० रामचन्द्र शुक्ल ने टाड के विवरण को देने के पश्चात् लिखा है, 'टाड ने जो वृत्त दिया है राजपूताने में रक्षित चारणा के इतिहासों के आधार पर है । दो चार व्योरो को छोड़ कर ठीक यही वस्तुतः आर्द्री ने अकबरी में दिया हुआ है । 'आर्द्री अकबरी में भीमसी के स्थान पर रतनसी (रतनसिंह या रतनसेन) नाम है । रतनसी के मारे जाने का व्योरा भी दूसरे ढंग पर है ।

इही दोनों इतिहासिक वृत्तों के साथ जायसी द्वारा रचित कथा का मिलान करके शुक्ल जी ने पदमावत की उत्तरार्द्ध वाली कथा की ऐतिहासिकता प्रमाणित की है ।^२

टाड के राजस्थान का सम्यक् अनुशीलन करने पर स्पष्ट हो जाता है कि उसकी ८० प्रतिशत से अधिक बातें वक्वास या अनगलता के अंतर्गत आती हैं ।

१-डा० ईश्वरी प्रसाद भारतवर्ष का इतिहास ।

२-श्री नेत्र पाण्डेय भारत का बृहद् इतिहास भाग २ मध्य वालीन भारत

पृ० १३१ ।

३-प० रामचन्द्र शुक्ल जायसी प्रथावली भूमिका पृ० २४ ।

एक प्रसिद्ध अंग्रेज लेखक (जम्स टाड) की अति प्रसिद्ध कृति ने इन युगों के विषय में हमारी जनता की दृष्टि का पिछले सौ वर्षों में बहुत गुमराह किया है। -- वह विशेष रूप से राजस्थान का सर्वे करने और राजस्थानी राज्यों को मराठा और मुसलमानों के विरुद्ध उभाड़ने के लिए नियुक्त था। उसे पूरा मफलता प्राप्त हुई। -- अलाउद्दीन और दूसरे मराठा मुसलमानों को लम्पट-लुटेरा बताना और मराठों को मौसमी डाकू के रूप में चित्रित करना नज्जाजनक असत्य है। अबबर जिस महापुरुष को बलवृत्त करने की कोशिश चाद पर धूबने के समान है। -- दुख की बात है कि हिन्दी, बंगला और गुजराती माहित्यों के तथा हिन्दुओं के साथ हुए उद् साहित्य के पोषे और सौ बरस पहले बिबेरी गई इन विषयमय अमर्या की खाद का आज भी अमल समझ कर चूसते जा रहे हैं।^१

यह निर्भ्रत सत्य है कि टाड ने अनेक गलत ऐव भ्रम प्रचारक अनगल बातें लिखी हैं। ओझा जी ने भी टाड की शत शत त्रुटियों की ओर निर्देश किया है। टाड न पद्मिनी का जो बल लिया है वह भी अत्यन्त भ्रमपूर्ण है--

विषय में १३३१ (१२७६-७५ ई०) और वि० स० १३४६ (१२९० ई०) में अलाउद्दीन दिल्ली का बादशाह नहीं था। पुन इन सवता में अलाउद्दीन के चित्तौड़-आक्रमण की कल्पना अनगलता नहीं ता और क्या है? अलाउद्दीन १२९५-९६ ई० में दिल्ली की गद्दी पर बठा था। स० १३३१ में चित्तौड़ पर दिल्ली के बान्शाह ने अवश्य आक्रमण किया था पर वह बलवन था, अलाउद्दीन नहीं। अलाउद्दीन ने चित्तौर पर आक्रमण १३०३ ई० में किया था।

इसी प्रकार सिंहन में चौहान राजवंश की कल्पना भी मिथ्या है। टाड के अनुसार 'अलाउद्दीन की दूसरी चढ़ाई में राणा के ग्यारह पुत्र मारे गए। यदि पहली चढ़ाई अलाउद्दीन ने पद्मिनी का पान के लिए की थी, तो दूसरी चढ़ाई में युद्ध में मार गए। ये ग्यारह पुत्र कत्र पदा हो गये। इतने ता लडके रहे टाड ने लडकिया या मर गई सन्ताना का उल्लेख नहीं किया है। यदि अलाउद्दीन लपट था तो भी बड-बडे युद्ध में मारे जाने वाल बटा की मा के लिय इतना बडा साहसिक अभियान करेगा जिसमें जीन भी अनिश्चिन् हो। दूसरे इतिहासियों ने अलाउद्दीन को प्रजा हितपी और मधमी सम्राट कहा है।^१

टाड की वार्ताओं में एक गल्प और दृष्टव्य है। उसका कथन है कि जब

१-जयचन्द्र विद्यालकार-हिन्दी सा० स० नागपुर (अप्रन १९३६) इतिहास परिपद
के स्थापतिपद से अभिभाषण, पृ० १६-१७।

२-गौ० ही० ओझा राजपूताना का इतिहास दूसरा खंड, पृ० ४९४-९५।

३-डा० रघुवीरसिंह पूर्व मध्यकालीन भारत, पृ० १२७-१६०।

अनाउद्दीन चित्तौर नहीं ले पाता हार कर दिल्ली की ओर नौट जाता है तो राणा स प्रस्ताव करता है कि पदिमनी को मुख दपण म लिखा दो। राणा इस शत को स्वीकार कर नता है और पराजित जन्तु को अपनी पानी का मुख दपण के माध्यम स दिखलाता है।

जायसी की कथा है कि राणा रतनमेन अलाउद्दीन का सामंत बनना स्वीकार कर सता है। वह उमे ग म ल जाता है। वहा अलाउद्दीन अफस्मात पदिमनी की परछाई देवता है। टाड के किस्म स ऐसा लगता है माना हारे हुए शत का अपनी वीवी का म ह दिखाना राजपूती शालीनता और आतिथ्य का जश था।^१

गारा पदिमनी का चाचा लगता था और वात्न गोरा का भतीजा था। अयान बादन पदिमनी के दूमरे चाचा का लडका था। पदिमनी के दो चाचा और चचेरा भाई चित्तौर म कमे रहते थे। उह तो चित्तौड का पानी भी नहीं पीना चाहिए। ऐतिहासिक तथ्य यह है कि पदिमनी मेवाड की थी और गोरा और बादन चित्तौड के सरदार और उसके सम्बन्धी थे। टाड ने किस्से की सगति जान के लिए गोरा-बादन का सिंह का ही बनाया।

उपयुक्त विवचन स स्पष्ट ह कि टाड के आधार पर पदमावत का एतिहासिक आधार ढूँढना और इसी कारण उन इतिहासाग्नि कहना ठीक नहीं है।

ओझा जी के मत समीक्षा

सन् १९८१ (१९२४ ई) म गुन जी ने जायसी प्रयावली का प्रथम संस्करण प्रकाशित किया। म०म० गौरागकर हीराचन्द्र आशा कृत राजपूताने का इतिहास स० १९८५ म प्रकाशित हुआ।

आवा जी ने पद्मावत की कथा देने के अनंतर लिखा है— इतिहास के अभाव म लागा ने पद्मावत का एतिहासिक पुस्तक मान लिया परन्तु वास्तव म वह आजकल के ऐतिहासिक उपयासा की सी कवितावद्ध कथा है जिसका कलवर इन ऐतिहासिक बाता पर रचा गया है कि रतनसन (रतनसिंह) चित्तौड का राजा पदिमनी या पद्मावती उसकी रानी और अनाउद्दीन दि नौ का मुनतान था जिसने रतनसन (रतनसिंह)मे उडकर चित्तौड का किना छोड़ा था। बटुषा अथ सब बातें कथा को रोचक बनाने के लिए कल्पित सड़ी की गई हैं क्योंकि रतनसन एक बरस भी राज्य नहा करने पाया एसी दशा म योगी बन कर उसका सिंह द्वीप (सका) तक जाना और वहा की राजकुमारी का व्याह जाना कस संभव हो सकता

है ? उसके समय सिंहल द्वीप का राजा गधव सन नहीं किन्तु कीर्ति निरशकनेव पराक्रमबाहु (चौथा) या भुवनेक बाहु (तीसरा) होना चाहिये । सिंहल द्वीप म गधव सेन नाम का कोई राजा ही नहीं हुआ । उस समय तक कुम्भननेर आवाद ही नहीं हुआ था तो देवपाल वहा का राजा कैसे माना जाय ? अलाउद्दीन आठ बरस तक चित्तौड के लिए लडने के बाद निराश होकर दिल्ली को नहीं लौटा किन्तु अनुमानत छ महीने लडकर उसने चित्तौड ले लिया था वह एक ही वार चित्तौड पर चढा था इसलिये दूसरी वार आने की कथा कल्पित ही है ।

जेम्स टाड की कथावस्तुओं के विषय म भी ओझा जी ने लिखा है— बनल टाड की यह कथा विशेषकर भाटा के आधार पर लिखी गई है और भाटो ने उसको पदमावत से लिया है । भाटों की पुस्तक म समरसिंह के पीछे रत्नसिंह का नाम न होने से टाड ने पदिमनी का सम्बन्ध भीरसिंह से मिलाया और उसे लक्षमसी (लक्ष्मणसिंह) के समय की घटना मान ली । -- परन्तु लक्षमसी न तो मेवाड का कभी राजा हुआ और न वालक था किन्तु सीसोदे का सामन्त था और उस समय वडावस्था को पहुच चुका था । -- रत्नसिंह की सना का मखिया बनकर अना उद्दीन के साथ की लडाई म लडते हुए मारा गया था जसा कि वि० सं० १५१७ (१४६० ई०) के शिलालेख से स्पष्ट है । -- ऐसी दशा मे टाड का कथन भी विश्वास के योग्य नहीं हो सकता । पदमावत तारीख फिरशता और टाड के राज स्थान के लेखा की यदि कोई जड है तो केवल यही कि अलाउद्दीन न चित्तौड पर चगाई कर छ मास के घरे के अनतर उसे विजय किया वहा का राजा रत्नसिंह इस लडाई म लक्ष्मणसिंह आदि कई सामन्तो—सहित सारा गया । उसकी रानी पदिमनी ने कई स्त्रिया सहित जौहर की अग्नि म प्राणाहुति दी ।

विशेष

पदमावत म चित्तौड पर अलाउद्दीन के आक्रमण के अतिरिक्त और भी कतिपय घटनाया एव अनुगुनिया का उपयोग भी किया गया है । अलाउद्दीन ने १२९७ ई० म अपने भाई उलूग खा और सनापति नसरत खाँ को गुजरान पर चगाई करने को भेजा । मालवा से उहोने मवाड के रास्ते वटना चाहा किन्तु राजा समरसिंह ने उहें मार भगाया । तब मवाड के दक्किन घूम कर वे आसावन

१—डफ त्रानोलोजी आव इण्डिया प० ३२१ ।
२—वही प० ३२१ २० ।

३—गौरीसकर हीराचंद ओझा—उत्पपुर राज्य का इतिहास प० १८७—८८ ।
—राजपूताने का इतिहास प० ४९१—८२—४४८—९५ ।

जा पहुँचे ।^१ यद्यपि अलाउद्दीन ने इस युद्ध में सेना का नेतृत्व नहीं किया था तो भी चित्तौड़ के राजा समरसिंह के द्वारा अलाउद्दीन की इस युद्ध में प्रथम बार हार हुई थी ।

गौरीशंकर हीराचंद जोसा का कथन है कि जिन पुत्र सूरि ने अपने तीर्थ कल्प में उल्लूख खा की गुजरात-विजय का वर्णन करते हुए लिखा है- विजयम सवत १३५६ (१२६६ ई०) में सुलतान अल्लावदीण (अलाउद्दीन खिलजी) का सबसे छोटा भाई उल्लूखान (उल्लूख) कणदेव के मंत्री माधव की प्रेरणा से दिल्ली नगर से गुजरात की ओर चला । चित्रकूट (चित्तौड़) के स्वामी समरसिंह ने उसे दण्ड देकर मेवाड़ देश की रक्षा कर ली ।^२

यहाँ ध्यान देने की बात है कि माधव का ही जनश्रुतियों में प्रचार प्रसार और सप्रसार होता रहा और सभावना की जा सकती है कि जायसी के राघव चेतन की कहानी का मूल सभवतः गुजरात के मंत्री माधव के चरित्र में है ।

रणधीर की जीत से दिल्ली सल्तनत की सीमा मेवाड़ से जा लगी । समरसिंह के बेटे रत्नसिंह को मेवाड़ की गद्दी पर बठ कुछ महीने बीते थे कि अलाउद्दीन ने चित्तौड़ को घेर लिया । (१३२ ई) छ महीने घिरे रहने के बाद रसद और पानी चक गये तो किला अलाउद्दीन के हाथ आया । रत्नसिंह मारा गया और उसकी रानी पद्मिनी ने बहुत-सी स्त्रियों के साथ जीहर कर लिया । अलाउद्दीन ने चित्तौड़ का राज्य अपने बेटे खिजर खा को देकर उसका नाम खिज-रावाद रखा ।

अलाउद्दीन चित्तौड़ को मुश्किन से ले पाया था कि दिल्ली से मंगोलों के नये हमले की खबर आई । तरगी नामक एक मंगोल ने एक बड़ी सेना के साथ जमना किनारे डेरा आ डाला और दिल्ली का घेर लिया । अलाउद्दीन के आने पर वह हट गया ।^३

जायसी ने अलाउद्दीन की चित्तौड़ चढ़ाई के अवसर पर दिल्ली पर हरेबा की चढ़ाई की बात जो लिखी है उसमें स्पष्ट तरगी के मंगोलों की परछाई है ।^४

यद्यपि रत्नसैन अलाउद्दीन के साथ हुए युद्ध में मारा गया था तथापि सम्भवतः आदि अन्त जस गाया अहै वानी गाया में रत्नसैन अलाउद्दीन के द्वारा नहीं मारा गया ।

१-जयचंद्र विद्यालंकार इतिहास-प्रवेश प० २५३ (प्र० स० १६३८)

२-गौरीशंकर हीराचंद्र जोसा राजपूताना का इतिहास दू० ख० पृ० ४७६-७७ ।

३-जयचंद्र विद्यालंकार इतिहास प्रवेश प० २६५-६६ ।

४-इंद्रचंद्र नारण पदमावत-सार ।

जायसी के समय में चित्तौड़ का राणा सप्रामर्श था। उसके बाद उसका पुत्र रत्नसिंह गद्दी पर बैठा। जायसी के पदमावत वाले रत्नसेन में इस रत्नसिंह की क्या भी जुड़ा हुई है।

‘मेवाड़ में सागा के पीछे उसका छोटा बेटा रत्नसिंह राणा हुआ। — १/३१ ई० में राणा रत्नसिंह का उसका एक सरदार ने मार डाला।’

‘— — — महाराणा के एकाएक इस प्रकार स्वगवास होने के अनन्तर मेवाड़ की गद्दी पर उसका दूसरा लड़का रत्नसिंह बैठा। — — — उससे बाद ही वू दी के देण्डोही हाडा सरदार जो सागा की दूसरी रानी कमवती का भाई और उसके पुत्रों विक्रमादित्य और उदयसिंह का तरफदार था और अपने भानजे विक्रमादित्य को सिरामन दिलाने के लिये मेवाड़ में शत्रु मुगलों-बाबर-में रणथम्भौर प्रदेश उन्हें देने आदि की साठ-गाठ कर रहा था, दण्ड के लिए शिकार-मिस बुलाकर महाराणा रत्नसिंह ने मरवाना चाहा और उनके साथ दंड करत हुए स्वयं भी मारा गया (३० जनवरी १५३२ ई०)।’

विक्रमादित्य और उदयसिंह का महाराणा सागा ने यह बड़ी जागीर रत्नसिंह की आंतरिक इच्छा के विरुद्ध और अपनी प्रीतिपात्र रानी कमवती के विशेष आग्रह से दी परन्तु अंत में इसका परिणाम रत्नसिंह और सूरजमल दोनों के लिए घातक ही हुआ।

‘महाराणा सागा की मृत्यु के समाचार पहुंचने पर उसका कुंवर रत्नसिंह वि० स० १५८४ माघ सुदी १५ (१५२८ ता० ५ फरवरी) के आसपास चित्तौड़ के राज्य का स्वामी हुआ। महाराणा सागा के देहांत के समय महाराणी हाडी कमवती अपने दाना पुत्रों के साथ रणथम्भौर में थीं। अपने छोटे भाइयों के हार में रणथम्भौर की पंचम साठ लाख की जागीर का हाना रत्नसिंह को बहुत असरता था क्योंकि वह उसकी आंतरिक इच्छा के विरुद्ध दी गई थी। महाराणा बहुत अप्रसन्न हुआ।’

उपर ही कमवती विक्रमादित्य को मेवाड़ का राजा बनाना चाहती थी जिसके लिए उसने सूरजमल से बातचीत कर बाबर को अपना सहायक बनाने का प्रयत्न रचा। — बाबर अपनी दिग्दर्शिका में लिखता है— हि० स० ९३५ ता० १४ मुहर्रम (वि० स० १५८५ जाजिव सुदि १५-ई० स० १५२८ ता० २८ सितम्बर)

१-अथर्व विशालकार इतिहास प्रवृत्त, प० ३२८-२९।

२-पद्मीसिंह मेहता हमारा राजस्थान पृ० ८७-८८ (१८५०)।

३-गौरीशंकर शिरोचंद बोधा राजपूताने का इतिहास, द० ख० पृ० ६७२-७३।

४-वही, पृ० ७००-७०१।

को राणा सांगा के दूसरे पुत्र विन्मजाजीत के जा अपनी माता पदमावती (?) कमवती) के साथ रणथंभौर में रहता था कुछ आदमी मेरे पास आए। मेरे खालियर को खाना हाने के पहले भी विन्मजाजीत के अत्यंत विश्वासपात्र राजपूत अशोक के कुछ आदमी मेरे पास ७० लाख की जागीर लेन की शर्त पर राणा की अधीनता स्वीकार करने के समाचार लेकर आए थे—मैंने यह भी कहा कि यदि विन्मजाजीत अपनी शर्तों पर दण्ड रहा तो उसके पिता की जगह उसे चित्तौड़ की गद्दी पर बिठा दूंगा।

ये सब बातें हुई, परन्तु सूरजमल रणथंभौर जसा किला बाबर को खिलाना नहीं चाहता था उसने तो केवल रत्नसिंह को डराने के लिए यह प्रपञ्च रचा था इसी से रणथंभौर का बिना बादशाह की सौंपा न गया, परन्तु इससे रत्नसिंह और सूरजमल में विरोध और बढ़ गया।^१

— महाराणा ने उसको छल से मारने की ठान ली। इस विषय में गुह्योक्त नगरी लिखता है— राणा रत्नसिंह शिकार खेलता हुआ बूंदी के निकट पहुँचा और सूरजमल को बुलाया।— राणा ने अपनी पवार वंश की रानी से कहा कि कन हम एकल सुअर मारेंगे।— दूसरे ही दिन सबेरे सूरजमल को साथ लेकर राणा शिवार को गया। राणा ने पूरनमन को सूरजमल पर वार करने का इशारा किया परन्तु उसकी हिम्मत न पड़ी तब राणा ने सवार होकर उस पर तलवार का वार किया जिससे उसकी खोपड़ी का कुछ हिस्सा बट गया इस पर पूरनमल ने भी एक वार किया जो सूरजमल की आँध पर लगा तब ता तपक कर सूरजमल ने पूरनमन पर प्रहार किया जिससे वह चिल्लाने लगा। उम बचाने के लिये राणा वहाँ आया और सूरजमल पर तलवार चलाई। इस समय सूरजमल ने घोड़े की तगाम पकड़कर झुके हुए राणा की गदन क नीचे ऐसा बटार मारा कि वह उसे चीरता हुआ नाभि तक चला गया। राणा न घोड़े पर से गिरते गिरते पानी मागा तो सूरजमल ने कहा कि जान ने तुझ खा लिया है अब तू जल नहीं पी सकता। कहा राणा और सूरजमल दोनों के प्राणपक्षी उड़ गए। पाटण में राणा का दाह-संस्कार हुआ और रानी पवार उसके साथ सती हुई। यह घटना वि० स० १५८८ (ई० स० १५३१) में हुई।^१

जायसी ने पदमावत की राजना गैरशाह के समय में १५४० ई० में की है। पद्मावत की राजना के लगभग १० वर्ष पूर्व मराठ के राणा रत्नसिंह और बूंदी के सूरजमल का द्वन्द्व और दोनों की मृत्यु वाली घटना घटी थी। जायसी ने जिस

१—गौरीशंकर हीराचंद ओझा राजपूताना का इतिहास, पृ० ७०४।

२—वही पृ० ७०४-५।

देवपान और रत्नमन-द्वन्द्व की परिवर्तना की थी सम्भवत यही घटना उसके मूल में है।

‘जो देवपाल राव रन गाजा । मोहि तोहि जूष एकौशा राजा ॥
मेलेसि साग आइ बिष भरी । मेदि न जाइ काल की घरी ॥
आइ नाभि तर साग बईठी । नाभि बधि निकसी सो पीठी ॥
चला मारि तब राज मारा । टूट कथ घड भयउ निनारा ॥
सुधि बुधि तो सब विसरी भार परा मय बाट ।
हस्ति धार को कारर ? घर आना गइ खाट ॥’

रत्नसिंह — सूरजमल द्वन्द्व तलवार का नाभि तक पहुँच जाना दोनों की मृत्यु, राना पवार का सती होना वाना घटना और रत्नसन देवपाल-द्वन्द्व साग का चीरते हुए नाभि तक पहुँचना, दोनों की मृत्यु रानी पद्मिनी और नागमनी का का सती होना इन दोनों घटनाओं में अदभुत साम्य है।

इसमें एक अर्थ बात पर भी प्रकाश पड़ता है कि अवश्य ही पदमावत की रचना इस घटना (जर्नल १२३१ ई) के बाद ही हुई है। इस प्रकार पदमावत की रचना ६२७ हि० (१५२० ई०) में कहना भी असंभव हो जाता है।^१

श्री गौरीशंकर हीराचंद ओझा^२ ने मुद्रा प्रमाणा के आधार पर पद्मिनी की कथा का कवि की कल्पना — माना माना है। तत्कालीन जीवन और प्रामाणिक इतिहास पक्ष पर राजकवि अमोर सुन्दरी और वर्नी ने पद्मिनी का नाम तक नहीं रिया है। जहाँ राजकवि सुन्दरी ने एक ओर देवल देवी और खिजिर ता के प्रेम का वर्णन ऐतिहासिक तथ्यों के साथ आशिराह में किया है जहाँ उसने अलाउद्दीन के आक्रमणों का अत्यन्त उच्चरित भाव से और विनामित तथ्यावली में रसपूर्ण वर्णन किया है वहाँ वह पद्मिनी का कथा जस सरस प्रसंग की अवहलना कर जाय — यह बात असम्भव प्रतीत होती है वह चितौड़ का चण्डी में अलाउद्दीन के साथ भी गया था। यदि पद्मिनी की कथा लोक जीवन या लोक कथाओं से गृहीत और कवि-कल्पना न होती न तो वर्नी और सुन्दरी अवश्य ही उसका रसमय वर्णन करते। अतः पद्मिनी की कथा ऐतिहासिक नहीं प्रतीत होती।

पूर्वादि का कथा नायकियों के सिद्धन-गमन सिद्धि प्राप्ति आदि पर

१-प० रामचन्द्र सुवन जा० प्र० पृ० २६७।

२-द्रष्टव्य, इसी प्रबंध का पदमावत का रचनाकाल।

३-गौरीशंकर हीराचंद ओझा उदयपुर राज्य का इतिहास प० १९१।

४-द्रष्टव्य माडन रियाू (नवम्बर १९५०) पृ० ३६१-६८ हिन्दी अनुशीलन वप ६ अंक ३ पृ० २६-३१ साहित्य सदेश, (भा० १३ अंक ६) पृ० २४६ ५०।

आधारित लोक-कथाओं का काव्यबद्ध विकसित एवं विलम्बित रूप है। यह बात भी कल्पना मात्र है कि सिंहलद्वीप लका न होकर राजस्थान का सिंगोली या महाराष्ट्र का बम्बई के पास सिंहल या सांगली स्थान है।

यस्तुत लोका न इतिहास के अभाव में या ऐतिहासिक अध्ययन न करने के कारण पदमावत को ऐतिहासिकता की दृष्टि से महत्वपूर्ण ग्रन्थ मान लिया है। वास्तविकता यह है कि वह नाम मात्र के लिए ऐतिहासिक है। वह एक सुन्दर काव्य ग्रन्थ है जिसका कलेवर इन ऐतिहासिक तथ्यों पर रचा गया है—

(१) रत्नसेन चित्तौड़ का राजा था। उसने मात्र एक वर्ष राज्य किया था।

(२) दिल्ली के सुनतान अलाउद्दीन ने १३०३-४ ई० में चित्तौड़ पर चढ़ाई की थी और छ महीने में उसे जीत लिया था।

(३) क्षत्राणियों ने जौहर की अज्ञानता में प्राणाहुति दी थी।

(४) सम्भवत उस समय पद्मिनी नाम की रानी नहीं थी, जिसके लिए ही अलाउद्दीन ने आक्रमण किया था। यह परवर्ती भट्ट भणत और मात्र कल्पना है।

फिरिश्ता, अबुल फजल टाइ आदि की पद्मिनी-सम्बन्धी

बातों का मूल स्रोत पदमावत है।

(उपयुक्त इतिहासकारों की पद्मिनी सम्बन्धी बातों का मूल स्रोत पदमावत है)। हमारे यहाँ पद्मिनी सम्बन्धी क्याए चोख और साहित्य में प्रचलित ही रही हैं।

सिंहल द्वीप की पद्मिनी उसका हीरामातुल्य रत्नसेन का सोलह सहाय्य जोगी राजकुमारा के साथ सिंहल जाना पद्मिनी को "याह लाना प्रभति बाते" शोक-व्यात्मक एवं कवि कल्पित हैं।

रत्नसेन के समय में सिंहल में गणवध मन नामक कोई राजा था ही नहीं। उस समय वहाँ का राजा कीर्ति निरशाकदेव पराक्रम बाहु (चौथा) या भुवनेक बाहु तीसरा हाना चाहिए।^१ य गणवध मन भी कवि कल्पना मात्र हैं (गणवध सेन की सम्भावना तो इन्द्र के दरवार कुबेर की अत्रका या हिमाचल प्रदेश में की जा सकती है)। उस समय कुभलनेर स्थापित तक नहीं हुआ था अतः देवपान को वहाँ का राजा कन माना जाय? अलाउद्दीन आठ वर्ष तक चित्तौड़ के लिए लड़ने के बाद निराश होकर दिल्ली नहीं लौटा किन्तु अनुमानत छ महीने लड़कर उसने चित्तौड़ छे लिया था वह एक ही बार चित्तौड़ पर चढ़ा था। इसलिए दूसरी बार आने की

१-इफ़ नोनोलाजी आफ इण्डिया पृ० ३२१-२२।

२-वही पृ० ३२१।

कथा कवि कल्पना एवं सभावना है।^१

जायसी द्वारा गृहीत कथा

पदमावती की कहानी भारतीय लोक गीतों की एक चिर परिचित कहानी है। भारतीय वाङ्मय में पदमावती की कहानी अनेक रूपों में प्राप्त होती है। इनमें से कुछ के उल्लेख ऊपर किया जा चुके हैं। अभी तक निश्चित रूप से यह जान नहीं कि पदमावती की उस चिरपरिचित कहानी के साथ अलाउद्दीन, रतनेन और पदमावती वाली कहानी का सम्बन्धन सर्वप्रथम किसने किया? जायसी के समय में यह कथा प्रचलित थी।

सिंहादाप पद्ममती रानी । रतनसन चितउर गढ आनी ॥
अलाउदी देहना सुलतानू । राघव चेतन कीह बवानू ॥
सुना साहि गढ देखा आई । हिंदू तुरुह ह नई लराई ॥
आदि अत जस गाथा अह । निनि भाखा — चौपाई कहै ॥^२

जायसी का कथन है कि जसी आदि से अत तक कहानी रही है तदनरूप उहान उसको भाय—चौपाई में निबद्ध करके उपस्थित किया है। जायसी के समक्ष दोना कहानियों के रूप कतमा थे। उहाने इन दोनो कथाओं के ताने-बाने में पदमावती की कथा का सघटन किया है। उहाने लोकजीवन में प्रचलित पदमावती की कथा, साहित्य में समादत पदमावती की कथा अलाउद्दीन के आगमन की कथा और रामपूतनियों के जोहर की कथाओं को एक सूत्र में संगुहित करके पदमावती जसा एक अदम्य—अपूर्व काव्य सौन्दर्य—सम्पन्न प्रबंध काव्य प्रस्तुत किया है।

जायसी ने अपनी कहानी का रूप वही रखा है जो कल्पना के उत्कृष्ट द्वारा माधारण जनता के हृदय में प्रतिष्ठित था। इसलिए गुलत जी ने जहा एक और अनुमान किया था कि इस कथा का मूलादर तो विलकुल कल्पित कहानी है और उत्तराखण्ड ऐतिहासिक आधार पर है वही उहान यह भी कहा है कि अवध में 'पद्मिनी रानी और हीरामन सूप की कहानी प्रचलित है। जायसी इतिहास विज्ञ थे। अत उहाने रतनेन अलाउद्दीन आदि नाम लिए हैं। जायसी ने प्रचलित कहानी को ही लकर सूक्ष्म योरा की मनोहर कल्पना करके उसे काव्य का सुंदर रूप दिया है।^३

१-गी० ही० आमा जयपुर राज्य का इतिहास पृ० १८७—८८ से उद्धृत।

२-प० रामचंद्र शुक्ल जायसी प्रयावती, पृ० ६।

३-रामचंद्र शुक्ल, जायसी प्रयावती पृ० ६

४-वही भूमिका प० २६।

उपयुक्त विवचना के आधार पर स्पष्ट हा जाता है कि उत्तराद्ध की कथा म भी अलाउद्दीन रत्नसन दिल्ली चित्तौड़, अलाउद्दीन-आक्रमण जौहर आदि कुछ ऐतिहासिक आगर हैं, किन्तु जायसी ने उमे जा रूप प्रदान किया है उसमे सबत्र कवि-कल्पना का ही प्राधान्य है। कथा वास्तविक सी लगे - एतदय इसम ऐतिहासिकता की छोक दे दी गई है। वस्तुत इतिहास के आधार पर पदमावत की कथा का निर्माण नहा हुआ है। बिस प्रकार कोई साहित्यिक कृति इतिहास का निर्माण कर देनी है इसका ज्वनत उगाहरण पदमावत है। यही है पदमावतकार की महान सफलता और उसका उत्तम काय कौशल।

पदमावत साहित्यक कृति है ऐतिहासिक नही। अत पदमावत का सौंदय साहित्य का है इतिहास का नही। पदमावत के विषय म कहा जा सकता है कि उसम सबत्र कवि-कल्पना का काय सौंदय दशनीय है। जायसी ईरानी इतिहास कारा की भाति तारीख लिखन नही बठ थे। उन्हाने बार-बार अपने कवि कम का उल्लेख किया है। प्रमपीर की अभिव्यक्ति ही उनका प्रतिपाद्य है। वे प्रेम ध गार के महान कवि हैं। पदमावत म ही अनेक स्थलो पर अपने कवि कम का उल्लेख उन्होने किया है (केवल स्तुति-स्तण्ड म ही) -

एक नयन कवि मुहम्मद गुनी। सोई विमाहा जेई कबिसुनी ॥

२१।१

चारि मीत कवि मुहम्मद पाए।

२२।१

जायस नगर धरम अस्थानू। तहा आद कवि कीह बखानू ॥ २३।१

मुहम्मद कवि जो बिरह भा ना तन रक्त न मांसु। दोहा २३

सन ती स सत्तालिम अहै। कथा अरम्भ वन कवि कहै ॥

२४।१ (पदमावत सजीवनी टीका)

आदि अत जस गाया अहै। लिखि भापा चौपाई कहै।

कवि विधास कवला रम पूरी। दूरि सो नियर नियर सो दूरी।

२४।५-६।

वे अपने को सभी कवियों का अनुवर्ती (पिछनगुवा) मानने हुए अपन कवि कर्म की अभिव्यक्ति करते हैं -

हों सब कविह केर पछिनगा। किछु कहि चला तवन दइ अगा ॥^१

उह साहि के गढ़ छंवन हिंदू तुरको की नडाई और सिधन द्वीप की पत्निनी रानी की कहानी-पात थी। यह कहानी आदि से अत तक बिस रूप म थी उम ही उहनि - भापा-चौपाई म कह लिया है।

वस्तुतः पृथ्वीराज रासो और पदमावत पर विचार करते हुए यह न भूलना चाहिए कि ये उत्कृष्ट कोटि के काव्य-ग्रन्थ हैं इतिहास ग्रन्थ नहीं। इन ग्रन्थों में वर्णित घटनाओं अनतिहासिक कहना उनके प्रति अन्याय है। इन ग्रन्थों की ऐतिहासिक चौर-पाठ से इनके वास्तविक सौन्दर्य का नही पाया जा सकेगा। आवश्यकता है इन ग्रन्थ रत्नों के साहित्यिक सौन्दर्य के मूल्यांकन की जिससे ये काव्यसमीक्षा शानोत्तरी होकर अपना आलोक विकीर्ण कर सकें।^१

कथानक रूढि

वदा दोहद अशोक, हस वर्णिकार चकोर प्रभति कवि-समय वस्तुतः एक प्रकार के विशिष्ट मोटिफ (अभिप्राय) है जो अत्यन्त प्रसंग गर्भी है। इनमें एक निश्चित कथा-खण्ड की योजना होती है य अपने आप में एक एक पूरा कहानो हैं।^२ 'भारतीय कथाओं में ऐसे अनेक लघु कथा यज्ञक प्रतीकों के प्रयोग हुए हैं। कथाओं में प्रयुक्त होने वाले इन प्रतीकों को कथात्मक मोटिफ' अभिप्राय या कथानक रूढि कहा जान लगा है। धीरे धीरे कथाओं में ऐसे अनन्त राजनीय कथात्मक प्रतीकों के समीप से कथात्मक 'टाइप बन जाते हैं।

कथानक रूढियों के क्षेत्र में सर्वाधिक महत्वपूर्ण काव्य है 'पेंजर' और 'लूम फील्ड' के। इस क्षेत्र में वेनिफी और डब्ल्यू नामन की कृतिया भी विशेष महत्वपूर्ण हैं। हिन्दी साहित्य में इस क्षेत्र में दिशा निर्देश का अत्यन्त महत्वपूर्ण प्रयत्न आचार्य प० हजारीप्रसाद द्विवेदी का^३ है।

भारतीय कथाकार कथा को विकास देने के लिए एवं अभिलषित दिशा में मोड़ देने से लिए कतिपय सामान्य घटनापरक विशिष्ट अभिप्रायो तथा त्रिपथपरक विस्वासो वा आश्रय सता है जो दीर्घकाल से हमारे देश के कथाकारों में व्यवहृत

१—द्वन्द्व-शिवसहाय पाठक कृत पदमावत का काव्य मीमांसा प्रथम अध्याय

प० २६।

२—शिप्ले डिक्शनरी आफ वर्ल्ड लिटरेचर फोर टेल प० २४० (दी मोटिफ इन दी इम्प्लेस्ट रिवाफिजिडुड इन्विगट इट गाज टू गेज अफ ए कम्परीट स्टोरी)।

३—'मोटिफ के लिए देखिए टामसन मोटिफ इ डबल आव फोर लिटरेचर

१६३२-३७ एस० टी।

४—वही प० २४८ (दी इम्पार्टेस आफ दी टाइप इन टू गो दी व इन डिफ न रटिव मोटिफस फाम इन टू कावेंशनल वनसटस)।

५—पेंजर कथासहितसागर (नया संस्करण) दानी कृत अनुवाद।

६—डब्ल्यू फील्ड, जनल आव अमरिकन ओरिएण्टल सोसाइटी वाल्यूम २, १, १९१

७—आचार्य प० हजारीप्रसाद द्विवेदी हिन्दी साहित्य का आन्विक

होते रहे हैं। इस वशिष्ठा को पाश्चात्य विद्वानों ने मोटिफ की सना से अभिहित किया है। हिन्दी में कनिष्य विद्वानों ने कथा-परिभाषा या कथारूप की सनायें भी दी हैं। परन्तु ये शब्द मोटिफ के अतभूत अर्थ का सम्यक चोखन करते प्रतीत नहीं होते। प्रतीक प्रयोजन उपनक्षण और सक्त शब्द भी कथानक रूढ़ि के स्थानापन्न-रूप में प्रयुक्त हुए हैं।^१ मूलतः ये कथा के मोक्ष-मन्त्र (टर्मिंग-प्वाइंट) या विस्तारक-विन्दु होते हैं। आचार्य पं० हजारीप्रसाद द्विवेदी ने इस मोटिफ शब्द को कथानक-रूढ़ि की सना से अभिहित किया है। अध्ययन की सुविधा के लिए हम कथानक-रूढ़ि शब्द का ही प्रयोग करेंगे।

- हिन्दी प्रमख्यानक काव्या के अध्ययन में ज्ञात होता है कि इन लाभ गहीत और साहित्य क्षेत्र में समादत्त कथाओं में कनिष्य ऐसी सामान्य विशेषताएँ उपलब्ध होती हैं जिन्हें मूलभूत कारण स्वरूप ये कथाएँ एक साथ में ढली नी जान पड़ती हैं। इन कथाओं की तुलनात्मक मीमांसा करने पर स्पष्ट बात होता है कि इन कवियों ने कथानक को विस्तार देने और सुनिश्चित दिशा देने के लिए घटनापरक रूढ़ियों का आश्रय लिया है। जायसी ने पदमावत की कथा में आठ चिर-परिचित कथानक रूढ़ियों का उपयोग किया है।

पदमावत में 'कथानक रूढ़ियों' का प्रयोग

पदमावत की कथा के सघटन एवं चयन पर विचार करते समय कथानक रूढ़ियों का विवेचन अत्यन्त आवश्यक हो जाता है क्योंकि प्राचीन भारतीय चरित काव्या आख्यायिकाओं तथा अन्य कथाकाव्या में इनके प्रयोग का प्राचय है। भारतीय काव्या में ही नहीं बल्कि पारसी यूनानी एवं पाश्चात्य देशीय काव्यों में भी इनके प्रयोग का जायिक्य है।

भारतीय और यूनानी दोनों रामायणों में प्रथम दशक जय भ्रम व गिद्वान की स्वप्न में प्रमिया का एक दूर के लिए हृदय गानने की और अचानक से बुराई की ओर त्वरित गति से भाग्य परिवर्तन की बात पुनः सौभाग्य का प्रत्यावर्तन अदम्य साहस सागर में उतारान का घम अनीकिक सौम्य मन्थन नावत और गायिकायें प्रवृत्ति और प्रेम के मन्त और सविस्तार यणन वस्थादि की प्राप्ति होती है।^१

अपभ्रंश भाषा के चरित-काव्यों में हिन्दी के आठ प्राचीन काव्यों में

१-डा० नागवर सिंह हिन्दी के विकास में उपग्रह का योग पृ० ३१२।

२-आचार्य पं० हजारीप्रसाद द्विवेदी हिन्दी साहित्य का आन्विकाल, पृ० ७०।

३-ए० वी० वीथ ए हिस्ट्री आफ सस्कृत लिटरेचर पृ० ३६५।

रासो में प्रेमाख्यानक काव्या में तथा अय प्रकार के प्रबंध काव्यो में कथानक रूढियों का खूब प्रयोग हुआ है। हिंदी प्रेमाख्यानक काव्यो के सौंदर्य का संवर्धन करनेवाली इन कथानक रूढियों का अध्ययन पूर्ववर्ती अपभ्रंश साहित्य की पीठिका पर अत्यन्त सुगमता से किया जा सकता है। श्री रामसिंह तोमर ने अपभ्रंस के चरित काव्यों एवं हिंदी के प्रेमाख्यानक काव्यो में प्रयुक्त कतिपय कथानक रूढियों का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया है।^१

- (१) इन दोनों प्रकार के प्रेम काव्यो में एक प्रेम-कथा की प्रधानता होती है।
- (२) प्रेमोत्पन्न चित्रदर्शन रूप गुण श्रवण आदि से होता है।
- (३) नायिका की प्राप्ति के लिये नायक का प्रयत्न बीच में कतिपय बाधाओं का समावेश।
- (४) लौकिक द्वारा परलौकिक संकेत।
- (५) सिंहल यात्रा या किसी सामुद्रिक यात्रा की याचना।
- (६) राक्षस अप्सरा या किसी अय अलौकिक शक्ति के योग द्वारा कथा में अशक्य तत्व का मिश्रण इत्यादि।

श्री तोमर जी की सूची में थोड़ी सी ही कथानक रूढि की चर्चा है। परमावत में ऐतिहासिकता नाम मात्र की है। उसमें आद्यत प्रायः घटनात्मक निजधरी कथाओं का ही प्राधान्य है। कुछ ऐतिहासिक नामों के अतिरिक्त उसमें सवत्र सभावना और कल्पना विलास का ही सौन्दर्य है। इस विषय में ऐतिहासिक और निजधरी कथाओं में विशेष भेद नहीं किया गया। केवल ऐसी बात का ध्यान रखा गया है कि सभा बना कथा है। चित्तौर के राजा से सिंहल देश की राजपुत्री का विवाह हुआ था या नहीं इस ऐतिहासिक तथ्य में कुछ लेना देना नहीं है हुआ हो तो बहुत अच्छी बात है न हुआ हो तो होने की सभावना तो है ही। राजा से राजकुमारी का विवाह नहीं होगा, तो किससे होगा? गुक नामक पत्नी थोड़ा बहुत मानस-बाणों का अनवरण कर लेता है और भा तो कर सकती था। — जब ये सभावनायें हैं तो क्या न युवक को सकलगात्र विलक्षण सिद्ध कर दिया जाय। इस प्रकार सभावना पर जोर देने के कारण कुछ कथानक रूढियाँ इस देश में चल पड़ी हैं। कुछ रूढियाँ ये हैं—

१—कहानी कहने वाला मुग्गा।

२—क-स्वप्न में प्रिय का दर्शन,

१—विश्वभारती खड ५ अंक २, अप्रैल-जून १९४६ ई०।

२—५० हजारी प्रसाद द्विवेदी हिन्दी साहित्य का आदिवात, पृ० ७४-७५।

१ ख-चित्र म देखकर किसी पर मोहित हो जाना,
 १ ग-भिक्षुको या बधियो के मुख स कीर्ति वणन सुनकर प्रमासक्त होना,
 १ इत्यादि ।

३-मुनि का शाप

४-रूप परिवर्तन

५-लिंग परिवर्तन

६-परकाय प्रवेश

७-आकाशवाणी

८-अभिमान या सहिदानी

९-परिचारिका का राजा से प्रेम और अंत म उसका राजकाया और रानी की बहन के रूप म अभिमान ।

१०-नायक का सौन्दर्य ।

११-पटञ्जलु और बारहमासा से माध्यम से विरह वेचना ।

१२-हंस-कपोत आदि से सदेश भजना ।

१३-घोडे का आखट के समय निजन वन म पहुच जाना माग भूलना मान सरोवर पर किसी सुदरी स्त्री या उसकी मूर्ति का दिखाई देना फिर प्रम और प्रयत्न ।

१४-विजय वन म सुदरिया से साक्षात्कार ।

१५-युद्ध करके शत्रु से या मत्त हाथी के जाक्रमण से या कापालिक की बलि वेदी से सुदरी का उद्धार और प्रम ।

१६-गणिका द्वारा दरिद्र नायक का स्वीकार और गणिका माता का निरस्कार ।

१७-भरण्ड और गरुड आदि के द्वारा प्रिय युगनों का स्थानान्तरण ।

१८-पिपासा और जल की खोज म जाते समय असुर-दर्शन और प्रिया-वियोग ।

१९-ऐसे शहर का मिल जाना जो उजाड हो गया हा ।

२०-प्रिया की दोहरे-कामना की पूर्ण के लिए प्रिय का अमाध्य-साधन का सकल्प ।

२१-शत्रु-सनापित सरदार को उसकी प्रिया के साथ शरण देना और फल स्वरूप युद्ध इत्यादि ।

वस्तुन भारतीय कथा-साहित्य म प्राचीन काल से ही इन प्रकार की कथानक-रुद्रियो के प्रयोग मिलते हैं । ईसवी सन की चौथी शताब्दी के आसपास

रचे गए संस्कृत साहित्य में, और परचात अपभ्रंश-साहित्य में इनकी वाङ्मयी आ गई है। पदमावत की कथा-वस्तु के सघटन के लिए जायसी ने ऊपर दी गई कथानक रूढ़ियों (में से प्रायः अनेक रूढ़ियों) का प्रयोग अत्यन्त चास्त्रा से किया है। पदमावत में इनके अतिरिक्त और भी प्रचलित कथानक रूढ़ियाँ के दशन होते हैं, जस सिंहलद्वीप, देवमन्दिर जोगी और जोगी वेश सपत्नी ईप्सा आदि ।^१

जबतक कथाएँ लोक कण्ठ को अलकृत करती हैं और उहे काव्यबद्ध नहीं किया जाता तबतक उनकी रूढ़ियाँ को लोक प्रचलित कहानी की सना दी जा सकती है किन्तु जब किसी भी तरह का साहित्य में प्रयोग परंपरा प्रचलित और स्थायी हा जाता है तो उसे साहित्यिक-परम्परा की सना में अभिहित किया जाता है।

निष्कण रूप में कहा जा सकता है कि पदमावतकार के समक्ष अपभ्रंशकाल से चली आनी हुई चरितकाया की, मौलिक कथाआ की चदायन से चली आती हुई प्रमकथा काया की एक फारसी मसनवियों की विशाल परम्परा थी। इन काव्या में अनेक कथानक रूढ़ियों के प्रयोग मिलते हैं। जायसी ने लोक और साहित्य में प्रचलित कथाआ स ही इन रूढ़ियों को गहीन किया है। डा० सत्येन्द्र का कथन है कि पदमावत की संपूर्ण पथ्वीराजरासो की ही भाँति पदमावत में भी कथानक रूढ़ियों का उत्कृष्ट सौम्य दर्शनीय है।

पदमावत में प्रयुक्त विशिष्ट कथानक रूढ़ियाँ

१—सिंहलद्वीप की पद्मिनी ।

२—सन्धवाहक युव ।

३—यह युव बहलिया द्वारा पकड़ा जाकर चित्तौड़ के ब्राह्मण के हाथ बेचा जाता है।

४—राजा तोत को खरीता है।

५—राजा की रानी इस भय से कि तोता राजा स पद्मिनी का रूप बहगा तो वह उसके मोह में पड़ जायगा तोत का मार डानना चाहती है पर तोता बच जाता है।

६—एक राजा जा युव से पद्मिनी का रूप सुन कर उसके प्रेम में मग्न हो जाता है।

७—राजा अपनी पहली रानी और राजपाट को त्याग कर युव के पीछे पीछे चलता है।

१—शिवसहाय पाठक पदमावत का काव्य-सौन्दर्य, पृ० ३५-३६।

- ८—राजा नाव में बठकर सात समुद्र पार करता है ।
- ९—सिंहल में अगम्य गढ़ में पद्मिनी का निवास ।
- १०—एक शिव जी के मंदिर में राजा का तपस्या करना जहाँ वसंत के दिन पद्मिनी का आना ।
- ११—पद्मिनी को देखकर राजा वेसुध, पद्मावती उस बेहोश राजा की छाती पर कुछ लिखकर चली गयी ।
- १२—होश आने पर राजा का दुख ।
- १३—पावती द्वारा राजा के प्रेम की परीक्षा ।
- १४—महादेव जी द्वारा कृपा करके सिद्धि देना और गढ़ का माग बताना ।
- १५—राजा ने गढ़ पर चढ़ाई की । एक अगाध कुण्ड में रात में प्रवेश किया, वहाँ वज्र किवाड़ लगे मिले जिन्हें राजा ने खोला ।
- १६—राजा महलो में गया और पकड़ा गया, उसे सूली देने का आदेश ।
- १७—शिव पावती ने भाट बनकर पद्मिनी के पिता को समझाया कि यह तो राजा है, पर उसने न माना ।
- १८—युद्ध की घोषणा जोगियो की ओर से हनुमान विष्णु तथा शिव को देखा तो राजा ने अधीनता मानी ।
- १९—पद्मावती रत्नसेन को मिली ।
- २०—नागमती ने पक्षी के हाथ रत्नसेन के पास सिंहल संदेश भेजा ।
- २१—राजा पद्मावती और बहुत सा धन ले सिंहल से विदा हुआ ।
- २२—समुद्र में याचक बनकर धन मागा पर राजा ने न दिया ।
- २३—समुद्र में तूफान से अटक कर जहाज लक में पहुँचे जहाँ विभीषण का राक्षस उन्हें एक वात्याचक्रालोड़ित समुद्र में ले गया ।
- २४—तभी एक राज पक्षी उस राक्षस को लेकर उड़ गया ।
- २५—रत्नसेन—पद्मावती का जहाज टूक-टूक हो गया । दोनों लकड़ी के टुकड़ा की पकड़ कर अलग-अलग बह गये ।
- २६—पद्मावती बहकर वहाँ पहुँची जहाँ लक्ष्मी थी । लक्ष्मी ने उन बचाया ।
- २७—लक्ष्मी ने समुद्र से रत्नसेन को लाने को कहा ।
- २८—समुद्र एकान्त में बिलपते रत्नसेन के पास पहुँचा । ब्राह्मण बनकर और उन्हें डक के सहारे माया से पद्मावती के द्वीप पर ले आया ।
- २९—लक्ष्मी ने पद्मावती का रूप धर रत्नसेन की परीक्षा ली तब पद्मावती से मिली ।
- ३०—समुद्र ने पाँच चीजें भेंट देकर दोनों को विदा किया । पाँच चीजें—१ अमृत,

- २, हंस, ३, सोनहा पक्षी, ४ शादू ल और ५, पारस पत्थर ।
- ३१—नक्षत्री के दिए वाद म से रत्न तवर लाव—अश्वर जगनाय म खरीदा चित्तौड को चल ।
- ३२—नागमती को अदृश्य शक्ति ने पति के जाने की सूचना दी ।
- ३३—एक महा पण्डित राघव चेतन ने आरर काव्य सुना कर राजा को वध म कर लिया ।
- ३४—उसने यशिणी सिद्धि से प्रणिपत्ती को दूज का चन्द्रमा त्रिता दिया, राज पडिता का इस प्रकार अपमान ।
- ३५—अपमानित पडिता १ एस जादूगर को राजसभा म रखने के खतरं राजा का मुझाए । राजा ने राघव चेतन को देश निकाना दिया ।
- ३६—राघवचेतन न जाते-जात पन्मिनी का रूप देखा और पदिमनी का दिया वगन लिया ।
- ३७—पन्मिनी के रूप से वह मूर्छित हा गया ।
- ३८—राघव ने दिल्ली अलाउद्दीन को पदिमनी का सोदय बताया तथा रत्नसन व पास पाव अमोल रत्नों के होने की बात भी कही ।
- ३९—अलाउद्दीन ने राघव के हाथ पत्र भजा कि पन्मिनी का त्रिनी भेजो राजा न मना किया । अलाउद्दीन ने गट घेर लिया ।
- ४०—दोनो म घमासान युद्ध होन लगा । किन्तु राजा न फिर नी राजपवर पर नृत्य—अधाडा जोडा ।
- ४१—कन्नौज क मलिक जहागार न अलाउद्दीन के कहने से नीचे से एक बाण छाड एक नतकी को मार डाला ।
- ४२—अलाउद्दीन ने सद्दश भेजा कि राणा पाचो नग दे दे पदिमनी महा लेंगे । राजा न नग भज सधि हुई ।
- ४३—अलाउद्दीन चित्तौड देखने गया । राणा स शवरज खलत हुए झराम म आई हुई पन्मिनी को शीश म देखा और मूर्छित हो गया ।
- ४४—गट से लौटते हुए शाह ने बिदा क लिए साथ आए हुए राजा को प्रेम त्रिवाल हुए वणी बना लिया ।
- ४५—इस वियोग म कृष्णलनेर के राजा देवपाल ने दूता को पन्मावती का फुसला लान व लिए भेजा ।
- ४६—दूती ने पदमावती को फुसलाना चाहा पर वह अमरुप र्शा और उन्न बुद्ध तरह पीट कर निकाल लिया गया ।
- ४७—शाह ने भी पातुर दूती को जोगिन बनाकर भजा कि वट उन्न न आए ।

- ४८—जोगिन व कहने से पदमावती जोगिन बनने को तयार हुई, पर सखियो ने रोक लिया ।
- ४९—तब पदमावती के साथ गौरा-बादल ने रत्नसेन को छुड़ाने का वचन दिया ।
- ५०—बादल की नव परिणीता वध न रोका पर वह रुका नहीं ।
- ५१—सोलह सौ चडोल सजाए गए । पद्मिनी की पालकी में लुहार बठा और डोनों में राजपूत । ये दिल्ली चले ।
- ५२—शाह से कहा कि पद्मिनी आपके यहा जाई है पर वह रत्नसेन से मिलकर तब आपके यहा आएगी । रत्नसेन से मिलने की आज्ञा दीजिए ।
- ५३—इस विधि से रत्नसेन को छुड़ा लिया गया । वह चित्तौड़ की ओर भेज दिया गया ।
- ५४—बादल रत्नसेन के साथ चित्तौड़ लौटा गौरा ने शाह की सना को राका युद्ध किया और मारा गया ।
- ५५—राजा चित्तौड़ पहुँचा । प्रसन्नता छा गई । पदमावती ने देवपान की दूती का बात बताई ।
- ५६—राजा ने देवपान पर चढ़ाई कर दी । उसे मार डारा ।
- ५७—राजा को देवपान की सल का घाव लग गया था । इसमें वह भी मर गया ।
- ५८—नागमती और पद्मावती सती हो गई ।

पदमावत व इन अभिप्रायों के विषय में डा० सत्येंद्र का मत है कि 'अभिप्रायों की इस सूची को देखने मात्र से यह प्रतीत हो जाता है कि प्रत्येक अभिप्राय काफी विस्तृत क्षत्र में लोक कथाओं में उपयोग में आता रहा है । कोई भी मात्र ऐतिहासिक नहीं ।'

पदमावती रानी की कहानी भी भारतीय लोक और साहित्य की एक कथानक रूढ़ि है —

मूलतः पदमावती रानी की कहानी भारतवर्ष की एक पुरानी कहानी है । अवध भोजपुर जनपद की तो यह एक अत्यन्त प्रसिद्ध कहानी मानी जाती है । किसी राजकुमारी का अपने पालित शुक से अपना हृदय खोलना, काम-व्यथा कहना 'शुक' के माध्यम से किसी राजा या राजकुमार के यहा प्रणय-सदेश भेजना राजकुमार का आश्रमण या जोगी रूप में आगमन भवानी या शिव-मंदिर में मिलन परिणय प्रथि में सप्रथन, सागर-यात्रा जलयान घुस विविध प्रत्यूह अनौकिक शक्ति अथवा दवी शक्ति की सहायता पुनर्निर्जन प्रभति तत्त्व भारतीय कथाओं में पाए जाते हैं ।

केवल भारतीय कथाओं में ही नहीं, फारसी कथाओं, ग्रीक-कथाओं, गौथिक कथाओं और अ्य पाश्चात्य श्रेणीय प्राचीन या मध्ययुगीन कथाओं में भी इस प्रकार के कथा-तत्व मिल जाते हैं।^१

पद्मावती की कथा अपने इसी रूप में लोक में प्रचलित थी।^२ भारतीय बाइबल में सम्बन्ध काल से पद्मावती का कथावै प्रतिष्ठि पाती रही है। कल्कि पुराण^३ में आई हुई कथा के अनुसार पद्मावती सिंहल देश के राजा बहद्रथ की पुत्री है। कथा सारित्सागर^४ में भी लोक कथाओं से गहीन पद्मावती की कथा वर्णित है। पृथ्वीराज रासो^५ के पद्मावती - समय^६ में भी पद्मावती राना की कहानी के मूल तत्व छोड़े से परिवर्तन के साथ ही है। शशिब्रता विवाह समय^७ में शुव के स्थान पर हस की अवतारणा की गई है उस कथा के भी कृष्ण तत्व इससे मिलते हैं। इस कथा का मूल स्रोत वस्तुतः नव कथा में भी उपलब्ध है जहाँ नल के पास हस आकर दमपती के प्रति प्रेम और उस प्राप्त करने की चेष्टा उपर कर लेता है।^८ चंदावन^९ का डाका लगभग पद्मावती की कहानी जसा ही है। इन दानों काव्यों की कथाओं में सादृश्य है। सदयवन्मार्वांगी मिरगावता मुग्धावती मघमालती, प्रेमावती, सवनावती प्रभृति प्रेम कहानियाँ में भी प्रेम परक आख्यान पतमान थे। जायसी ने लिखा है कि 'सिंहलद्वीप की पद्मिनी रानी की कथा उनके समक्ष वतमान थी—

आदि अतजस गाथा अह । निखि भापा चौपाई कहे ॥^{१०}

जायसी ने जो वस्तु ग्रहण किया है वह आदि से अत तक एक ही गाथा है। वह गाथा लोक गाथा है इसमें सन्देह नहीं। वस्तुतः यह कहानी आरम्भ से अत तक लोक कहानी की भाँति प्रचलित हो गई थी। जाँवर के समय में यह एक लोक कथा

१-पद्मावत का काव्य-सौन्दर्य पृ० ३७ ।

२-वही, पृ० ३७ ।

३-माहित्य सन्देश (आदि पद्मावती) भा० १३ अ ६ प० २४६-५० (डा० दशरथ शर्मा का लघु) ।

४-कथा सारित्सागर ।

५-पृथ्वीराज रासो (पद्मावती समय) हरिहरनाथ टंडन द्वारा सम्पादित ।

६-प० हजारीप्रसाद द्विवेदी और नामवरसिंह - सन्निभ पद्माराज रामो शशिब्रता विवाह समय प० १६-७६ ।

७-डा० मन्मथ आलाचन (पद्मिनी) भाग ४ प० ३५ ।

८-मुस्ता दाऊ चंदावन स० डा० परमेश्वरीनाथ गुप्त ।

९-पद्मावत पृ० ६ (दो २४५) ।

के रूप में थी। आईने अकबरी, पृथ्वीराज रासो और टाड में इसी लोक कथा के वक्त दिए गए हैं। इससे यह स्पष्ट हो गया कि पदमावत की सम्पूर्ण कथा लोक कहानी है। उसका ऐतिहासिक वक्त से सम्बन्ध लोक क्षेत्र में हो गया था। जिससे कहानी में ऐतिहासिक नाम आ गए हैं और लोक कहानी के अभिप्रायों की ऐतिहासिक प्राणियाँ लोक मानस में प्रस्तुत कर दी गईं जिसका काव्य रूप जायसी ने सजा किया।”

पदमावत में जायसी ने पदमावती रानी की इसी कहानी को गहीत करके चरम विकास का सौन्दर्य प्रदान किया है। पदमावती रानी की कहानी के समस्त लोकात्मक और काव्यात्मक रूपों में जायसी के पदमावत का काव्य-सौंदर्य उत्कृष्ट काटिका है।

पदमावत के कतिपय विशिष्ट अभिप्रायों का सर्वेक्षण^१

(१) सिंहलद्वीप

भारतीय लोक जीवन और साहित्य में सिंहलदेश की पद्मिनी नायिका (मुख्य रूप से राज कथाओं) से विवाह के अनेक समधुर और सुधारक स्नान कथा प्रसंग आए हैं। श्री हृषिकेश की रत्नावली में इसी रूढ़ि का आश्रय दिया गया है। कौतूहल की रत्नावली में भी नायिका सिंहलदेश की राजकन्या ही है और जायसी के पदमावत में भी वह सिंहल देश की ही कन्या है। इन सभी स्थानों पर सिंहल को समुद्र मध्य स्थित कोई देश माना गया है। अपभ्रंश की कथाओं में भी इस सिंहल देश का समुद्र स्थित होना पाया जाता है। ऐसी प्रसिद्धि है कि सिंहलदेश की कन्याएँ पद्मिनी जाति की सुश्रवणा होती हैं। जायसी के पदमावत तक के काल में सिंहल के समुद्र स्थित होने की चर्चा आती है। मत्स्येन्द्रनाथ के सम्बन्ध में प्रसिद्ध है कि वे किसी स्त्री देश में विलासिता में फँस गए थे और उनके सुयोग्य शिष्य गोरक्षनाथ ने वहाँ से उनका उद्धार किया था। योगि-सम्प्रदाय विष्णुनि नामक एक परवर्ती ग्रन्थ में सिंहल को त्रिया-देश अर्थात् स्त्री देश कहा गया है। भारत वर्ष में स्त्री-देश नामक एक स्त्रीदेश की ख्याति बहुत प्राचीन काल से है। इसी देश को कन्नौज और वाट की पुस्तकों में बजरीवन कहा गया है। सिंहलदेश की अविस्तार चर्चा करते हुए ५० हज़ारीप्रसाद द्विवेदी ने लिखा है कि नागपथी कहा गया में भी सिंहलद्वीप और स्त्री-देश का अन्तर स्पष्ट नहीं हो पाता। गुरु

१-मध्ययुगीन हिन्दी साहित्य का लोक-साहित्य अध्ययन डा. सत्यद्वारा २० २७८-७९

२-आचार्य हज़ारीप्रसाद द्विवेदी हिन्दी साहित्य का आदिमान ५० ७६-७७।

मत्स्येन्द्रनाथ अपना मंगलान भूचर एक स्त्रीशेग म जा फने थे । वह कहा है ?
 'मीनचैतन और 'गारुड विनय म इम शैग को कत्रीशेग कहा गया है । योगी
 सम्प्रदायाविष्णुनि म 'निमा शेष अथान सिंहवनीय कहा गया है । सिंहवनीय प्रथ
 गार की व्याख्या है । भारतवष म स्वशेग नामन एक स्त्रीप्रदान शेष की
 र्गानि बहन पुराने जमान स ह । नगभग एर श्वन मना का उ लेग करने हुए
 प० हजारीप्रसाद द्विवेदी न निमा है कि इन सब स म अनुमान पुष्ट हाता है कि
 कत्रीशेग नामन क उत्तरी श्वाक म है । तत्राशक की टीका और कौन चान
 निणय म मर स्पष्ट है कि मत्स्येन्द्रनाथ न नामरूप म ही शीन मापना की थी ।
 र्गानि स्वशेग या कत्रीशेग स बन्धुन कामरूपा ही उच्छिष्ट है । यह भी प्रमाणित
 हाता है कि किसी समय हिमालय के पावय अवन म पवित्रम स पूव तक एक
 विशाल प्रशेग ऐसा था जहा स्त्रियों की प्रमानता थी । मत्स्येन्द्रनाथ जिन म्यान पर
 गय जाचार म फय गये थे । वर स्त्रीशेग या कत्रीशेग था जो कामरूप ही हा सकता
 है ।^१ उडियान दश के दो भाग है एक का नाम मम्भनपुर है और दूसर का नाम
 नकापुरी । अनेक चीनी और तिब्बती प्रथा म इम नकापुरी की चर्चा आती है ।
 उडियान म ही का कोई लकापुरी है । यह मभनपर सिंहल हो मरता है यह जानवर
 पीठ क पास है ।^२

सचमुच सिंह द्वीप उडियान के समीप या वही कही होना चाहिए । पदमा
 वत का सिंहद्वीप — कनिग समद्र तट से दूर मान सागर पार स्थित है । वहा पर
 अत्यन्त रूपवती लावण युक्तिका पश्मिनिषी पाई जाती है । जायसा ने इन पश्मिनी
 नारिया के रूपा सौन्दर्य का अत्यन्त उल्लसित वर्णन किया है—

सिंहवनीय क्या अब गावों । औ सी पदिमनि वरनि सुनावी ॥

पानि भर आव पनिहारी । म्य मुख्य पश्मिनी नारी ॥

पदुम गय तिह अग बसाही । भवर नागि तिह मग क्रिराही ॥

वनर वनस मुखचर निपाहा । रहम कलि सन आवोह जाहा ॥^३

पश्मिनी श श्मन्त कामशास्त्र के नाशिका प्रकरण स सम्बद्ध है । समस्त
 नाशिकाओं म पश्मिनी थच्छतम^४ । वहा म चनवर यह श्मन्त श्वाक क्षेत्र म
 पञ्चम अक्षेण सुच्छ का पयाप्रवाह बन गया । था नाह्य जी न राजस्थान
 म प्रचलित कई पश्मिनिया और पश्मावतिया का उल्लेख किया है ।^५ मन्थीन नगरी

१-ग० हजारीप्रसाद द्विवेदी नाथ सम्प्रदाय प० ७८ ।

२-ग० प्रबोधचन्द्र बागची स्त्रीशेग इन ति तथान (कनकता १६३६) भाग १
 और नाथ सम्प्रदाय ७ प० ७८ ।

३-नाथ प्र० पत्रिका वष ५८ अंक १ २०११ ।

४-प० रामचन्द्र शुक्ल जायसी, प्रयागवती सिंहद्वीप-वर्णन-मड १।१ और ८।१२, ४

म चार पदमावतिया का उल्लेख है।

जायसी की पदमावती इसी सात सागर पार के सिंहलद्वीप के राजा गधव सेन की पुत्री है। उसकी प्राप्ति के लिए रत्नसेन चित्तौड़ से सिंहल गया था। जायसी ने नाया की सिंहल गमन पदिमनी स्त्रिया के अलौकिक सौंदर्य, सात सागर के प्रत्यूह सिद्धि प्राप्ति आदि से सम्बद्ध कथाओं को सुना था। गोरखनाथ की कथा प्राख्यात थी ही—सिंहल में पदिमनिया की कल्पना गोरखपथी योगियों की देन है। महायानी बौद्धों में धायकटक और श्रीपवत सिद्धपीठ माने गए थे।^१ वहा जाकर ही किसी को पूण सफलता प्राप्त होती थी ऐसा उनका विचार था। सिंहल में जाना और प्रम और योग की साधना में उत्तीण होना सिद्ध यागी के लिए अनिवाय वस्तु थी। वहाँ साक्षात् शिव परीक्षा लते हैं और परीक्षोत्तीण होने पर अभीष्ट की अवाप्ति हाती है। जायसी ने इन्हीं स्रोतों से सिंहलद्वीप की कथा ली है।

पदमावत के रत्नसेन की भाति कबीर भी राम की खोज में सिंहल की यात्रा कर चुके थे—

कबिरा खोजी राम का गया ज सिंहलदीप ।

राम तो घट भीतर रह या जो आव परतीति ॥^२

जायसी के बहुत पहले अपभ्रंश के कई काव्या में सिंहलद्वीप की कथानक रूति का उपयोग हो चुका था। इसका उपयोग १०६५ ई० में रचित मुनि बनकामर कृत 'करकण्डुचरित' में भी हुआ है।^३ करकण्डु दक्षिण होते हुए सिंहल द्वीप भी गए थे। उन्होंने सिंहल की राजकुमारी रतिवगा से विवाह भी किया था। जिनमत्त चरित (रचयिता साखू या नखण) (१२७५) में भी सिंहलद्वीप का उल्लेख मिलता है। नायक सिंहलद्वीप में जाकर राजकुमारी से विवाह करता है। धनपान के 'भविसयत्त' कहा (१०वीं शती ईस्वी) में भविष्यदत्त की पाच सौ यापारिया के साथ 'कवनद्वीप' की यात्रा का वर्णन है। दसवीं शताब्दी में मयूर^४ कवि ने पदमावती कथा की रचना की थी। इस प्रकार स्पष्ट है कि इस रोमंटिक और मनोरम पदिमनियों के देश का हमारे साहित्य में उपयोग प्राचीन काल से ही होना चला आ रहा है।

श्री गौरीशंकर हीराचन्द्र ओझा का कथन भी इस सिलसिले में उल्लेखनीय

१—महापण्डित राहुलसाहृत्यायन पुरातत्व—निबन्धावली पृ० १२६।

२—कबीर प्रयावली ना० प्र० सभा पृ० ८१।

३—करजा जन ग्रन्थमाना सं० प्रो हीरालाल जन १ १६३४ ई०।

४—हिंदी साहित्य, प० ह० प्र० द्विवेदी पृ० २६०।

है। कुछ विद्वानों के कथनानुसार पदमावत का सिंहलद्वीप लका ही है। उनकी राय में रत्नसेन का सिंहल की पदमावती से विवाह एक ऐतिहासिक तथ्य है। वस्तुस्थिति यह है कि रत्नसेन लगभग एव ही वय चित्तौड़ का राजा रहा उसमें भी अंतिम छ महीने तक तो वह अलाउद्दीन से लड़ता ही रहा। ऐसी स्थिति में उसका सिंहल जाना, वहाँ पदमावती के साथ एक वय तक रहना और पदिमनी के साथ चित्तौड़ लौटना सबथा असंभव है। -- रत्नसेन के राज्य करने का जो समय निश्चित है उससे यही माना जा सकता है कि उनका विवाह सिंहल द्वीप अर्थात् लका के राजा की पुत्री से नहीं किंतु सिंगोली के सरदार की कन्या से हुआ ही।

वस्तुतः सिंहल द्वीप की ऐतिहासिकता और भौगोलिकता का लेकर बहस करना व्यर्थ है। राजा रत्नसेन का सोलह सहस्र राजकुमार जोगियों के साथ सात सागर पार करना महादेव के मंडप में पदमावती की प्रतीक्षा में तप-साधना रत रहना, उनके आने पर मूर्च्छित हो जाना उसके जाने के पश्चात् मूर्च्छा का दूर होना, महादेव पावती का कोन्ती-कोडिन के वेश में आना परीक्षा करना रत्नसेन की ओर से युद्ध में हनुमान महादेव प्रभृति देवताओं का आना, उसका पदमावती के साथ लौटना, लक्ष्मी-समुद्र की सहायता करना प्रभृति कथा विद्वु क्विसी ऐतिहासिक या भौगोलिक तथ्य की ओर इंगित नहीं करते। वस्तुतः ये सब हमारे देश की कथाओं की कथानक ऋद्धियाँ हैं।

उपयुक्त विवेचन से स्पष्ट है कि जायसी के पदमावत में वर्णित सिंहलद्वीप न तो राजस्थान का सिंगोली है और न लका-द्वीप। जायसी लोक-कथाओं के सिंहलद्वीप नाम संप्रदाय के सिंहल देश सबकी आख्यानों तथा अय प्रकार की सिंहल देश सबकी आख्यानों और कथाओं से परिचित थे। अतः उन्होंने वही से गहरी करके कल्पना और सभावना के सहारे सिंहल द्वीप का विनमिश्र चित्रण किया है। पग पग पर कुआ बावरी। साजी बठक और पावरी ॥^१ आदि वर्णन कल्पना मूलक ही हैं।

१-ना० प्र० पत्रिका जिल्हा १३ स० १९८६ (पदमावत का सिंहल द्वीप लेख)।

२-इस वर्णन से स्पष्ट है कि यह अश शेरशाह के शासन काल में लिखा गया था, शेरशाह ने सराय कुयें, बुश आदि की अत्यन्त सुन्दर व्यवस्था की थी। इन वर्णन से सन नौ स सैतालिप्त अहा। कथा अरम्भ बन कवि कहाँ पर भी आनोक पढता है।

-इतिहासक हसन कुरशी दी ऐन्मिनिस्ट शन आव दी मुल्तानेट आव दलहा, प० २७० और एस० आर० शर्मा मुगल एम्पायर इन इण्डिया, प० १७१।

'पश्वीराज रासा' के पदमावती समय में भी पद्मावती^१ की जन्मभूमि को समुद्रशिखर गढ़ कहा गया है। वह उत्तरप्रदेश की कथा बताई गई है (जो कजरी वन त्रियाणेश स्त्री दश सिंह नरेश जाति के गडमडड और उन्नाय का सूचक है) यद्यपि पद्मावती समय में समुद्र यात्रा की विनिवाजना नहीं है तथापि समुद्रशिखरगढ़ नाम ही उसके समुद्र साग्रीध्व का सूचक है। कुछ लोगों का अनुमान है कि पद्मावत की सजा के अनंतर पदमावती समय रासा में प्रशिक्षित कर दिया गया है। फिर उनका राजा विजय देव^२ सिंह के राजा विजयसिंह से मित्रता जुलता है और जादू कुन में सभवत यातुगान कुल की यात्रा बनी हुई है।

निष्पन्न रूप में हम कह सकते हैं कि भारतीय सिंहा दश की पद्मिनी की कथा सम्बन्धी चिर परिचित कथानक रूटि क तान-धाने से जायसी ने पद्मावत की कथा का संघटन किया है।

हीरामन शुक

गुक गुनी चक्रवाक और हंस भारतीय प्राचीन कथा-साहित्य के अत्यन्त महत्वपूर्ण पात्र हैं। ये पक्षी भारतीय परिवार में अत्यन्त समाप्तता है ही उस परिवार की सर्वोत्तम अभिव्यक्ति-साहित्य-में भी इनका बड़ा महत्वपूर्ण स्थान रहा है। कथाओं में शुक सारिका हंस आदि तीन विषय उल्लेखनीय काम करते हुए दृष्टिगोचर होते हैं—

(१) कथा के कहने वाले—वक्ता और धाता के रूप में।

(२) कथानक की गति का अग्रसर करने वाला सदशवाहक या प्रेम सम्बन्ध घटक के रूप में और

(३) कथा के रहस्या को खोलने वाला अपाराध भदिया के रूप में। अन्तिम रूप में सारिका अधिक उपयोगी समझी गई है।^३ ये पक्षी प्रेम और मित्रता कराने के साथ-साथ कभी कभी भावी दृष्टान्त या मंगल की सूचना भविष्यवक्ता के रूप में देते हैं। गुन का उपयोग कथात्मक प्रतीक के रूप में संस्कृत-काल से ही होता आ रहा है।

१-पद्मिनीय रूप पद्मावतिय मनुहु काम कामिनि रचिय (पद्मावती समय १५)।

२-पूरव तिसिगढ़ गढ़नपति समुद्रगिपर जति दुग्ग (पद्मावती समय १)।

३-तहु सुविजय सुरराजपति जादू कुनह अभग्ग। (वही १)।

४-हिंदी साहित्य का आदिकाल पृ० ७७।

५-आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी हिंदी साहित्य का आदिकाल पृ० १८ और ७५।

संस्कृत और अपभ्रंश भाषाओं में निबद्ध कथाओं में गुक गुकी का पुराना परम्परा प्रचलित रूप स्थानीय है। बाणभट्ट की काल्पवृक्षी गुक के मुख से कहलवाई गई है।^१ हृषिकेश की रत्नावली में नायिका के प्रेम रहस्य का उल्लेखन मुखर साहित्य ने ही किया है। पार्श्वनाथ चरित में तीमर संग में एक सकलपात्र पारंगत सुग की कथा है। अमरक शतक में एक श्लोक में नायक-नायिका के रात्रि में प्रेमालाप की प्रतीति सास जिठानी में समक्ष गुक के दुहराने का मनोजब वचन मिलता है—

दम्पयानि शिञ्जलपता महगुकनारणित यद्वच ।

तप्रातमुत्सन्निधी निगन्तु श्रुत्वैव तार वपू ॥

वर्णनवित परमरागनाकल वियस्य चचुपुत् ।

ब्रीषतीं प्रकरति दादिम पत्रयाजन वाग्धनम् ॥^१

प० हजारीप्रसाद द्विवेदी जी का मत है कि पृथ्वीराज रामा में गुक गुकी का अर्थ अत्यन्त प्रमाणिक और महत्वपूर्ण है। रासो की पूरी कहानी गुक गुकी के मुख से कहलवाई गई है।^१ हीरामन मुञ्जा प्रेम-सम्बन्ध घटन के रूप में कनकामरुत करकट्टु चरित में भी आया है। नवकथा में प्रेम-व्यापार सघटक का कार्य इस न किया है। रासो में 'समुत्सिपरगड' की परमावता और तिनी में पृथ्वीराज के मध्य सदा-बहुत प्रणय-संस्थापन और परिणय ग्रन्थि निवृत्तन गुक ने ही किए हैं। पृथ्वीराज रामा के शशिप्रता-विवाह-समय में शशिप्रता और पृथ्वीराज के मध्य प्रणय-परिणय व्यापार का सघटक एक हमवचन है। वह इच्छिना और सयागिना की प्रतिद्वन्द्विता में समय इच्छिनी की वियाग-विधुरग अवस्था की सूचना देकर राजा को बड़ी रानी (इच्छिनी) का ओर उमुख करता है।

भारतीय कथा-काव्या में व्यवहृत गुरु-सम्बन्धी ये सब कथायें लोक-प्रचलित थी अब भी हैं। परमावत की कथा का गति दन के लिए जायसी ने इस स्ति का आशय लिया है।

१-आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी हिन्दी साहित्य का आदिवाक्य प० ५८ और ७५।

२-अमरक शतक १६वाँ श्लोक।

३-हजारीप्रसाद द्विवेदी हिन्दी साहित्य का आदिकान पृ० ७६।

४-(स०) प्रो० हीरामन जन करकट्टु चरित (कनकामरुत) वारजा जन, प्रथमाला १८३४।

५-पृथ्वीराज रामा परमावती समय (स० हरिहरनाथ टण्डन)।

६-(स०) आचार्य प० हजारीप्रसाद द्विवेदी सन्निप्त पृथ्वीराज रामा

पदमावत म हीरामन गुक प्रेम सम्बन्ध घटक सदेश-वाहक और परिणय ग्रथि प्रथम म सहायक-रूपो म आया है। सुआखड, नागमती सुआ खड, 'बनिजारा खड राजा सुआ सवाद खड पदमावती सुआ भेंट-खड प्रभति स्यला म वती मुख्य पात्र है। इन स्यला पर जायसी ने अत्यन्त उत्कृष्ट भाव स हीरामन की चर्चा की है।

हीरामन पदमावती का पणित गुक है। वह स्वर्ण वर्ण का है। वह सकल कला पारंगत है। पदमावती का वह प्राण परेवा है। उड जाने पर बहेलिए ने पकड कर उसे एक ब्राह्मण के हाथ बँच दिया। ब्राह्मण स रत्नसेन ने क्रय कर लिया। शास्त्रविद प्रगल्भ गुक ने नागमती को अधरी रात सदश और पदमावती को आनोकमय दिन सदश बता दिया। रानी रुठी। उसे मार डालने का उपक्रम हुआ। पारस रूपा पदमावती का नखशिल्प-वर्णन सुनकर राजा जोगी बना। राजा ने सिंहल की ओर प्रस्थान किया। गुक गुरु रूप म भाग-शक बना। हीरामन ने ही राजा के मन म पदमावती के प्रति आनयण और प्रेम उत्पन्न किया है। अन्त म युद्ध क पश्चात उपस्थित होकर उसने राजा के राज-यत्तित्व का परिचय दिया है।

कई लागो का आक्षेप है कि गुक पुन अन्त तक काव्य म नहीं आता। बात विचारणीय है किन्तु जब उसका काम ही समाप्त हो गया तो उसके उपस्थित होने की क्या आवश्यकता? वह अपन काम का सम्यक् प्रतिपादन करके अपना आत्मोक्त विकीण करके चला जाता है। जायसी का हीरामन विद्वान और रूप-वान है—

तब ही याध सुआ ल आवा। कचन बरन अनूप सुहावा ॥

गुक पंडित और वदज्ञ—सुए ने रत्नसेन स अपना परिचय देते हुए कहा था—

चतुरवे हो पंडित हीरामन मोहि नाव।

पदमावति सौं मखौं सेव करी तहि ठाव ॥

इससे स्पष्ट है कि वह चारो वेदो का पणित है। उसकी भाषा की क्या वर्णना की जाय?

जो बोल तो मानिक भू गा। नाहि त मौन बाधि रह भू गा ॥

मनहु मारि मुख अमृत भला। गुरु होइ आप कीह जग चेला।

सचमुच गुरु रूप गुक एक उत्तम कौटि का भाग-शक था।

विशेष

बुद्ध विज्ञान का विचार है कि हीरामन का मूल रूप हीरा-मणि रहा होगा किन्तु हमारे यहां हीरामणि को परम ज्ञानामृत का पान कराने वाला तत्व नहीं माना गया। सम्भव हीरामन का मूल स्रोत हिरण्य है। हमारे यहां कहा भी गया है—

‘ हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहित वपु ।

सत्यधर्माय दष्टय तव पूषन्नपावणु ॥ ’

अमृत तत्व इसी हिरण्मय पात्र के ही माध्यम से प्राप्त किया जा सकता है । पदमावत म भी हीरामन पारस, अमृत या परम तत्व रूपा पदमावती को प्राप्त कराने का काम कराना है । उमका और अमृत रूपा परमाम ज्योति पद्मावती का सान्निध्य है ।

वस्तुतः भारतीय कथा साहित्य की यह एक कथानक रूढ़ि है कि गुरु वेदज्ञ पण्डित और मानव की भाषा में अपने विचारों का व्यक्त करने वाला कहा जाता है । विश्व की अनेक प्राचीन कथाओं में भी पशु का यह रूप मिल जाता है । सोमदेव के कथासरित्सागर की कई कहानियों में शुक का उपयोग हुआ है । पाटलिपुत्र के नरेश विजयमकेशरी के पास विजयचूडामणि नाम का एक शुक था । उसी की सलाह से राजा ने मगध देश की राजकन्या चन्द्रप्रभा से विवाह किया था ।^१

उपयुक्त विवचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि हीरामन (शुक की कथा) भारतीय जीवन और साहित्य की एक अत्यन्त प्राचीन लोक कथा है जो साहित्य में विविध रूपों में व्यवहृत होनी चली आयी है । वस्तुतः जायसी ने हीरामन शुक की कथा अवध जनपद में प्रख्यात हीरामन की कथा से भारतीय लोक और साहित्य में समादत हीरामन की कथानक रूढ़ि से गहरी लिया है । यह न तो किसी इतिहास की वस्तु है और न पुराण की । वस्तुतः यह लोक कथाओं से गहरी दीर्घ काल से प्रचलित कथानक रूढ़ि है । इस कथानक में इतिहास खोजने के लिए मूढ़ मारना बेकार है । इसे अमक ने अमुक से चुराया है या यह अमुक पुराण में चुराई गई है कहकर इसे पौराणिक बना मानना या चुराया जाने का बात कहना उचित नहीं है । दो या तीन स्थानों पर ही इसका उपयोग नहीं हुआ है कई स्थानों पर हुआ है ।^२ उपयुक्त विवचन के प्रकाश में चतुरसेन शास्त्री का यह मत है कि यह कथा अमुक पुराण से चुराई गई है निमित्त सिद्ध हो जाता है ।^३

फारसा साहित्य में प्रेम सम्बन्धी घटक पद्मी मानसरोवर, बारहमासा समुद्र-थाना, सूफान जलपान त्रस, शिवमंदिर शकर तारवनी प्रभृति अनेक रूढ़िया

१-पंजर ओशन आव दि स्टोरी पार् ६ च० ७, प० १८३ २६७ ।

२-ग० हजारीप्रसाद द्विवेदी हिन्दी साहित्य का आन्विकाल प० ७६ (पद्मावत का काव्य-सौंदर्य प ४३-४४ से उद्धृत) ।

३-पदमावत की कथानक रूढ़ियों के विशेष अध्ययन के लिये देविय पद्मावत का काव्य सौंदर्य प० ३१-५६ ।

नहीं मिलती। यह अवश्य है कि नायिका क सौंदर्य के चित्रण के लिए फारसी के कवि नख शिख वणन^१ अवश्य करते हैं। पदमावत की कथानक रूढ़िया प्राय भारतीय कथाशा की परम्परा प्रथित रूढ़िया है। इसमें लोक कथाशा की रूढ़िया पवारा से ली गई रूढ़िया लोक गीता की रूढ़िया का या महाना यो की रूढ़िया आदि का सुगु फन पदमावत में द्रष्टव्य है। इसी वग म मसनवी का या की कुद्व रूढ़िया या परम्परायें अवश्य मिलती हैं पर इसकी अनन्य कथा रूढ़िया का मूल सात फारसी साहित्य में नहीं है। उनका मूल प्राय भारतीय है।

प्रबन्ध काव्य के रूप में पद्ममावत का सघटन

महाकाव्य के भारतीय लक्षण

संस्कृत काल में महाकाव्य सम्बन्धी आदर्शों एवं लक्षणों का और उसमें विविध जगत् का विना विचक्षण किया गया है। भास्कर ने 'कापालमार' में लिखा है कि महाकाव्य एक सगवद्ध रचना है। उसके चरित्र महान होते हैं उसमें सालकार शिष्ट भाषा का प्रयोग होता है। उसमें सदाश्रयता होती है। उसमें नायक का जन्मुदय के साथ ही मन्त्र दूत प्रयाण आदि का सविस्तार वर्णन होता है। वह पञ्च संधियों से युक्त होता है। उसमें चतुर्वर्ग (धर्म अथ काम और मोक्ष) का विधान किया जाता है अथ का प्राधान्य दिया जाता है। नायक का वश वापसी विधुत होना चाहिए। उसमें इतर व्यक्ति के उत्कण्ठ प्रश्नों के लिए नायक का उत्तर नहीं दिया जाता।'

१-

'सगवद्धा महाकाव्यं मन्त्रा च महत्तत ।
 अप्रगम्य शान्मध्यं च मानवारं मदाश्रयम् ॥
 मन्त्रदूत प्रयाणानायायकाम्मुत्पश्यन् च मन ।
 पञ्चभिः संधिभिस्तु तानातिव्याप्येयमद्धिमन् ॥
 चतुर्वर्गाभिर्भानेति भूयमार्योपगृह्यत ।
 युक्तं तोरस्वभावेन रमश्च सक्त्वं पद्यकं ।
 नायकं प्रागुपपन्नं वशीय श्रुतान्निभिः ।
 न तस्य वधो वधादयातापाभिधिनया ।
 मन्त्रिणां चारीरस्य न स व्यापिनो वेद्यते ।
 न चाम्युदयभाक्तस्य मुधादौ प्रसणस्तवी ॥'

आचाय दण्डी^१ रुद्रट^२ हेमचन्द्र^३ विश्वनाथ^४ मम्मट पंडितराज जगन्नाथ ने भी महाकाव्य के स्वरूप की विवेचना की है।

विश्वनाथ कविराज ने महाकाव्य के स्वरूप का निरूपण इस प्रकार किया है—

(१) महाकाव्य की कथा सगवद्ध होती है।

(२) इसका नायक कोई देवता सद्वशीय क्षत्रिय जयवा धीरोदात्त गुणो से युक्त व्यक्ति होता है। एक ही वंश में उत्पन्न अनेक राजा भी इनके नायक हो सकते हैं।

(३) शृंगार वीर और शांत में से कोई एक रस प्रधान होता है। अन्य रस उसके अंगी होकर आते हैं।

(४) वह नाटक की पंचसंधिया से समन्वित हो।

(५) कथानक इतिहास प्रसिद्ध या सज्जनाग्रित होना चाहिए।

(६) उसमें चतुर्वग अर्थात् धर्म अथ वाम और मोक्ष में से किसी एक के फल की प्राप्ति हो।

(७) उसमें आशीर्वादात्मक नमस्कारात्मक या वस्तुनिर्देशात्मक मंगलाचरण

१-

सगवद्वा महाकाव्यमुच्यते तस्य लक्षणम् ।
 आनीनमस्त्रिया वस्तुनिर्देशो वापि तन्मुखम् ॥
 इतिहास कथोन्भूतमितरणासदश्रयम् ।
 चतुर्वग कथायत चतरोदात्त-नायकम् ।
 नगराणव शैलतु चन्द्राकीदय वणन ।
 मन्त्रदूत प्रयाणाजि नायकाभ्युदयरपि ॥
 अत्रकृतमसन्निप्त रमभावन निरतरम् ।
 सर्गेरननिचिन्मीण ध्याय्यवन सुसंधिभि ॥
 सवत्र भिन्न वत्तातरूपैत लोकरचनम् ।
 काव्य कल्पातरम्यापि जायते सत्त्वकृति ॥
 न्यूनमप्यत्र य कश्चित्पणे नाय न दुप्यति ।
 यद्युपात्तपु सम्पत्तिराराधयति तद्विध ॥

—दण्डी कायादर्श परि १ १४—२० (गाक्षी रणाचाय रेडडी तथा बेलकर (पूना) गवर्नमंट आफ् एशिया एन्वीज) पृ ३६।

२—रुद्रट, काव्यालंकार परि० १६ ७—१६।

३—हेमचन्द्र काव्यानुशासन अध्याय ६ पृ० ३३०।

४—विश्वनाथ, साहित्य-रूपण, परिच्छेद ६ श्लोक ३१५—३२८।

होता है।

(८) उत्तम खन निन्दा और सज्जन स्तुति भी हो।

(९) इनके सर्गों की सख्या आठ से अधिक हो। सग न अधिक छोटे हों और न अधिक बड़े। प्रायः प्रत्येक सग में एक ही छन्द का प्रयोग होता है। सग के अन्त में छन्द परिवर्तन उचित है; एक सग में विविध छन्दों के प्रयोग भी होते हैं। प्रत्येक सग के अन्त में भावी कथा का सूचना होनी चाहिए।

(१०) महाकाव्य में सध्या सूय चन्द्र रात्रि, प्रदोष अधकार, दिन, प्रातःकाल मध्याह्न मृगया पर्वत ऋतु वन समुद्र मयोग वियोग, मुनि, स्वर्ग, नगर यत्र, युद्ध रण-प्रयाण विवाह मत्र पुत्रोत्पत्ति आदि का प्रयोग सामोपाग वणन होना चाहिए।

(११) महाकाव्य का नाम कवि, कथावस्तु, नायक अथवा किसी अन्य व्यक्ति के नाम पर होना चाहिए। सर्गों के नाम सगगत कथा के आधार पर होने चाहिए।

(१२) प्राकृत में निर्मित महाकाव्या में सग आश्वास सज्जन होते हैं और अपभ्रंश में कुञ्जक का विधान होता है और प्राकृत में स्कन्ध और गणिक तथा अपभ्रंश में उसने योग्य अन्य विविध प्रकार के छन्द का प्रयोग होता है।

आचार्य हेमचन्द्र ने सम्बन्धित प्राकृत और अपभ्रंश के महाकाव्या को दष्टि में रखते हुए महाकाव्य का निम्नलिखित परिभाषा दी है—

पद्य प्रायः संस्कृत प्राकृतपभ्रंश ग्राम्यभाषानिबद्धभिन्नात्यवृत्त सर्गाश्वास मध्यवम्ब-वक्रवध सत्सधि शब्दाय वचिषयापत महाकाव्यम् ।^१

हेमचन्द्र ने संस्कृत प्राकृतपभ्रंश तथा ग्राम्य भाषाओं में भी महाकाव्य का होना स्वीकार किया है। उनका कथन है कि महाकाव्य सम्बन्धित मगराज, प्राकृत में आश्वमेधकवध, अपभ्रंश में सती प्रवध और ग्राम्यापभ्रंश में अवम्ब-वक्रवध होते हैं।

महाकाव्य विषयक पश्चात्य आदर्श

महाकाव्य के लिए पश्चात्य साहित्य में 'एपिक' (Epic) शब्द का प्रयोग किया जाता है। मूलतः एपिक (Epic) शब्द इपीस से व्युत्पन्न है। 'इपीस का अर्थ है शब्द'^२। इसका प्रयोग कहानी, वस्तु-अथवा गीत के लिए होता था। कालान्तर में एपिक शब्द रुढ़ि रूप में एक वीरवाच्य विषय का पर्याय बन गया, जिसमें किसी महात घटना का अन्य शैली में वणन हो।

१-हेमचन्द्र, वाचानुशासन, आठवीं अध्याय।

२-द्रेष्टव्य, डिक्शनरी ऑफ़ वर्ड लिटरचर (शिप्ट)।

अरस्तू न टोजेडी और एपिक (महाकाव्य) की तुलनात्मक भीमासा करत हुए महाकाव्य के लक्षणों पर प्रवाश डाला है। उसका कथन है कि जहां तक शायरी के माध्यम में महान चरित्रों और उनके कार्यों के अनुकरण का सम्बन्ध है महाकाव्य और दुखात की (टजेडी) में समानता प्राप्त होती है किन्तु कतिपय दृष्टिकोणों से दोनों में पर्याप्त वृत्तियाँ हैं। महाकाव्य में आदि से लेकर अन्त तक एक ही छन्द का प्रयोग होता है। उमरु आदि मध्य और अन्त से युक्त काव्य की अविवृति होती है। वह प्रकथन प्रधान होता है। उसके काव्य-व्यापार में समय की सीमा नहीं रहती। दुखात की (टजेडी) का काव्य-व्यापार २४ घण्टे तक का ही होता है।^१

इस प्रकार अरस्तू के मतानुसार महाकाव्य में किसी गम्भीर पूण एवं उदात्त काव्य की काव्यमय अनुकृति होती है। उसकी भाषा शैली में मनोरमता एवं अलङ्कृतता आवश्यक गुण है। इसमें कार्य-विवृति व्यापक तथा एक महान चरित्रों की याजना की जानी चाहिए। फ्लोच आनोचक नी दोस्तु ने महाकाव्य को प्राचीन घटनाओं के चित्रण के लिए एक छन्दोबद्ध रूप के रूप में स्वीकार किया है।^२ साइकेम्स के मतानुसार महाकाव्य में धीरतापूर्ण कार्यों का उदात्त शैली में वर्णन होना है। हास न भी धीरतापूर्ण प्रवचनात्मक कविता को ही महाकाव्य माना है। डेवनाट का कथन है कि महाकाव्य का आधार प्राचीन घटनाओं पर प्रतिष्ठित होना चाहिए। तुर्कन ने प्राचीन घटनाओं की अपेक्षा अर्वाचीन घटनाओं को ही महाकाव्य के लिए अधिक उपयुक्त माना है। रसा ने मध्यम मार्ग को महत्त्व प्रदान करत हुए कहा है कि महाकाव्य की घटनाएँ न अत्यन्त नवीन हों और न अत्यन्त प्राचीन।^३

पाश्चात्य समीक्षकों ने मुख्य रूप में महाकाव्य के दो भेद बताये हैं—

✓ (१) विवसनशीन महाकाव्य (एपिक आफ ग्राव) और

✓ (२) कलात्मक महाकाव्य (एपिक आफ आट)

इन्हें ही उन्होंने प्रामाणिक और साहित्यिक की संज्ञाएँ दी हैं। विवसनशीन महाकाव्य एक व्यक्ति की रचना न होकर अनेक व्यक्तियों की रचनाओं का सुसंबद्ध काव्य रूप होना है। जम इन्वियड जाइसी (हिन्दी में पृथ्वीराज रासो)। कलात्मक

१-मेटियस अरिस्टोटिलिस पाण्डे, पृ० १३

२-इबिड पृ० २।

३-एम० डिवसन इग्निश एपिक ऐण्ड हीरोइक पोइट्री पृ० १८।

४-वही पृ० २।

५-एपिक ऐण्ड हीरोइक पोइट्री पृ० १।

६-एम० डिवसन इग्निश एपिक ऐण्ड हीरोइक पोइट्री पृ० २७।

महाकाव्य किसी व्यक्ति की यह कल्पना है जिसमें स्वाभाविकता के स्था पर बालकारिकता या वृत्तमत्ता होती है। यह रचना विद्वानों के लिए होती है। काव्य के सुनिर्धारित सिद्धान्तों के अनुसार रचना होती है। इसमें बनावट मुख्य रहता है। इसमें भाषा शैली का सादर और काव्य रचना का उदात्त रूप मिलता है जसे इनियड एव पराडाइज लास्ट।

रघुवंश और कुमारसम्भव इसी के अन्तर्गत आते हैं। पाश्चात्य आलोचकों के महाकाव्य-विषयक प्रधान लक्षण इस प्रकार है—

- (१) कथानक महाकाव्य का कथानक प्रकथन प्रधान लोक-विश्रुत विशान और महत्वपूर्ण होना चाहिए।^१ केम्प ने प्राचीन लुकन ने अर्वाचीन और टमा ने नाटि प्राचीन और नाटि अर्वाचीन घटनाओं को महाकाव्य के विषय के लिए ठीक कहा है।^२ लोक विश्रुतता और ऐतिहासिक घटनात्मकता का कथानक में होना आवश्यक माना गया है। मात्र कवि रचना पर आधारित कथानक महाकाव्य के लिए उपयुक्त नहीं है।
- (२) नायक नायक का गुणी गौर और विजयी होना आवश्यक है। एक से अधिक नायक भी हो सकते हैं। नायक देश या जाति का प्रतिनिधित्व करता हुआ चित्रित किया जाता है अतः उभरके विजयी रूप में चित्रित करना आवश्यक है क्योंकि उसकी विजय देश या जाति की विजय है। नायक का युद्ध प्रिय होना चाहिए।
- (३) अति प्राकृत शौर अनीकिक तत्त्वा का मिश्रण—नाटकों में तो दशका का आश्चर्यचकित करन की ही आवश्यकता रहती है पर महाकाव्यों में उससे आगे बढ़कर असम्भव अविश्वसनीय और जाश्वर्योत्पादक घाता एव घटनाओं का भी वर्णन होने है। मानव की प्रकृति है कि वह जातियों को विस्मय विमुग्ध करने के लिए बात को अलङ्कार रूप में या बना-बढ़ाने उपस्थित करता है। यही कारण है कि महाकाव्य में अलौकिक और अति प्राकृत शक्ति माने देवों, व्यक्तियों या घटनाओं का वर्णन होता है।^३ महाकवि को असम्भव लगने वाली सम्भव घटनाओं का अपक्षा सम्भव लगने वाली असम्भव घटनाओं का चित्रण करना पड़ता है। इसीलिए इनियड ओडिसी, पराडाइज लास्ट प्रभृति महा-

१-एन० एवरब्राम्बी दी एपिक पृ० २६।

२-वही, पृ० ४८।

३-एम डिवरान इग्लिश एपिक गण्ड हीराइक पाइटी पृ० २३।

४-एन० एवरब्राम्बी, दी एपिक पृ० ५५।

५-एपिक पृ० ४८।

६-वही पृ० ५०।

काव्या में देवता जनौकिक शक्ति, भून-प्रत आदि का समावेश किया गया है। शायद महाकाव्य की कथा का महत्वपूर्ण और प्रभविष्णु बनाने के लिए और काव्य सीमा की सविस्तरता के लिए पाश्चात्य समीक्षकों ने महाकाव्य में अती किय तत्वा का मिश्रण आवश्यक कहा है।^१

(४) भाषा छंद का आदि से अंत तक असाधारण शालीन गरिमा-सम्पन्न प्रयोग होना आवश्यक है।

(५) अर्थ-जातीय भावों का प्राचाय-महाकाव्य किसी जाति की प्रतिनिधि रचना होती है। अर्थ पात्रों का चित्रण विविध दृश्या स्थाना उपाख्याना, घटनाओं आदि के मनोमय ढंग से उपस्थापन के साथ ही कथा की एक सूत्रता और लक्ष्य की एतता भी महानाव्य में आवश्यक तत्व माने गये हैं।

महाकाव्य-सम्बन्धी भारतीय और पाश्चात्य मता की समीक्षा करने पर सिद्धांततः विशेष अंतर दृष्टिगोचर नहीं होता। कथा छंद नायक अर्थ पात्र देवता प्रभृति तत्त्व त्रयभंग दाना में समान हैं। भारतीय काव्या में शृंगार, वीर और शांत में से एक को प्रधान माना जाता है। पाश्चात्य आलोचकों ने केवल वीर रस का ही प्रधान माना है। उन्होंने जातीय भाव के समावेश का आग्रह किया है। इस विषय में किम्वदन्त का कथन उल्लेखनीय है— महानाव्य सभी देशों में एक जमा है। पूर्व और पश्चिम उत्तर और दक्षिण—सर्वत्र उसकी आत्मा और प्रकृति में एकता है। महानाव्य कहा भी सचित हो उसकी रचना सुश्रुतलित होती है। वह प्रकथन प्रधान हाता है उसका सम्बन्ध महान चरित्रों से होना है उसमें महत्काव्य गरिमामयी शैली महत् चरित्र आदि की सुनियोजना की जाती है। उपाख्याना एवं सविस्तार वर्णना से उसका कथानक समृद्ध बनाया जाता है।^१

पदमाद्यत का महानाव्यत्व

पदमाद्यत के महाकाव्यत्व पर विचार करते हुए डा० शम्भूनाथसिंह ने निष्ठा है— पदमाद्यत अलङ्कार या साहित्यिक महाकाव्य है अर्थात् उसकी रचना एक विशिष्ट कवि-पारंपरा प्राप्त साहित्यिक शैली में हुई है। उसकी शैली में विवसाशील महाकाव्य में प्राप्त होना ध्यान अनेक तत्व-अतीतिक और अति प्राकृत शक्तियों में विश्वास कथात्मकता आदि-वतमान हैं। कथाहरण सिंह की भयंकर यात्रा जहाज-दूटना अर्थ साहित्यिक काव्य अतीतिक अति प्राकृत-शक्तियों का मानव

१-एल एवरब्राम्बी दी एपिक प० ६१।

२-एम० डिक्सन इंग्लिश एपिक एण्ड हीरोइक पोएट्री प० २२।

३-वही प० २४।

के साथ सम्बन्ध जादू की सिधिगुटिका शास्त्र और मानव भाषा भाषी शुक्र आदि रोमाञ्चक तत्वों का भी समावेश किया गया है। इसमें रोमाञ्चक तत्वों पर विचार करने के पश्चात् उहाने लिखा है— पदमावत को हमने रोमाञ्चक शैली का महाकाव्य माना है। इसमें रोमाञ्चक तत्व बहुत हैं पर व कवि के महदुद्देश्य और प्रतीकात्मक शैली का यात्मक दर्शन तथा उत्तराद्ध की कथा के ऐतिहासिक आधार के कारण नियन्त्रित है। जत यह कथा आख्यायिका न होकर रोमाञ्चक शैली का महाकाव्य है।

प० रामचन्द्र शुक्ल का मत है कि प्रबन्ध क्षेत्र के भीतर दो सबन्ध काव्य हैं रामचरित मानस और पदमावत। पदमावत हिन्दी साहित्य का एक जगमगाता रत्न है।

१—सुसंगठित और जीवन्त कथावस्तु

पदमावत म चित्तौड़ के राजा रतनसेन और सिंहल की राजकुमारी की प्रमक्था वर्णित है। सम्पूर्ण काव्य की कथा को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है—पूर्वाद्ध और उत्तराद्ध। पूर्वाद्ध की कथा लाव विभूत पदमावती रानी की कहानी है। उत्तराद्ध की कथा में अलाउद्दीन के आक्रमण जोहर आदि ऐतिहासिक तथ्यों की छौंक देकर उन ऐतिहासिक सी कथा बना देने का सफट प्रयत्न है। प्रासंगिक एवं आधिकारिक कथाओं में पूरी अविधि बतमान है। इसकी कथा पर्याप्त विस्तार और यापक है। उसमें कल्पना और इतिहास का तदभत समन्वय मिलता है। सम्पूर्ण कथा रत्नसेन और पदमावती से सुसम्बद्ध है। सम्पूर्ण कथा का विभाजन ५८ खण्डों में किया गया है। खण्ड न विशेष बढ ह और न विघाष छोटे। कुछ खण्ड अवश्य छोटे हैं पर अपने छोटे रूप में भी वे प्रभविष्णु एवं महत्व पूर्ण हैं। रत्नसेन जमखण्ड रत्नसेनाती खण्ड और रत्नसेन साथी खण्ड अल्प विस्तार वाले खण्ड हैं किन्तु एत कारण कथा प्रवाह में कही भी अवरोध उत्पन नहीं होता। कथा में आन्ति में अन्त तक कवि की महान प्रतिभा और कल्पना विनास का सौन्दर्य दर्शनीय है। अलाउद्दीन का दर्पण में पदमावती की छाया दुखाना रत्नसेन का बन्धो रूप में क्लिती गमन देवपान की दूतों का प्रसंग प्रमति अनेक घटनाएँ किसी न किसी ऐतिहासिक तथ्य पर आधारित हैं किन्तु पदमावत में वे सबका कवि-कल्पित हैं।

राष्ट्र वि स्वता विषय महान और यापक है। हममें प्रम पीर के काव्यात्मक सौन्दर्य का चरम विकास हुआ है। अरस्तू के अनुसार जीवन्त कथान का गुण

- १—डा० शम्भूनाथमिह हिन्दी महानाज्य का स्वरूप विनास प० ४२८।
२—प० रामचन्द्र शुक्ल जायसी प्रयावली प० २१०, (भूमिका)।

यह है कि उमम आदि, मन्थ जोर अत अर्थात् उसका सर्वांग समानुपातिक विकास हुआ हो। पदमावत म पद्मावती विवाह तब की घटनाय कथा के आदि भाग के अनगन है। विवाह के बाद रावध चतन देश निकाला खू तक की कथा मध्य भाग के अनगन है और उसके पश्चान की कथा आ के रूप म है। स्पष्ट ही इसके आदि मध्य और अन म समानुपातिक विकास द्रष्टव्य है।

पदमावत म नाटकीय सवियो और कार्यावस्थाका का भी सुंदर प्रयोग हुआ है। उत्तराध की कथा म प्रारम्भ प्रथम प्राप्याशा नियनाप्ति और फलागम इन पाचा कायावस्थाओं एव मुख प्रतिमख, गभ विमश एवं निर्वहण इन पाच सवियो की सम्यक् योजना हुई है। इस कथा म रतनमन का फन (पद्मावती) की प्राप्ति हा जाती है। उत्तराध की कथा म मुख्य रूप स प्रारम्भ प्रयुक्त और प्राप्याशा की ही समोच हा हुई ह। अत म नियनाप्ति और फलागम को प्रत्यक्षत न लिखाकर निगत और जवना नामर पाश्चाय ढग की कार्यावस्थाओं लिखाई पत्नी है।

पदमावत का काय है पदमावती का सनी होना। सम्बन्ध निर्वह के ही अतगत गति के विराम का नी विचार कर रना चाहिए। यह कहना पढता है कि पद्मावत म कथा की गति क बीच बीच अनावश्यक विराम बन्त मे हैं। मार्मिक परिस्थित के विवरण और चित्रण के लिए घटनावती का ना विराम पढ़ने कह आये हैं वह तो काय के निये अत्यन्त आवश्यक विराम है। क्योंकि उसी म सारे प्रबन्ध म-स्फूर्तमन्ता आती है। 'जायमी का सम्बन्ध निर्वह अच्छा है। एक प्रसग से दूसरे प्रसग की श्र सता बरानर नगी है। कथा प्रवाह सन्तित नगी है।' पद्मावत का कथानक पूर्णत सुसंघटित और गुण खनित है। इस प्रकार अस्तु की कार्या त्रित और पाश्चाय देशीय कायावस्थाका की कथो पर पद्मावत पूजन खरा उतरता है। पद्मावत मे कोई भी घटना कथा की दृष्टि स अनावश्यक नी है। सभी घटनाय जोर प्रसग एर दूसरे म काय कारण शृंगारा म बध है। प्रत्यन्त घटना कथा प्रवाह म योग देती है। पद्मावत का कथानक पूजन सुसंघटित कथात्मक और अविति युक्त है।

२ नायक

कथावस्तु के अनतर महाराज के तत्वा म नायक तत्त्व को प्रमुख स्थान दिया जाना है। वस्तुत नायक के रूप म एक महत्तम चरित्र की गति के लिए ही कवि महाराज की सजना म प्रवत हाता है। इन प्रसग म कवीद्र खवीद्र

१- प० रामचन्द्र गुन जायमी कथावती (भूमिका) प० ७५।

२- वही प० ७२।

का कथन उत्तर है—

मन म अत्र एक वेगवान अनुभव का उद्यम होता है तब कवि उसे शीति-
काव्य म प्रकाशित किए जिना नहीं रह सकते । २गी प्रकार जब मन म एक महत्
व्यक्ति का उद्यम होता है सहसा जब एक महापुरुष कवि के कल्पना राश पर अत्रि
कार आ जमाता है मनुष्य चरित्र का उग्र महत्त्व मनस्वुओं के सामने अर्पित
होता है तब उसके उन्नत भाषा से उद्दीप्त होकर, उस परम पुरुष की प्रतिभा
प्रतिष्ठित करने के लिये कवि भाषा का मन्दिर निर्माण करते हैं उस मन्दिर की
भित्ति पथ्या के गम्भीर अन्तर्लक्ष म रहनी है, और उसका विचार मघो को भुंकर
आनास मे उठता है उस मन्दिर म जो प्रतिभा प्रतिष्ठित होती है उसके देवभाव
से मुग्ध और उमड़ी पुण्य किरणों म अभिभूत होकर नाना लिदशा से आ-आकर,
योग उसे प्रणाम करत है । इसी को कहते हैं महाकाव्य । १

पदमावत का नायक रत्नसेन महाकाव्योचित नायक है । नायक म बुद्धि
उत्साह स्मृति, प्रणा शीघ्र औदाय गाभीय धय स्वय, भाषुय, कला-कुशलता
विनय निरोगता शुचिता स्वाभिमान प्रियवादिता जानुरागिता वाग्मिता मग
वगत्व दन्ता, तत्वशास्त्रज्ञता, अग्राम्यता शृंगारिकता सौभाग्य आदि विशेषतायें
हाती हैं । १ स्ट्ट और विश्वनाथ कविराज न भी थोडा अंतर के साथ इन् गुणो
को आवश्यक माना है । विश्वनाथ कविराज के अनुसार धीरात्त नायक वह है जो
अपना प्रशान म करता और जिसम क्षमाशीलता अनिगम्भीरता स्थिर प्रकृति
मनासत्तय गर्वीनारन और दन् निश्चयता १ ।

इस दृष्टिकोण म पदमावत का रत्नसेन एक मन्मत्त्व धारात्त नायक के
सभी गुणा से अलकन दन् प्रतिन त्यागी विनयी स्वाभिमानी क्षमाशील गम्भीर
और गुर स्वभाव वाला आत्मा प्रमी है । १ दन् सद्ग शीघ्र क्षत्रिय राजा और महान
गुर वीर याद्धा भी है । रत्नसेन पर्याप्त गम्भार है, पदमावता के प्रति उसका प्रेम
उत्साह नयी है वह एक दन् और स्थिर प्रेम है । सिद्धम से लौटते समय मघवमन
स बनी म उनकी विनयशीलता की घोषणा करनी है । १

१-मघनाथ वध (हिंदी अनुवाद) भूमिका प० १३७ ।

२-वाग्मट काव्यानुशासन, अध्याय ५ (नायक प्रकरण) ।

३-स्ट्ट काव्यानुशासन अध्याय १२ (७-८ श्लोक) ।

४-विश्वनाथ साहित्य-पण, अध्याय ३ श्लोक २० ।

५-वही श्लोक २१ ।

६-१० श्यामभु-रत्नाम स्वररहस्य, प० ६८-६५ ।

नायक रत्नमेन का चरित्र एक आदर्श प्रेमी त्यागी और बलिदानी के रूप में महान है।

अथ पात्रा में नागमती आदर्श भारतीय पतिप्राण देवी है शुक्र गुरु प्रतीक और अप्राकृत शक्तिवाला पक्षी है। पद्मावती आदर्श भारतीय प्रेमिका के रूप में (भी) चित्रित है। अलाउद्दीन और राघवचेतन असत पक्षक प्रतिनिधि पात्र हैं। देवपाल भी उही की तरह है।

रसात्मकता और प्रभावविति

भावोद्भक्त एव रसात्मकता महाकाव्य का एक प्रमुख तत्व है। पद्मावत में मुख्य रूप में आद्यत रति भाव की यजना हुई है इसलिए इसमें शृंगार रस का प्राधाय है। इसमें कृष्ण वीभत्स वीर शांत प्रभृति रसा का भी समावेश है। इसके आरम्भ और अंत में शांत रस का चित्रण हुआ है। इस काव्य के अंत में कृष्ण प्लावित शांत रस की अत्यंत सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है। जायसी ने अन्तिम दृश्य का वर्णन इस प्रकार किया है कि वहाँ निर्वेद ही निरार पा सका है। अन्तिम दृश्य से अत्यंत शांतिपूर्ण उदासीनता बरसती है। कवि की दृष्टि में मनुष्य जीवन का सच्चा अंत करुणा नदन नहीं पूरा शांति है। राजा के मरने पर रानिया केवल विलाप ही नहीं करती है बल्कि इस लोक से अपना मुँह फेर कर दूसरे लोक की ओर दृष्टि किए आनन्द के साथ पति की चिंता में बँठ जाती है। इस प्रकार कवि ने सारी कथा का शान्त रस में पर्यवसान किया है। इतना होने के बावजूद प्रेम और रति भाव के प्राधाय के कारण 'गुलजी' न भी इस शृंगार रस प्रधान काव्य माना है। डा० शम्भूनाथ सिंह का कथन है कि यदि जायसी का कथ्य लौकिक प्रेम-पथ के माध्यम से आध्यात्मिक प्रेम पथ का निरूपण है और इसके लिए यदि उन्होंने प्रीति और सवेत पद्धति द्वारा आध्यात्मिक प्रेम की स्पष्ट यजना भी की है। तो उसमें रहस्यवाद की दृष्टि से शृंगार रस का नहीं शांत रस को ही प्रधान मानना पड़गा। अन्तिम दृश्य में जो रस योजित होता है वह उसी अप्रमत्त पक्ष के शान्त रस की अन्तिम परिणति है। जिस तरह मूर मीरा और कबीर शृंगारिण वर्णन शांत रस के अन्तर्गत माने जाते हैं उसी तरह पद्मावत का समग्र प्रभाव शांत रस समन्वित है शृंगार रस वाता नहीं। अतः लौकिक कथा की दृष्टि से पद्मावत में विप्रलम्भ शृंगार अंगी है और आध्यात्मिक दृष्टि से वह शान्त रस प्रधान काव्य है।

१-प० रामचन्द्र शुक्ल जायसी-प्रथायनी (भूमिका) प ६८।

२-वही प० ७१।

३-हिंदी महाकाव्य का स्वरूप विशाम, डा० शम्भूनाथ सिंह, प० ४७७।

ध्यानपूर्वक दखने से स्पष्ट हो जायगा कि जायसी ने कहा-कही कथा के बीच में अबसर आन पर अतीतिक सत्ता की आर सवेन किया है पर इसका यह ताप्य नहा कि इसम प्रस्तुत कथा ही गौड है। वस्तुन रत्नमन और पद्मावती रानी की कहाना ही इसम प्रमान है और इसम शृगार रस की ही प्रधानता है। इसम शृगार रस का सुन्दर परिपाक हुआ है। सयोग आर वियोग दोनों के सुन्दर विग्र पद्मावन म दशनीय है। नियोग शृगार व वणन म जायसी एक महान कला कारक रूप म पूण सकन है। रत्नसन नागमती रत्नसेन पद्मावती को आलम्बन मानन्दर कवि ने सयोग शृगार व कुद्व चित्र उपोस्यंत किए ह। पट्टदुतु वणन की योजना सयोग शृगार के उद्दीपन क रूप म है। चित्तौड आन पर नागमती का मान और रत्नसन की मुरुर भत्सना म सयाग शृगार का ही सौंदर्य है। विवाह के अनतर रत्नसन-पद्मावती-समागम का चित्र भी सयोग शृगार काही है।

विप्रलम्भ शृगार म जायसी न अपनी प्रतिमा का सुन्दर प्रयोग किया है। नागमती का विरह-वणन हिंसा विप्रलम्भ शृगार की एक अनमाल निधि है। इस विरह वणन में गम्भीरता है और है विरह-व्यथा की सच्ची अनुभूति। पद्मावत का बारहमासा वियोग शृगार के उद्दीपन विभाव क रूप म वर्तमान है।

रत्नसन के चित्तौड स सिंहान की ओर विना हाते समय उसकी माता और अय रानिया का प्रश्न एक उनकी शोक विह वल दशा करण रम क अनगत है। अय रानिया का प्रश्न ही विनाइ भी करण रम कारक सुन्दर स्थान है। लक्ष्मी समुद्र मिह स रत्नसन की विनाइ भी करण रम कारक सुन्दर स्थान है। लक्ष्मी समुद्र सड म भयानक रज मितता है। यड के प्रसंगों म वीर रस की प्रधानता है। यद्यपि जायसी मुख्य रम म शृगार व कवि ह फिर भी पद्मावत म अय रसा का सुन्दर परिपाक हुआ ह। अनाउदान के साथ यड म गौरा की मत्तु तथा दवपाल के साथ रामन की मत्तु की घटनाआ म पारनातन टग की नियति की अवस्था लिखाई पडनी है और अन्य म नागमती पद्मावती का सती हाना मित्रया का जोहर बादल की मत्तु और चित्तौड पर अनाउहीन का अतिकार आनि घटनाआ म पारचात्य टग की अन्तिम कार्यावस्था-अवसान का रूप लिखाई पडना है। इस तरह पद्मावन का अन्त पारचात्य महाकाव्य के टग का है उसम पारचात्य नाटका के टग की प्रभावचित्त मूनक तात्रता और स्तन कर दनवात्रा केना नहा है बल्कि शात्रिपूण गम्भीरता और चिरस्थायी निमरता और पवित्रता ह जो पाठका क चित्त का अभिभूत कर उन्हें अनापारण भावलाक म पट्टुवा दनी है। इस तरह उसम रसात्मकता के साथ गम्भीर प्रभावचित्त भी मिलती है।

वस्तु-वर्णन

युग जीवन का एक सम्पूर्ण और जीवन्त चित्र उपस्थित करने के लिए महाकाव्य में जीवा के अनेक प्रसंगा और प्रकृति के विविध रूपा का विशद बलाढ्य और प्रभविष्णु वर्णन होता है। ये वर्णन बहिष्य रसाभिव्यक्ति एवं भावाद्रव्य के सहायक होकर आते हैं।

पदमावत व वस्तु वर्णन के प्रसंगा में जायसी ने अपनी साधारण वर्णन शक्ति का परिचय दिया है। सिंहल द्वीप जलश्रीला सिंहलद्वीप यात्रा, समुद्र विवाह युद्ध नखशिख, आदि के माध्यम से जायसी ने पदमावत में विविध वस्तुओं के वर्णन की योजना करते हुए अपने काव्य कौशल का परिचय दिया है। सिंहलद्वीप वर्णन के अन्तर्गत अमराई सरोवर, कुएँ नगर हाट दुग् प्रभृति वर्णनों का समावेश है। अमराई सरोवर नगर और दुग् के वर्णनों में पर्याप्त सजीवता और जीवन्तता है। सिंहल के पनघट का हुलसित वर्णन और वहाँ की पतिहारिनिया का विस्तारित सौन्दर्य जायसी की कवित्व शक्ति और वर्णन की कुशलता एवं सुन्दरता का परिचायक है। मानसरोवर खड म तीन वर्णन के साथ ही पदिमनी के रूप का अनुपम चित्रण किया गया है।

सरवर तीर पदिमनी आई। खोपा छोरि बेरा मुकुलाई ॥
ससि-मख अग मनयगिरि वासा। नागिन झाँपि लीह चहुपासा ॥
कोनई घटा परी जग छाहा। ससि क सरन लीह जनु राहा ॥
छपि ग दिनहि भानु क दसा। लइ निसि नरवत चाँ परगसा ॥
भूनि चकोर दीठि मुख नावा। मेघ घटा मह चँ देखावा ॥

सात समुद्रों के पारपत्रिक वर्णन भी मनोरम हैं। भीषणता दुस्तरता, ताड़ पटाड़ की तरह लहरें आदि के चित्रण यत्न पड़े हैं। रत्नसन-पदमावती के विवाह वर्णन के प्रसंग में हिन्दुओं में प्रचलित विवाह-पद्धति का सुन्दर वर्णन किया गया है। युद्ध-वर्णन अत्यन्त जीवन्त हैं। सनिवा ना भिडना शस्त्रों की क्षतकार हाथी पोडा की विग्याड, शस्त्र प्रहार, हनु-मुग् का गिरना रक्त-सात्र प्रभृति वर्णन में पूणत सजीवता वर्तमान है।

स प्रकार पदमावत में वस्तु वर्णन का बहिष्य और विस्तार दिगई पडता है। नगर दुग् यात्रा भ्रमणा तत्र श्रीला दून युद्ध पुत्रोदय विवाह विरह समय आदि के वर्णनों से एक युग का समग्र रूप विभ्रित हो गया है। इन

१-जा० प्र० पदमावत मानसरोवर खड दोहा ४ ।

२-शिवसहाय पाठक पदमावत का काव्य-सौन्दर्य ।

वर्णनो में यद्यपि कही-नही जनावश्यक विस्तार लक्षित होता है फिर भी इनसे कथा में रसात्मकता और सौन्दर्य की निष्पत्ति होती है।

महत्कार्य

भारतीय राक्षण यन्त्रारों के मतानुसार महानायक का काम महत् होना चाहिये। प० रामचन्द्र गुवन का कथन है कि पद्ममावत में काय है पद्ममावती का सती होना। 'रामकृष्ण शिलीमुख' का कथन है कि पद्ममावती की प्राप्ति ही काय है। डा० शम्भूनाथसिंह का कथन है कि पद्ममावत, पृथ्वीराज-रामो या आल्ह खड में 'महत्कार्य' बनना बेकार है। उनका कथन है कि पद्ममावत में पाश्चात्य दर्शों के नाटकों की तरह काय रय या नायक का विनाश दिखाया गया है।

यह स्पष्ट है कि जायसी का लक्ष्य है प्रेम पथ का निरूपण। दशकालों की ही भाँति प्रबन्ध काय के विन्यास में भी काय 'महत्त्वपूर्ण होता है। जरस्तू ने इसे युक्ति और ऐशान' (कार्यावय) की सजा दी है। सुबलजी का कथन ठीक ही है कि पद्ममावत का काय है पद्ममावती का सती होना। समस्त घटनायें और कथा लक्ष्य तक पहुँचाने में सहायक है। इसी दृष्टि से ही रामन गुव और राघव चेतन का उतार ही बत जाया है जिनके का काय की ओर अग्रसर करने में योग्य है। पद्ममावत की समस्त घटनायें काय से सम्बद्ध हैं।

प्राचीन विद्वानों की यह मान्यता थी कि काय महत्त्वपूर्ण होना चाहिए। नतिक सामाजिक या धार्मिक प्रभाव की दृष्टि से काय बड़ा होना चाहिए जसा रामचरितमानस में रावण का बंध है और 'पद्ममावत में पद्मिनी का सती होना। आपुनिक काव्य में यह बात नही मानत। जानल्ड ने प्राचीन आदर्श का समर्थन किया है। जा हो जायसी का भी यही आदर्श है। उन्होंने अपने काय के लिए महत्काय चुना है जिसका आयोजन करने वाली घटनाएँ भी बड़ डीपडीप की हैं जस बड़-बड़े कुबरा और सरदारों की तयारी राजाओं और बादशाहों की लड़ाई इत्यादि। इसी प्रकार दृश्य वर्णन भी एमे आते हैं जस गड वाग्नि राजसभा राजसा भोज और उत्सव आदि के वर्णन।'

१-प० रामचन्द्र गुवन जायसी प्रभावली (भूमिका) पृ० ७३-७४।

२-रामकृष्ण शिलीमुख सुबल-समीक्षा पृ० ७१ (हिन्दी महाकाव्यों का स्वरूप विकास में उद्धृत)।

३-डा० शम्भूनाथ सिंह हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप-विनास पृ० ४३५।

४-प० रामचन्द्र गुवन जायसी प्रभावली भूमिका पृ० ७४-७५।

उदात्त भाषाशली

महाकाव्य में भाषा शली की गरिमा आवश्यक है। महान विषय के प्रति पादन और उदात्त भावों की उत्कृष्ट योजना के लिए महाकाव्य की भाषा और शिल्प-विधान में भी गरिमा आवश्यक है। विद्वानों का कथन है कि 'पदमावत' में महाकाव्यो (संस्कृत के) चरित काव्या (अपभ्रंश के) और मसनवी काव्यों के तत्त्वा का सुंदर समावेश हुआ है। इसलिए पदमावत की शली में इन तीनों प्रकार के काव्यों की गरिमामयी शली के दर्शन होने हैं। डॉ० माताप्रसाद गुप्त का कथन है कि पदमावत में खंडो या सर्गों का विभाजन नहीं है। कथा आद्यतन धारा प्रवाह रूप में निरखी गई है। इसी कारण यदि कोई कहे कि पदमावत सग वच रचना नहीं है तो यह ठीक नहीं होगा क्योंकि पदमावत की अनेक प्राचीन प्रणियों में कथा को खंड में विभाजित किया गया है। प्रियसन शुबनजी डॉ० वासुदेव शरण अग्रवाल बालि विद्या ने अपने संस्करण में भी खण्ड की व्यवस्था की है, और जय तन कोई अल्प प्राचीन कवि की समतामयिक या उसनी भूतप्रति नहीं मिनती जिसमें खण्ड विधान न हो तब तक यह बात स्वीकार्य नहीं है। दूसरे प्राकृत अपभ्रंश में विना लण्ड विधान या सग विधान के भी प्रवच काव्य लिख गए हैं। तीसरे यदि सगवद्धता महाकाव्य का स्थिर और अंतरिक लक्षण नहीं है। अतः खंड—विभाजन न होने पर भी पदमावत को महाकाव्य में किसी प्रकार की बाधा नहीं उपस्थित होती। अथवा हाहा लक्षण में प्रारम्भ में नास्तिक्या, आशीर्वादन वस्तु निर्देश आदि के विधान पदमावत में मिलते हैं। गउडवहो की भांति इमका भी सग चरचर बहुत लंबा है। समासाक्ति प्रतीक, सङ्ग और रोमांचक शतांशय सौम्य पदमावत में शनीय हैं। पदमावत की भाषा ठंड अवधी है। उसमें बीच बीच में पुराने अपभ्रंश प्रयोग भी मिलते हैं। उसमें सबन्धों का कारण समस्त ठंड अवधी भाषा का निराला माधुर्य भरा हुआ है। मुहावरे सूक्तिया—लोभाक्तिया बहावतें उसके सौंदर्य-वद्धन के लिए अत्यंत स्वाभाविक रूप में सुप्रयुक्त हैं। जयसी की भाषा भावाभियोजना में सबन्ध पूणत समय स्वाभाविक और सरस है।

पदमावत में आद्यत दाहा-चौपाई की कडवक पद्धति अपनाई गई है। अपभ्रंश के अनेक चरित काव्या में भी इसी प्रकार की कडवक पद्धति के दर्शन होने हैं। पदमावत में जयसी ने प्रत्येक कडवक में सात अर्द्धालिया साढ़ तीन चौपाय्यां रखी हैं—उन्होंने सभी कडवका में चौपाई छंद का और कडवकात में घत्ता रूप में दोहा छंद का प्रयोग किया है।

पदमावत में कहने की शैली अत्यंत अकर्मिक, प्रवाहपूर्ण, सरस और प्रेम विष्णु है। अतः सरस सिन्धु गभीर, सहज किंतु उदात्त माधुर्यपूर्ण किंतु गरिमा

मयी शैली के प्रयोग की दृष्टि से पदमावत हिन्दी में अपने ढंग का सर्वश्रेष्ठ महाकाव्य है।”

महान् उद्देश्य

महाकाव्य के निर्माण के मंत्र में महान् उद्देश्य का होना आवश्यक है। 'चतुर्वर्ग' में से किसी एक की प्राप्ति को भारतीय आचार्यों ने महान् काव्य का उद्देश्य स्वीकार किया है। आम परिष्कार और मानव-जीवन का उत्थान भी महाकाव्य का मुख्य उद्देश्य माना गया है सत की असत पर धार की अध्याय पर पुण्य की पाप पर विजय का चित्रण करता हुआ महाकाव्यरार शिवम लोचमान को ही साय मानता है।

डा० शम्भूनाथ सिंह का विचार है कि पदमावत के अग्रयन में स्पष्ट हो जाता है कि उसका उद्देश्य महान् है। 'वह कवि का महती काव्य प्रतिभा से पुष्प होकर इस काव्य को हिन्दी के अप सभो प्रव व का रा म भिन्न एक निराने और उच्च पद पर बिगा देता है। काम मोक्ष की प्राप्ति उसका उद्देश्य है। यह अवश्य है कि पदमावत का कवि लौकिक प्रम कथा के माध्यम से अनौकिक प्रम की अनुभूति का आभाम भी देता चरता है। अत मोक्ष प्राप्ति ही पदमावत का प्रधान फल है। -- अत अग्रत्यसत पदमावत का फल मोक्ष है।' भले ही अग्रत्यक्ष रूप से पदमावत का उद्देश्य मोक्ष हो पर जायसी ने प्रथम रूप में 'काम की ही प्रतिपादना का है मिद्वान प्रतिपादन साध्यात्मिकता जाति की बातें पदमावत में मिल सकती हैं पर है वह काव्य प्रथ शृंगार-प्रधान प्रथ-जिसमें मुख्य रूप में काम ही साध्य है।

व्यावहारिक और वनात्मक दृष्टिगणा १ दखने पर भी पदमावत का उद्देश्य महान् दिखाई पता है। 'पदमावत में मानवता का उम मच्च स्वप्न का उदघाटन किया गया है जो प्रम, उदारता त्याग सादस सहिष्णुता और प्रियान की शपक भूमिका पर प्रनिलिप्त है। अत उसका उद्देश्य व्यापक और उगार मान वता का प्रसार और मानव हृदय का विस्तार और परिष्कार करना है। मनुष्य द्रम वाव्य-गरावर म स्नान करके स्वाभाविक और विगुद मानव बनकर निकरना है। उसका हृदय वीमन उगार और प्रगम्य बन गया रता है। गुक्वजी का कथन है कि 'एक ही गुण तार मनुष्य माधक हूण्या म होना हुआ गया है जिसे छूने ही मनुष्य साने वाहरी रूप रग के भदो की ओर म ध्यान ह्या एकव का अनुभव

१-डा० शम्भूनाथसिंह हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप विकास, पृ० ४७१।

२-वही पृ० ४२६।

करने लगता है। जायसी ने अपन महान उद्देश्य की पूर्ति के लिए उमी गुप्त तार को शकृत करके मनुष्यमान' के चाहे वह जिस जाति घम या बग का हो हृदय का जागत और प्रमत्तावित करने का प्रयत्न किया है।

इस उद्देश्य के लिये उन्होंने मानव की रागात्मिका वृत्ति—वाम को 'यापर अर्थों में गहीत किया है। उसी के माध्यम में जायसी ने प्रत्यक्ष जीवन की एकता का दृश्य उपस्थित किया। उन्होंने हिंदू और मुसलमान के बीच की दूरी को स्नेहा मत से भर कर एकरव की प्रतिष्ठा की है। इसीलिये जायसी के अध्यात्मवाद के अंतरान में उत्तर और प्रेम प्रवण मानवतावाद की सरस्वती प्रवाहित हो रही है। इस प्रकार मानवतावाद की प्रतिष्ठा—जाति घम आदि की वृत्तिम दीवानों को तोड़ कर मानव मात्र को एक सूत्र में बाधना ही पदमावत का उद्देश्य है और जायसी अपने इस उद्देश्य की पूर्ति में पण सफल हुए हैं।

महती प्रतिभा, मार्मिक प्रसंगों की सृष्टि एवं तज्जय गाभीय

महती प्रतिभा-सपन कवि जब किसी महशक्तिमयी प्रेरणा से उद्बुधित और अभिभूत होता है तो वह महाकाव्य की सजना में प्रवृत्त होता है। महाकवि मार्मिक स्थला का सुन्दर विधान करता चलाता है। वह जीवन के ममस्पर्शी प्रसंगों का पारखी होता है। ये ममस्पर्शी चित्रण मानव हृदय की रागात्मिका वृत्ति को जागत कर देने हैं। महाकवि के प्रथम रस से नीरस पद्या में भी रसघन आ जाती है—

रमवत्पचातगत नीरस पदानामिव पचरमन प्रथम मनवतेपा
रमवत्ता हगीवारात ।^१

पदमावत के घटनाचक्र के अंतगत ऐम स्थान का पूरा सन्निवेश है जो भाव की रागात्मिका वृत्ति को उदबोधित कर देते हैं उगने हृदय को भाव मग्न कर देते हैं। जायसी ने वस्तु-वर्णन के रूप में और पात्र द्वारा भाव-व्यंजना के रूप में इन प्रसंगों को कथा प्रवाह के बीच रखा है। वस्तुतः कथावस्तु की गति इन्हीं स्थानों तक पहुँचने के लिए होती है। पदमावन में ऐसे स्थान अनेक हैं जैसे मायके में कुमारियाँ ही स्वच्छ शीतल रतामन के प्रस्थान पर नागमनी आदि ना शोक प्रम गाय के कष्ट रत्नमन को गूनी की पवस्था उम दण के सवा' से विप्रनभ की दशा में पदमावती की करण महानुभूति रत्नमेन और पदमावती का संयोग सिद्ध न नोटते समय सामुद्रिक दृष्टाना न दोना की विज्ञान स्थिति

१-१० रामचंद्र शुक्ल जा० प्र० भूमिका पृष्ठ २।

२-विश्वनाथ साहित्य दपग।

नागमती की विरह दशा वियोग-सदेश रत्नसेन की प्रणय स्थिति जताउद्दीन के सदेश पर रत्नसेन का गौरवपूर्ण रोप और युद्धास्ताह गोरा बादल की स्वामिभक्ति और क्षत्रतेज स भरी प्रतिज्ञा अपनी साल भन्ना भोली भाली बधू की जीर वे पीठ पर कर बादल का युद्ध के लिए प्रस्थान देवपाल की टनी के आने पर पदमावती द्वारा सतीत्वे गौरव की अपूर्व यजना पदमावती और नागमती का उत्साहपूर्ण सहगमन चित्तौर की दशा आदि । इनम स पाच स्थल तो बहुत ही अगाध और गम्भीर हैं । नागमती वियोग गारा-बादल प्रतिज्ञा कुंवर बादल का धरे से निक्ल कर युद्ध के लिए प्रस्थान दूती के निकट पदमावती द्वारा सतीत्व-गौरव की यजना और सहगमन । ये पाचा ग्रथ के उत्तराद्ध मे हैं । पूर्वार्द्ध में तो प्रम ही प्रम है मानव जीवन की और उदात्त वक्तियो का जो बुद्ध समावेश है वह उत्तराद्ध मे है ।^१ ये प्रसंग अत्यन्त मार्मिक सरस और प्रभविष्णु हैं ।

सचमुच जायसी की प्रतिभा महनीय थी । उन्होंने ब्रह्म जीव और ससार की गत्यी को सुनझाने के लिए जिस जीवत क्यातक की कल्पना की है और उसमें अत्यन्त ममस्पर्शी स्थलो का चूसाव करके हृदय का समग्र रस निचोड कर जिस प्रकार अपने काय को आकषर गौर रसमय बना दिया है और साथ ही लौकिक शक्ति की अनुभूति को उन्होंने जिस कुशलता से उच्चगामी बनाकर आध्यात्मिक जगत की ओर अप्रसर विधा है वसा सामान्य प्रतिभा वाला कवि नहीं कर सकता है । काय रचना का उद्देश्य तो तुलना मत्तन उसमान जादि सक्ता वही या जो जायगी का था किन्तु उन कत्रिया म जायमी जमी स्वाभाविक और शक्तिमती का य प्रतिभा नन्ही थी । जायसी की काय प्रतिभा का दर्शन सबसे अधिक पदमावत के रूप गौण्य और विरह की मनोशाओ के वणन म होते है । जिनम उन्होंने परम सत्य के निरतन गनन गौर अनिवचनीय सौण्य को मानव-जगत मे प्रति विम्बित करके भी उमकी विराटता और अनतता को नष्ट नहीं होने दिया साथ ही उस अनिवचनीय वण्यवस्त की आभा का पूणत चलना भी दिया है । समासोक्ति एव प्रतीकात्मक शैली की अभिव्यक्ति विराट काव्य चेतना की ही देन हो सकती है । पदमावत म प्रम उत्साह वरागव शोक परुणा भक्ति भय आदि म्प्रायी भावा की गम्भीर अभिव्यजता हुई है । क्या कविध्यपूर्ण मनादेशाओ की मार्मिक अभिव्यक्ति और क्या अनुभूतिया की सचाई-गहराई क्या अभिव्यक्ति की ममत्ता शिता और क्या तीव्रता-प्रभविष्णुता म प्रम-ज्जावित भाव और क्या तीव्र सौण्य चेतना की विराटता-प्रतिभाभित्तता क्या दार्शनिक-आध्यात्मिक अनुभूतिजय गुरुत्व और क्या उदारशयता-समवधारमजता क्या क्या की लौकिकता और क्या

१-प० रामचन्द्र गुप्तन जा० प्र०, भूमिका पृ० ६६ ७० ।

समासोक्ति पद्धतिजग्य आध्यात्मिकता—गूढ़ता क्या परमसत्ता के दर्शन के लिये ध्याबुलता और क्या तडपन जय प्राणशक्ति—मामिक अनुभूति और गियतम के प्रर्शन इत्यादि महान तत्वों ने पदमावत म गुरुता—गम्भीरता और महाना व के उपयुक्त महत्ता की प्राण प्रतिष्ठा की है ।

सूफी विद्वान और सन्त पदमावत का आदर पुराण^१ की भांति करते रहे हैं । मोलहवी शताब्दी स ही विविध भाषाओं में इसका अनुवाद होने लगा था । इसकी अनेकानेक प्रतिया फारसी अरबी उर्दू नागरी आदि में लिखी गई । इस ग्रंथ के अनेक सस्करण, भी प्रकाशित हुए हैं । इसकी अनेक टीकायें भी लिखी गई हैं । इन बातों से स्पष्ट है कि व्यापक प्रभाव और लोकप्रियता की दृष्टि से भी देखने से रामचरितमानस के बाद पदमावत का ही नाम आता है ।

महाकाव्य की अमरता उसकी आंतरिक प्राणशक्ति सशक्त प्राणवत्ता और अनवच्छेद्यजीवनी शक्ति के कारण भी होती है । गम्भीर जीवनदर्शन, मौलिकता महान उदार सावभौमिक एव सावकालिक प्रम-सन्देश लोक प्रवर्तियों का अन्त स्पन्दन लोकभाषा का पूण निखार लोकमंगल की भावना आध्यात्मिक साधना मानवतावाद आदि ने पदमावत में एक महान जीवन दर्शन और सशक्त प्राणवत्ता का उपस्थापन किया है । उस युग की साधना का शाश्वत अमर सदेश पदमावत में मूर्तिमान है ।

आचार्य नन्दलाले वाजपेयी के शब्दों में—

‘ जीवन के अनेक स्वरूपों और उनकी अनेक स्थितियों को महाकाव्य में स्थान मिलता है । चरित्रों के विभिन्न आदर्श उदात्त रहा करते हैं । महाकाव्य में स्वभावतः वस्तु चित्रण की प्रधानता होती है । प्रकृति के सौंदर्य का वर्णन भी वस्तु रूप में ही होता है । ’

इन बातों का उल्लेख करते हुए आचार्य प० नन्दलाले वाजपेयी ने लिखा है कि “परम्परागत महानाव्यों के लक्षणों की पूर्ति न करने पर भी कामायनी को नये युग का प्रतिनिधि काव्य कहने में कोई हिचक नहीं होती । ’

यही बात थोड़े से परिवर्तन के साथ हम पदमावत के लिए भी कह सकते हैं कि पदमावत में महाकाव्य के कनिष्ठ परम्परागत लक्षण भन्ने ही न मिलें फिर भी उपयुक्त विवेचन के आधार पर स्पष्ट है कि पदमावत हिन्दी के श्रेष्ठतम महाकाव्यों में हैं ।

१—पदमावत स० प्रियसन और सुधाकर त्रिवेदी (रा० ए० सा० सस्करण भाग १) टीका पृष्ठ २

२—आचार्य नन्दलाले वाजपेयी—आधुनिक साहित्य पृष्ठ ७८

३— पृष्ठ ८०

चरित्र रचना

प्रवचन काव्य में स्वभाव की यजना पात्रों के बचन और कर्म द्वारा ही होती है। उनके स्वगत भावों और विचारों का उल्लेख बहुत कम मिलता है। पद्मावत में प्रवचन के आदि में लेकर अंत तक चलने वाले तीन पात्र मिलते हैं—मदमावती, रत्नमेन और नागमनी। इनमें से किसी के चरित्र में कोई ऐसी व्यक्तिगत विशेषता कवि ने नहीं रखी है जिसे पकड़ कर हम इस बात का विचार करें कि उस विशेषता का निर्वाह अनेक अवसरों पर हुआ है या नहीं। इन्हें हम प्रमा और पति पत्नी के रूप में ही देखते हैं। हम इन्हें अपनी किसी व्यक्तिगत विशेषता का परिचय देते नहीं पाते। अतः इनके सम्बन्ध में चरित्र निर्वाह का एक प्रकार का प्रश्न ही नहीं रह जाता।^१

इसका साथ ही यह भी द्रष्टव्य है कि उपर्युक्त तीनों पात्र प्रेम के विविध आयामों के प्रतीक हैं। तीना प्रेममय है और तीतो के रूप शील का अत्यन्त आकर्षक और भयंकर विद्वेष प्रेम है। तीना का सम्पूर्ण काय कर्नाप प्रेम से ही परिचालित है। इसी महत् बलिष्ठ का जायसी ने इस काव्य में पूणत निर्वाह और अत्यन्त स्वाभाविक ढंग से विनाश भी किया है।

पद्मावत का चरित्र विधान

सूफी साधना में प्रेम ही सब कुछ है। हिंदा क सूफी प्रेमार्थ्याना के प्रेमियों के चरित्र का विनाश इसी पद्मभूमि में हुआ है। प्रायः सभी नायक प्रेम-साधना में तीन चित्रित किए गए हैं।

पद्मावत के चरित्र विधान या स्वभाव चित्रण को अध्ययन की सुविधा के लिए पांच रूपों में विभक्त किया जा सकता है—

(१) आदर्श रूप में,

- (२) जाति-स्वभाव के रूप में
- (३) यत्ति-स्वभाव के रूप में,
- (४) सामाय स्वभाव के रूप में
- (५) प्रतीक के रूप में और अलौकिक स्वभाव के रूप में ।

जायसी का प्रतिपाद्य या प्रेम का वह उत्कृष्ट लिखाना जिसके द्वारा साधक अपने अभीष्ट की सिद्धि प्राप्त कर सकता है। रत्नसेन एक उत्कृष्ट प्रेमी के रूप में चित्रित है। वह अपने लक्ष्य का प्राप्त करने के लिए राज पाट सुख भोग विबहुना अपना सबस्व त्याग देने का प्रस्तुत है। वह प्रेमपथ का सच्चा पथिक है। प्रेमपथ पर चलते हुए वह युद्ध पसन्द नहीं करता। साथी राजकुमारों के आग्रह करने पर भी वह गंधर्वसेन की सेना में लड़ना नहीं चाहता पर अनाउद्दीन का पत्र पाकर वह युद्ध के उत्साह से भर उठता है। पद्मावती एक आदर्श प्रयत्नि है। प्रियतम का शूरी का दण्ड मित्रा है इस समाचार को सुनकर वह उसी के साथ प्राण-त्याग करने का व्रत परिकर है (जिय तजियो मरौ ओहि साथ)। चित्तोर आगमन और उसके पश्चात् भी वह एक त्यागमूर्ति प्रयत्नि के रूप में चित्रित है किन्तु उसमें भी रापत्नी के प्रति स्पर्धा की प्रवृत्ति है। उसके रूप शीत और चरित्र के द्वारा जायसी ने एक अलौकिक चरित्र की भी सृष्टि की है। इसी प्रकार नागमती को ही लें तो स्पष्ट हो जाता है कि आदर्श रूप में प्रतिप्राणा भारतीय गहिणी है। प० रामचन्द्र गुवन का कथन है कि सामाय स्वभाव के रूप में चरित्र विधान तो चरित्र चित्रण के अन्तर्गत नहीं वह सामाय प्रकृति वर्णन के अन्तर्गत है जिसे पुराने ढंग के आलंकारिक स्वभावोक्ति कहेंगे। आदर्श चित्रण के सम्बन्ध में एक वान ध्यान देने की यह है कि जायसी का आदर्श चित्रण एक दशपापी है। तुलसीदास जी की तरह सर्वाङ्गपूर्ण आदर्श की प्रतिष्ठा का प्रयत्न उन्होंने नहीं किया है। रत्नसेन प्रेम का आदर्श है गौरा वादन वीरता के आदर्श है पर एक साथ ही शक्ति धीरता दया क्षमा शीत सौम्य और दाय इत्यादि सबका चाई एक आदर्श जायसी के पात्रों में नहीं है। गोस्वामी जी का लक्ष्य या मनुष्यत्व के सर्वतोमुख उत्कृष्ट द्वारा भगवान के लोक-गात्रक-स्वरूप का आभास देना। जायसी का लक्ष्य या प्रेम का वह उत्कृष्ट लिखाना जिसके द्वारा साधक अपने विनाश अभीष्ट की सिद्धि प्राप्त कर सकता है। पद्मावती में आदि से लेकर अन्त तक चलने वाले तीन ही पात्र हैं रत्नसेन पद्मावती और नागमती। पद्मावती के चरित्र चित्रण पर प्रकाश डालते हुए डा रामकुमार वर्मा ने लिखा है पात्रों का चरित्र चित्रण हिन्दू जीवन के आदर्शों से पूर्ण सामंजस्य रखता है। रत्नसेन में प्रेम का आदर्श है। वह

सम्पूर्ण रूप के धीरोदात्त दक्षिण नायक है। धीरोदात्त नायक में तितने गुण होने चाहिए व सभी गुण रत्नसेन में हैं। पदमावती स्त्री-धर्म की सर्वादा में दृढ़ और प्रेम करने वाला है। नागमती भी प्रेम के आदर्श में दृढ़ है। माहिं भोग सा काज न वारी। सौंह दीठि का चाखनहारी ॥' में उसका उत्कृष्ट नारीत्व निहित है। -- सनोगुणी और तमोगुणी दोनों वर्गों के पात्रों में युद्ध होता है और अंत में सतागुण की विजय होती है। पात्रों के चरित्र चित्रण में हिंदू संस्कृति का प्रभाव पूर्ण रीति से है। पदमावत का एक बहुत बड़ा महत्व पात्रों के मनोवैज्ञानिक चित्रण में है।

रत्नसेन

हिंदी सूफी काव्या के नायकों में प्रेम के सभी लक्षण पाए जाते हैं जिन्हें सूफी साधकों के लिए आवश्यक कहा जाता है। इनमें सौंदर्य के प्रति तीव्र आकर्षण है। उनका प्रेम ईश्वर-प्रदत्त है। ये नायक धीरे-धीरे गंभीर हैं सहिष्णु हैं त्यागी हैं, भोगी-यागी हैं तपस्वी और उत्साही हैं प्रेम के असामान्य आनंद ही उन्हें कम पथ पर जाग बनाना है।

जायसी ने रत्नसेन से चरित्रावन में शान्त प्रतिष्ठापक व्यवहार का ही प्राधान्य दिखाया है। वह एक गहरे सच्च प्रेमपथ का आदर्श पथिक है। महाकवि रत्नसेन के माध्यम से पदमावत में प्रेम की साधनावस्था का भी प्रवेश किया है। सूफी प्रामाण्यता के नायक प्रेम में अपने महसूस जीवन में रुचि नहीं लेते, वे अपनी विवाहिताया की उपेक्षा करते हैं किन्तु तभी तक जब तक कि उनकी प्रेमसी प्राप्त नहीं हो जाती। पश्चात् वे पूर्व विवाहिता की उपेक्षा नहीं करते।

रत्नसेन हरामन सुआ से पदमावतों के अतिरिक्त रूप का गुणगान सुनकर उसकी प्राप्ति के लिए चले पड़े। उमने राज-पाट घर-द्वार सब कुछ छोड़ दिया। वह जोगी वेश में चल पड़ा। बितौड़ में बहणा फन्दन मच गया। माना व्यथ रोती-बनपती रह गई। पतिप्राणा रानिया बाना को नाच कर सतिहान करती रह गई पर रत्नसेन न रना। उसके हृदय प्रवेश को तो पदमावतों की प्रेमधारा ने आप्लावित कर दिया था। उन पान था कि प्रेम पथ तो अनिधार है, मझधार का सधप है वह जानता था कि उसका लक्ष्य सात सागर पार है, उम पाना अत्यन्त साधना का काम है किन्तु वह भी जानता था कि प्रेम-साधना की राह में मून भी फून हा जात हैं बनप फलन हि पुनवना विधन की चरितायता होनी है। वह साधना के पथ पर चलना है कहा भी विचरित नहा हाता। वह अपनी प्रमसि में ही ईश्वरीय सौन्दर्य के दर्शन करता है।

कुत्र लोग इस बात को धार्मिक और नतिक दृष्टिकोणों से आकते हुए रत्नसेन के काय को निन्दनीय कहते हैं। उनका कथन है कि अपनी विवाहिता पत्नी का परित्याग, घर-द्वार छोड़कर सात सागर पार पराई स्त्री के लिए ओगी बनना, मिहल गढ़ के भीतर चोरा की तरह सेंघ देना प्रभृति बातें लोक दृष्टि से निच हैं। 'बात-बात में सत्कार का दम्भ भरन जाने तो इस बहुत बुरी बात कहेंगे। पर प्रेम-भाग की नीति जानने वाले चोरी से घर में घुसने वाले (साधक) रत्नसेन को कभी चोर न कहेंगे। वे इस बात का विचार करेंगे कि वह प्रेम के लक्ष्य से कहीं च्युत तो नहीं हुआ। उनकी व्यवस्था के अनुसार रत्नसेन का आचरण तब निन्दनीय होता जब वह अप्सरा के वेश में आई हुई पावती और लक्ष्मी के रूप जाल और बाता में फस कर मागभ्रष्ट हो जाता। पर उस परीक्षा में वह परा उतरा। 'मृत्यु की चिन्ता भी उन्हें डिगा नहा पाती। पदमावती का पिता गधवसेन रत्नसेन को सूनी पर चढ़ाने की आज्ञा देता है। रत्नसेन विचलित न होकर उसी प्रकार हसता रहता है जिस प्रकार सूनी पर चढ़ते हुए मसूर प्रसन्न था। 'वह तो पदमावती के प्रेम में सूनी का भी हमते हसते स्वागत करता है —

जाकर जीव मर हर बसा। सूरी देख सो कस नहिं हसा ॥

आजु नह साहोइ तयेरा। आजु पुहमि तजि गगन बसेरा ॥

इस स्थान पर करणीय-अकरणीय और रत्नसेन के स्वभाव की दुबलता के प्रश्न उठाए जा सकते हैं किन्तु वास्तविकता यह है कि प्रेम की साधनावस्था में य काय उसके शीतल में परम भूषण हैं। स्पष्ट है कि वह अदम्य साहसी और कष्ट सहिष्णुता उमंग सम्बन्ध है अनुराग उसकी निधि है और प्रम-जय विराग उसका साधक रानियों का रोना और सात सागर पार के प्रत्युह ह। यह अवश्य है कि वह पदमावती के लिए अधीर हो उठता है स्वयं को भित्तारी बनाता है इष्ट के लिए दुराग्रह करता है चोरी करता है सेंघ उगाना है। प्रम-जय होने के कारण ये सब वस्तुओं उसके शीतल में दूषण रूप में नहीं अपितु भूषण रूप में आई हैं। उसके लिए पदमावती एक गामाय नारी नहीं है। वह उसमें विराट सत्ता का दर्शन करता है। वह उसके रक्त की बूद-बूद में बनी हुई है, रोम राम में बसी हुई है हाड हाड में उसी का प्रकट है नम नम के उसकी ध्वनि है। रत्नसेन - पदमावती का संयोग भी विवाह के आंतर ही हाता है। इस प्रकार गायसी ने स्वयं सामाजिक प्रेम का चित्रण किया है। चन्द्रमन की तरह पर पत्नी उड़ारो या उहान चित्रण कही नहीं किया है।

१-पं० रामचन्द्र शुक्ल गायसी-पदमावती (भूमिका) पृ० १२२-२३।

२-जा० प्र० ना० प्र० सा० काशी। जस मार कहें बाजातूह। सूरी देखि हसा मसूरू ॥

यह एक प्रकार की लोक-प्रार्थना और प्रार्थना की बात है कि बहुत अधिक सम्पत्ति के समक्ष बड़े बड़े त्यागिना को भी लाभ हो जाता है और इसलिए मिहिर द्वीप से जाते समय का रत्नसुत का अथवा उसका व्यक्तिगत स्वभाव ऊँच बन रहा जाता ।

जानि-स्वभाव के रूप में रत्नसुत एक क्षत्रिय वीर के रूप में उल्लिखित जाता है । उसका स्वभाव उग्र है और मन्त्र-यत्न दण्ड । अपने न्याय के लिए प्राणा की बाजी लगाकर सात समुद्र पार जाता उनके प्रेम और आर्त्ता स्वभाव के साथ जानि स्वभाव का परिचय क्षत्रिय होने के साथ अभिमान एवं पारंगत का व्यक्तिस्व-बोध-प्राप्त है । राक्षस-चक्र से परमावनी की रक्षा के लिए युद्ध करता वहीं से रत्नसुत के पास परमावनी के लिए तैयार भेजा - उन समय उसका मुख से निरसत वाक्य उसका स्वर और तानीय अभिमान का अत्यन्त गौरव एवं आज पण शक्ति में व्यक्त करते हैं -

मुनि अस निहा उठा चरि राजा । राजा पर तपि धन गाथा ॥
 भलेहि साह पुहुभी पनि भारी । भाग न पाउ पुष्प के नागी ॥
 या भाहि तें अम सूर धारा । चक्र सरग रमि पर पत्तार ॥
 हों रनयभउर नाह हमीर । तपि मार जे पाव मरीर ॥
 हों ही रत्नसुत सक-बन । राहु धरि जीनी मैरिनी ॥
 हनिवत सरिस भार में काधा । राघो सरिस समुद्र हि वाधा ॥
 विद्रम सरिस लीह नइ माका । गिहानीप तोर जौ नाका ॥
 ताहि मिष के गढ़े की माठा । तौ अस निहा पाइ रहि नाका ॥

तुलक जाद कहु मर न घाई । तपि मन्त्र के नाइ ॥

महू समुनि अस जगमन सबि राखा गन साजु ॥

वाहि हाइ रहि बना मो चरि जावो राज ॥^१

रत्नसुत न अनादहीन के रूप का जो उपसृत उत्तर दिया था वह उनका चरित्र पर अधिक तीव्र आवाज टाकता है । उन प्रकार के अनेक कथासम्बन्धी विधान द्वारा जगमनी न रत्नसुत के स्वभाव का उच्चारण किया है ।

द्वितीय न तोरन के अनन्तर देवपान की श्रुति और तूनी का वाक्य का

८

चातुर्पदिमयी से सुनकर यह तो वाग्निभूत हो उठा। वह प्राण ही देवपान को बन्ती बनाने की प्रतिज्ञा करके बू भलनेर पर टूट पन्ता है। घेत म साग धुम जाने पर भी देवपान पर साक्षातिक आक्रमण करने उस भार कर बाध सता है। प्रतिवार की यह प्रखल वासना रातपूनों का तागिग लक्षण है।^१

रत्नसेन के चरित्र की यत्थित विशपतायें भी अनेक स्थला पर मिलती हैं। गौरा-वात्स्य उसे चेतावनी देते हैं कि तु वह जलाउद्दीन के बपटाचार पर शका नहीं करता वह उसके साथ गढ के बाहर पह जाने चला जाता है। दूसरे पर ध्वन का सदेव न करने से राजा क हृदय की क्षदारता तथा मरुतता तथा नीति की दृष्टि से अपनी रक्षा का पूरा ध्यान न रखने में जदूरदर्शिता प्रकट होती है। वह यत्थि गत रूप में दाना पतिवधो से समान प्रम करता है। सिंह म पत्नी में तागमती का सन्देश पाकर चितौड जाने के लिए वह ग-बवसन से चठ चोचता है।

रत्नसेन का यत्थित्व एक साधक का यत्थित्व है। वही वह अपन अभीष्ट की प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील है और वही ब्रह्मसाधना म लीन—

चला भगुति माग कह साजि क्यातप जाग ।

सिद्धि होउ पन्मावति पाए द्विरन्य जेहि क वियोग ॥

ये सिद्ध और वियोग विशिष्ट अभिप्राय यजरु शब्दों के रूप म प्रयुक्त हैं। रत्नसेन काया है और पदमावती जीव है—दोनों अभिन्न हैं—'जन् तुम जीव क्या वह जोगी। क्या करोग जीव प रागी।'^२

सरग सीम घर घरती हिया सो प्रम ममुद ।

ना कौडिया होइ रह न ल उठहि सो ब द ॥

रत्नसेन पदमावती का भिक्षारी है, वयोनि श्वरीय रूप उराम अभि यन्त है। रत्नसेन के यत्थित्व के द्रष्ट आध्यात्मिक या साधनात्मक पहनू का ओर भी रवि न समासोक्ति पद्धति से अनेक स्थलो पर इ गित किया है।

योगी रूप म मकटा की परबाह न करने म सन्वे साधन के रूप म युद्ध कता—प्रवीण रूप म स्वचन्द्र निष्पट हृदय ज्ञान यत्थि के रूप म क्षयिपोचिता गौरवशाली रूप म ण्व मर्त्रोपरि आश्रय प्रमी के रूप म उनके स्वभाव म निष्ठा श्याग, लगन उत्पत्ता और आत्म वित्तान प्रभृति आरपण क वेद्र हैं।

पदमावती

पदमावती का चरित्र विष्णव रूप और शीत-गन्मात्र म अरथन विष्णव रूप म चित्रित हुआ है। प्रधान नायिका होने म उनके चरित्र म भी आश्रय का ही प्राणाय

१-प० रामचन्द्र शुक्ल, जा० प्र० प० १२४।

२-जा० प्र० हि० ण्वे०, २५६।

य है। मूलतः उसके रूप और शीत के दो आशय हैं—

(१) लौकिक और (२) अलौकिक।

पद्मावती पद्मावन मन्दिर स्वरूपा है। इसी का आशय लेकर समस्त घटनाओं का सोन फूटा है। वह सिंहलद्वीप के राजा यशवन्त की राजकुमारी है। चित्तौड़ आगमन के पूर्व एक मन्त्री और आदर्श प्रेमिका के रूप में चित्रित हुई है। वह एक आदर्श निष्ठावती सुन्दर प्रेमिका और प्रवहार कुशल नायिका है। रत्नसेन के लिए सूली की आना की सूचना पाकर वह राकुन हो उरनी है। अपने प्रियतम के हाथ साथ वह प्राण त्याग देने को उद्यत है।

‘काठि प्राण बड़ा लेइ हाथा। मरे तो भरा जियो एक साथी ॥’

प्रारम्भ में वह कुछ कठोर अवश्य थी पर जब उसे रत्नसेन के सच्चे प्रेम की प्रतीति हो गयी तब उसने आत्मसमर्पण किया। उसके कोमल और प्रेम प्रवण हृदय को ही अभिव्यक्ति है— यदि अपना प्राण जानन से प्रियतम मिल ता मैं अपना प्राण जला दूँ।” सिंहल से चित्तौड़ जाते समय समुद्र में जलमान— ध्वस्त हुआ, हाथा, पाडे काश आदि सब नष्ट हो गये। लक्ष्मी समुद्र से विदा पाकर वे चलने लगे तब राजा को समुद्र ने हम पातूल आदि पाव अनभ्य वस्तुमें दो और रानी को लक्ष्मी ने पान के बीड के साथ कुछ रत्न दिये। पुरी में आने पर राजा ने देखा कि हंस शादूल आदि पाव वस्तुना के अतिरिक्त उनके पास पाथय कुछ नहा है। पद्मावती ने तुरन्त उन रत्नों को बचने के लिए प्रस्तुत कर दिया जो विदा के समय रदमी क द्वारा छिपाकर दिए गए थे। यहाँ पर उसका चरित्र एक सचपत्नीता बुद्धिमती और आदर्श गृहणी के रूप में निरर उभरा है—

‘लक्ष्मी अहा दी ह मोरि वीरा। भरि क रतन पगरय हीरा ॥’

काठि एक नग बगि भजावा। बहुरी लच्छि फरि नि पावा ॥’

तुलसीदास ने भागवत पर ब्रह्म क प्रसंग में सीता के प्रत्युत्तरप्रमत्त और ‘मणि मुंदरी देने की बात के द्वारा सीता क गृहणीत्व को निवारने का प्रयत्न किया है—

‘पिय हिय की सिय जाननि हारी। मनि मुँदरी मन मुनि उतारी ॥’

राघव चेतन को रत्नसेन ने दश स निबन्ध जान की आना दी थी। पद्मावती सच्चे अर्थों में रानी थी। अपने सोचा कि राघव चेतन पण्डित है, गुणी है जादू टोने में प्रवीण यक्षिणी मिद्ध है। यदि वह थोडा भिन्नाचारी है तो क्या हुआ ?

१—पद्मावत छन्द ४०१।

२—पद्मावत (लक्ष्मी समुद्र-वर्ण) २८५—६।

३—रामचरितमानस काशिराज संस्करण पृ० १८२ (१०२३)।

है तो वह पण्डित । हार तो जाते हैं उनके समान सब लोग । है तो वह दरवार की शोभा । ऐसे प्रवीण सभा पण्डित को इस समय दण्ड स्थिे जाने का परिणाम बुरा होगा । जो यमिणी के प्रभाव में दूज न होने पर भी दूज का चन्द्रमा लिखा सकता है वह इस सूय (रत्नसेन) के स्थान पर दूसरा सूय भी उपस्थित कर सकता है । कवियों और पण्डितों की जीभ तो तनवार है — इसमें धाग भी है और पानी भी —

जान दिस्टि धनि अगम बिचारा । भल न कीह अस गुनी निसारा ॥

जे जखिनी पूजि ससि काढा । सूर क ठाव कर पनि ठाला ॥

कवि क जीभ खरग हर दवानी । एक दिमि आगि दसर दिशि पानी ॥

जनि अजगुत का मुख भौरें । जस बहुतें अपजस होइ थोरें ॥^१

पद्मावती अपने हाथ के कगन-दान से राघव चेतन को सतुष्ट प्रसन्न करने का प्रयत्न करती है । इस स्थल पर उसकी दूरदर्शिता और बुद्धिमत्ता का स्पष्ट परिचय मिलता है । रानी होने पर भी वह अत्यन्त निरभिमानी थी । अनाउद्दीन दुग के भीतर प्रविष्ट हुआ । उसकी चेष्टाओं से गोरा गान ने उसके बपटाचार को भाँपकर राजा को उससे मित्रता न करने की सलाह दी । रत्नसेन अपने निश्चय पर अग्रिम रहा । गोरा बादन रष्ट होकर चले गए । अनाउद्दीन ने छत्रपूवक रत्नसेन को बन्दी बना लिया । गोरा-बादन को अपना सच्चा हितपी समझ कर राजसी अभिमानी छोड़कर उनके पास जाकर और बन्दी राजा को छडाने का सफल अनुरोध करके रानी ने बुद्धिमत्ता का ही परिचय दिया है । पनि को बन्धनमुक्त करने के लिए उसने गोरा बादल को जिन उम्मुक्त ओज भरे शब्दों में ललचारा है वह क्षत्रिय नारी के उपयुक्त उसक साहसपूर्ण उद्योग का पारिचायक है । उसने कहा था —

प्रिय जह बनि जोगिन होइ धावों । हों होइ बनि पियहि मोकरावों ।^१

जायसी ने पद्मावती के स्वभाव की जानिगत विशेषताओं को भी अत्यन्त मनमोहक रूप में उपस्थित किया है । स्त्री में प्रेम गव और सपत्नी के प्रति ईर्ष्या की वृत्तियाँ स्वाभाविक हैं । नागमती की वारी नाज प्रफुल्लित है राजा ने उने सुगोमित किया है—य बातें सुनकर पद्मावती जन उठती है वह वहा पहुँचकर नागमती से घात विवाद करती है । इस विवाह में पद्मावती रत्नसेन के प्रेम का गव भी व्यक्त करती हैं । स्त्री जानि के सामान्य स्वभावाग (ईर्ष्या गव प्रेम मान ज्ञेय प्रभृति वृत्तियाँ) पद्मावती के स्वभाव में (उस स्थल पर) दर्शनीय हैं । नागमती-पद्मावती के विवाद को दृष्टि में रखते हुए शुक्ल जी ने एव बह ही मार्मिक तथ्य की ओर इंगित किया है । यह ईर्ष्या और यह प्रेम-गव स्त्री जानि के

१-पद्मावत (राघव चेतन देश निराना सण्ड) ४५० (३८) २-३-५-६ ।

२-वही, छन्द ६०९ ।

सामान्य स्वभाव के अनगत माना जाता है, इसी से इनके वृषण में रसिकों को एक विशेष प्रकार का आनन्द आया करता है। यों भाव "यत्किं गत दुष्ट प्रकृति के अतगत नहा कहे जा सकते। पुरुषों ने अपनी जबरदस्ती से स्त्रियों के कुछ दुःखदात्मक भावों को भी अपने विलास और मनोरंजन की सामग्री बना रखा है। जिस दिलचस्पी के साथ वे भेदों की लड़ाई देखते हैं उन्हीं दिलचस्पी के साथ अपनी कई स्त्रियों के कलह को। नवोद्धा का नय और कष्ट भी नायिका भेद के रसिकों का आनन्द के प्रसंग है। इसी परिपाटी के अनुसार स्त्रियों की प्रेम सर्वां वनी ईर्ष्या का भी शृंगार रस में एक विशेष स्थान है।^१

पदमावती का सतीत्व हिंदू गरी क चरम उत्कृष्ट का निदर्शन है। इसीलिए कहा जा सकता है कि सबसे उज्ज्वल रूप जिसमें हम पदमावती को देखते हैं वह सती का है। 'देवपाल और अलाउद्दीन द्वारा प्रेषित दूतियों की परीक्षा की अग्नि में तप कर उसका सती व स्वयं-सन्तुष्ट प्रभाविकागकारा हो गया है। ऐसे लोकोत्तर और स्त्रिय प्रेम की परीक्षा के लिए सत्यान की गई कमीटी कदापि उसके महत्त्व के उपयुक्त नहीं है, किन्तु इतना अवश्य है कि सतीत्व की इस परीक्षा द्वारा उसके चरित्र की उज्ज्वलता और महानता की ही योजना हुई है। रत्नसेन की मत्स्य के अनंतर वह अपनी सपत्नी के साथ चिता पर बैठकर सती हो जाती है। पदमावती और नागमती का सती होना 'जीहर' के रूप में नहीं कहा जा सकता है। (वे तो सती हुईं और अक्षत्राणिया न जीहर श्रुत का सम्पादन किया)। सती होकर इन दोनों रानियों ने अपन प्रेम की अनन्यता की चरितायता ही कर दी है। सती होते समय उनके उल्लास का पारावार उमड़ रहा था—

नागमती पदमावति रानी । दुवौ महा सत सती बखाना ।

दुवौ सवति चरि खाट बईठी । जी सिक्लोक परा तिह दीठी ॥

जाजु सूर दिन अथवा आजु रनि ससि बूट ।

आजु नाचि जिउ दाजिए आजु आगि हम्ह जूड ॥^१

--

--

--

एहि दिवस हों चान्ति नाहा । चलौ साथ पिउ देइ गलवाहा ॥

सागी कण्ठ आगि देइ होरी । छार भई जरि अगत मोरी ॥^१

यह एकनिष्ठ प्रेम पदमावती के स्वभाव को अत्यन्त निस्तार प्रदान करता है।

१-५० रामचन्द्र गुवन जायसी-प्रभावती, (मूकिका) पृ० १२५ ।

१-पदमावत (पदमावती-नागमती-मती मंड) (५८१२)

२-वही (५७११, ५७१३)

पदमावती के रूप और शीन की अभियोजना में जायसी ने प्रायः उसकी अलौकिकता की ओर भी इंगित किया है। उसके रूप वणन के प्रसंग में बाध्यात्मिक सकेत मुखरित हैं —

बेनी छोरि झार जो बारा । सगर पतार होइ उजियारा ॥

सिर दृति सोहरि परहि भुइ बारा । सगरे देस होइ अधियारा ॥

इसी प्रकार अनेक स्थलों पर भी कवि ने पदमावती के रूप सौन्दर्य वणन और उसके स्वभाव के माध्यम में उसकी लौकिकता के साथ ही अलौकिकता की ओर भी इंगित किया है।

नागमती

नागमती के स्वभाव शील में उप-नायिका के प्रायः सभी गुणधर्म मिल जाते हैं। वह रत्नसेन की प्रथम विवाहिता पत्नी है (नागमती तू पहिलि बियाही)। अत्यन्त सुदरी और श्यामवर्ण नागमती को अपने रूप सौन्दर्य पर गर्व है यह स्त्रियो का सामान्य स्वभाव भी है। सुए स अपने रूप की भत्सना सुनकर वह सशक और शोधपूर्ण हो जाती है। रत्नसेन राज पाट और घर-घर त्याग कर सिंहल जाने लगा था नागमती ने साथ चलने का अनुरोध किया। उसने तक भी दिया—

अब का हमहि करहि भोगिनी । हमहू साथ होव जोगिनी ॥

की हम्ह लावहु अपने साया । की अब मारि चलहु एहि हाया ॥

तुम अस बिछुरे पीउ पिरीता । जहवा राम तहा सग सीता ॥

जो लहि जिउ सग छाड न वाया । करिहौ सेव पखरिहौ पाया ॥

राज करहु बितउर गढ राखहु पिय अहिबात ।

उन पत्तियों से स्पष्ट है कि नागमती सीता की भाँति पतिप्राणा थी। उसका अनुरोध रत्नसेन की तबधारा में बह जाता है—

राघव जो सीता सग पाई । रावन हरी बचन सिबि पाई ॥

रत्नसेन नागमती को रोता छोड़कर चला जाता है।

पति सिंहलद्वीप गए। सुदीध बाल बीत गया। उसने अपनी गृहिणी की सुधि तक नहीं। उस रोती कल्पती और बिरह में विसूरती रानी ने रत्नसेन और पदमावती को पक्षी-रूप द्वारा सदश प्रपित किया—

हाड भए मव बिगरी नस भई सब तानि ।

रोव रोव ते घुनि उठ नहौ बिया केहि भाति ॥

मोहि भोग सा काज न बारी । सौह दीठि क चाखन हारी ॥

पति स विछोह करान वाली के प्रति उसके मन म प्राव है परनारी के वश म होन वाले के प्रति उपालभ है । प्रथम विवाहिता होने का उसे गव है । फिर भी उसकी वेदना-सवेदना मे विनम्रता भरी हुई है -

सवति न होसि तू बरिनि मोर कत जेहि हाय ।

आनि मिनाव एक धर तोर पाय मार माय ॥

यहा पर उस विरहिणी का नि स्वाय पातिप्रत्य और उज्ज्वल चारित्र्य विशेष दर्शनीय है । इस स्थान पर उस आदर्श एक निष्ठ पतिप्राणा के पत्नीत्व का शीलकमल अपना पूरा परिमल बिखेर रहा है । भवभूति की सीता सूर की राधा और जायसी की नागमती भारतीय वाङ्मय का कर्ण विरह प्लावित आदर्श और अत्यन्त विरहिणिया हैं । वारहमासा व्रणन द्वारा जायसी ने विरहिणी नागमती के चरित्र का अधिक उदात्त बनाने का सफल प्रयत्न किया है । नागमती क कण्ठ म उहनि अपना सम्पूर्ण हृदय दलित द्राशा की भाति नि शेष भाव स उडेल विरहगान किया है । उसका चरित्र विरह की अग्नि म तपकर स्वर्ण सदश कान्ति विकीर्ण कर रहा है । (ऐ ड लव इज नबलिएस्ट लून इम्बाल्ड इन टोयस) उसकी वियोग-दर्शा द्वारा पति के प्रति उसके-गूढ गम्भीर और महत् प्रेम की व्यञ्जना हुई है । प्रेम के अश्रुमय स्वरूप का नागमती के चरित्र द्वारा सुन्दर कायात्मक निरूपण हुआ है । कालिदास की शकुन्तला, भवभूति की सीता सूर की राधा और जायसी की नागमती सचमुच भारतीय वाङ्मय की सर्वश्रेष्ठ रूप और शीनयुक्त विरहिणिया हैं । सबदनशील नारी के रूप म नागमती पदमावती से भी अधिक सशक्त चरित्र है । उसम नारी हृदय की सारी दुबनताएँ सारा शक्तियाँ भरी हुई हैं । नारी का गुढ मानवीय रूप उसम ही प्रकट हुआ है ।

पदमावती का विमान आया, नागमती क हृदय म अय रस की निष्पत्ति हुई । वह सपत्नी की ज्वाला नहीं सह सकती, अत दूसरे मन्दि म उस उतार दिया जब नागमती की बारी पलुही तब पदमावती उस सहन न कर सकी और दोनों का वाद विवाद प्रारम्भ हो गया । रत्नतेज बहा इम लडाई (मेणो की लडाई-शुक्ल जी) का आनन्द लने लगा । इस स्थल पर भी ईर्ष्या की मात्रा सामान्य स अधिक बनी हुई हम नहीं पाते हैं जिसस उसकी विद्यम ईर्ष्यानु प्रकृति का अनुमान कर सकें । पति की हित-आमना ही उसकी ईर्ष्यावृत्ति है । रत्नमन के बन्दी होने पर उसने रोते हुए कहा था-

पदमिनि ठगिनि भई कित साया । जहि ते रतन परा पर हाया ॥

सत्य म हम इतना ही कह सकते हैं कि उसके हृदय म प्रियतम के प्रति अपार अनुराग है, क्योंकि उसका आभूषण और क्षमा उसका नित्य है विरहजय

थे उसके प्रतिकूल कहकर वह अपनी धाक जमा देता था ।

उसमें कृतघ्नता के भाव भी भरे हैं । देश से निकाले जाने ही उसकी प्रतिशोध की अह्वक्ति प्रदीप्त हो उठी । उसने बदला लेने का दण्ड सकल्प किया । पदिमनी ने अपने कर बगन से उसे सतुष्ट करने का असफल प्रयत्न किया । स्वामी रत्नसेन और उसकी पत्नी के प्रति बुरे भाव उसकी घोर नीचता एवं विवेकहीनता के परिचायक हैं । स्पष्ट है कि जिस राजा के यहाँ रहा उसी के प्रति उसके मन में अवृत्तज्ञता के भाव भरे हैं । उसने अनाउद्दीन के द्वारा चित्तौर को ध्वस्त करा देने का प्रयत्न किया । धन लोभ प्रतिकार वासना हिंसावृत्ति अह्व प्रवृत्ति और स्वामी के प्रति नीच विचारों से उत्पन्न होकर वह अलाउद्दीन के पास गया । उसे लज्जा भी नहीं आई । आखिर क्यों ? वह निलज्ज भी तो प्रयत्न शशी का था । अनाउद्दीन के साथ वह रत्नसेन के दग म भी जाता है । उसकी जघन्य नीच वृत्ति की प्राकाण्डता तब आती है जब वह किले के बाहर निकलने पर रत्नसेन को बंदी बनाने का इशारा करता है । सारांश यह कि वह अहंकार, कृतघ्नता पांडित्य वाममांगिता रोभ निलज्जता और हिंसा का जीवन्त विग्रह है । वह समाज के देशद्रोही एवं घम द्राही जग का प्रतिनिधित्व करता है ।

गौरा—बादल

इन तर शाहू का क रूप में क्षत्रिय वीरता का निमल जादश साकार हो उठा है । ये गवनाजा के रक्षण हैं अपूर्व स्वामिभक्ति गौरव और वीरता के जीवन्त विग्रह हैं । ये सब स्पष्टभाषी हैं । इनके व्यक्तिगत गुण दूरदर्शिता आत्मगम्मान का भाव स्वामिभक्ति आदि किसी भी दश के लिये गौरव की वस्तु हैं ।

इनकी दूरदर्शिता उस स्थान पर निश्चर आई है जिस समय इन्होंने अनाउद्दीन का गण म घूमते हुए देखकर छत्र का संकेत किया । इन्होंने राजा को तुरन्त सावधान रहने का संकेत किया था । राजा ने इनकी बात न मानी । अत आत्मगम्मान की रक्षा के लिए ये रुठ गए । मन्त्रणा देने के कर्तव्य स मुक्ति लेकर ये शस्त्र ग्रहण की बात जोहने लगे । रानी पदमावती रत्नसेन के कण्ट हो जाने पर पदम इनके घर पहुँची । वह बहून रोई । उसने राजा का छत्राने की प्रायना भी की । ये दोनों यजादधि बठार और कुसुमादधि कोमल थे । 'गौरा बान्धन दुवो पमीत्र । रोबत रहिर बूडि तन भीजे ॥ उनका द्रवित होना उनकी लोक रक्षणकारी वृत्ति का परिचायक है । उन्होंने क्षत्रियोचित प्रणिता की और पदमावती ने साधुवाद दिया—

‘तुम टारन भारह जग जान । तुम मु पुण्य जस करन वसान ॥

सचमुच गौरा-बान्धन ससार का भार उतारने वाले विपत्ति प्रस्तो का उद्धार करने वाले और अत्याय-अत्याचार का विरोध करने वाले गूर-वीर थे ।

एक ता बादल की छोटी आयु हमरे गीते में आई नवल बधू । कतय की उपस्थित भीषण बसौटी । जायसी ने इस भाविक प्रसंग को अत्यन्त प्रभावित और सुन्दर बनाकर उपस्थित किया है । स्नेहमयी मा न युद्ध की विभीषिका लिखाकर रोकना चाहा, पर उसे अपने शौर्य पर विश्वास था । उसने माता के आप्रह को अन्ततः अस्वीकार कर दिया । बादल ने नवागता बधू को सामने देखकर मुँह फेर लिया । यह उसके हृदय की कठोरता नहीं थी यह तो कतव्य की विवशता थी । मन्त्री न फँटा पकड़ लिया, किन्तु बादल ने उसे समझाया—

जो तुझ गवन आइ गज शायी । गवन मोर जहवा मार स्वामी ॥^१
 क्षात्र धर्म के कतव्य की कठोरता कितनी सुन्दर ममस्पर्शनी है ।

युद्ध कला में अदभुत वीरता दाना का व्यक्तिक गुण है । सौनह सौ पाल-कियो में राजपूता को भरकर दिल्ली ले जाना उनकी राजनीतिक चतुराई का नमूना है । बद्ध वीर गारा ने सहस्र साधियों के साथ बान्नाही फौज को नव नक रोक रखा, जब तक बान्ना के हृदय सौ साथी चित्तौड़ नहीं पहुँच गए । बान्ना लड़ते हुए वीरगति को प्राप्त हुआ । चारण ने तुरन्त धय धय कहा—

भाँट कहा 'धनि गोरा तू भा रावन राय ।

आनि समेटि बाधि क तुरग देत है पाव ॥

बादल भी रत्नसेन की मृत्यु के अनन्तर वित्तीर दुर्ग के फाटक पर मारा गया । इन दाना क्षत्रिय चारों के उज्ज्वल चरित्र विषयक प० रामचन्द्र गुप्त के ये शब्द उत्तरूप हैं अक्रान्ता की रक्षा से जा माधुम मारण व मध्ययुग के नाइटो की वीरता में दिखाई पड़ता था उसकी शक्ति के साथ ही साथ स्वामि भक्ति का अपूर्व गौरव इनकी वीरता में देखकर मन मुग्ध हो जाता है । जायसी की अतदृष्टि धय है जिसने भारत के इस लोक-रजनवागी क्षात्र-तेज को पहचाना ।^२

१—दृष्टव्य पदमावत का काव्य मौदय पृ० १८६-१८६ ।

२—प० रामचन्द्र गुप्त जा० पृ०, भूमिका प० १२८ ।

प्रकृति-चित्रण

प्रकृति का अर्थ और काव्य

व्यावहारिक रूप से तो जितनी मानवैतर सृष्टि है उसको ही प्रकृति कहा जाता है किन्तु दार्शनिक दृष्टि से हमारा शरीर और मन उसकी ज्ञानेन्द्रियाँ-मन बुद्धि चित अहंकार आदि सूक्ष्म तत्त्व प्रकृति के अंतर्भूत हैं। यह सारथ्य की प्रकृति सारी सृष्टि का कारण है। सांख्यवादियों ने जिसको प्रकृति कहा करीब-करीब उसको ही वेदांतियों ने माया कहा है। माया-तु प्रकृति विद्यात। भेद इतना ही है कि सांख्यवादी प्रकृति को सद मानते हैं और वेदांतवादी उसको स-असद स विनक्षण और अनिवचनीय मानते हैं। आस्तिक दर्शना में याप और बसपिक जीव प्रकृति और परमात्मा को तीन स्वतंत्र सत्ताएँ मानते हैं किन्तु सांख्य में बिना पुरुष के वह कुछ नहीं कर सकती है।¹

प्रकृति के महत्त्व उससे अहंकार और अहंकार से पौड्य पदार्थों का समूह उत्पन्न होता है। इन पौड्य पदार्थों में पचत-मात्राएँ भी हैं जो कि शास्त्र स्पष्ट रूप रस और गंध की मूल रूपाएँ हैं। वेदांतियों के अनुसार प्रकृति परमाद्यत असत् है। शंकर मन से वह माया रूप से अनिवचनीय है। विशिष्टान्त में वह अचित रूप से ब्रह्म का एव विनोपण है और इस मन से भी वह सत्य मानी गई है।

व्यावहारिक दृष्टिकोण से प्रकृति से हमारा अभिप्राय मनुष्यतर जगत से है जिसमें नदी पर्वत वन वद्यार आवास चन्द्र, ज्वाला, सूर्य रंग विरगी छत्राँ आदि सभी सम्मिलित हैं। प्रकृति या प्राकृति का अर्थ है स्वभाव या स्वाभाविक अतः प्रकृति के अनगन वही वस्तुएँ आती हैं जिन्हें मनुष्य के हाथ ने सवारा या मजाया

नहीं है और जो स्वयं ही अपनी नसर्गिक छत्रा में हम आकर्षित करती है। ईश्वर की कारीगरी को हम प्रकृति और मानव की कारीगरी को कला कहते हैं। सृष्टि के आदिकाल से ही मानव हृदय प्रकृति के अदृश परिधान परिवर्तित करने वाले और क्षण-क्षण नवीनता प्राप्त करने वाले रमणीय रूप-मौदय से अभिभूत — सिक्त और आप्पायित होना रहा है। जन्म से मृत्यु तक मानव प्रकृति के प्रागण में हाँसास लेता है। आरम्भ से प्रकृति अपनी ममतामयी ओढ़ में मानव को धारण करती और उसका पोषण करती है। पवन यजन करता है निरंतर अपन कल-कल स्वर से सगीत सुनाते है नक्षत्रगण उसके दुख-सुख के साक्षी हैं कलिया बिटक कर उसे परिमल देती हैं दुग्ध-घीत ज्योत्स्ना उसे सुधा-स्नात कराती है, सूर्य ज्योति विकीर्ण करता और उस ज्वलन देता है। प्रकृति की गाद में मानव सुख का अनुभव करता है। और साहचर्य — जय मोह का स्वाभाविक रूप से उसके हृदय में प्रादुर्भाव हो जाना है। इस प्रकार आलम्बन रूप से प्रकृति मानव को प्रभाविन करती और उसे आकर्षित करती है। प्राकृतिक दृश्य आलम्बन के भावों को उदीपन करने में सहायक होते हैं। प्रकृति प्रेमी महदय कवि प्रकृति में चेतना प्रतिस्पदन एवं मवेदन शालता के दर्शन करता है। इसी चेतना के अनुभव के फलस्वरूप आदि कवि को सौना विरह में पवत धनिया अश्रु बहाती हुई प्रतीत हुई था और इसी चेतना के अनुभव के कारण अग्रणी कवि बह सवध को प्रकृति में मानव से अधिक सबदनशालता प्राप्त हुई थी।

भारतवर्ष के प्राचिन कविया न प्रकृति के विराट सुन्दर और भयकर सभी रूपों का विनाद वणन किया है। उन्होंने प्रकृति देवी के वसुधुत प्रागण में स्वच्छन्द विहार किया था। उन्होंने प्रकृति देवी के प्रत्येक अंग का सूक्ष्म निराक्षण किया था। स्पष्ट हा उनका ज्ञान प्रत्यक्ष-अनुभव-जय था।

वदिक ऋचाओं में हम तत्कालीन मनीषा को उपा वदण आदि के समान ऋद्धावनत और इन्द्राणि के कोप के कारण विनत तथा भ्रमातविन पाते हैं। सचमुच भारतीय मनीषा को प्रकृति के मनोहर और मनोपम रूप से जितनी प्रेरणा मिली है हृदय को जितनी सौंदर्यानुभूति को उपनयन हृद् है और मस्तिष्क को जितना चिन्तन का विस्तार मिला है उतना मस्ति के किसी अय तत्व से नहा।

कालिदास, भयभूति आदि ने प्रकृति को यथ ही व्यापक रूप में गृहीत किया है।

हिंदा के आदि कालीन और भक्तियुगीन साहित्य में प्रकृति चित्रण को विशेष महत्त्व नहा दिया गया। चन्दवरदायी का प्रकृति-वणन प्राय परम्परा प्राप्त है। भक्ति काल की प्राकृति पर देवताओं का व्यक्तित्व भी आरापिन किया गया है। रीतिवचन में बह आलम्बन के स्थान पर उदीपन बनकर रह गईं।

जायसी भक्तियुग के एक ऐसे कवि हैं जिन्होंने प्रकृति का सूक्ष्म पयवेक्षण किया था। पदमावत में उन्होंने एक ओर संस्कृत साहित्य की रूढ़ित भारतीय परम्परा का अनवतन किया है दूसरी ओर अपभ्रंश भाषा और जनकठ की परम्परा से सीधे चले आते हुए लोकगीता लोक उपमाशा और लोकदृष्ट जीवन के तत्वा के माध्यम से प्रकृति चित्रण किया है। उन्होंने जनकठ से मुखरित होने वाले विरहा-गान वारह मासा, आदि के लोकगान पद्धति में समाहित प्रकृति-चित्रण-शली को भी गहीत करके पदमावत के काव्य-सौन्दर्य का सम्पन्न किया है।^१

जायसीकृत प्रकृति-वर्णन के विविध रूप

यद्यपि आलम्बन उद्दीपन और अलवरण रूपा के ही अन्तगत प्रकृति-चित्रण के रूप बहिर्मुख को समटा जा सकता है, किंतु यहाँ हम जायसी द्वारा किए गए प्रकृति-चित्रण को अध्ययन की सुविधा से लिए निम्नलिखित विभागों के अन्तगत रख सकते हैं —

- (१) उपमान रूप में किया गया प्रकृति चित्रण (अलवरण रूप)।
- (२) वातावरण की निर्मिति (सघटना-वर्णन के रूप)।
- (३) आत्मात्मिक अभिव्यक्ति और ईश्वरीय ब्रह्म के स्पष्टीकरण के रूप में किया गया प्रकृति चित्रण।
- (४) उपदेश और नीति के रूप में किया गया प्रकृति-चित्रण।
- (५) मानवीय हृष-विषादादि की अभिव्यक्ति के लिए किया गया प्रकृति-वर्णन।
- (६) उद्दीपन रूप और विप्रलम्भ शरारत।

(१) उपमानों के रूप में किया गया प्रकृति-चित्रण

अपनी भावाव्यक्ति के चरमोत्थय के लिए प्रायः कवि प्रकृति के उपादानों को अलवार रूप में ग्रहण करते हैं। ऐसा करने के प्रकृति ग्रहीत उपमानों के माध्यम से सौंदर्य को अधिक तीव्र गान् मात्मिक और प्रभविष्णु अभिव्यक्ति देने में समर्थ हुए हैं। कवि उपमा उत्प्रेक्षा रूपकादि के द्वारा अपने प्रतिपाद्य विषय में सौन्दर्य लाने के लिए सारी सृष्टि को छान छानता है। वह चंद्रिका चंचित चंद्रमा में मुदर मुख का-मा मुधा-स्तात शीय-भावन्त्व भाव पाता है मग शावक के सुदीध नेत्रों में मुग्ध-सारत्य का अनुभव करता है मन्मस्त कुजर की मथर गति में प्रियतमा की गति का प्रत्यक्षीकरण करता है, सावन की वज्ररती घन घटा में घु घराली बेश राशि को आलुलधित देखता है। इस प्रकार उपमानों की सहायता से जब प्रकृति में

चंचल सौंदर्य का जीवन्त और स्पन्दनशील आरोप किया जाता है। प्रकृति क्षण से गहीन उपमानों व सहारे जब जायसी सौंदर्य का तीव्र और गाढ़ व्यंजना करने लगते हैं तब उनमें प्रायः तीन प्रकार के उपमान परिलक्षित होते हैं।

(अ) परम्परा-प्रचलित रूढ़िबद्ध उपमान,

(ब) लोक-गहीन उपमान

(स) मौलिक उपमान।

लोक-गहीन एवं मौलिक उपमानों के निदर्शन के लिए निम्नलिखित दाहा पर्याप्त होगा। विरह में सूखते और विहरते हुए हृदय का उपमान सरावर—

सखर हिया घटत नित जाइ । टूक-टूक हूँ विहराई ॥

विहग्न हिया करहु पिउ टका । दीठि दखरा भग्वहु एका ॥^१

इन पंक्तियों में विरह विदीण नागमती के हृदय की उपमा सूखते हुए सरोवर से दा गई है। स्पष्ट ही यहाँ ये जीवन चित्रों की अवतारणा की गई है (१) पानी सूखने के साथ ही साथ तनाव की मिटटी का फटते जाना, (२) प्रथम वर्षा होने पर इन दरारों का मिट्ट कर एक हो जाना या समाप्त हो जाना। ग्राम्य जीवन के सूक्ष्म पारस्वी जायसी न विहरता हुआ सरवर हिया और 'दखरा' को बड़े निकट से देखा था। प्रियतम के स्नेहाभाव की व्यथा में नागमती का हृदय उमी प्रकार विहरता जा रहा है जिस प्रकार पानी के अभाव में सरोवर का हृदय। ये दरारें रत्नमन की कृपादृष्टि (वर्षा) की बाट जोह रही हैं। इन मौलिक उपमानों से काव्य-सौंदर्य बढाने तो होता ही है साथ ही कवि का सूक्ष्म लोक ग्राहिणी दृष्टि के भी स्पष्ट दर्शन होते हैं। इन उपमाओं की प्रभविष्णुता, हृदय-स्पर्शिता आदि भी द्रष्टव्य है। इसी प्रकार—

'तोर जोवन जस समुद हिलारा । दखि-देखि जिय बूड मोरा ॥

में उमरत जीवन के लिए कल्लाल भरे सागर के उपमान का विधान किया गया है जो पाठकों के समक्ष एक व्यापक और जीवन्त रसमय चित्र प्रस्तुत कर देता है।

परम्परा-प्रचलित और रूढ़िबद्ध उपमान

जायसी ने संस्कृत अथवा शास्त्री एवं फारसी साहित्य में प्रयुक्त उपमानों के माध्यम से प्रकृति का चित्रण किया है। अध्ययन की सुविधा के लिए इस उपमान रूप का तीन प्रमुख उप विभागों में अन्तर्गत रखा जा सकता है—

(क) नखशिल-वर्णन के उपमान,

(ख) मानवा भावनाओं के वर्णन में प्रयुक्त उपमान और

(१) अय वस्तुओ एव कार्यों के उपमान ।

(क्ष) नखशिख-वणन मे प्रकृति के उपमान

रूप-सौंदर्य का वणन करते हुए पदुमावती के तौकिक और अतौकिक आयाया की गाठ सौंदर्याभिव्यक्ति के लिए प्रकृति के उपमानों द्वारा अपनी सम्यक् तूतिका से मार्मिकता और सरसता से सवलित कायात्मकता का ही चरम उत्कृष्ट प्रदर्शित किया है । (नखशिख वणन के उपमानों का सविस्तर अध्ययन अप्रस्तुत विधान के अंतर्गत किया गया है^१) । यहां पर तीनों प्रकार के उपमान रूपों के सक्षिप्त विवेचन पर्याप्त हागे—

सहस्र किरिन जो सुरज दिपाई । देखि लिलार सोउ छिपि जाई ।^१

कचन रेख कसौटी कसी । जनु घन मह दामिनि परगसी ॥^१

फूल दुपहरी जानों राता । फूल झरहि ज्यो-ज्यो कहवाता ।

(त्र) मानवी भावनाओं के वणन मे प्रयुक्त उपमान

प्रकृति क्षेत्र से गहोत मानवीय भावा की अभिव्यक्ति के लिए प्रयुक्त उपमानों न वणन को अत्यंत मार्मिक और सजीव बना दिया है जैसे—

काह हसी तुम मोसों किएउ और सो नेह ।

तुम मुख चमक बीजुरी भाहि मुख बरस मेह ॥^१

रत्नसेन सिंह से लौट आया है । पदमावती की प्राप्ति के कारण उसके हृदय की कोई सीमा ही नहीं है बचारी नागमती के लिए ता अश्रु-प्लावित विरह के दिन ही देखने पड़ रहे हैं । रत्नसेन के हृत्पातिरेक पर ही उसने यह कहा है । रत्नसेन के मुख में विद्युत् कौंध रही है और नागमती के नयनों में मेघ की झड़ो लगी है । 'विजयी का चमकना और मह का बरसना के द्वारा व्ययक्ति अत्यंत मार्मिक हो गई है—

कवन जो बिगसा मानसर दिनु जन गएउ मुखाय ।

कवहु बनि पुनि पनुहै जो पिउ साच आइ ॥^१

नागमती के विरहगत का यह प्रख्यात दोहा नागमती की व्यथा को अधिक जीवत

१—अर्थात् इसी प्रबंध में 'अप्रस्तुत विधान' ।

२—जा० प्र० (ना० प्र० सभा काशी) पृ० ४२ ।

३—वही पृ० ४१ ।

४—वही पृ० ८३ ।

५—वही पृ० २१७ ।

६—वही पृ० १७८

रूप में प्रस्तुत करता है। इस जीवन्तता के मूल में कमल मानसर, जल के उपमाना के साथ ही प्रकृति का प्रस्तुत सजीव चित्र भी है।

आजु सूर दिन अथवा आजु रनि ससि बूट ।

आजु नाचि जिउ दीजिये आजु आगि हम्ह जूड ॥^१

इन पक्तियाँ म पदमावती-नागमती के सती होने के समय की भावनाओं भी प्रकृति के ही माध्यम से अभिव्यक्त हुई हैं। सूर्य चन्द्र दिन और रात मानवीय हृदय विपाटन की अभिव्यक्ति के लिए प्रयुक्त हुए हैं (सूर-स रत्नसेन का तात्पर्य है)।

यह जायसी की एक बहुत बड़ी विपाटन है कि उन्होंने अपनी कविता में प्रायः मानवी सुख दुःखा का वर्णन प्रकृति के उपमानों के माध्यम से किया है।

(ज) अथ वस्तुओं और कार्यों के प्रकृतिकक्षेत्र से गृहीत उपमान

इस प्रकार के उपमान भी पदमावत में मिल जाते हैं—

खड्ग बीजु चमक चहु ओरा । बु दवान बरसहि घनघोरा ।^२

ओनइ घटा चहु दिसि आई । छूटाह वान मघ वरि नाई ॥^३

यहाँ पर प्रथम पक्ति में खड्ग-बीजु और बु दवान का मोक्ष्य दर्शनीय है। द्वितीय पक्ति में वाणा के लिए उपमान 'मघ की शडी और लगानार वाण छूनन का उपमान मघ की शडी लगना है।

(२) वातावरण की विनिर्मित और घटना वर्णन के लिये किया प्रकृतिक वर्णन—

आलवन रूप में प्रकृति कवि के लिये साधन न बनकर साध्य बन जाती है। कवि प्रकृति का सूक्ष्म निरीक्षण करता है उसका सूक्ष्मतम तत्त्वा के प्रति आकृष्ट होता है और प्रत्येक वस्तु को एकत्र करके सशिखर वर्णन करता है। उमना प्रकृति चित्रण प्रत्यक्ष दर्शन का आनन्द प्रदान करने वाला होता है। सस्कृत के वाल्मीकि कालिदास भवभूति आदि कवियों ने प्रकृति का आलवन रूप का वर्णन प्रचुर मात्रा में किया है। तुलसीदास ने प्रकृति का आलवन रूप में चित्रण किया है किन्तु वह चित्रण भी राम माहात्म्य में आन प्रोत है प्रकृति वर्णन गौण हो जाता है—

सब दिन चित्रकूट नीकी लागत ।

वर्षा श्रुत प्रवश विपगिरि देखत मन अनुरागत ॥ ५२५ ॥

चहु निसि बन सपन्न बिहग मृग बोलत सोमा पावन ।

१—जा० प्र० (ना० प्र० सभा काशी) प० २६६ ।

२—वही, प० १२२ ।

३—वही (गोरा-बान्धन युद्ध मंड) पृ० २६६ ।

जनु सुनरेश देश पुर प्रमुदित प्रजा सकल सुख छावत ॥^१ इत्यादि

जायसी ने अनेक स्थला पर प्रकृति के चित्रा का सुद्ध प्रकृति वणन के रूप में भी चित्रण किया है। वे जब वातावरण विनिर्मित के लिए प्रकृति चित्रण करने गते हैं तब ग्रामीण उन्मुक्त दृश्या के रूप में प्रकृति का आलबनगन रूप ही प्रमुख हो उठता है। सिंहल द्वीप के प्राकृतिक सौंदर्य का वणन सिंहल के वभव चित्रण की पृष्ठभूमि के रूप में किया गया है। चतुर्दिक सघन अमराई सुहावन मलय पवन उस छाया में भी जाड़ा लगना हरा हरा आकाश आम खिरनी जामुन महुआ आदि के द्वारा वभवमय वातावरण का निर्माण किया गया है। ये सभी प्रकृति के शालीन रूप की शक्ती प्रस्तुत करते हैं—

घन अवरराज लाग चहु पासा । उठा भूमि हुत लागि अकासा ॥

तरिवर सत्र मनयगिरि नाए । भ जग छाह रनि हाइ छाए ॥

मलय समीर सोहावन छाहा । जठ जाड नाग तेहि भाहा ॥

ओही छाह रनि होइ आवै । हरियर सत्र अकास खिाव ॥

दयिक जौ पहुच सहि घामू । दु ख विमर मुख होइ बिसरामू ॥^२

अमराई का वणन करते हुए कवि ने फना का भी सविनष्ट वणन किया है—

फरे आव अनि सघन सोहाण । ओ जस फरे अदिक शिर नाण ॥

कटहर डार पीड सनि पावे । बडहर सो अनूप अति ताके ॥

खिरनी पानि खाअ अस माठी । जामुन पानि भवर अस डीठी ॥

पुनि महुआ चुअ अदिक मिठामू । मधु जस मीठ पहुप जस वामू ॥^३

इन पक्तियों में फना की मधुरता स्वाद स्वरूप रस औषध गंध के अनरूप ही उनके खाड भवर मधु और पुष्प आदि उपमान दिए गए हैं। वक्षो और फलो का वणन करने के अनंतर कवि ने पानियों की भी एक सजीव और सोद्दश्य सूची दी है —

बसहि पालि बोरहि बहुभाखा । करहि हुनास देखि क साखा ॥

भोर होत बोरहि चुहचुही । बालहि पाडव एक तूही ॥

पीव पीव कर नाग पहीहा । तुही तही कर गडुरी जीहा ॥

कुह कुह कर कोइन राम्ना । ओ भिंगराज बाल बहु भाखा ॥

दही दही कर महारि पुकारा । हारिन बिनव आपन वारा ॥

१—तुलसीदास गीतावली अष्टाध्यायाड ५० ।

२—पदमावन (सिंहलद्वीप वणन-अण्ड) दाहा २।२-६ ।

३—जायसी प्रथावती (ना० प्र० सभा काशी) पृ० ११ ।

जावत पक्षी जगत के, भरि बठ अमराउ ।

आपनि आपनि भाखा लहि दई कर नाउ ॥^१

सगभग एक दजन दी गई और जावत पक्षी जगत के द्वारा इ गित की गई पगिया की इस सूची से जायसी का वक्तव्य दतना ही है कि सभी पक्षी उस परम सत्ता की ओर उन्मुख हैं। कोई पक्षी एक तूही कह रहा है ता कोई पीव-पीव इसी प्रकार दही-दही 'कह-कुहू श' भी पूणन सोदय्य प्रयुक्त हैं।

पना और फूनों की भी जायसी ने सूचिया दी हैं। शुक्न जी ने इन सूचियों के विषय म लिखा है सूची मात्र देने का काम तो कोई बहेनिया भी कर सकता है।^२ शुक्नजी का यह कथन पर्याप्त अशा म ठीक है, किंतु कई दृष्टियों से इन सूचिया का बडा महत्व है—

(१) हमारे साहित्य म इस प्रकार की परिमणन शैली सस्त्रुन अपभ्रंश और हिन्दी के प्राचीन कान म स्त्रि धन गई थी। फना व ना घोडो आदि का सविस्तार वणन अनेक काव्यों म मिलता है। मत्ताना प म य सखिष्ट और सागोपाग वणन आवश्यक माने गए हैं।

(२) इन सूचिया द्वारा आनवनगत गुण प्रकृति वणन किया गया है। सादृश्यन परोप सत्ता की आर पीव-पीव एक तूना प्रभति श' द्वारा इ गित भी किया गया है।

(३) ये सूचिया विशय वनानिनता के साथ नहीं दी गई हैं^३ बात समय म नहीं आती कि विगप वनानिकता का क्या अय है। भल ही इस सूची के विषय म कुछ कहा जाय पर इतना मर्य है कि इनम कायात्मक सरसता विद्यमान है। यनलिया और जायसी की सूचिया म काय-रुष्टि का अनर सता रहेगा। बहेनिया हारिन महरि कोइन आदि की परिमणना करा क विरक्त हो जायगा किन्तु श्लेष के आचाय और ममासोक्ति के प्रवाण पडित जायसी हारिन, महरि कोइलि और उनकी बोलियों के द्वारा चमत्कार एव परम सत्ता की ओर सकेन भी बरते बनते हैं। (दह-दही-ग्य हुई-ग्य हुई ह प्रियतम में तुम्हारे विरह में जली-जली कुहू कुहू—यहा-बहा-ह प्रियतम तुम वहाँ हो? या मैं कहा हू?) के वणन जायसी की भाषा के सामर्थ्य क भी दातक है।

फूने हुए श्वेत कुमुदा मे अलकृत तान और तानाव ग्राम्य-श्री और ग्राम्य जीवन के जीवन और बभदवत अनुपम चित्र हैं। इनम ग्राम्य शाभा मुखरित होती

१-जायसी प्रयावनी (ना० प्र० समा काशी) पृ० ११।

२-प० रामचंद्र शुक्न चिन्तामणि भाग २ (१९४५)।^१

३-ग० कमनबुन श्रेष्ठ मलिक मुहम्मद तापसी (१) पृ० ७१।

है। जायसी ने उप्रक्षा अलकार व माध्यम से छिछली तलया और तालाबो मे प्रफुल्ल कुमुदों के सौंदर्य को अधिक प्रभविष्ण बना दिया है। मेघो का उतरना, पानी लेकर चन्ना और विद्युत की कौंध की सजीव प्रक्रियाए भी द्रष्टव्य हैं—

‘ ताल तलात्र वरनि नहि जाही । सूझ बार पार किछ नाही ॥

फूले कुमुद सेत उजियारे । मानहु उए गगन मह तारे ।

उतराहि मध चढ़ाहि लेइ पानी । चमकहि मच्छवीजु क बानी ॥’

उपयुक्त उद्धरण जायसी की सूची और आचाय शुक्ल कवित वहेलिए की सूची में पाषण्ड्य लिखलाने के निमित्त पर्याप्त हागे। इन उद्धरणो मे शन्य उपमा उप्रक्षा परिकरांकर आदि अलकारो और समासोक्ति शैली के द्वारा महाकवि ने काव्योपयुक्त रसमयता का आनयन किया है। जायसी की दृष्टि मे कविलाम का स्वप्निल ऐश्वर्यमय वातावरण झूल रहा था—

जबहि दीप नियरावा जाई । जनु कविलास नियर भा आई ॥’

जायसी ने अथ कई स्थला पर भी आलवनगत प्रकृति चित्रण किया है। इन सभी स्थलों पर उनका प्रकृति चित्रण बाव्यात्मक है।

(४) आध्यात्मिक अभिव्यक्ति और ईश्वरीय बभब के स्पष्टीकरण के लिए किया गया प्रकृति चित्रण—

रहस्यवादी प्रकृति मे परम तत्व के दर्शन करता है। और इस प्रकार प्रकृति विश्वात्मा के दर्शन का माध्यम बन जाती है। माययुगीन हिन्दी साहित्य में कबीर और जायसी मे यह सधवात् मूलक भावना भिन्ननी है कबीर ने अमर तत्व को अंतर में व्याप्त और फल भर की तालास मे मिलने वाला बताया है। ब्रह्मवाद की भावना से अभिभूत कबीर ने निखिल विश्व मे उसी परम सत्ता के दर्शन किए हैं ‘ लाला मेरे लाल की जित देखो तित लाल के अनुमार सम्पूर्ण जगत उसी शक्ति से अनुरजित प्रतीत होना है। जहा तक दृष्टि जाती है कबीर को उसी परम सत्ता का ही सौम्य दृष्टिगोचर होना है।

जायसी के लिए भी आत्मा और परमात्मा की एकता एक अनुभूत सत्य है। परमात्मा प्राण रूप मे हृदय मे ही व्याप्त है। आश्चर्य की बात है कि भेंट नही होती। जायसी भेंटन के लिए विवकल हैं—

पिय हिरण्य मह भेंट न होई । कोरे मिताव कहीं कहि रोई ॥’

व केवल हृदय मे ही नही उग अलड ज्योनि के सब लोको मे भी दर्शन करते हैं—

१-जा० प्र० (ना० प्र० सभा वाशी) पृ० १३ ।

२-जा० प्र० (ना० प्र० सभा, वाशी) ।

बहुत जोति जोति ओहि भई

रवि ससि नखत दिष ओहि जोती । रतन पदारथ मानिक मोती ॥

मध्य युगीन सूफी प्रम-काव्या म एकेश्वरवाद का ही स्वर प्रधान है। ये विचार और भावना प्रवण मनीषी प्रकृति की विभूतियों म सत्ता और नियामक की भावना को सर्वोपरि मानते हैं। जायसी ने भी विश्व के मूल उस आदि एक करतार की वदना की है—

सुमिरौ आदि एक करतारु । जेहि जिउ दी ह कोह ससारु ॥

कीहेसि अग्नि पवन जल छहा । कीहसि बहुत रग उरेहा ॥

कीहसि धरती सरग पतारु । कीहेसि बरन बरन औतारु ॥^१

जायसी ने इस प्रकार की ईश्वर स्तुति का विधान पन्मावत अखरावट, आखिरी कनाम कहारानामा चित्ररेखा और मसला (अब तक प्राप्त) नामक ग्रंथों के प्रारम्भ म किया है। सृष्टि को उसी करतार न किया है। सृष्टि और प्रकृति के विविध उपादान प्रकाश तारे सूर्य चन्द्र धरती पवन मेघ, धूप, छाह आदि इस स्तुति के माध्यम हैं। जायसी के पूर्ववर्ती मुल्ला दाऊ ने चणायन के प्रकार का प्रारम्भ म भी इसी प्रकार का स्तुति विधान किया है—

पहले गाऊ सिरजनहारु । जिन सिरज्या यह दिवस बपारु ॥

सिरजसि धरती औ आकासु । सिरजसि महुमदर कविनासु ॥^२

इत्यादि ।

नूर मुहम्मद^३ ने भी इसी प्रकार की स्तुति द्वारा सिरजनहार का वदना की है—

“धय आपु जग सिरजनहारा । जिन विनुखम्भ अवास सवारा ॥

गगन की सोभा कीह सितारा । धरती सोभा मनुस सवारा ॥”

प्राय सभी सूफी कविया ने इस प्रकार की वदना का विधान किया है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि प्रकृति के मूलभूत तत्वा और विभूतिया के माध्यम, से एकेश्वरवाद का संदेश निर्रेश प्राय सूफी प्रमाख्यात्मक परम्परा के सभी कवियों के काव्य-मौख्य का एक बशिष्य है ।

प्राय सूफी प्रमाख्याना म प्रमति के माध्यम स (१) आध्यात्मिकता और (२) प्रम की अभिव्यञ्जना — दोनों का स्पष्ट और अभिभाज्य रूप प्रस्तुत किया गया है। जायसी ने सिद्धान्तीय का वणन करते हुए प्रकृति के अत्यन्त विलसित और

१—जा० घ० (ना०प्र० सभा, काशी), पृ० १ ।

२—मुल्ला दाऊद चदायन । (डा० परमेश्वरी लाल गुप्त)हि० प्र० रत्नाकर बम्बई ।

३—नूर मुहम्मद इद्रावती स्तुति खड दाहा १२ ।

सुन्दर वातावरण द्वारा आध्यात्मिक शांति और परम आनन्द की ओर इंगित किया है उस द्वीप के निकट पहुंचने पर ऐसा लगता है मानो स्वर्ग निकट आ गया है। उसके चारों ओर सघन अमराई है —

‘पथिक जो पहुँचे सहिक घामू । दुख बिसर सुख होइ बिसराम ॥

जेइ वह पाई छाह अनूग । फिरि नहिं आ२ सहे यह धूग ॥’

प्रस्तुत उद्धरण से यह अभीष्ट है कि जायसी ने ऐसे अनेक स्थानों पर प्रकृति की निमीम यापकता सघनता विरतनता परम आनन्दत्व और स्वर्गीय रमणीयत्व की भी कल्पना को सजीव रूप में उपस्थित किया है।

मानसरोवर वगैरे में भी उन्होंने लौकिक वातावरण के साथ अनौकिक वातावरण प्रस्तुत करने हुए परमसत्ता के सौन्दर्य की अभिव्यक्ति का प्रयत्न किया है—

देखि रूप सरवर क गइ पियास औ भूख

जौ मरजिया हाइ तह सो पाव यह रूप । १

जौ मरजिया होइ तह सा पाव यह सीप । १

जायसी ने प्रकृति के उत्कंसित और नियाशील रूप के भी चित्रण किये हैं। पक्षियों की बोती पीउ पीउ कहू-कहू दती रही शब्द श्लेषात्मक और मोक्षप्रद हैं। सभी पक्षी अपनी-अपनी भाषा में दई का नाम लेते हैं — इस प्रकार समग्र प्रकृति प्रेम तत्व के माध्यम से ईश्वर की ओर प्रमोमुख है।

जायसी ने बिम्ब प्रतिबिम्ब भाव द्वारा भी प्रकृति वर्णन किया है। राजा सुबा-सवाद खण्ड में प्रकृति मानवी प्रम-विरह के प्रतिबिम्ब रूप में आध्यात्मिक प्रम की पृष्ठभूमि बन जाती है। प्रायः सभी सूफी कवियों ने सत्कार के सौन्दर्य को प्रिय के प्रतिभासिक सौन्दर्य के रूप में देखा है। अतः इनकी साधना में लौकिक भी अलौकिक हो गया है। इसी प्रकार दृश्य प्रकृति भी अनौकिक तत्व का ही प्रतिबिम्ब है और वह भी उसी की ओर उमुख है।

जायसी पदमावती के रूप में अनौकिकता का अनभव करते हुए उसके सौन्दर्य के प्रभाव में अत्यधिक तीव्रता लाना चाहते हैं। उन्होंने सम्पूर्ण प्रकृति का उसी के सौन्दर्य से अनुरञ्जित बताया है—

हसन दसन अस चमके पाहन उठे झरकिव ।

दारिउ सरि जा न क सवा पाटेउ हिया दरकिन ॥

१-जा० प्र० ना० प्र० सभा काशी पृ० १२ (१३।५।७) ।

२-वही पृ० १२ (दोहा ७) ।

३-वही, पृ० १३ (दोहा ६) ।

४-जा० प्र० (ना० प्र० सभा काशी) पृ० ४४ (दोहा ६) ।

यहा पर पदमावती की दान प्रभा स पत्थर के हीरा होने का वणन है ।
 बेनी छोरि झार जौ वारा । सरग पतार होइ उजियारा ॥^१
 गगन नखत जौ जाहि नगन । व सख वान आहि व हुने ॥
 घरती वान बोधि सब राखी । साखी ठान देहि सब साखी ॥^२

' इन पक्तियां में स्पष्ट ही पदमावती व कश्च और बरुनी व विश्व व्यापी प्रभाव में आध्यात्मिक शक्त मिलत हैं । प्रमोदासक तापसी व प्रियतम प्रकृति में प्राप्त हैं । इन्होंने समस्त चराचर प्रकृति में उसी का याप्ति का अनुभव किया है । अलवार और उद्दीपन रूप में भी प्रवानता आध्यात्मिक पक्ष की ही है । उन्होंने अपने प्रेमास्पद का प्रतिबिम्ब समस्त प्रकृति में देखा । इन्होंने प्रियतम को अपने दृश्य में तो याप्त पाया ही साथ ही प्रमाधिक्य और प्रेम की अनपेक्षा व कारण उसको समस्त जड और चेतन प्रकृति में भी याप्त देखा है । '

उपदेश और नीति के माध्यम के रूप में प्रकृति-चित्रण

मानव ने प्रकृति के काय कलाप को जनक रूपा में जादश मानकर शक्ति ज्ञान और सात्वता प्राप्त की है । प्रकृति के नियम अत्यंत स्थिर शुभ और उत्तम हैं । मानव अपने जीवन के नीति नियम आदि की अस्थिरता की स्थिति में प्रकृति से प्रेरणा और विचार ग्रहण करता रहा है । पवन चारित्रिक दत्ता के पवन जन वरत सवा वक्ति का सरिता और वक्ष परापकार मुक्तदान और समदृष्टि के आदेश उपस्थित करते हैं ।

श्रीमदभागवत में प्रकृति को नीति और उपदेश के माध्यम के रूप में गृहीत किया गया है । उसी से प्रभावित होकर तुलसीदास जी ने रामचरितमानस के किष्किधावाण्ड में नीति और उपदेश के लिए प्रकृति को गृहीत किया है ।^१

नीति और उपदेश की प्रधानता होने व कारण प्रकृति का स्थान गौण हो जाता है ।

सिंहल के पत्नी ईश्वर के नाम-स्मरण का उपदेश व्यञ्जित कर रहे हैं-

पीव-पाव कर लाग पपाहा । तुही तुही कर गडुरी जीहा ॥

महा पर प्रकृति उपदेशात् व रूप में व्यञ्जित है ।

१-वही पृ० ४३ (६-४-७) ।

२-वही पृ० ४३, (६।६) ।

३-डा० विरणकुमारी गुप्ता हिन्दी वाक्य में प्रकृति चित्रण पृ० ११५ ।

४-श्रीमदभागवत - स्कन्ध १० अध्याय २० (श्लोक १५-१६-१७-३३) और रामचरितमानस, किष्किधावाण्ड वाहा १६ १७ ।

कही कही दण्डांत के रूप में जायसी ने प्रकृति द्वारा उपदेश की अभिव्यक्ति भी की है—

मुहमद बाजी पैम क ज्यो भाव ल्यो खेल ।

तिल फूलहि के सग ज्यो होय फुलायल तेल ॥

नीति और उपदेश के रूप में लिए गए प्रकृति वर्णन का काव्य सौंदर्य-वर्द्धन की दृष्टि से विशेष महत्व नहीं है। ऐसे वर्णनों में कवि का उपदेशक रूप मुखर हो उठता है और कथा प्रवाह में शकित्य आ जाता है।

(५) मानवीय हृष विपाद की अभिव्यञ्जना के रूप में किया गया प्रकृति चित्रण (मानवीकरण से संबद्ध प्रकृति चित्रण)।

कवि का प्रकृति प्रेम प्रकृति सुंदरी के त्रिया कलाप तक ही सीमित नहीं रहता अपितु उसकी वह अनुराग विराग क्षोभ हृष विपाद आदि के भावों से पूर्ण देखता है। प्रकृति पर चेतन व्यक्तित्व का आरोप ही मानवीकरण (परसानिफिकेशन) है। कालिदास ने मेघ को दीत्यकर्म सौंपते हुए मेघ पर चेतन व्यक्तित्व का आरोप किया है। आत्मीय कवि वाल्मीकि ने रे रे वक्षा पवतस्था गिरि गहनलता वायुना बीज्यमाना और 'सीनेव शोफसतप्ला मही वाणवमुचि के द्वारा प्रकृति पर चेतना का आरोप किया है।^१

पल्लमावत में हृष विपादादि के भाव प्रभाव प्रकृति पर भी दिखाए गए हैं। ऐसे स्थलों की मुख्यतः दो विवेचनीय हैं—

(१) सुख दुःख के प्रभाव स्वरूप प्रकृति को सचेतनशील रूप में चित्रित किया गया है और

(२) मानव मनोभावा की अभिव्यक्ति की गयी है।

जायसी ने प्रकृति को विरह-व्यथिता नागमती के विरह-दुःख से अनुत्पन्न रूप में चित्रित किया है—

तेहि दुख भए परास निपाते । लोहू बूझि उठे हाइ राते ॥

रात विम्व भीजि तेहि नोहू । पखर पाव फाट हिय गोहू ॥^२

नागमती की विरह-व्यथा से प्रकृति के अचेतन पन्थ भी अत्यंत दुःखी हैं। पनाश-वृक्ष गूथ होकर श्री हीन हो गया है। सरोवर तब का हृदय टुकड़े-टुकड़े हो गया है।

सखर हिया घटत नित जाई । टूक टूक हव क विहराई ॥^३

१-वाल्मीकि रामायण किष्किधावाण (सग २८।७) ।

२-जा० प्र० (ना० प्र० समा वाशी) प० १५८ (दोहा १६।५-६) ।

३-वही, प० १५६ ।

'मानसरोदक खण्ड' में पदमावती का अप्रतिम रूप से मानसरोवर तरंगित हो रहा है -

सरवर रूप विमोहा हिए हिलोरहि लइ ॥

पाव छुव मकु पावौ एहि मित लहरहि देइ ॥'

पदमावती के खोपा' छोड़ने जोर केश मकुलाने पर विश्व तिमिराच्छन्न हो उठता है, और -

'चकई विछुरि पुकार कहा मिलो हो नाह ।

एक चा' निसि सखा मह दिन दूसर जल माह ॥'

कवि समय सिद्ध प्रसिद्ध है कि रात्रि में चन्द्रवाक-गुग्म एक दूसरे से बिछुड़ जाते हैं और वे दिन में साथ रहते हैं। जायसी ने इसी प्रसिद्ध कवि-समय का आधार पर उपयुक्त दोहा लिखा है। चन्द्रवाक के दिन के मिलन और रात्रि विधेय के वाले कवि-समय की प्रसिद्धि प्रायः प्राचीन भारतीय (और हिन्दी के भी) कवियों की कठहार रही है -

चकवी विछुटी रणि की आइ मिनी परभाति

जे जन विछुटे राम सू, ते दिन मिले न राति ॥'

' राति जु सारस कुर लिया गुजि भरे मय ताल ।

जिणकी जोडी बीछिडी तिणका कवण हवाल ॥'

प्रकृति में मानवीकरण की भावना हम आदि कवि वाल्मीकि के ही वाच्य में प्राप्त होती है। कविया ने प्रकृति से तादात्म्य का स्थापन करते हुए उसमें प्रतिस्पर्धन का आभास पाया है और उस मानव भावनाओं का समझन में समय समझा है। जायसी ने प्रकृति में सबदनशीलता का तो अनुभव किया ही है इसका अतिरिक्त जगत् मानव क्रिया-कलापों से भी प्रकृति को पूर्ण पाया है।

नवल सिंगार वनस्पति कीन । सीस परासहि सेंदुर दीहा ॥'

वसन्त ऋतु में प्रकृति ने अभिनव श्रृंगार किया है और पनाश ने माग में सेंदुर दिया है। प्रकृति को कवि ने एक श्रृंगार - मण्डन सीमाश्रयती नारी के रूप में चित्रित किया है।

१-जा० प्र० (ना० प्र० सभा काशी) प० २४ (दोहा ४)

२-वही प० २४ (दोहा ५) ।

३-कवीर प्रयावली (ना० प्र० सभा काशी) प० ३।३ ।

४-दोना मारुरा दूहा (ना० प्र० सभा, काशी) ।

५-जायसी प्रयावली ना० प्र० सभा, काशी ।

(६) उद्दीपन रूप और विप्रलभ शृंगार

उद्दीपन रूप में प्रकृति का शृंगार के संयोग और वियोग दोनों में वर्णित किया गया है। उद्दीपन विभाव का शास्त्रीय स्वरूप यही है कि संयोगावस्था में प्रकृति का विलास मुख सवद्धक और वियोगावस्था में विपादप्रद है। संयोग में मलय पवन चन्द्रिका चञ्चितयामिनी मजरित अमराई आदि पारस्परिक आकषण को बताते हैं किन्तु वियोग में प्रकृति के ये समस्त आकषण विरही जनो को दग्ध कारक प्रतीत होते हैं। वियोग तीन प्रकार का माना गया है—मानजय प्रवासजय और मत्युजय। प्रिय की मृत्यु पर करुण रस का आविर्भाव होता है। मान क्षणिक होता है अतः उसमें अपेक्षाहीन तीव्रता की कमी होती है। वस्तुतः प्रवासजय वियोग ही पूर्ण और प्रभावशाली होता है। विरह की दस अवस्थायें मानी गई हैं अभिवापा विना, स्मृति गुण कथन उन्मत्त उन्मत्त यात्रि जडता और भरण। प्रकृति का उद्दीपक वर्णन भी प्रायः दो रूपों में मिलता है। प्रथम के अंतर्गत वह वर्णन आता है जिसमें उद्दीप्त भाव जाग आ जाता है और प्रकृति का रूप पीछे पड़ जाता है। दूसरे प्रकार के वर्णन में प्राकृतिक दृश्य एवं यात्रा अपना वास्तविक स्वरूप सुरक्षित रखते हुए भी भावोद्दीपन में सहायक होने हैं। पदभावतः में प्रथम प्रकार के वर्णन का प्राधान्य है।

संयोग शृंगार के प्रमुख रूप संयोगे उपयोग है। एक तो प्रकृति मानसिक उत्थान की अभिवृद्धि करती है और दूसरे शारीरिक उपयोग की वस्तु बन जाती है। संयोगावस्था में प्रकृति के दृश्य पारस्परिक आकषण में मग्न रहते हैं। शीतल परिमनमय पवन ज्यात्स्ना निज्जर कानिनी उपवन सम कूजन तारक विलसित गगन आदि प्रती प्रमिता के आकषण में एक विशिष्ट प्रकार की तीव्रता, सरसता और मधुरता का संचार कर देते हैं। तबत्र उमे आकषण उत्थास आनन्द भिनन उमग प्रम आदि कहां दशन होते हैं किन्तु विरहावस्था में ये सभी आकषण विषयों में परिणत हो जाते हैं। विरही मन स्थिति में वाक्य की कूज-हूक बन जाती है विषय पुष्प अगार बन जाता है चान् वफानी विरणा घाना न होकर अग्नि की किरणों घाना हो जाता है। किमुक गुनाब ओ अनारन की डारन प अगारन के पुञ्ज डोलते सिखाई देने ह। विरहिणी की विरह-दग्धवस्था के भी वड ही अतिशयातिपूर्ण चित्र कविया ने दिए हैं।

टा० किरणकुमारी गप्पा का कथन है कि उद्दीपन में प्रकृति का अपना महत्व नहीं है संयोग अथवा वियोग दोनों अवस्थाओं में प्रकृति का एक ही

१-राजा लक्ष्मणसिंह शकुंतला नाटक हिमासु चान्मु कुसुमसर तागो कान्न कया।

२-पद्मावर पचामृत प० १५८।

उपयोग है—मनोगत भावा को उद्दीप्त करना । वस्तुतः भाग्य भावों को उद्दीप्त करना ही प्रकृति का अपना मन्त्र है । और बिना प्रकृति के अपने महत्व के नत ही भाव उद्दीप्त हो जायें पर उनमें अति तीव्रता सरसता और प्रभविष्णुता का अभाव रहेगा । जायसी ने शृंगार में उगीरा विभाव के अन्वयन जो प्रकृति चित्रण किया है उगीर मस्तुन साहित्य में अविच्छिन्न भाव से चली आती हुई पङ्क्तियों वणन की प्रणाली एवं जनगीता का वारहमास विरहमास जाति का तोर प्रणाली के भी दशन होते हैं । जायसी ने उद्दीप्त प्रकृति का अत्यन्त सुन्दर प्रयोग किया है—

बरस मया बगोरि बकारी । मोरि दुइ नन चुव जम आगी ।^१

प्रस्तुत पंक्ति में प्रकृति के सवा नयन में बकार बरार कर बरसन वाले लण दश के द्वारा विरहिणी नागमती की कण मूर्ति का जीवन रूप चित्रित कर दिया गया है ।

विशेष-बारा नागमती अपने गनीपन को विस्मय करके प्रकृति के उपकरण पशु पक्षी आदि के साथ नागमती का अनुभव करना है । वह अपने प्रियतम के यहाँ विरह के धुएँ से मान पड़ बाग और भमर से सन्धेण भन्ती है—

विज मा बहल सदेपणा हूँ नीरा हे वाग ।

सा धनि विरहि जरि मुँहँ तनि के धवा हम्ह वाग ॥^१

उद्दीप्त रूप के अन्वय मयाभावस्था में पङ्क्तियों और वस्तु वणन तथा विशेषा वस्था में वारहमास वणन के का प्र-सौन्दर्य की शक्ति में विशेष महत्व है । जायसी ने प्रकृति का प्रियतम के प्रेम वागा में विरह रूप में चित्रित किया है । सम्पूर्ण प्रकृति प्रियतम के समागम के लिए उत्सुकपूर्ण उत्कण्ठित है । उसके विभाग में ध्वषा में व्याप्त है । प्रियतम का रूप सौन्दर्य अप्रतिम है । याद भी प्रकृति का तब उतक अन्त साध्य से मुक्त न हो रहा मरना—

उत वानर अम वा जा न मारा ? बरि रहा लहरा सभारा ॥

गगन नवन जा जाति न गन । ब सय वान आती के हन ॥

बहनि वान अग लापह बध रन उन-गल ।

मोतीहि ता सब रावा पतिहि तन सय पास ॥^१

इस प्रकार प्रियतम के प्रेम वागा से बिली हुई सम्पूर्ण प्रकृति उसका विभाग में व्याप्त है ।

१-श्री विष्णुमागी गुणा श्री वाग में प्रकृति चित्रण पं० १३ ।

२-जायसी सावनी (ना० प्र० सभा वागी) पं० १/३ ।

३-जायसी सावनी (ना० प्र० सभा, वागी) पं० ६३ (दाहा ६) ।

४-वही ।

बूडि उठे सब तरि वर पाता । भीजि मजीठ टेसू बन राता ॥^१

वक्षो के पत्त और पुष्प भी उसी के वियोग म रक्त (अनुरक्त) हो गए हैं । इस असंख्य ज्योतिरूप प्रियतम स मिलन होने पर प्रकृति उल्लास से आदोलित हो उठती है विरह की दारुण व्यथा से कलान प्रकृति अनुराग के रग म रग उठती है—

‘ भा वसत राती बनसपती । औ राते सब जोगी जती ॥

रानी सती अगिनि सब काया । गगन भेष राते तेहि छाया
बनस्पति, मध आदि उसी के प्रमोल्लास के ही कारण अनुरक्त हो उठ हैं ।

पद्य ऋतु वणन

प्रकृति के उद्दीपन के अन्तगत पद्यऋतु और वारहमासा के माध्यम से शृंगार निर्वेदन करना भारतीय कवियों की एक अत्यंत प्राचीन प्रथा है । पद्यऋतु वणन मिलनजय आनन्द म उद्दीपन का संचार करता है ।^१ इसके द्वारा कही कही विरह जय दुःखबोध को अधिक गात्र और मार्मिक बनाने का भी काय लिया जाता है । प० रामचन्द्र शुक्ल का कथन है कि ‘कालिदास के समय से या उसके कुछ पहल ही से दृश्य-वणन के सम्बन्ध में कविमो ने दो माग निकाल । स्थान-वणन म तो वस्तु वणन की सूक्ष्मता बहुत तिनो तप बनी रही पर ऋतु-वणन म वस्तु-चित्रण उतना आवश्यक नहीं समझा गया जितना कुछ इनी-गिनी वस्तुओं का कथनमात्र करके भावा के उद्दीपन का वणन । — जान पड़ता है कि ऋतु-वणन वसे ही फुटकर पद्या के ही रूप म पड़े जागे जस वारहमासा पड़ा जाना है । अत उनम अनुप्रास और शब्दों के माधुर्य आदि का ध्यान अधिक रहने लगा । सस्कृत साहित्य म ऋतु वणन का एतन्मय रूप ‘ऋतु सत्तार मे देखने को मिलता है ।

कभी-कभी कविया ने पात्रों के मुख स ऋतु सौन्दर्य का उदघाटन करवाया है । कपूर मजरी म इस प्रकार के कई सुन्दर श्लोक मिलते हैं । १४वीं शताब्दी की पुस्तक वण रत्नाकर म छद्म ऋतुओं का विधान बनाया गया है । उसम प्रत्येक ऋतु की वे मुख्य-मुख्य विशेषताएँ दी गई हैं जिन्हें उस ऋतु का वणन करते समय कविया को नहा भूतना चाहिए । उग्रहरणाय वसत-वणन म बुद्ध की नवी नता पल्लव का उत्पन्न वृक्ष का समार मलयपवन कोशित का बलरव, ध्रमर की हनसनी काम की श्रीठा विरहणी की उत्कठा-व्यग्रता नायक का ह्य नायिका

१—जा० प्र० (ना० प्र० सभा, काशी) प० ४३ (दोहा ६) ।

२—प० हजारीप्रसाद द्विवेदी हिन्दी साहित्य का आन्विकान पृ ८४ ।

३—प० रामचन्द्र शुक्ल चिन्तामणि काव्य म प्राकृतिक दृश्य, भाग २ ।

४—राजेश्वर कपूर मजरी १।७ ।

की अभिनाया इत्यादि के वणन का द्विवान बताया गया है^१।

सदेश रामक म अद्दुमाण^२ ने ऋतु वणन की परम्परा का उपयोग नायिका के विरह को अपेक्षाकृत गान्तर रूप म प्रकट करन के लिए किया है। चदवरदाया ने भी पथ्वीराजरासो^३ से ६१ वें समय के पडऋतु वणन की नियोजना की है।

संस्कृत साहित्य के आदि कवि वात्माकि^४ म अनवच्छिन्न भाव म चली जाती हुई पडऋतु वणन की परम्परा अपम्र श स हाती हुई हिंदी साहित्य म भी चली आई है। इस परम्परा म कालिदास के ऋतु संहार म पडऋतु वणन का भाव, अनाविन और जीवन सुंदर रूप दशनीय है। जायसी ने भी इसी परम्परा से रनयन और पन्मावती के संयोग श्रु गार के उद्दीपन-रूप म पडऋतु वणन खण्ड का नियोजन किया है।

पदमावत का पडऋतु वणन नूतन परिणीता पन्मावती के हर्षतिरेक का चित्रण करता है।

नवन वयन ऋतु पन्मावती के लिए अभिनव जीवन का संश देते हुए आई है, नवल वसत नवल ऋतु च न जोर वशाव की श्री सम्पत्ता च न, चीर पुष्पहार, परिमल-सुवास, भीरा का पुष्प के सग शीघ्र फरा खलना चाचर धामरी, प्रमति उद्दीपक व वस्तुए पदमावती के यौवन म अभिनय उल्लास का सचार करना हैं, सर्वोपरि वान तो यह है कि कात पर म है ऋतु सुहावनी है आया न करे वसत पुन पुन नित्व प्रति।^५

जहाँ ज्यष्ट-आषाढ स कान्त पर म ही है वहा प्राप्म ऋतु की तपन कहा रह सकती है? घया ने मुरगी शीना परिधान पहन रया है परिमल और मद स उसका तन मह-मह हा उठा है, एकता पन्मावती का शरीर यो ही शीतल और सुवासित था, दूसरे नहर म पिता का राज्य - उसम भा कान्त का प्राप्त सुसान्निध्य, उमका अधर ताम्बूल और भीममनी वपूर स लाग था, वह चान-चचित शरीर म सग सगाती था, अपूर अनार और प्रीम्य के सदाकर आम्र आदि व रसास्वा दन से उसके सम्मोग-मुल म तीव्रता ही आनी है।^६

पावस ऋतु म बाला का कान्त के साथ विलास सावन-भाग का अदि

१-वणरत्नाकर, षतुथ कलाल प० १८-१९।

२-सदेश रामक (स० प० हजारीप्रसाद द्विवेदी)।

३-डा० विपिनबिहारा त्रिवेदी चदवरदायो और उनका काव्य, पृ० १०६।

४-वाल्मीकि रामायण त्रिचिंघा काण्ड, मग १ श्लोक २२-३१।

५-जायसी प्रधावती (पन्मावत) प० १४८, (दाहा ५)।

६-पन्मावत डा० वासुदेवशरण अग्रवाल, पृ० ३३५, दा० २३६।

सुन्दर लगना, कोकिल की मधुस्निग्ध काकनी सुगन्धा गगन मुग्धानी धरती
 मेघमय असमान मक्कपक्ति-गमन लानिम परिवानावता धयाओ का ऐस निकलना
 जैसे बीर-बहुटिया हा विद्युत की बीध — उसम धारासार बडी का स्वण-सन्ध
 दष्टिगोचर होना दादुर जीर मयूरा के अति सुन्दर शान् प्रियतम के सग रति रग
 म जागी अनुरागिणी धया गगन गजन से चौंक कर उसका बडालिगन करना हरा
 भरा समार हरित भूमि कुमु भी वरुन धया का प्रियतम के साथ हिंडोल का आयो
 जन पवन शकीरे वतास का शीतल लगना धया स पवन और पवन से धया
 परिमन और सुवाम प्राप्त बग्के धय धय हुना चाहते है ।^१

इस प्रकार वर्षा ऋतु के मुहाने तख सभागिनी पदमावती का हर्षा तिरके
 प्रदान करत हैं । कवि ने प्रकृति के उपागतो के द्वारा भावो के सदेश और तात्काल्य
 सम्बन्ध का भी उपस्थापन किया है—

रग-राती पियमग निसि जाग । गरज चमकि चौंकि बठ नाग^१ ।

गगन गरजता है तो धया चौंक कर प्रियतम के गन से निपट जाती है । यहा पर
 प्रकृति और मानव भावा का सामजस्य स्थापित किया गया है जिसम प्रकृति
 भावा को आशर प्रदान कर रही है ।

अत्यन्त सुहानी कुन्जार नातिक की अभिनव उजियाती पूर्णिमा की पूषकना
 पोडश शृंगार नयना स भरा आराश प्राजन धरती-आकाश पुष्प विखचित पय
 किका स्वर्णिम फूना से फूली पृथ्वी खजन सारस-मुपम का विहार आदि शर
 ऋतु के उत्कर्ण प्रियतम के गन म आनिगित धया और धया के गल-लगे
 प्रियतम के सुख विलास का सर्वाधत करते हैं ।^१ कशवनास ने शरद ऋतु के वष्य उप
 करणा की सूची इस प्रकार दी है—

अमन अवास प्रराम ससि मुस्नि बमा कुन काम ।

पवी पिनर पयान नप सरद सुवेसवनास ॥

यहा यह द्रष्टव्य है कि जायसी का शरद वषणन सादृश्य है वह मात्र परपरा
 पानन के ही लिए नहीं है । इस वषणन की कतिपय पत्तियाँ अथ-व्यजना और
 उत्कृष्ट वायु सौदय की दष्टि से अतन्नीय ह—पन्मावति म पूनिव कना ।
 चौंह चाण उण सिधला ॥ सोरह बरा सिगार बनावा । नखनह भरे सुहा
 ससिपावा ॥^१

१—पन्मावत डा वामुदेवशरण अग्रवान प० ३३६ दोहा ३ ७।७ ।

२—पन्मावत (डा वामुदेवशरण अग्रवान) प ३३६ (पाहा ३, ७।४) ।

३—जायसी ग्रन्थावली, ना० प्र० सभा कागी पृ० १४६ (पाहा ८) ।

४—कशवनास प्रियाप्रकाश ३३वां दोहा पृ० १४३ ।

५—डा० वामुदेवशरण अग्रवान, पदमावत पृ० ३-७ (टिप्पणी और अर्थ) ।

इन पक्तियों का अर्थ समझता व्यंजना और जीवत विधात्मकता आदि क सोदय दक्षनीय है ।

हमत्त जीर शिशिर वणन म कवियों का प्रकृति का बहुत कम ध्यान रहता है । इन ऋतु-जा का वणन करते समय उसका ध्यान मानव-यात्रा पर ही अधिक कद्रित रहता है ।

अगलन पूस म जिस घर म प्रिय ही वहा सर्दी तो होनी ही नहां । घाया और प्रियतम के बीच म ता यह शिशिर ऋतु साहाय्य का काम करती है । मन से मन शरीर से शरीर और हृदय स हृदय ऐसे मिल कि हार भी नहां रहा चदन की भांति शीत भी नहां । हृत्पुग्म की भांति रत्नसन और पदमावती पीडा रत थे । शीत जो प्रिया के अग म था, वहा से भगाए जान पर (चक्रव के रूप म) अलग खडा पुकार रहा था मानो उमे किसी चमवी का विद्याह हुआ है । ' हमत्त ऋतु म रत्नमेन के पास पाला नही लगता । शीत भी सुखकर है । भना जहा वाला और पति एक साथ हो वहा शीत वहाँ ? वहा स शीत एस भागता है जसे बाण खेळ कर काग । बेचारे शीत ने भाग कर इन्द्र-दरबार म अपना दश निखाला वाला दुखडा निवेदित किया इस ऋतु म म उसके सग शयन करता, अब ता मुझ उसके दशन भी दुनभ हो गए ह । अब तो शशि सूर्य स भेंट हो गई है—शीत का देश निखाला हो गया है । इन्द्र ने भी कहा कि यह तो वही नियम है कि कभी किसी की बारी है और कभी किसी की । ' १

उपयुक्त वणन के आधार पर कहा जा सकता है कि प्राकृतिक उपादानों द्वारा नव दपति क हृष और सुख विनास को उद्दीप्त करने के मिस पङ्कतु-वणन की योजना द्वारा वा य-सौन्दर्य का वणन किया गया है ।

पृथ्वीराज रासो^१ सदेश रामक टोता मारु रा^२ दूहा और पदमावत म ऋतु वणन के अतगत प्रकृति वणन किया गया है । इन प्रथा म ऋतु वणन का प्रसंग प्राय उद्दीप्तन के ही रूप म आया है । जायभी ने पूण मनोयोग क साथ प्राकृतिक वस्तु-जा और यापारा की अकृत्रिम मनारम शक्तिर्या लिखाकर नायक-नायिका के भावो के साथ सामंजस्य स्थापित करत हुय प्रम विरह की योजना की है । ✓

१—जायसी प्रयावता (हिन्दुस्तानी एकेडमी), दाहा ३३६ ।

२—वही दोहा ३४० ।

३—पृथ्वीराज रासो (कई समयों में), मुख्य रूप स 'शशिवत्ता विवाह समय' और वनवज्र समय ।

४—सदेश रासक प्र० २ ३ ।

५—डोता मारु रा दूहा, पृ० २४०—४१-४२ ।

बारहमासा और उसका सौंदर्य

बारहमासा वणन की परम्परा संस्कृत साहित्य में नहीं मिलती। समस्त लोकजीवन से गृहीत यह परम्परा हिंदी साहित्य की अपनी वस्तु है। बारहमासे के द्वारा प्रत्येक महीने की प्रकृति के विरही और विरहिणियों पर पड़े हुए प्रभाव बहिष्कृत के माध्यम से प्रकृति चित्रण किया जाता है। संभवतः इस परम्परा का मूल उत्स अपभ्रंश कालीन जनगीतियों का उन्मुक्त क्षत्र है। जनगीतियाँ की भाव धारा में विद्यागिनी की व्यथा के साथ परिवर्तित नतित कान का रूप और उसकी प्रतीक्षा मिनकर आई है। प्रत्येक मास की प्रमुख प्रकृति की रूप रेखा के आधार पर वह अपने प्रियतम को याद कर लेती है और उसके लिए विकल हो उठती है। वर्ष का प्रत्येक मास यथा काल विरहिणी के भावों को उद्दीप्त करता है। काल के वियोग में वसंत उस उन्मत्त बना देता है तो ज्येष्ठ की प्रचंड गर्मी उसे जला डालती है भूधराकार धनो की घमड़-गजना में वह सन्नस्त हो उठती है तो शरद की ज्योत्सना अग्नि बरसाती प्रतीत होती है।

हिंदी साहित्य में बारहमासा वणन आदिकान से ही मिलने लगता है। नरपति नाल्ह वृत्त बीसलदेवरास में विद्यागिनी राजमती का बारहमासा ही प्रमुख प्रतिपाद्य है। विद्यापति ने भी बारहमासे का वणन किया है (मोर पिया सखि गेल दुर देस । — भइन विद्यापति बारहमास)। मजन उसमान दुखहरन दास बोधा आदि कवियों ने भी अपनी भाव नडिया बारहमासा वर्णन से गूथी हैं। जायसी के पदमावत में भी प्रकृति के प्रत्येक मास का रूप का अत्यंत सुंदर वणन हुआ है। प्रकृति के बारहो महीने के रूप और उनके साथ नागमती के विरह दग्ध हृदय की अनुभूतियों का भी उहाने मार्मिक और करुणापूरित चित्रण किया है।

जायसी के बारहमासा वणन का लक्ष्य है नागमती का विरहोद्दीपन एवं स्वाभाविक प्रकृति चित्रण द्वारा विरहिणी नागमती की विरहज्वर वेदना का हृदय स्पर्शी निरूपण इस बारहमासा का मूल आधार नागमती का विरह निवेदन ही

१-डा० रघुवश प्रकृति और हिंदी-काव्य मध्ययुग, पृ० ४०६।

२-क (स०) डा० माताप्रसाद गुप्त, बीसल देव रास।

ख बीसलदेव रासो (ना०प्र० सभा काशी) तृतीयसर्ग पृ० ६७-७०।

३-रामवदा बनीपुरी विद्यापति पन्नावली पन् २०८ (५० पक्तियों में)

पृ० २७१-७३।

४-मदन वृत्त मधुमालती (हिंदी प्रचारक पुस्तकालय) पृ० १२०-२३।

५-डा० रघुवश प्रकृति और हिंदी काव्य पृ० ३५१-५४।

है। परम्परा प्रचलित प्रवृत्ति के उपमान नवीन मौलिक उपमान एवं मार्मिक उक्तियों से युक्त इस बारहमासे में क्षण क्षण नवीनता और उत्कृष्ट सौंदर्य प्रदान करने वाली ताजगी विद्यमान है।

एक तो दूसरी स्त्री के लिए पति के जोगी होकर घर से चले जान की विरह व्यथा दूसरे प्रत्येक महीने की विरह व्यथा की तीव्र करने वाली प्रकृति बचारी लिए भी तो कमें ?

पुष्य नक्षत्र सिर, ऊपर आवा । हों विनु नाह मंदिर को छावा ॥ १

नागमती है तो चितौड़ की पटरानी, किंतु वह चितना में सामान्य विरहिणी वाला' के रूप में उपस्थित होती है। कांत घर में नहीं है भला उसका बिना मेरी टूटी कुटिया का कौन छावणा ? (श्लेष से) कांत के अभाव में इस धूम्य राजप्रसाद या (मन मंदिर) को कौन अलङ्कन करेगा ? साधन का मुहावना महीना प्राचीन सयोगितियों के हृदय का पारावार तरंगित होता हुआ रहता है। वे हिंडोले पर झूलती हैं गाती हैं पर विरहिणा को तो य सब वस्तुमें प्रियतम की सुधि में विसूरने का बाध्य करती हैं। सखिन रचा पिउ सग हिंडोला 'पूस ना' तन घर घर कापा प्रभति पक्तिया में प्रकृति के यथार्थ चित्रण के साथ ही धाम्य जीवन की सच्ची अभिव्यक्ति हुई है। ये पक्तिया अत्यन्त स्वाभाविक हैं।

जायसी ने इस यणन में प्रकृति के उद्धारन विभाग के अतगत जाने वाले रूपों की दृष्टि में अविद्य उन्मुक्त वातावरण का सजन किया है। परवर्ती रीति वालीन कविया में भाव-व्यवना एवं वेदना की अनुभूतियों की अभिव्यक्ति का स्थान पर वेदना के याह्य अनुभवों और विरास के श्रीढा-रनाया का सवधन हाता गया है। किंतु जायसी ने ऋतु के वर्णन में हुए विभिन्न दृश्य रूपा को विरहिणी के मार्मिक भावा के सम पर ही उद्दीपक बनाया है। इसमें विरहिणी के विरह प्रसंग को लेकर प्रकृति को अत्यन्त सहज सवध में चित्रित किया गया है। विरह कातरा नागमती प्रत्येक भाग के परिवर्तमान प्राकृतिक वातावरण के साथ अपनी विरह-वेदना को सम अवस्था विरोध पर रसकर अविद्य वक्तव्य का अनुभव करती है। प्रियतम की प्रवासजय बना के ऊपर में ऋतुए भी उसे महत्त वष्ट ने रही हैं।

'आपाड़ मास के घुमू श्याम और ध्वजा वण के धावमान बाल्ल श्वेत धवन रूपी वक्त्रकनि गमन तलवार की भांति विद्युन की कोंय, बूँदा की गारासार बाण शर्पा घटा का जलभार में मुबना दादुर की दर-दर बोकिल की बाकली पपीना की 'पी-पी', विद्युत का गिरना और ऐसे गाडे समय में बान्ध का 'बाहर' रहना

बेचारी नागमती का सत्र सुख विस्मृति प्राय है ।^१

सावन महीने की प्रवृत्ति के उद्दीपन विभाव के अन्तर्गत भी प्रवृत्ति और विरहिणी के भावा का सामञ्जस्य स्थापित किया गया है। सावन में अपार पानी बरस रहा है चारों ओर भरपूर पानी है फिर भी विरहिणी मूखती जाती है वह रक्त के आसू रोना है जमे बौर बहूटिया रंग चली हैं सखियो न हिंदोल का निर्माण किया है किंतु उसका हृदय ता स्वयं दोनाममान हो रहा है सारा ससार जनमय हो रहा है और उसकी नाव सेवक के बिना ठहरी हुई है। विरहिणी के पास न पाव हैं न पख प्रियतम और उसके बीच पवत समुद्र बीहट था और घने ढाल के जगन हैं वह उसमें कबे मिले ?^२

इसी प्रकार जायसी ने प्रत्यक्ष महीने की उद्दीपक प्रवृत्ति के यथाय और ममस्पर्शी सुन्दर चित्रों द्वारा भी नागमती के विरह निवेदन का अधिक तीव्र मार्मिक और प्रभविष्णु बनाया है—

गजमान बादना के साथ आपात् चंग है
विजली गिरती है
पुष्य नभत्र गिर के ऊपर जा गया है

प्रिय बचाओ मैं काम आनाता हू।
घट म जीव तनी रह जाता।
स्वामी के बिना कौन भरा मंदिर
छायगा।

आद्रा लगन ही विजनी चमक कर
भूमि छन लगी
सावन म पानी सूख बरस रहा है
भरन पडी है
ससार जन रा जाणावित है
मघा म बादन चकार-गकार कर
बरसना है

मुग प्रिय के बिना कौन जाए दगा ?
म मूख रही हू।
मरी नाव शवक बिना कबी है।
विरहिणी के नयनो म धारागार अथु
वर्षा हो रही है।

स्पष्ट है कि इस बारहमास में प्रवृत्ति और विरहिणी की भावनाओं का सामञ्जस्य अत्यन्त सरस एवं मनोमय ढंग से उपस्थित किया है। प्रवृत्ति का स्वाभाविक रूप भावा का जागर प्रदान करता है और भावों की सहज स्थिति प्रवृत्ति से प्रेरणा प्राप्त करती है। इतने साथ ही प्रवृत्ति के विविध नियन्त्रणों के भावा की व्यंगना का सन्निविष्ट रूप भी बारहमास का एक आनन्द और सौन्दर्य-बद्ध तंत्र है। विद्यागिनी के भावा और अनुभावा के साथ ही प्रवृत्ति में न्यूनता का भी उपस्थापन किया गया है। यदि मघा म झकोर-झकोर कर वर्षा होनी है तो उसके

१—जा० प्र० (ना० प्र० सभा काशी) पृ० ११० (दाहा ४)।

२—जा० प्र० (ना० प्र० सभा काशी) प० १५२ (गोहा ६)।

नयनों से भी अनिमेष आसुओं की बड़ी लगा है यदि अथवा अथाह और गम्भीर है तो उसका भा भी भविष्य है।'

वारहमासे का रेखांकन

जायसी ने वारहमास में शब्दों व सुगुण का ऐसा उल्लेख विधान किया है कि वष्य-वन्तु का आकृति-विषय पाठक को आत्मा के समक्ष धूलने लगता है।

'जैठ में ससार जल उठता है तू चलने लगती है बबडर उठते हैं, अगार बरत दहते हैं विरह गरज कर हनमान की तरह जागा है और शरीर में लवा दहन कर रहा है चारों ओर से चनकर पवन अग्नि को प्रदीप्त कर देता है, वह अग्नि लवा को जलाकर पय मित्रा में लग गई है अगण उदती है, आधी ब्याती है और नयनों से नहीं सूझना हाथ में विरह दुःख में बधी मरती है।' जायसी ने प्रकृति व इस चित्र में रेखाओं को खूब उभार कर अपनी सूक्ष्म कान्य बला शक्ति का परिचय दिया है। प्रकृति के दृश्य चरण की योजना की यथायथा प्रकृति और मानवीय भावों का सहज तात्पर्य सम्बन्ध और शब्दों के साध्य से रेखांकन इन पंक्तियों के विशिष्ट आकषण व केन्द्र हैं।

काव्य में परस्पर की उज्ज्वलता में जग शीतल हा रहा है और मैं विरह में जन रही हूँ। पूनम की कथा से सयुक्त चन्द्र प्रभावित है, मुझ लगता है मानों धरतीआकाश सब जल रहे हैं मेरे तन और मन में सेज अग्निदाह उत्पन्न करती है। सबके लिए यह बाद है पर धर लिए ता राहु हो गया है। पर मैं कात नहीं हैं मेरे लिए कर्तुर्विग्न अभिमाना ही है। अरे तो निठुर जन भी तो इस शुभ दिन पर आकाश अब ससार में दीवाना का पव मनाया जा रहा है। अगो का भौंड-भौंड पर बरत सा-साकर सतिश घूम घूम कर घूमना या रही हैं और मैं क्षयती-सूखती हूँ कि मरी जोड़ी विच्छिन्न गई है। जिसके धर में प्रिय है वह पूजा कर रही है मुझे एव तो विरह का दुःख ऊपर में गपनी का चिन्ता भी है।'

नामती अपनी विरह व्यथा का निवेदन परिवर्तित श्रुतु रूप के माध्यम से करती है। उसकी विरहानिर्घातक व मृग में प्रकृति से अधि-अधिक सहृदयता स्पर्शित करने की भावना भी अनुभूत है। इस चरण में प्रकृति का भी जीवन्त रूप समक्ष उपस्थित हो जाता है—

सावन में— जग जन बूढ़ नहीं तगि तारी। मारि नाव खवन बिनु याकी।

१-जा०प्र० (ना०प्र० समा काली), प० १४६ (दोहा १८)।

२-वही पृ० १५३ ५४ (दोहा ८)।

भादो म — 'धनि सूखे भरे भादो माहा । अबहु न आएहि सीवेहि नाहा ॥

'चित्रा का भीत चंद्र भीत राशि म था गया पपीहा ने पिउ पिउ पुकारने हुए मानो अपने सखि को पा लिया, अगस्त उदिन है स्वातिवृ द चातक के मुख म पड गया सरोवर का स्मरण करके हस लौट आए, सारस कुरनिस्त एव त्रीडागील हैं खजन सिखाई पडत हं कास फूल गए हैं—य समस्त उल्लास तो आए पर हे कान, तुम नहीं चोटे विन्श म ही भूा रहे' ।

इन घणना, दश्या और प्रवृत्ति के चित्रा के साथ ही जायसी ने ग्राम्य प्रकृति के अनेकश सुरम्य चित्रो को अत्यंत जीवन रूप म उपस्थित किया है —

(भाता मे) वरस मधा झकोरि-चकोरी । मोरि दुई नन चुव जस ओरी^१ ।

(क्वार मे) भा पर गास कास मन फूले । कत न किरि विदेमहि भूले^१ ।

(कार्तिक म) सखि झूमक गाव अग मोरी । हौं बुराव विछुरी मोरी जोरी ॥

(अगहन मे) वाप हिया गगाव सीऊ । तो प जाइ होइ सग पीऊ ।

अत 'पिउ सो वहेउ सदेसडा हे भौरा हे काग ।

सो धनि बिरहै जरि मुई तेहिक घुवा हम्ह ताग^१ ।

(यहा पर नागमनी की सम्पूर्ण विरह वेदना का अत्यंत कारुणिक और सवेदनीय रूप दशनीय है) ।

(पूस म) पूस जाड घर-घर तन वापा । मुरुज जडाइ नक सि तापा^१ ।

(माघ म) लागेउ माघ पर अब पाता । बिरहा काल भएउ जडकाला^१ ॥

(फागुन म) फागु करहि सब चाँचरि जोरी । मोहि तन लाइ दीह जस होरी ॥

यह तन तारी छार क वहाँ बि पवन उडाव ।

मकु तेहि मारग उडि पर कत घर जह पाव^१ ॥

(चत म) चन बसता होइ धमारी । माहि लखे ससार जजारी^१ ।

(बशाख म) लागेउ जर जर जस भारू । फिर फिर भू जेमि तजिउ न वारू ॥

१-जा० घ० (ना० प्र० सभा काशी) प० ११३ (दोहा ७) (पन्मावन, डा० अग्रवाल पृ० ३४७ दोहा ३४७।४)

२-वही प० ११३ (दोहा ६।५) । ३-वही प० १५३ (दोहा ७।७) ।

४-वही प० १५४ (दोहा ८) ।

५-जा० घ० (ना० प्र० सभा, काशी) दोहा ६ ।

६-पन्मावन (शा० वामुन्वशरण अग्रवाल) प० ३४६ (१०।१)

७-जा० घ० (ना० प्र० सभा काशी) पृ० ११४ (दोहा ११।१) ।

८-वही, पृ० १५५ (दोहा १२) । ९-वही पृ० १५५ (दोहा १३।१) ।

सरवर हिया घटत नित जाई । टूक टूक ह वै क बिहराई ॥

बिहरत हिया करहु पिउ टेवा । दीठि दवगरा मखहु एका ॥

बबल जा विमसा मानसर विनु जल गएउ सुखाइ ।

बबहु बलि पुनि पलुहे जो पिउ सोच आई ॥

नागमती के हृदय की उपमा कवि ने सूखते हुए सरोवर से दी है । उसकी यथा प्रस्तुत चित्र म साकार हो उठी है । यह चित्र साम्य जीवन महान पारसी कवि जायसी की ही लेखनी से सम्भव थे । इन पक्तियों के विषय म प० रामचन्द्र शुक्ल का कथन विनोद रूप से उल्लेख है — मैं तो समझता हूँ इसके जोड़ की सुंदर और स्वाभाविक उक्ति हिंदी काव्यो मे बहुत ढूँढने पर शायद ही कहीं मिल तो मिल । सचमुच ये पक्तियाँ ही जायसा को अपर महाकवि सिद्ध करने को यर्थात् हैं । यहां पर प्रकृति के आलम्बन रूप के माध्यम से मानव की रागात्मिका वृत्ति का अत्यंत सुंदर चित्रण किया गया है । समष्टि रूप म कहा जा सकता है कि 'नागमती का वारहमासा श्रुति सौंदर्य विरह-वेदना की अत्यंत अभिव्यक्ति और उत्कृष्ट काव्य सौंदर्य की दृष्टि से हिंदी साहित्य का एक महाप्र रत्न है ।

'वारहमासे के सम्बन्ध म यह जिनासा हो सकती है कि कवि ने वषणन का आरम्भ आपाण से क्या किया है चत से क्यों नहीं किया ? बात यह है कि राजा रत्नसेन ने गङ्गा-दशहरे की चित्तौड़ से प्रस्थान किया था जैसे कि इस चौपाई से स्पष्ट है —

'दसब दाव क गा जो दसहरा । पनटा सोण गाव लेइ महरा ॥

यह वचन नागमती ने उस समय कहा है जब राजा रत्नसेन सिन्धु से लौट कर चित्तौर क प्रांत पहुंचा है । इसका अभिप्राय यह है कि जो केवट दशहरे के दिन मेरी दशम दशा (मरण) करके गया था, जान पड़ता है कि वह नाव लेकर था रहा है । दशहरे के पांच दिन पीछे ही आपाण लगता है इससे कवि ने नागमती की वियोग दशा का आरम्भ आराध ने रिया है' ।

दशिष्टय

जायसी ने ऋतु वषणन म परवर्ती रीतिकालीन कविया जमी वमेल टू सटांस या उक्ति चातुय की कलावाचियों का भद्रा प्रशंसा नहीं किया है । इनके वषणन भी सबसे

१—जा० प्र० (ना० प्र० सभा वाणी) प० १५६ (दोहा १४) ।

२—जा० प्र० (ना० प्र० सभा, वाणी) भूमिका पृ० ८६ ।

३—वही प० ८६ ।

बड़ी विशेषता है व्यजना का साररूप और तोत्र जीवन के विविध रूपों की सीधी, सहज किंतु अत्यन्त मार्मिक समथ, अधपूण और प्रभविष्णु अभिव्यक्ति। लोक जीवन और उसके उपादाना के यथाय वणन म जायसी सिद्धहस्त थ। इसे स्पष्ट करने के लिए दो एक उदाहरण पर्याप्त होंग —

बमक बीजु बरस जल साना । दादुर मोर सयद सुठि लोना
(विद्युत की कौध म धारासार वर्षा की दू दो का सुवण के समान चमकना)।

पिउ सजोग धनि जीवन वारी । भौर पुहण सग कररि घमारी ॥
होइ पाग भलि चाचरि गारी । बिरह जराइ दीहि जस हारी ॥

जिह घर कता श्रुतु भली आव बसत सोनित्त ।

सुख भरि आवहि देवहर दुख न जान कित्त ॥

पुष्य नखत सिर ऊपर बावा । हौं विनु नाह मदिर को द्यावा ॥

बरस मधा शकोरि शकोरी । मोरि दुइ नन चुव जस ओरी ॥

सरवरहिया घटत निति जाई । टूक टूक ह व क विहराई ॥

विहरत हिया करहु पिउ टेका । दीठि दवगरा मरदहु एका ॥

—जायसी

कत दिन वासर बसत लागे अतकस

तीर ऐसे त्रिविध समीर पागे लहकन

—देव

चतगी कहा तौ चादनी म चरि जायगी ।

वनन म वागनि म बगरपी बसत है ।

—पद्मावर ।

स्पष्ट है कि रीतिगानी कविया ने श । और अनकारो के व्यामोह म प्रकृति का निरीक्षण नहीं किया और सहज ही सौन्दर्य समाप्त हो गया किंतु जायसी के सहज शब्दों से उनका सूक्ष्म निरीक्षण और मार्मिकता तथा अधपूण भाषा समथता सीधे हृदय को स्पर्श कर लेती हैं ।

समष्टि रूप म हम वह सबत हैं कि पद्मावन का बारहमासा उद्दीपन रूप मे प्रकृति के अवसादमय रूप का चित्रण करता है (उद्दीपन रूप म प्रकृति के हृयमय तथा सुगमय स्वरूप का चित्रण बसत वणन और पडभ्रतु वणन खड म हुआ है ।

‘जग जल बूडि जहा लगि ताकी’ आदि का औचित्य —

ध्यानपूर्वक विचार करने पर पता लगता है कि जायसी नागमती के प्रबह-

१—जा० प्र० (ना० प्र० समा काशी) मू० १८८ ।

२—वही पृ० १५२ १५३ ।

३—वही पृ० १५६ ।

मान आमुजा म बह गए हैं। उन्होंने देश का ध्यान भुला दिया है। आलाचक्रा का यह आक्षेप है कि चित्तौड़गढ़ निवासिनी नागमती के मुख से यह कहवाना उचित नहीं है -

‘जग जल बूडि जहा लागि तानी । मोरि नाव खेवक बिनु थाका ॥
सावन बरस मेह अति पानी । भरिल पडी हौं विरह झुरानी ॥
धनि सूखे भरें भादों माहा ।

जल थल भरे अपूर सब धरति गगन मिनि एक

कहा जा सकता है कि उनकी नागमती जायस म गङ्गा जमुना के दो आवे म या चेरारू जी के निबट नहीं है, वह तो चित्तौर म है जो मरुभूमि है। सम्भवत परम्परा और बर्णन के लोक म कवि को यह ध्यान ही नहीं रहा। कुछ लोगो ने इस भूल का माजन इस तक से किया है कि तन चितउर मन राजा कीन्हा ॥, आदि - इस रूपक को ध्यान म रखने पर उपरोक्त भूल भूल नहीं रह जाती, क्योंकि तन ही चित्तौर है और मन ही राजा और नागमती दुनिया घचा है। किन्तु मैंने इस रूपक के औचित्य पर क्यातक की साकतिकता' क अन्तगत विचार किया है। डॉ० माताप्रसाद गुप्त ने सिद्ध कर दिया है कि यह रूपक प्रक्षिप्त है। अन इस प्रकार क तक कपात कल्पित है जिनका कोई महत्व नहीं है।

यदि हम सहानुभूत्यात्मक दृष्टिकोण से इन पक्तिया के औचित्य पर विचार करें तो पाल होता है कि जायसी का वक्तव्य सावकालिक और सावदेशिक है एक दशिय रही। हम जायसी के दृष्टिकोण से उनके कथन पर सहानुभूतिपूर्वक विचार करना चाहिए। यहाँ पर नागमती के माध्यम से जायसी का कथन है 'जहाँ तक देखती हू मसार जल म दूबा है।

पुन नागमती का जग जल बूडि जहा लागि ताकी बह रही है। वह यह नहीं कहती कि चित्तौड़ या राजपूताना जन से आप्लावित हा गया है। इस प्रकार नागमती की उक्ति सावकालिकता और सावदेशिकता को कसौटी कसौ जानी चाहिए। पुन यदि साहित्यकार अपने वक्तव्य की प्रपणीय शुणितता म सफल है, तो उसके ऐतिहासिक या भौगोलिक औचित्य का कोई प्रश्न नहीं उठता। परमावत पृथ्वीराज रासो और रामचरितमानस महाकाव्य हैं इनकी कसौटी साहित्य है इनका सम्पूर्ण सौम्य साहित्यिक है ऐतिहासिक या भूगोलिक नहीं।

शैलीगत विवेचन

पदमावत की साकेतिकता

पं० रामचन्द्र शुक्ल द्वारा सपादिन जायसी प्रथावली म पदमावत के उप संहार खंड म बनिपय ऐसी पक्तिया है जिनमे पात्रो और स्याजो के प्रतीको के स्पष्टी करण किए गए हैं । ये पक्तिया इस प्रकार हैं -

‘ मैं एहि अरय पडितह बूग । वहा कि हम्ह किछु और न सूझा ॥
 चौदह भुवन जो तर उपराही । ते सब मानुष के घट माही ॥
 तन चितउर मन राजा कीहा । हिय संपल बुधि पामिनि चीहा ॥
 गुरु सुआ जेइ पय देखावा । बिन गुरु जगत को निरगुन पावा ॥
 नागमती यह दुनिया घघा । बांचा सोइ न एहि चित बधा ॥
 राघव दूत सोइ सतानू । माया अलाउती सुनतानू ॥
 प्रेम-बधा एहि भाति विचारहु । बूयि नेहु जो बूझे पारहु ॥
 तुरकी अरबी हिदुई भापा जेती आहि ।
 जेहि मह मारण प्रम कर सबे सराहल ताहि ॥ ’

डा० माताप्रसाद गुप्त ने प्रस्तुत पक्तिया को प्रतिष्ठ अश माना है । उन्हाने मूलतः १४ प्रतियों के आधार पर पदमावत का सपादिन किया है । उहे यह छंद चार प्रतिया म मिना था । य प्रतियां इस प्रकार हैं - प्रति १ प्रति तीन १ प्रति द्रो ५ और ४ ।

इन प्रतिया म प्रति १ डा० गुप्त को मिनी प्रतियो म सर्वाधिक प्रचीन है ।

१-जा० प्र० स० रामचन्द्र शुक्ल ना० प्र० सभा, काशी पृ० ३०१ ।

२-जा० प्र० माताप्रसाद गुप्त भूमिका प० ६३ ।

इसका प्रतिनिधिकाल ११०७ हि० है। आज पद्मावत की लगभग तीन दजन प्रतिमा का पता चल गया है। इन प्रतिमों का आधार पर पद्मावत के पुनः दानिक सम्पादन की आवश्यकता है। इस सम्पादन में जायसी की भाषा, व्याकरण आदि का भी ध्यान रखना आवश्यक होगा। अभी यह जानव्य है कि इन तीस प्रतिमों में किन किन प्रतिमा में यह अंश मिलता है। यह भी अभी समस्या ही है कि यह अंश जायसी द्वारा विरचित है या नहा।

जिस आधार पर उन्होंने पद्मावत को उत्तम अंश को प्रक्षिप्त माना है वह कोई विशय प्रामाणिक आधार नहीं कहा जा सकता। जायसी-साहित्य की अभी अधिकाधिक खोज होनी चाहिए और प्रामाणिक प्रतिमा के आधार पर ही विद्वानों को कोई ऐसा सर्वमान्य निणय करना चाहिए। अभी तक जो प्रतिमा उपलब्ध हैं उनके सम्बन्ध में विद्वानों के विभिन्न मत हैं। सशय में यही कहना है कि इन चित्ततर मन राजा कीहा वाना अंश प्रक्षिप्त नहीं है। फिर सम्पूर्ण कथा को एक अयाक्ति मान लेना भी किसी को विरोध नहीं होना चाहिए क्योंकि पद्मावत की मूल कथा साधना की कथा है, सामान्य कथा नहीं। डा० सुधीन्द्र का कथन है कि 'पद्मावत एक त्रिराट आध्यात्मिक रूप में अथवा अयाक्ति है, जिसमें लौकिक, शारीरिक और वायव्य प्रतीका के द्वारा अलौकिक अशारीरिक और पारानासीक ब्रह्म जीव और उसके चिरन्तन सम्बन्ध अद्वैत की व्यञ्जना पा गई है।'

प० चन्द्रवती पाण्डय ने भी इस अंश को जायसी-कृत माना है।

कथन है कि कवि ने वाक्य की दो है

मानता भी ठीक नहीं है। हम तो

नागमता की अवहृता कर पद्मावती प्राप्ति का प्रयत्न का उसी दृष्टि से देखते हैं।

जिस दृष्टि से नागपत्नी मछरनाय को मिट्टी जाकर पत्निनी स्त्रिया के जात में

जाने की। वह पतन है उत्थान नहा। नागमती का प्रेम जितना दिख है उतना

पद्मावती का नहा।

श्री ए० जी० शिरेफ का कथन है कि सम्पूर्ण पद्मावत में कोई निश्चित अयाक्ति है इस विषय में मुझे सन्देह है। कवि ने उपसंहार में जो वाक्य दो है वह

१-प्रो० दानब्रह्मण्डल पाठक और प्रो० जीवन प्रकाश जागी जायसी और उनका पद्मावत प० १७६-७७।

२-वही प० १८०-८१।

३-पद्मावत का काव्य सौन्दर्य प १०६-३०।

४-डा० पीताम्बररत्न बह्यवान द्विवेदी अभिनन्दन प्रय, पद्मावती की कहानी और जायसी का अध्यात्मवाद, प० ३८५-४०१।

ताले में ठीक नहीं बठी।^१ डा० सूयकांत शास्त्री का कहना है कि अत्तार की तरह जायसी भी महान सूफी है। वे चित्तोर को शरीर, उतनसन को आत्मा सुआ को गुरु पद्मावती को बुद्धि राघव को शत्रुघ्न और बलाजहीन को माया के रूप में मानते हैं। इस प्रकार और भी व्याख्या देकर वे पद्मावत को अयोक्ति मानते हैं।^१

डा० माताप्रसाद गुप्त का कथन है कि 'यह (तन चितउर मन राजा की हा वाला) छत्र शुक्नजी के संस्करण में प्रायः अत में आता है और कथा के गुण्य का निवेश करता है। चित्तोर को तन राजा को मन, सिंहन को हृदय पत्थिनी को बुद्धि आदि बताता है। यह छत्र शुक्नजी को नवनकिशोर प्रेम और कानपुर वाले संस्करण में मिला था, बदायित्त इसलिए उन्होंने इसे प्रामाणिक मानकर ग्रन्थ के मूल पाठ में स्थान दिया। मूल केवल दो हस्तलिखित प्रतियों में यह छन्द मिला है प्रति १ तथा त० १। ये प्रतियाँ पाठ परम्परा में सबसे नीची पीढ़ी में आती हैं। इसलिए यह छन्द निश्चित रूप से प्रक्षिप्त है। किंतु इस छन्द को प्रामाणिक मान लेने के कारण जायसी के रूपक निर्वाह के विषय में शुक्नजी ने और उनके पीछे के जायसी के समर्थन आलोचना में कितना बड़ा वितंडावाच किया है।^१

डा० गुप्त को मूलतः चार प्रतियों में यह अंश मिला था। यह कहा जा सकता है कि किसी सूफी प्रचारक ने मन प्रचारक रूप का सद्भाविक जामा पहनाने की धुन में यह अंश पद्मावत में डाल दिया है।^१

इन पक्तियों के प्रकाश में सम्पूर्ण कथा पर रूपक रूप का ठीक आरोप नहीं हो पाता। इस से जायसी की कदम मायताओं का खण्डन भी हो जाता है। राघव को वही भी दून के रूप में नहीं माना गया है वह तो चित्तोर का निष्पाहित व्यक्ति है। यद्यपि यह अभी भी ज्ञातव्य है कि यह छत्र जायसी कृत है या नहीं तथापि यह छन्द जायसी की प्रतीक-योजना पर पर्याप्त प्रकाश डालता है।

इन पक्तियों से स्पष्ट ध्वनित है कि अरबी पारसी और हिन्दुई सभी

१-ए० जी० शिरोक पद्मावति (अग्रजी अनुवाक) भूमिका प० ८ १६४४।

'आई डाउट वेरी मच ह वेदर ही (दि पीएट) हेड एनी डिफिनिट एनीगरी प्रजेक्ट टू हिज माइड थू आउट हि वच ही गिम्स अस इन दी फस्ट स्टजा थाफ दी एनवाय टज नाउ आई एनी मीस फिज टि साक।

२-डा० सूयकान्त शास्त्री पद्मावति प्रीफेस पृ० २।

३-डा० माताप्रसाद गुप्त जा० प्र० भूमिका प० ११४।

४-वही, प० ६३।

५-पद्मावत का काव्य-सौंदर्य पृ० १३१।

भाषाभा म प्रम माग की प्रशंसा है । इन पत्तियों म यह भी आप्रह किया गया है कि पदमावत की प्रम कथा का इही प्रतीका के प्रकाश म विचार किया जाय ।

पदमावत म जायसी न अनेक स्थान पर अपने प्रतीका की आर इ गिन किया है । उही कथा के आरम्भ म स्पष्ट कर दिया है कि पदमावत म व्याप्राथ (आध्यात्मिक प्रेम पद्धति) ही प्रधान है । उसके प्रस्तुत अय को प्रवान मानने वाल उसी प्रकार मूल रम स क्विन रह जायेंगे, जम दादुर कमन की सुगधि का आनन्द ननी उठा पाता ।

कवि कियास कबला रस पूरा । दूरि सो नियर नियर सो दूरी ॥

नियरे दूर फूल जस काटा । दूरि जो नियरे अस गुह चाटा ॥

भवर आइ वन खन सन नेइ कवन क वास ।

दादुर वास न पावई भलरि जा आछ पास ।^१

सिंहन को दपण के समान बना गया है । सूफिया के महा दपण हृदय का प्रतीक माना जाता है —

सिंहन दीप कया अब गावों । औ सो पदमिति बरनि सुनावों ॥

निरमन दरपन भाति विमसा । जो जेहि रूप सो तसइ देसा ।^२

जायसी न पदिमनी का ब्रह्म-ज्यानि या परमात्मा के प्रतीक के रूप म माना है —

प्रयम सो जोति गगन निरमई । पुनि सो पिना माय मनि भई ॥

पुनि वह जा न मातु घन आई । तीरि ओरि बहु आरि पाई ॥

जस अचन मह धिप न दीया । तस उजियार शिवाव हीया ॥

सौने मन्दि मवार हि औ चन सब पीप ।

दिया जो मनि शिव ताक मह उपना सिंहनपीप ॥^३

रत्नवन जीवात्मा का प्रतीक है —

हों तो अहा अमरपुर जहाँ । इहा मरनपुर थाण्डे कहीं ॥

अब निउ तहाँ इहाँ तन मूना । नब नगि रहे परान बिहूना ॥

अहूँ हाय तन सरवर हिया-कवन ताहि माह ।

ननिह जानह निअरें कर पञ्चन अबगाह ॥

१-श्री० प० ना प्र० समा काशी, प ८ ।

२-श्री० प० १० (भाग १। १-२) ।

३-श्री० प० १६ (श्री० १) ।

४-पदमावत, भाग १२१ प० ११७ (निरगाव नामी) ।

हीरामन गुरु को स्पष्ट रूप से कवि ने गुरु का प्रतीक कहा है -

देखु अत अस होइहि गुरु दीह उपदेस ।

सिंघल दीप जात्र हम माता देहु अदेस ।^१

हीरामन राजा सौं बाला । एही समुद आइ सत डोला ।^२

एहि ठाव कह गुरु सग कीज । गुरु सग होइ पार तोलीज ॥

पूछा राज कह गुरु मुजा । न अनौं जाज कहा दिन उवा ॥^३

‘गुरु मुजा जइ पथ दिखावा पदमावत न जीवत रूप न द्रष्टव्य है ।

पदमावत के प्रतीक और उनके ‘यगाथ इस प्रकार है—

पदमावती	परमात्मा की ज्याति (परमात्मा)
रत्नसेन	जावामा
सिंहल	पवित्र हृदय
हीरामन गुरु	गुरु
नागमती	सामारिक सम्बन्ध
अलाउद्दीन	माया
राघव चेतन	शतान (नारद)
देवपाल और दो दूतियाँ	मन की पाप वस्तियाँ
सात समुद्र	सूक्तियों के सात जगल या आध्यात्मिक साधना की सात सीढियाँ
मानसर	मनम या ब्रह्मरूप
सिंहल-यात्रा	प्रम माग की यात्रा ।

उपसंहार वाले छन्द में प्रतीक योजना इस प्रकार है—

चित्तौड़	तन
रत्नसेन	मन
सिंहल	हृदय
पद्मिनी	बुधि
नागमती	दुनियाँ ध धा
अलाउद्दीन	माया
राघव चेतन	शतान
पदमावती की बया	प्रम-कथा

१-जा० प्र० ना० प्र० मभा काशी प० ५५ (गहा ५) ।

२-पदमावत (चिरगाव नामी) प १४६ ग १ १५६ ।

३-बही पृ १५२ गहा १५६ ।

५० विश्वनाथप्रसाद मिश्र का कथन है कि 'पद्मावत के उम अश को प्रशिक्षित ही माना जाय तो भी यह स्वीकार करने में कोई आपत्ति नहीं है कि पद्मावत के अध्ययन की परम्परा में यह बात स्वीकृत थी कि सारी रचना आयापदेशिक है। अतः पद्मावत के अध्ययन में उस रचना का उपमाग करना जायसी की स्थापना के विरुद्ध नहीं माना जा सकता। इसमें एक तो जो पिंड में है सो ब्रह्मांड में, जो ब्रह्मांड में सो पिंड में वाली धारणा दिखाई देती है और यह योग मार्ग से आई हुई है। इसमें तो स्पष्टतः ही अतःकरण के चार रूपां में से एक प्रकार का छोड़कर शेष तीन अर्थात् मन चित्त और बुद्धि क्रमशः राजा सिंहल और पद्मिनी के आयापदेश कहे गए हैं। मन सकल्प-विकल्प करने वाला होता है रत्नसन को भी इसी स्थिति में दिखाया गया है। चित्त अनुसंधानात्मक होता है और सिंहल भी अनुसंधानात्मक है। बुद्धि निश्चयारम्भ होती है अर्थात् ज्ञान के क्षेत्र की होती है। वह स्वयं ज्ञान स्वरूप है ब्रह्म भी ज्ञान-स्वरूप है। इसीलिए ब्रह्माचित्त लोग ने पद्मिनी और ब्रह्म को एक कर दिया है। मागदशक गुरु हीरामन मुग्गा है और विना गुरु व निगुण की प्राप्ति नहीं हो सकती। यदि यह अश कवि का लिखा हुआ नहीं है तब तो गुक्नजी का पक्ष और भी दृढ़ होता है अर्थात् इसका व्यंग्य ही मानना पड़गा बाच्य नहीं। इसलिए इस पद्धति का समासाक्ति ही कहना ठाक है अयोक्ति नहीं।"

उपयुक्त विवेचन और प्रस्तुत मत का आलोक में कहा जा सकता है कि पद्मावत समासाक्ति शैली का एक महानाय है अयोक्ति का नहीं।

अयोक्ति

तन चित्ततर मन राजा कीर्त्त तथा अय प्रतीकों को दृष्टि में रखकर कृद्ध विद्वानों ने पद्मावत की कथा को अयोक्ति मूलक कहा है।

यह सही है कि रत्नसेन का पद्मावती तब पट्टुचाने वाला प्रेम-पथ जीवात्मा को परमात्मा में ल जाकर मिलाने वाल प्रेम पथ का स्थूल आभास है। प्रेम-पथिक रत्नसेन एक सच्च साधक का रूप में उपस्थित किया गया है। पद्मिनी ही ईश्वर में मिलाने वाला ज्ञान या बुद्धि है अथवा चतयन्त्ररूप परमात्मा है इसकी प्राप्ति का माग बताने वाला मुआ सन्गह है। उस माग में अग्रसर हान से रोकने वाली नागमना सतार का जज्ञान है। तनरूपी चित्तोर का राजा मन है। राधक चतन शीतान है जो प्रेम का ठीक माग न बना कर इधर-उधर, भटकाता है। माया

१-५० विश्वनाथप्रसाद मिश्र हिन्दी साहित्य का अतीत ५० १७४-१७५।

२-पद्मावति प्रीति ५० २ (१९३६)।

में पड़े हुए मुलतान अलाउद्दीन को माया रूप ही समझना चाहिए । इस प्रकार जायसी ने सार प्रपञ्च को 'यग्य-गभित' कह लिया है । यदि कवि के स्पष्टीकरण के अनुसार 'यग्य अथ' को ही प्रस्तुत या प्रधान मानें तो जहा जहाँ दूसरे अथ भी निकलते हैं वहा वहा अयोक्ति माननी पडगी । पर ऐसे स्थल अधिकतर कथा के अंग हैं और पढते समय कथा के अप्रस्तुत होने की धारणा किसी पाठक को हो नहीं सकती । अतः इन स्थलों के वाच्यार्थ को अप्रस्तुत कह नहीं सकते । इस प्रकार वाच्यार्थ के प्रस्तुत और यग्यार्थ के अप्रस्तुत होने से ऐसी जगह सबत्र समासोक्ति ही माननी चाहिए । 'शुबल की न टीक ही लक्षित किया था कि पदमावत की कथा में सबत्र अयोक्ति नहीं है ।

जहा कथा प्रसंग से भिन्न वस्तुओं के द्वारा प्रस्तुत प्रसंग की यजना होती हो वहा 'अयोक्ति' होगी जस—

सूर उद गिरि चढा भुवाना । गहन गहा कवन क भिवाना ॥

यहा इस अप्रस्तुत के कथन द्वारा राजा रत्नसन के सिंहासन पर चने और पकड जाने की यजना की गई है ।

'कवन जा विप्रया मानसर विनु जन गज सुसाइ ।

अवहु बेनि फिर पलहे जो पिउ सीच आड ॥

यहा पर विरहिणी की दशा प्रस्तुत प्रसंग है और जनकमन का प्रसंग प्रस्तुत नहीं है । अतः यहा अप्रस्तुत से प्रस्तुत की व्यजना होने के कारण अयोक्ति है । यदि औपसंहारिक छंद को जायसीकृत मान लें और 'यग्य अथ' को ही प्रस्तुत या प्रधान मानें तो जहा-जहा दूसरे अथ निकलते हैं, वहा वहा भी अयोक्ति माननी पडगी किन्तु ऐसे कथा के स्थलों में सबत्र अप्रस्तुत की प्रधानता बाधक होती है । अतः पदमावत की अयोक्ति पद्धति का ग्रह मानने में बड़ी कठिनाई है । इस सके तिक कोश के अनुसार भी सम्पूर्ण कथा को अयोक्ति मानने में कठिनाई है । कम से कम अन्तिम तीन प्रतीकों में कथा की स्वाभाविकता और काव्य-सौन्दर्य में व्याघात उपस्थित हो जाता है ।

(१) क्या नागमती को दुनिया-घ घा माना जा सकता है ?

नागमती रत्नसन की प्रथम परिणीता पत्नी है । उसका पातिव्रत्य और उज्वल चारित्र्य आदर्श हिन्दू महिला के रूप में चित्रित है । पति म्तर स्त्री के सौंदर्य पर प्रलुप्ट होकर मिहन गमन करता है । वह सीता की भाँति उसके साथ जाना चाहती है । उसकी युक्तियाँ भी बड़ी उदात्त हैं—

मोहि भोग सा काज न वारी । सौह दोठि की चामनहारी ॥

सवनि न हासि तू बैरिनि, मोर कत जेहि हाथ ।
आनि मिलाव एक बैर तोर पाय मो माय ॥^१

यह भावना उस मानवता के सर्वोच्च आसन पर आसीन कर देता है । रत्न सेन की मृत्यु व अनन्तर पदमावती भी नागमती के साथ सती हो जाती है । अतः यदि यह कहा जाय कि पदमावती की तुलना में नागमती का चरित्र किसी भी प्रकार कम नहीं है तो उचित ही है ।

नागमती का दुनिया-धन-सामारिकता के ही ज्यों में माना जा सकता है । उसका द्वारा सवन अयोक्ति का विधान किया गया है यह मानना ठीक नहीं है, क्योंकि प्रस्तुत रूप में उसका चरित्र आदर्श भव्य और सती का है ।

(२) राघव दूत मोड़ सनानू ?

यह ठीक ही कहा गया है कि सूफी साधना में शतान या नारद साधक को साधना पथ से विचलित करता है । उसे साध्य की प्राप्ति का बाधक माना जाता है । जब रत्नसेन साध्य (पदमावती) समित गया तब शतान की क्या आवश्यकता वह पदमावत में दूत रूप में कहा आया है वह तो चित्तोर का निष्कापित और अपमानित व्यक्ति है ।

(२) अलाउद्दीन माया मुलतानू ?

यह रूपक है या प्रतीक ठीक नहीं जान पड़ता । रत्नसेन की भाँति अलाउद्दीन भी प्रज्ञा स्वरूप पत्निनी की प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील है । यदि एक क्षण के लिए सपूर्ण पदमावत को अयोक्ति मान भी लें तो भी अलाउद्दीन को माया कहना भ्रमपूर्ण रहेगा । राघव का दूत और अलाउद्दीन को माया कहना जचता नहीं । पदमावती ईश्वर की प्रतीक है रत्नसेन रूपी साधक पदमावती रूपी साध्य से मिल गया है । पुनः उस मित्र के अनन्तर शतान या माया की क्या आवश्यकता है ?

१—जा० प्र० ना० प्र० सभा काशी पृ० १६० (दोहा ३)।

विशेष डा० माताप्रसाद गुप्त ने उसे प्रक्षिप्त माना है । उन्होंने १४ प्रतियाँ के आधार पर पदमावत का संपादन किया है । उन्हें केवल तीन प्रतियों में यह छः नहीं मिला । शेष ११ प्रतियाँ में यह छः था । रामपुर स्टेट पुस्तकालय में पदमावत और कहरानामा की एक अत्यन्त मुद्रा प्रति है । इस प्रति में भी यह छन्द है अतः इस अंश का प्रक्षिप्त नहीं माना जाना चाहिए । (प्रक्षेप ३६१ अ, पृ० ५८२) प्रसंग के अनुसार भी इस छन्द की वहाँ आवश्यकता है । मरे मत में इस छन्द का प्रक्षिप्त कहने का कोई आधार नहीं है ।

दृष्टव्य, डा० माताप्रसाद गुप्त, जा० प्र० भूमिका पृ० ७४ । और प्रक्षेप २६१ अ पृ० ५८२ ।

और माया उसे स्वयं अपनी पत्नी बनाने के लिए आश्रमण छल यदि क्यों करती है ? वस्तुतः माया का प्रयोजन साधना की अपूर्णावस्था में ही साधक को पवत्रष्ट करने का होता है ।

निष्कपत कहा जा सकता है कि चाहे यह छल जायसी वृत्त हो या किसी अन्य व्यक्ति द्वारा विरचित पर इसमें जायसी के प्रतीक विधान पर अच्छा प्रकाश पड़ता है । यह कहना कि कवि ने इसके द्वारा कथा की लौकिकता को दिखाने के लिए एक जामा पहिनाया है जिसमें सबसाधारण उमकी आध्यात्मिकता में विश्वास रख्य निराधार है । डा० माहनसिंह और डा० कमलकुल श्रेष्ठ का यह अनुमान कि कवि ने सारे कथात्मक का शरीर के ही अन्दर घटित किया है जिसमें कवि असफल है और काव्य निखन के बाद कवि ने यह यास्या दी है काय रचना के समय कवि के मस्तिष्क में ऐसी कोई बात नहीं थी महत्वहीन है । स छल के आधार पर पदमावत को अयोचित मूत्रक नहीं माना जा सकता ।'

समासोक्ति मूलक अभिव्यक्ति

पदमावत में चार चालू लगान वाली समासोक्ति मूलक अभिव्यक्ति का बड़ा महत्व है । वस्तु-वर्णन के प्रसंग में जायसी ने प्रायः इस प्रकार के विगोपणों का प्रयोग किया है जिसमें प्रस्तुत के साथ अप्रस्तुत परोक्ष सत्ता का अर्थ भी पाठक के चित्त में जनायाम उदभासित हो सके जम सिंहनगर व वर्णन के प्रसंग में नौ पौरी और उनके बाद दमकें दरवाजे बान नगर का संकेत पाठक को नौ द्विधा और दसवें ब्रह्मरक्ष बान शरीर का संकेत उपस्थित करते हैं । इसी को समासोक्ति पद्धति कहा जाने लगा है । समासोक्ति एक अलंकार है जिसकी सुन्दरता विगोपणों के प्रयोग पर निर्भर करती है । इसलिए इस शास्त्र में विगोपण विच्छिन्नमूत्रक अर्थात् विगोपण की सजावट पर निर्भर रहनेवाला अलंकार कहा जाता है । यह श्लेष से भिन्न है क्योंकि श्लेष की सुन्दरता विगोपण और विगोप्य दोनों की सजावट पर निर्भर है । इसीलिए उस विगोपण-विच्छिन्नमूलक अलंकार कहते हैं । श्लेष में कवि दो अर्थ बनाने के लिए वचनबद्ध होना है किन्तु समासोक्ति में वह शीघ्र के साथ ऐसे विशेषणा का प्रयोग करना है जो सहज्य के चित्त में वचन अप्रस्तुत अर्थ का संकेत भर कर देते हैं । इसमें कवि आदि में अनेक दो अर्थों के निर्वाह के लिए प्रतिपादक नहीं होता । जहाँ और जब उन्ने मोहा भिन्न जाता है

१—दृष्टव्य पदमावत का काव्य सौंदर्य अध्याय २ पृ १३२-३४ ।

२—समासोक्ति ममथय काय विगोपण ।

व्यवहार समाराप प्रस्तुतेषाम्य वस्तुन । साहित्यरूपण (पीवी वाणे पृ० ४०)

द० परि०, वा० ५-६ ।

यहाँ और तब कुछ विषयों का ऐसा प्रयोग करता है जिसमें पाठक के हृदय में उसका अभिप्रेत अस्तित्व भी आ उपस्थित होता है। जायसी ने अपने प्रबंध काय में इसी समासोक्ति पद्धति का प्रयोग किया है। काव्य के अंत में तब चित्त उठ मन राजा की-या जो सकेत है वह मूल श्रवण का नहीं है। पदमावन की प्राचीन प्रणियों से यह बात सिद्ध हो सकती है। इसलिये जो लोग पद पद पर पदमावन का रूपक निर्वाह की बात मानते हैं। पदमावन का कवि रूपक निर्वाह के लिए प्रतिष्ठा बद्ध नहीं है। कई बार प्रसंग आने पर उतन जब लौकिक सीमाओं की ओर इशारा किया है, तो ऐसे स्थानों में अप्रस्तुत इशारा ही प्रधान हो जाता और प्रस्तुत प्रसंग गौण हो जाता है। यहाँ काव्यगत दाप है। सिंहलगढ़ के वणन के प्रसंग में जहाँ तक नौ पौरियों दस दरवाजा और राज परिवार के वणन का प्रसंग है वहाँ तक तो समासोक्ति का बहुत सुन्दर निर्वाह हुआ है पर जहाँ कवि का निश्चित माटी का भाव कह कर अनादानी देने लगता है वहाँ उसका कवि रूप गौण हो जाता है और सत-रूप प्रधान हो जाता है। यहाँ समासोक्ति पद्धति का निर्वाह ठीक नहीं हो पाया है।

अन पदमावन की कथा अयोक्ति मूलक नहीं है क्योंकि उसमें वाक्यांश और अर्थगत दोनों का महत्त्व है। यद्यपि कवि का लक्ष्य सामान्य लौकिक प्रेम के माध्यम में पाठकों के मन का आध्यात्मिक प्रेम के क्षेत्र में पहुँचाना है। अपने लक्ष्य की पूर्ति के लिए ही उसने प्रतीत योजना और मानविक-पद्धति का सहारा लिया है और जहाँ इनमें भी उस मनाप नही हुआ है वहाँ उसने सीध-सीध उपदेशात्मक ढंग से पारमार्थिक तत्त्वा का निरूपण किया है। उस तरह (डा० शम्भू नाथसिंह का कथन है कि) पदमावन में चार प्रकार की अभिव्यक्तियाँ दिखाई पड़ती हैं।

(१) अयोक्तिमूलक—जिसमें प्रस्तुत मन्त्रहीन है अप्रस्तुत आध्यात्मिक अर्थ ही कवि के अभिप्रेत है। जम—

गङ्गा पर नीर खार दुइ नदी । पाना भरहि जम दुग्गणी ॥

और कुठ एक माना चूरु । पाना अक्षिन् कीच बपूरु ॥

(२) समासोक्ति मूलक अभिव्यक्तियाँ—जिसमें प्रस्तुत और अप्रस्तुत दोनों का वणन करना कवि को अभिप्रेत रहता है। जम—

ए रानी मनु दसु विचारी । एहि नहर रहत नि चारी ॥

जो लहि अहे पिना कर राजू । छति लहु जो सतहु आजू ॥

पा नामुर हम गौनव कानी । किन नम निन दम सरवर पानी ॥

(३) लौकिक पक्ष का अभिधामूलक वणन—जिसमें कोई दूसरा अर्थ नहीं है ।

(४) केवल आध्यात्मिक पक्ष का अभिधामूलक और उपदेशात्मक वणन जिसकी प्रस्तुत कथा के प्रसंग में कोई उपश्रान्ति या अर्थ नहीं है, जैसे—
 सब दुवार तार क रेखा । उनटि निटि जो नाव सो देखा ॥
 तू मन नावु मारि क स्वासा । जी प मरहि जापुहि क नासा ॥

डा० शम्भूनाथमिह का आग्रह है कि पदमावत के अधिवास कथा प्रसंग और वणन इसी प्रकार के साकेतिक अर्थ ध्वनित करने वाले हैं और पूरी कथा भी अपने समग्र प्रभाव के रूप में इसी सकेत पद्धति के कारण एनीगोरी प्रतीत होती है । एनीगोरी को हिन्दी में प्रतीक कथा कहना अधिक सही प्रतीत होता है क्योंकि अयोक्ति और समासोक्ति मूलतः अलंकार है । पदमावन के पात्र और अनेक घटनाएँ तथा वस्तुएँ प्रतीकों के रूप में उपस्थित की गई हैं । अतः उसे प्रतीकात्मक काव्य और उसकी कथा को प्रतीक-कथा, कथनात्मिक उपपन्न प्रतीक होता है ।^१

पदमावत की कथा को प्रतीक कथा कहना और उस काव्य को प्रतीकात्मक काव्य मानना ठीक होते हुए भी ठीक नहीं है । ठीक इसलिए है कि पदमावन में प्रतीक योजना है और प्रचुर परिमाण में है पर उसकी प्रस्तुत कथा का भी पर्याप्त महत्त्व है प्रतीक शब्द द्वारा प्रस्तुत से ध्यान हटकर अप्रस्तुत की ओर चला जाता है । पदमावन में प्रतीकात्मक की योजना है और इसी कारण उसे प्रतीकात्मक काव्य नहीं कहा जा सकता । वस्तुतः न तो पदमावत एनीगोरी है और न सिम्वात्मिक या प्रतीकात्मक । उसमें स्थान स्थल पर पराक्ष मत्ता की आर इ गित अवश्य हैं उसमें प्रतीक अवश्य प्रयुक्त हैं किन्तु मूलतः वह प्रमगाथा है जिस जायसी ने 'भाषा चौपाई में लिखकर प्रस्तुत किया है । उसमें समासोक्ति शब्दों का प्रयोग हुआ है । आचार्य गुप्त जी ने ठीक ही कहा था कि जन्म जन्म प्रसंग में प्रस्तुत वणन में अध्यात्म पदों का कुछ अर्थ भी युग हा वहाँ-वहाँ समासोक्ति ही माननी चाहिए ।^२ सचमच पदमावन के सारे वाक्यों के लक्ष्य अर्थ नहीं हैं । सब अर्थ पक्ष के व्यवहार का आरोप नहीं है । केवल बीच-बीच में कहीं कहीं दूसरे अर्थ की व्याख्या होती है । ये बीच-बीच में आये हुए स्थान, जमा कि कहा जा चुका है अधिकतर तो कथा-प्रसंग के अर्थ हैं जहाँ मिहलग की लगभग और गिनत द्वीप

१—डा० शम्भूनाथमिह हिन्दी मन्त्राव्य का स्वरूप विकास पृ० ४७२-७३ ।

२—प० रामचन्द्र गुप्त ज्ञान प्रभुमिता, पृ० १७-१८ ।

के माग का वषण रतमन का तूफान म पत्ता और सजा क राक्षस द्वारा वह
 काया जाता । अत इन् स्वर्णों म वाक्याय सं अत्र अथ जा सायना पत्र म व्यग्य
 रक्षा गया है वह प्रवच काय की दृष्टि स अग्रम्नत ही कहा जा सकता है और
समासाक्ति हा माननी पत्नी है ।^१

१० कमनकत अठ का कथन है कि एत प्रकार पदमावती के पहल
 ग्यारहवे तक श्री प्रतीत होता है कि माना यह क्या अपनी आध्यात्मिक समा
 सोक्ति रखती है । सत्य म परिणाम यह है कि ग्यारहवें खण्ड तक तो नहीं-कही प्रेम
 की अनुभूति नि प्रती है परन्तु उसक पश्चात वह लौकिकता की ओर झुक चली
 है । और पूराद्ध के पश्चात वह एकमात्र लौकिक रह गई है । यत्र रहस्यवाद जसी
 किमी बन्धु वा कथ भी आभाम है तो वह पूर्वाद्ध के पहले ग्यारह खंडो म है
 शय म नही । कवि उसरा निर्वाह नहा कर मवा । धीरे धीरे वह अयोक्ति की भावना
 उसकी मटनी से छूटने लगी और उतराद्ध म वह प्रिकुत निकल गई है ।^१

इम प्रकार क मना क विरोध म दृता ही कहा जा सकता है कि केवल
 ग्यारहवें खंड तक ही १०। अतितु सम्पूर्ण पदमावन म समासोक्ति वाल स्मृत मिलत हैं ।
 सम्भवत बुद्ध तागा न समासाक्ति पद्धति क मूनभूत अथ का ठाक सं नही समझा
 है । अगर कहा जा चुका है कि समासाक्ति-पद्धति म कवि सवत्र दो अर्थों के स्पष्टी
 करण क लिए प्रयत्न नहा करता । उमे जहा और जब अवसर मिलता है तहाँ और
 तब विशेषण विच्छिन्नमूनक अत्रकार शनी का प्रयोग करता है और इस प्रकार
 वह प्रस्तुत अथ के साथ ही अभिप्रत अग्रस्तुत अथ भी उपस्थित कर देने का प्रयत्न
 करता है । इम पदा पद लिखलान का प्रयत्न करेंगे कि पत्मावत म आदि सं अन्त
 तत्र समासाक्ति पद्धति से स्थल-स्थल पर परोप सत्ता की आर इ गित करना कवि
 वा एउ मूल उद्देश्य है ।

रतमन लिखी म अनाउहीन की क म है । रानी पत्मावती वित्तीह में
 विलाप करती है —

सा लिखी अग निबन्धु मू । कहि पूडु को कौ सदेमू ॥

नी कोइ जाइ तहा कर हाई । गो आव किछ जान न माई ॥

अगम पथ गिय तहा मिधावा । जा र गणउ मा बहुरि न आववा ॥^१

पत्मावत म य वाक्य प्रस्तुत प्राग ना वषण करते हैं । इम परनीक-मात्रा
 का अथ भी व्यंग्य है । यत्र वाक्याय का प्रस्तुत और ज्यगथाय का अग्रस्तुत मानकर

१-५० रामकड गुन १० प्र० भूमिरा ५० ५७ ।

२-३० कमनकत अठ म० मु० जायसी ५० १०२-१०३ ।

३-जा० ५० १० प्र० सभा, वाशी ५० ६४ ।

तथा 'काई किछ जान न और बहुरि न दावा को दिल्ली गमन और परलोक गमन दोनो के सामाय काय ठहराते हुए दिल्ली गमन म परलोक गमन के व्यवहार का आरोप करके हम समासोक्ति ही कह सकते हैं' ये पत्तिया ४८ वें खंड (पदमावती नागमती विनाय खंड) से ली गई है। समासोक्ति के मुन्तर विधान के उदाहरण स्वरूप कतिपय अर्थ स्थान भी दिए जा सकते हैं —

सो नाह आव रूप मुरारी । जासौ पाव सोहाग सुनारी ॥

साथ भए धुरि धुरि पथ हेरा । कौन सोघरी कर पिउ फरा ॥^१

ये पत्तिया नागमती विभाग खण्ड (३० वा खण्ड) से ली गई हैं। जासो पाव सोहाग सुनारी कौन सो घरी कर पिउ फरा मांस भए आदि म प्रस्तुत के साथ अप्रस्तुत अर्थ भी अभिप्रेत हैं। साथ भए का जय है सावना की पूजता या वधावस्था सोहाग सुनारी का अप्रस्तुत अर्थ प्रियतम के साथ सुहागिन कौन सो घरी कर पिउ फरा का अप्रस्तुत अर्थ है कि प्रियतम (ईश्वर) की कृपा दृष्टि किस क्षण हो जाय।

जिह् एहि हाट न लीह वेनाहा । तारह आन हाट कित लाहा ॥^१

कोई कर बेसाहनी काहू केर बिकाए । काई चल ताम सन कोई मूर गवाइ ॥
प्रस्तुत अर्थ सिहन के हाट का है। यहां अप्रस्तुत अर्थ जो 'यग रखा गया है स्पष्ट है —

नौ पौरी पर दसव दुआरा । तेहि पर बाज राज घरियारा ॥

घरी सो बठि गन घरियारी । घरी घरी सा आपनि वारी ॥

जबही घरी पूरि तेइ मारा । घरी घरी घरियार पुकारा ॥

परा जो डाढ जगन क टाटा । वा निचित मानी क भाडा ॥

कचन विरछि एक तहि पासा । जस कनपतर इन्द्र कबिनासा ॥

राजा भए भिवारी सुनि आदि अमृत भोग ।

जेइ पावा सो जमर भा ना कछ 'याधि' रोग ॥

यहाँ सिहनगद के प्रस्तुत प्रसंग के द्वारा अप्रस्तुत अर्थ की ओर भी इशारा किया गया है। नौ पौरी और दसव दुवार अर्थात् नौ छिन् और दशम ब्रह्म रघ्न । कचन वक्ष क'पवश है। आचार्य द्विवेदी जी का विचार है कि वा निचित

१-प० रामचन्द्र गुजन जा० प्र० भूमिका प० ५७ ।

२-जा० प्र० ना० प्र० सभा काशी पृ० १५७ ।

३-जा० प्र०, ना० प्र० सभा, काशी पृ० १५७ ।

४-बही, प० १५-१६ ।

माटी व भाडा म कवि का सत रूप प्रधान हो उठा है और कवि रूप गीड और पहा समासाक्ति पद्धति का निर्वाह ठाक नहीं हो पाया है।

इस प्रकार के स्थल पदमावत म आदि स लेकर अत तक आते है। जायसी प्राय अवसर मिनत हा प्रस्तुत अथ म ही एमी व्यञ्जना अनुसूत करते है कि अप्रस्तुत अथ की ओर भी धारा स्पष्ट हा जाता है। इस प्रक्रिया म प्राय उनका कवि रूप प्रधान है पर कही रही उनका सत रूप भी प्रधान हा जाता है और व उपदेश देन लगते है। जैसे — का निचिन माटी क भाडा।^१ पर इस प्रकार के स्थल-कम है।

‘इस प्रकार के सवेनात्मक स्थलों की व्यञ्जकता (सजेस्टिवनेस) अत्यन्त हृदयस्पर्शी है और है उत्कृष्ट-काव्य सौन्दर्य सम्पन।’^१

रूप-सौंदर्य-घर्णन एव अप्रस्तुत-विधान

रूप-सौंदर्य-घर्णन —

पदमावत म रूप-सौंदर्य घर्णन की योजना मूल्यत आठ स्थान पर की गई है। इनम दो स्थलों पर पदमावती के (अनीतिक सौन्दर्ययुक्त) रूप का घर्णन अत्यन्त उत्कलित भाव म किया गया है।

(१) हीरामन गुक द्वारा ब्रित्ती के राजा रतनसेन से, और

(२) रामव चतन द्वारा दिल्ली क बादशाह अलाउद्दीन से।

इन दोनों स्थलों क घर्णन नखशिन घर्णन की प्रणाली पर है। रूप-सौंदर्य घर्णन म प्रयुक्त उपमान अधिकतर परम्परा प्रचलित है। ये दीघकाल स इस देश क आलकागिको मे प्रसिद्ध है। बुद्ध उपमान फारसी साहित्य के प्रभाव स भी आए हुए है। कछ उपमान लीन गहीन है। बुद्ध उपमाना को नवीन मौलिक उपमान कह कर समादृत किया जा सकता है।

एन अनेक प्रकार क उपमानो की नियोजना का एक ही लक्ष्य रहा है— स्त्री रूप के आन्ध सौंदर्य की कल्पना। रूप-घर्णन की योजना द्वारा कवि क उद्देश्य की सिद्धि भी हुई है। यह रूप घर्णन क माध्यम स अलौकिक सौन्दर्य की ओर इ गित नी करता गया है। अनीतिक सौन्दर्याभियक्ति भी उसका एक उद्देश्य था। लौकिक सौन्दर्य का घर्णन करने हुए अवसर पान ही कवि उसक अनीतिक मूर्ति व्यापारी सौन्दर्य की अभिव्यजना करन लगता है—

१-प० हजारीप्रसाद द्विवेदी हिन्दी साहित्य, प० २७६।

२-पदमावत का काव्य-सौंदर्य प० १३६।

जेहि दिन दसन जानि निरमई । बहुत जाति जोनि आहि मई ॥
रवि ससि नखत दिपाहि ओहि पोती । रतन पदारथ मानिक माती ॥
जह जहें बिहगि सुभावहि हसी । तह तह छिटकि जाति परगसी ॥
यहाँ पर दाता का वणन करते करते कवि की भावना अनन्त ज्याति की
ओर बढ़ गई है ।

(१) रूप का मुख्य प्रतीक पारस और उसकी व्यवस्था

जायसी ने पदमावती के अप्रतिम रूप को पारस रूप की संज्ञा दी है ।
पारस रूप वह रूप है जिसके आभास अर्थात् छायास्पर्श से निखिल समृति प्रोदभा-
सित है । उसी की प्रातिभासिक स्पर्श दीप्ति से यह जगत रूपवान है । जगत की
अदभुत रूप माधुरी का मूलभूत कारण भी पारस रूप ही है ।

पदमावत में अनेक स्थला पर पदमावती के पारस रूप की चर्चा आई
है । इसमें (पदमावत में) कवि ने पदमावती के जिस अपूर्व पारस रूप का वणन
किया है वह अपना उपमान आप ही है । कवि जब पदमावती के रूप का वणन करने
लगता है तब उसका सम्पूर्ण अन्तर तरल होकर ढरक पड़ता है । पारस रूप
वह रूप है जिसके स्पर्श से यह सारा ससार रूप ग्रहण कर रहा है । पदमावती
में वही पारस रूप है । पदमावती के रूप-वणन के बढ़ाने भक्त कवि न चरतुत भग-
वान के प्रभाव का वणन किया है ।— इस रहस्यमय पारस रूप का आभास देने
के लिए जायसी ने अत्यन्त मार्मिक दृश्यों की योजना की है । वे सदा लौकिक दार्ष्टिक्य
और सौंदर्य का उत्थापन करते हैं । विनोपणा और क्रियाओं के प्रयोग-कौशल से उस
अलौकिक दीप्ति की ओर मोड़ते रहते हैं । उद्दान उस प्रकार एक अपूर्व काव्य की
सृष्टि की है ।^१

जायसी ने सवप्रथम मिहन द्वीप-वणन खण्ड में पदमावती के पारस रूप
की ओर इंगित किया है । — औ सो पत्तिनि बरनि मुनावीं ।

निरमल दरपन भाति विसेखा । जो जहि रूप सो तसइ देखा ।^२

इन पक्तियों में स्पष्ट रूप से पारस रूप की चर्चा यहाँ की गई पर उस
अलौकिक रूप की ओर इंगित तो कर ही लिया गया है ।

जायसी ने मानसरोवर खण्ड की अन्तिम पक्तियों में स्पष्ट रूप से पदमावती
के पारस रूप का वणन किया है । पारस रूप वणन के साथ ही उद्दाने का अर्थ
साक्षात्कार, लोकोत्तर प्रभाव का एक सन्निवृत्त चित्र भी प्रस्तुत किया है । पारस

१—आचाय डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी मध्यकालीन घमसाधना पृ० २०६ २०७ ।

२—जा० ग्र० (ना० प्र० सभा काशी), पृ० १ ।

रूप वाली पदमावती १। जरा सी हसी मानसरोवर म विद्विध रूपो मे छा उठी-

‘बहा मानसर चाह सो पाई । पारस रूप इहां लगि आई ॥
भा निरमल तिअ पायह परम । पावा रूप रूप क दरसे ॥
मलय समीर वाम तन आई । भा शीतल तन तपनि बुझाई ॥
ततखनहार बेगि उतराना । पाया सतिह चअ विहसाना ॥
बिगमा बुझुद अखि ममि रेखा । न तह थाप जहा जाइ देया ॥
पावा रूप रूप रम चाहा । ससि मुष जम दरपन होइ रहा ॥
नयन जो देखा कबल भा निरमल नीर सरीर ।

हमत १। दखा ह्य भा दसन जाति नग हीर ॥’

यह है पदमावती व पारस रूप का लोकोत्तर-मण्डि व्यापार प्रभाव । जिस प्रकार पारस पत्थर स्पश मात्र स कुधातु को रण बना देता है उसी प्रकार पदमावती का ‘पारस-रूप समस्त सण्डि को अपन रंग म रंग सकता है । उसी के आलोक स समग्र ससृति आनीकित है । पारस रूप वाली पदमावती सरोवर के पास तक चनी आई-तब सरोवर उन घरणो के स्पश करने मे निरमल हा गया । पावा रूप रूप के रंग उम पारस रूपा के दणन मात्र स सरोवर रूपवान हो गया । उसकी चद्रवला का देखकर कुमद विकसत गभ आदि ।

जापसी न राजा-नुआ सबाद खण म भा पदमावती क ‘पारस रूप’ के मण्डि व्यापार प्रभाव की लाभात्तर कल्पना का है—

मुनि रवि नाव रतन भा राता । पणित करि उटै बहु जाना ॥
अब हीं सुरज चाअ वह छाया । जन विनु मीन रक्त विनु काया ॥
सहमी कराम्य मन भूता । जहा जहे दीअ कवा जनु पूता ॥
तहा मवर जिउ कवला गधी । भइ ससि राहु करि रिनि बधा ॥
तीनि लार चीदह सड सर्बाह परे माहि भूझि ।

पम द्याडि नहि लोन निछु जा दखा मन वझि ॥’

उन पत्तियो म जह-जह दीठि कवल जनु पूता आति म पारस रूप की अलौकिक-अप्रतिम कल्पना को साकार जीवन रूप म अभिव्यक्त किया गया है ।

जायसी रूप-भौत्य का वणन करने समय यथावसर प्राप्त परोप सत्ता की ओर इ गित करने स नही चूकत । आ प्रत्यगा का वणन करने समय भी वे उस शिव्य रूप-पारस रूप-का वणन करना नरा भूलत । नीच की पत्तियो म निनाट

१-जा० प० (ना० प्र सभा काशा) पृ० २५ ।

२-वही पृ० २६ ।

की काँति का वणन करते हुए जायसी ने उसकी लोकोत्तर तथा सृष्टि व्यापी ज्योति का भी वणन किया है। वे समस्त विश्व की ज्योति का उसी की ज्योति में द्योतित और प्रोदभासित बताते हैं—

पारस जोति लिलार्त्तहि आती । दिष्टि जो कर होय तेहि जोती ॥^१

ससि औ सूर जो निरमल तेहि लिनाट क ओप ।

निसि तिन दौरि न पूजहि पुनि पुनि होहि अलोप ॥

अलाउद्दीन जस अधम पात्र ने भी उस पारस रूप की प्रातिभासिक सत्ता का आभास मात्र पाया था ।

बिहसि झरोखे आइ सरखी । निरखि साह दरपन मह देखी ॥

होतहि दरस परस भा लोना । घरती सरग भएउ सब सोना ॥^२

स्पष्ट है कि अलाउद्दीन ने दपण में उस पारस रूप घानी-पद्मावती क स्मित आनन का प्रतिबिम्ब मात्र देखा था । उस रूप की झलक से ही अलाउद्दीन अपनी सुधि-बुधि भून गया-मूर्च्छित हो गया । उस घरती से स्वयं तक सबत्र स्वण ही स्वण दष्टिगोचर होन लगा ।

इस विवेचन में स्पष्ट हो जाता है कि जायसी का रूप सौंदर्य या रूप वणन का मुख्य प्रतीक पारस है । पारस रूप में घरती और स्वयं को स्पष्ट मात्र से स्वण बनाने का महान गुण है ।

रूप सौंदर्य का सृष्टिव्यापी प्रभाव और उसकी लोकोत्तर कल्पना

(२) रूप की सावभौमिकता

प्रमाख्यानक काव्य के नक्षशिख (जिसे शिखनख भी कहा जा सकता है क्योंकि इन कविया ने शिख से वणन प्रारम्भ किया है) वणन में एक प्रवृत्ति समान रूप में दिखलाई पड़ती है । ये कवि सौंदर्य की चरम सीमा को दिखाना चाहते हैं । उसके लिये सुन्दरतम उपमान लाना चाहते हैं ।

पद्मावत में रूप सौंदर्य ही सम्पूर्ण आख्यायिका का आधार है । अतः पद्मावती के सौंदर्य का बहुत ही विस्तृत वणन कराया गया है । यह वणन यद्यपि परम्परायुक्त ही है अधिकतर परम्परा में चर आते हुए उपमानों के आधार पर ही है परन्तु कवि की भावी-भावी और प्यारी भाषा के बल से यह वणन के हृदय को सौंदर्य की अरिमा भावना से भर देता है । सृष्टि के जिन जिन पदार्थों में सौंदर्य

१-जा० प्र० (ना० प्र० सभा काशी) पृ० २११ ।

२-वही पृ० २५३ ।

३-वही भूमिका - पृ० ८६ ६० ।

की सचक है पद्मावती के रूप राशि की योजना के लिए कवि ने मानो सबको एकत्र कर दिया है। जिस प्रकार कमल चन्द्र हम आदि अनेक पदार्थों से तिलात्तमा का रूप सघटित हुआ था उसी प्रकार कवि ने मानो पद्मावती का रूप-विधान किया है। पद्मावती का सौंदर्य अपरिमय अलौकिक और शून्य है। रत्नसन की दृष्टि सेंसार के सारे पदार्थों से फिर जाती है उसका हृदय उसी रूप-सागर में मग्न हो जाता है। वह जोगी हाकर निचल पडता है।

‘नयन जो देखा कवल भा निरमन नीर समीर ।

हसत जो देखा हस भा दसन जोति नग हीर’ ॥

पद्मावती के सुमधुर मद हास के प्रभाव स्वरूप गुग्गु धवन शोभा अनेक रूपा म सरोवर म विकीण हो रही है। उमके हमते ही चन्द्र किरण सदश ज्योति विकीण हुई जिससे सरोवर के कुमुत्त खिल उठे। उसके इन्द्रवदन के सम्मुख सारा मानसरोवर दपण-सा हो उठा अर्थात् उसम जो जो सुन्दर वस्तुएँ लिखाई पडती थी वे सब मानो उसी के अगो की छाया मान थी। सरोवर म चतुर्दिग जो कमल लिखाई पड रह थ व उमके नन्ना क प्रतिबिम्ब थ जन जो इतना प्राज्ञ और धवन लिखाई पड रहा था वह उसके स्वच्छ एव निमग्न शरीर के प्रतिबिम्ब के ही कारण। उसके हाम की गुग्गु कानि की छाया के हस थे जो च्चर उभर दिखाई पडते थ और उस मानसरोवर म जा हीरे थ व उसके दर्शनों की उभवन दीप्ति स उत्पन हो गय थे।

जायसी भावना रूप म उस रहस्यमय मून सत्ता का साक्षात्कार कर चुके थ। अत सृष्टि के मार मुन्दर पदार्थों म उसी भावभौम सत्ता का प्रतिबिम्ब देखते थ।

इसे जायसी की रूप-सौन्दर्य के सृष्टि व्यापी प्रभाव की नोबोत्तर कल्पना की सना दी गई है। आचाय प० हजारीप्रसाद द्विवेदी ने पद्मावती के रूप-वर्णन की विशेषताओं पर विचार करत हुए लिखा है। केशा की दीपना सघनता और श्यामता के वर्णन के लिए परम्परा से प्रचलित पद्धति के अनुसार कवल सांश्व पर जोर न दकर कवि ने उसके तान-व्यापी प्रभाव की ओर सकेन किया है।^१ वस्तुतः जहाँ कहा जायसी का अवसर भिन्न है व तरन्त शनप ममासोक्ति आदि के माध्यम से सृष्टि व्यापी - सौन्दर्य की ओर इ गित करने में नहीं चूकते। जम -

सरवरनीर पत्तिमनी आई । साया छोरि बेश मुकुनाई ॥

भोनेई घटा पर जग छाहा । समि क मरन लीह जनु राहा’ ॥

१-जा० प्र० (ना० प्र० सभा काशी) भूमिका पृ० ५५।

२-आचाय डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी हिन्दी साहित्य।

३-जा० प्र० (ना० प्र० सभा, काशी) पृ० २४।

बेनी छारि झार औ बारा । सरग पनार होइ उजियारा^१ ॥

(बेनी खोल कर केश ज्ञान्ने से स्नग और पानान उदभावित हो उठे) ।

घन घटा सं केश समार को अपनी छाया शीलता और माधुरी प्रदान करते हैं । इसी प्रकार पुतलिया का वणन करते हुए भी उनसे सृष्टि-यापी प्रभाव की अभिव्यजना की गई है -

जग डोन डोनत ननाहा । उलनि अडार जाहि पन माहाँ ॥

जबाहि किराहि गगन गहि बोरा । असव भवर चक्र क जोरा^२ ॥ आदि ।

ध्यान देने पर स्पष्ट हो जाता है कि जायसी काव्य मूलक उपमानों के माध्यम से कवन माधारण धम को ही बताकर विरत नहा हो जाते अतितु उसके लोक-यापीप्रभाव को भी स्पष्ट कर रहे हैं । निम्नलिखित कनिष्य स्थानों से रूप-सौन्दर्य के सृष्टि-यापी प्रभाव और उनकी तोकोत्तर कल्पना की बात और अधिक स्पष्ट हो जायगी - इन पक्तियों से रूप की साधुभूमिकता की भावना अधिक स्पष्ट हो जायगी - इन पक्तियों में स्पष्ट रूप से ईश्वरीय सत्ता की आर इ गिन भी किया गया है -

भौंहे म्याम धनुज जन ताता । जामहु हर हन विष बाना ।

उहे धनुक निरगुन पर जहा । उहे धनुक राखी कर ग्या ॥

ओहि धनुज रावन सघारा । जाहि धनक कनागुर मारा^३ ॥ आदि

(पद्मावती की भकुटि विनास (धनु धनक) का सृष्टि-यापी प्रभाव)

बहनी का बरनी इमि बनी । साध बान जान दुइ अनी ।

(बहनी का बागा का हन देकर ससार के राम-राम में उसका अस्तित्व धारित करना वास्तव में उच्च कोटि का सकेत है । — — यह कवि की प्रतिभा की महानता है) ।

उह जानह अस को जा न मारा । बधि रहा मगरीं ससारा ॥

गगन नखन जो जाहि न गने । बगव बान जाहि के हा ॥

धरती बान बधि मब राखी । साखी ठा देनि सर साखी ॥

ऊपर उद्धृत चौपाइयों में स्पष्ट है कि पद्मावती के रूप वणन में जायसी ने सौन्दर्य के सृष्टि-यापी प्रभाव की जाफानर कल्पना की है ।

१-पा० प्रा० (म प्र सभा रागी), पृ० ४१

२-वही, प० ४२ ।

३-जा० प्र (ना० प्र० गभा बागी) नलशिल्ल खण्ड ।

४-डा० रामकुमार बमा लिखी साहित्य का आनन्दनारमक इतिहास पृ० ४२८

(३) रूप-वर्णन की अत्युक्तिया और उनका औचित्य—

रूप वर्णन के प्रसंग में जायसी ने अत्युक्तिया भी की हैं और सा भी अत्यन्त प्राचुर्य से यथा — मकरिक् तार ताहि कर चोरू । सा पहिर छिरि जाइ मरीरू ॥ अथवा वह प्रसंग जहाँ पर सखिया पान की नसों निकान कर इस भय से अत्यन्त सावधानी के साथ पान देती हैं कि वरचित वदाचित पान की नसों पदमावती के अधर में न घस जाय ।

नस पानह क कार्ताहि हरी । अधर न गड फाँस ओहि बेरा ॥

मकरी के तार सदश चीर धारण करने से शरीर का छिल जाना तथा पान की नसों का घस जाने के डर में त्याग करने की अत्युक्ति का एक मात्र लक्ष्य है सौकुमार्य दर्शन । किंतु इन सौकुमार्य दर्शन के लिए कवित अत्युक्तियों में अस्वाभाविकता है । इस प्रकार की ऊहात्मक उक्तियाँ द्वारा मात्रा या परिणाम का यजना के कारण कोई रमणीय चित्र सामने नहीं आ पाता ।

श्रीवा का कामलता तथा प्रोजलता के निदर्शन के लिए भी जायसी ने इसी प्रकार की विरस अत्युक्ति का आश्रय लिया है—

पनि तेहि ठाँव परी तिन रेखा । घूट जो पीर तीर सब देखा ॥'

प्रायः कवियों में नायिका की सुकुमारता का भी अत्युक्तिपूर्ण वर्णन करने की प्रथा रहा है किंतु जायसी का सौकुमार्य दर्शन की अत्युक्तियाँ अस्वाभाविकता के कारण तथा केवल ऊहा द्वारा मात्रा या परिमाण के आविर्भाव की यजना के कारण कोई रमणीय चित्र सामने नहीं लाती । नायिका की शय्या पर फूँ की पखुणियाँ चुन-चुन कर बिछाई जाती हैं मभव हैं कि समूचा फूँ रह जाने पर उने रात भर नाद न जाय—

पखुरी काढ फूलह सता । सोई डारताहि सौर सपेनी ॥

फूँ समूच रहै जो पावा । याकुल होइ नीद नहि भावा ॥

कालि इस के शिरीय पुष्पाधिक सौकुमार्य और शिरीय पुष्पन पुन पत त्रिण का जो प्रभाव हृदय पर पडता है वह जायसी द्वारा कथित इन अत्युक्ति का न ।

साधारणतः कम प्रतिभाशाली कवियों के हाथों में पडकर ऐसे अत्युक्तिपूर्ण वर्णन हास्यास्पद हो जाते हैं । किंतु जायसी का वर्णन दो प्रधान कारणों से हास्यास्पद होने से बच गया है—

(१) पदमावन में जायसी ने आद्यन्त परोक्ष सत्ता की ओर इंगित किया है । परोक्ष सत्ता की ओर इंगित करने का उपाह का उनमें इतना प्राबल्य है कि वे माना एने अवसर स्थापित करते हैं और अवसर मिलते ही परोक्ष सत्ता की ओर

इ गित करने से चूकते नहीं। और इस प्रकार वे प्रकृत पर से पाठक की दृष्टि हटा कर अप्रकृत पर बराबर ले जाया करते हैं। जैसे दात वणन के इस प्रसंग में कवि की भावना जनत ज्योति की ओर बटती जान पड़ती है—

रवि ससि नखत दिपहिं आहि जाती । रतन पदारथ मानिक मोनी ॥

जह जह विहसि सुभाबहि हसी । तह तहें छिद्रक जोति परगसी ॥

इस रहस्यमय परोभाभास के कारण जायसी की अत्युक्तिया नहीं खटकती। और दूसरे जायसी अधिकांश स्थानों पर उत्प्रेक्षा या अतिशयोक्ति की सहायता से वस्तु की नहीं अपितु उसकी सवेदना की अभिव्यजना करते हैं। सादृश्यमलफ अलकारा के द्वारा जहां केवन वस्तु की मात्रा का आधिक्य सूचित होता है वहां पाठक की दृष्टि बाह्य रूप की ओर चली जाती है और आधिक्य यदि बुद्धिग्राह्य नहीं होता तो सम्पूर्ण वणन हास्यास्पद हो जाता है यथा धूप की मात्रा के आधिक्य की अभिव्यजना के लिए यदि कोई कहे कि उससे पानी सौलने लगा या लाहा गलने लगा तो स्पष्ट ही ऐसा स्थला पर केवल मात्राधिक्य की जोर दृष्टि जाती है—

मानहु नान खड दुग भय । दुहु विच लक तार रहि गए ॥

इमम पदमावती की कटि की सूक्ष्मता वस्तुप्रकाश अन्कार के सहारे यजित की गई है। यहाँ भी पाठको की दृष्टि बाह्य रूप की ओर जाती है मात्रा की ओर नहीं।

जायसी का वक्तव्य इतना ही है कि वह अत्यन्त क्षीण कटि है। हाँ परम्परा उपमानों में कुछ अवश्य ऐसे हैं जो प्रसंग के अनुकूल भाव को पुष्ट करने में सहायक नहीं होते जैसे—

हाथी की सूड़ मिहनी और भिड की कमर ।

सुन्दरी नायिका की भावना करते समय सिहनी भिड और हाथी के मनश्चक्षुओं के सामने आ जाने से उस भाव की परिपुष्टि में व्याघान पट्ट चता है। जहाँ पर फारसी के प्रभाव स्वरूप अत्युक्तिपूर्ण आर्त् हैं उनमें तो कुछ निश्चित रूप से कोई रमणीय रचिवर दृश्य सामने नहीं लाती जैसे—

विरह सरागहि भूज मागू । डरि डरि पर रफत क आंगू ॥

यसी प्रकार ह्येनी के वणन की यह हेतुप्रकाश भी कोई सुन्दर दृश्य सामने नहीं लाती—

हिया काङ्गि जनु लीहसि हाया । रहिर भरी अगुरी तहि साया ॥

सब कुछ होते हुए भी ये पक्तिया अपनी व्यञ्जकता में अति उत्कृष्ट हैं। यदि पाठक की दृष्टि सवेदना या अनुभूति के आधिक्य की ओर जाय तो वणन हास्या

स्पष्ट नहीं होता। यद्यपि जायसी म दोनों प्रकार की उक्तियाँ मिल जाती हैं परन्तु दूसरे प्रकार की उक्तियाँ की प्रचुरता है। प्रथम प्रकार की उक्ति यथा—

‘आखर जरइ न काह छूआ।’

इसमें विग्रह के पा के अक्षरों के बाह्य रूप की ओर ही दृष्टि जाती है। जायसी ने अधिकांश स्थलों पर अनुभूति की तीव्रता बताने के लिए ही अत्युक्तियाँ का प्रयोग किया है, यथा—

जरत वजागिन कए पिउ छाहा। आइ बुसाउ अँगारह माहौ ॥

या

सागिउ जर जर अस भाए। फिरि फिरि भूजसि तजेउ न वारू ॥’

प्रस्तुत चौपाई म पुन पुन भूजने पर वानू न छोड़ने की बात स केवल विग्रह की तीव्र दाहकता की ही अनुभूति नहीं होती उस दाहकता का प्राप्त होना वाते सख की ओर ही अधिक ध्यान जाता है। जो उस सताप से हट हट कर फिर उसी म रम पाता है। इस प्रकार जायसी की अत्युक्तियाँ परिमाण निर्देश या मात्रा निर्देश व ही रूप म न रहकर अधिकांश म सवेदना के रूप में हैं।

‘रूप वणन के प्रथम म जायसी अत्युक्तियों पर उत्तर आते हैं परन्तु अधिकांश स्थलों म उत्प्रेक्षा और अतिशयोक्तियों के द्वारा वस्तु की व्यंग्यता न होकर सवेदना या अनुभूति की व्यंग्यता होती है। इसलिए सहृदय का चित्त वस्तु की ओर जाने ही नहीं पाता। फिर नवि बराबर परोक्ष सत्ता की ओर इशारा करना है और इस प्रकार सहृदय का मन प्रस्तुत विषय म हटकर अप्रस्तुत पराग सत्ता की ओर जाता रहता है। यथा फल यह जाना है कि अजाय कविया की अत्युक्तियों म वस्तु पर दृष्टि निबद्ध होने के कारण जिन प्रकार का हास्यास्पद भाव पाया जाता है वसा जायसी म नहीं पाया जाता।’

(४) अप्रस्तुत-विधान (उपमान रूप)

पदमावत म प्रयुक्त उपमानों को वर्णन की मुविधा के लिए दो विभागों म विभक्त किया जा सकता है—

(क) नामगिष्य वर्णन के उपमान

(ख) अन्य विषयों के वर्णनों से सवर्णित उपमान।

इन दो कोटियों व अंतर्गत जायसी द्वारा गहीन माहित्यिक परम्परा के रुझित उपमान जायसी द्वारा गनीत नाग परम्परा और तोर जीवन व उपमान तथा जायसी व नवीन मौलिक उपमान सम्मिलित हैं। इसी अप्रस्तुत विधान के

अन्तगत जायसी द्वारा प्रयुक्त भाव वणन के उपमान, नखशिख वणन के उपमान तथा वस्तु वणन के उपमान भी आ जाते हैं। जायसी ने उत्कृष्ट कोटि के अप्रस्तुत विधान द्वारा पद्मावत के काव्य-सौन्दर्य का अपेक्षाकृत अधिक तीव्र बताया है।

नखशिख वणन और तनिहित अप्रस्तुत सौंदर्य

नायिका के सौंदर्य के चित्रण के लिए फारसी के कवि^१ नखशिख वणन अवश्य करते हैं। इसके द्वारा वे नायिका क विभिन्न अंगों का चित्रण करते हुए उसकी रूप गरिमा को उभार कर प्रस्तुत करते थे। भारतीय नायिका को योगी बनकर निकलने के लिए यह रूप-सौंदर्य ही विवश करता है। वस्तुतः सूफी सिद्धांतों के अनुसार सौंदर्य क द्वारा ही ईश्वर अपने को व्यक्त करता है।

नखशिख वणन के आठ स्थल

पद्मावत में आठ स्थलों पर नखशिख वणन मिलते हैं—

- (१) सिंहन की वेश्याजा का अव्यवस्थित नखशिख ।^१
- (२) यौवन भार भरिता पद्मावती का नखशिख^२ (रूप वर्णन)।
- (३) मानसरोवर में स्नान के लिए उद्यत पद्मावती के कण खोलते समय का सक्षिप्त यजनात्मक नखशिख ।
- (४) हीरामन शुक्-कवित रत्नमन से पद्मावती का नखशिख^३ (रूप वणन)
- (५) लक्ष्मी-समुद्र खंड में ब्यथित, मुरझाई और कनात पद्मावती का नखशिख ।^४
- (६) नागमती में पद्मावती आत्मशलापा रूप में अपना सौंदर्य-वणन करती है।
- (७) प्रत्युत्तर में पद्मावती ने नागमती आत्मप्रणसा रूप में अपना सौंदर्य वणन करती है ।^५ और
- (८) राघव चेतन कथित अलाउद्दीन से पद्मावती का नखशिख ।^६

रूप-सौंदर्य-वणन के इन सभी स्थलों पर जायसी ने साहित्य के परम्परा

१-सैला मजनु निजामी, पृ० ३३

२-जा० प्र० (ना० प्र०)समा बागी) प० १४।

३-वही, पृ० २०।

४-वही, प० २४।

५-वही, पृ० ८-४८।

६-वही प० १७६।

७-वही पृ० १६२-१६७।

८-वही।

९-वही, पृ० २०६-२१७।

प्रचलित उपमानो लोक गहीत उपमाना मौलिक उपमानो तथा अन्य प्रकार के उपमानों की संयोजना अत्यंत सुन्दर और काव्यात्मक रूप में की है। मझन ने मधुमालती में २४ में मधुमालती का नखशिख वर्णन किया है। उसमान में भी चित्रावली का नखशिख लिया है। चन्द्रायन में भी चन्द्रा का संक्षिप्त नखशिख वर्णित है।

(५) 'धौवन-भार-भरिता' पद्मावती का नखशिख

जायसी ने जन्म-खंड में पद्मावती के धौवन का अपनी समथ तूलिका से विवर्ण करते हुए एक संक्षिप्त नखशिख का विलसित भाव से वर्णन किया है—

भ उन्नत पद्मावति बारी । रति रचि विधि सब कला सवारी ॥
 जन रेधा तेहि अग सुवासा । भवर आइ लुब्ध बहु पासा ॥
 बनी नाग मलय गिरि पठा । सति माये दूइज होय बठी ॥
 भौह धनुक साध सर फर । नयन कुरग भूलि जनु हेर ॥
 नासिक कीर कवल मुख सोहा । पदिमन्ति रूप देखि जग मोहा ॥
 मानिक अघर दसन जनु हीरा । हिय ह्वनसे कुच बनक गभीरा ॥
 केहरि नक गवन गज हारे । सुर नर देखि माय भुइ धारे ॥

उक्त पंक्तियों में निम्नांकित अप्रस्तुत (उपमानों) के आनयन द्वारा पद्मावती की अप्रतिम रूप प्रतिमा को जीवित रूप में चित्रित किया है—

अग (शरीर)	प्रफुल्ल बल्लरी (या पुष्पित लता)
वेणी	नाग
भान या लनाट	द्वितीया का चन्द्र
धनु	धनुष
(वरुनी)	सर
नयन	कुरग
नासिका	कीर
मुख	बभ्रु
अघर	मानिक्य
दसन	हारा
कुच	बनक जभीर

१—डा० माताप्रसाद गुप्त द्वारा संपादित जा० प्र० म 'कनक गभीरा' के स्थान पर 'कनक जभीरा' पाठ आया है जो अधिक शुद्ध और सार्थक है।

२—प० रामचन्द्र शुक्ल जा० प्र० पृ० २०।

कटि

केहरि लव

गति

मत्त गज गति

इन पक्तियों से श्लेष के द्वारा दो अर्थों की निष्पत्ति होती है। एक तो इसमें पदमावती स्त्री बाग का चित्रण किया गया है। दूसरे यौवन भार में विनन कुमारी पदमावती के अग प्रत्यगा का रूप-वर्णन। यहाँ चारों शब्द श्लिष्ट हैं। चारी—बाग, चारी बालिका। जायसी ने इस शब्द का लेकर पदमावती के रूप की तुलना चारी से की है।

उक्त अप्रस्तुतों की योजना में —

(१) भारतीय साहित्य की उपमान परम्परा का पालन किया गया है। ये साहित्य के परम्परा प्रचलित उपमान हैं।

(२) इनमें वाह्य प्रकृति से गृहीत उपमानों का ही प्राधान्य है और

(३) ये उपमान रूप वर्ण क्रिया और गुण आवि प्रकार के साम्या पर आधारित हैं।

इस प्रकार ये उपमान रूप वर्ण क्रिया और गुण से तादात्म्य का उपस्थापन करते हैं।

(६) रूप सौंदर्य के उपमान

ऊपर नस्रशिख और रूप वर्णन के जिन आठ स्थलों का उल्लेख किया गया है उन स्थलों पर जायसी ने शरीर के विभिन्न अंगों उपागों के लिए जिन उपमानों का प्रयोग किया है वे समिष्ट रूप में निम्नलिखित हैं —

(१) केशराशि

(अ) खुने हुए स्थिर केश के लिए — (ब) नाग (स) नागिन (ग) वस्तूरी (घ) प्रेम जजोर (ङ) भ्रमर

(च) राहु

(द) बेनी नाग मन्वय गिरि पठी (नाग)

(स) नागिन क्षीपि लीह चहु पासा (नागिन) तेहि पर अतक भुजगिनि डसा। केसि नाग कित देखि मैं सवरि सवरि जिय जाय। (नाग नागिन)।

(ग) प्रथम सीस वस्तूरी केसा (कस्तूरी)

(घ) सवरै प्रेम चहै गिउ परी। (नवीन भौतिक उपमान प्रेम की सांकेतिक)

(च) सति क सरन लीह जनु राह। (राहु)

इन उपमानों में नाग राहु, भ्रमर आदि के द्वारा मूत का मूत विधान किया गया है किन्तु केशों के उपमान 'प्रेम-जजोर' द्वारा जायसी ने मूत का अमूत विधान किया है। पदमावन के काव्य-सौन्दर्य का यह एक वनिष्ट्य है।

(ब) खुले परतु हिलते हुए केश—

(ज) जान लोर्गेह चन् भुजगा (सप) (शास्त्रीय उपमान)

(घ) नहर देइ जनहु कालिदी (तरंगमयी मधुना) ।

[२] मस्तक (माग) (अ) मून उपमान (क) जमुना मांश सरसुती मगा
(जा० प्र० २१०)

(ख) वीर बहूनी — वीर बहूटिन का असपाती । (नवीन मौलिक उपमान)

(ग) विद्युत — जनु घन मह दाभिनि 'परगसी

(घ) आरक्त अक्षि — सडि धार रहिर जनु भरा

(ङ) कचन रेखा — कचन रेख कसौटी कमी

(च) सूय किरण — मुखज किरिन जो गगत बिसेखी ।

(छ) रात्रि म आलाकित पथ — उजियर पंथ रनि महे कीटा ।

(ब) कल्पित—अमृत उपमान—राग रजित मधु ऋतु या राता वसत जनु
वसत राता जग दखा ।

(इ) ललाट — (क्ष) सूय (किरण) सहस किरण जा मुखज दिगाई ।
देखि लिलार सोड छिप जाई ।

(यहा उपमेय के समान उपमानों की नीतना प्रदर्शित की गई है ।)

(म) द्वितीया का चंद्र — वही लिलार दुइज व जोती ।
दुइज जोति कहा अस होती ॥

(न) पारस ज्योति—पारस जोति निलाटहि ओती ॥

[४] भौह — (क) धनुष — भौहें साम धनुक जनु चटा (प० २११)

(धनुष व उपमानों से कहा ता जायसी न रूपक की सृष्टि की है और वही पर
अतिशयोक्ति का आशय लिया है । उहै धनुष किरमुत प महा आनि (प० ४२
जा० प्र०) पनियो म समासोक्ति—जन म भौहों म मष्टि—ध्यापी प्रभाव (तथा
पराम मत्ता) की आर इ गित किया है ।

[५] नेत्र — (क) रत्नकमल और (ख) अमर—राते कवें करहि अलि भवा ।

(ग) सजन और (घ) मग — सजन सररहि मिरिग जनु भूत ।

(ङ) सुरग — — उरहि सुरेंग लहि नहि बागा ।

(च) तर ग भरे माणिक्य— सुभर सरोवर नयन वमानिक भरे तरग ॥

(छ) कमा पत्र पर अमित अमर — कबल पत्र पर मधुकर पंरा ।

(ज) कुरग — नयन कुरग भूलि जनु हर ।

[६] बहनी — (क) राम रावण की मना — जुरी राम रावन की सना

(ख) मघान किया गया बाण—नाथ वान जानु दुइ अनी

[७] नासिका — (क) अक्षि — नासिक शरग देउ कह जागू (४३ पृ० जा० प्र०)

- (ख) चुक - नासिक देखि लजानेउ सूआ ()
 (ग) मेतुन्न-व-टुहु समुद्र महु जनु विच नीरू
 सेतु वत्र वाधा रघुवीरू । (पृ० २१२)
 (घ) तिन पुष्प - तिन के पृहुप अस नासिक तामू ।

- [८] अधर (क) टुपहरिया का फून-फन दुपहरी जानौं राता ।
 (ख) विद्रुम - हीरा लेइ सो विद्रुम धारा ।
 (ग) माणिवय - मानिक अधर दसन जनु हीरा ।
 (घ) सूय - जन परभात रात रबि देखा
 (ङ) रुविर-भरी तलवार - रुहिर चुव जो खांड वीरा ।
- [९] दात-(क) हीरा - दसन चौक बटे जनुहीरा (जा० प्र० प० ४४)
 (ख) दाडिम - दारिउ सरि जो न क सका फाटेउ हिया दरकिन ।
 (वही प० ४४)
 (ग) बिद्युन - वीजू चमक जम निसि अगियारी (वही प० २१३)
 (घ) श्याम मकोय - जनु दारिउ जो श्याम मकोई । (वही प २१३)
- [१०] रसना (क) अमत कौप - अमत कौन जीभ जन लाई (वही प० २१३)
 (ख) सरमुती की जीभ - जीभ सरमुती काह (वही प० २१३)
- [११] कपोन (क) खाड के नडडू - केइ यह सुरग खरीरा वाध (४४)
 (ख) कमन-कवल कपोन ओरि अम छाज (२१८)
 (ग) गेंद नारग सुरग गेंद नारग रतनारे । (२१८)
 (घ) एक नारग दाइ किए अमोला (४४) ।
- [१२] तिन (क) घु घुची का जाना मुह - जन घु घुची आहि तिन कन मुही (८८)
 (ख) अमर - जानहु भवर पत्तम पर टूटा । (२१८) ।
 (ग) विरह की स्फुलिंग - सो तिन विरह चितगि क करा (२१४) ।
 (घ) अग्नि बाण - अग्नि वान जानी निल गूडा (४५)
 (ङ) ध्रुव - सो निल देखि कपोन पर गगन रहा धुअ गाडि (४५)
 (नवीन मौनिक उपमान) ।
- [१३] श्रवण-(क) तनत्र खनिन चंद्र और (ख) गूय - दह निसि चौं गूदज चमकाही
 नयन-ह भरे निरखि नहिजाही
 (ग) सीप और (घ) दीपक-श्रवण सीप दुइ सीप सवारे (४५)
 (ङ) स्वण सीपी-श्रवण मुनहु जो कूत्त सीपी (४५)
- [१४] मुख - (क) चंद्रमा (१) ससि मुख अग मनय गिरि वासा
 (२) ससि मुख जवहि कहै विछ वाना
 (ख) पत्तम नाल-कवन जो विगता मानसर विनुजल गायउ मुसाय

- [१५] ग्रीवा (क) कम्बु — वरनों गीठ कम्बु की रीति (४५)
 (ख) सुराही — गीठ सुराही क अस भई (२१४)
 (ग) मयूर — गाउ मयूर केरि जस गी (२१४)
 (घ) तुरग—बाक तुरग जनहु गहि परा (२१४)
 (ङ) घिरिन परेवा—घिरिन परेवा गाउ उठावा ॥
 (च) तमचर—चहै बोन तमचूर मुतावा (२१४)
- [१६] भुजा (क) कनक दण्ड दुइ भुजा कताई (४२)
 (ख) कन्धी गाम—कदली गाम क जानी जोरी (४६)
 (ग) पदमनान—भुज उपमा पीनार नहि खोन भएउ एहि चित ।
 (घ) चदन सभ—चदन सभहि भुजा मवारी ।
- [१७] हथनी (क) कमल—औ राती ओहि कवल हथोरी । (पृ० ४६)
 एक कवल क दूनी जोरी (प० २१५) ।
- [१८] स्तनप १—(उरोज) (क) कवन लड्डू—हिया धार कुच कवनलास (४६)
 (ख) कनक कचौठी—कनक कचोर उठ जनु चारु (४६)
 (ग) कवन वेन—कवन वन साजि जनु कूद (४६)
 (घ) नारणी—अस नारग दहु का कह राख (४६)
 (ङ) जभीर—उलग जभीर होइ रखवारी (४६)
 छइ वो सकै राजा क बारी ॥ (४६)
 (च) श्रीफल—जानहु दुनो सिरीफल जारा (२१५)
 (छ) अगिनवान—अगिनवान दुइ जानी साध ।
 जग बघहि जो हाहि नवाध ॥ (४६)
 (ज) तुरग—जानन बान नहि नहि दाणा । (४६)
 (झ) सटट—जानहु दूइ सट्ट एक मामा (२१५)
- (२) कुचाप भाग (ज)—श्याम छत्र—नाम छत्र दूनहु सिर छाजा (२१५)
- [१९] पट स—पातर पेट भाहि जनु पुरी (०१५)
- [२०] रामावनि (घ)—श्याम सपिणी—नाम भूअगिनि रामावनी
 नाभी निकसि कँवल कह चली ।
 आइ दुवा नाग्य विच भई । वनि मयूर ठमकि रहि गई ॥
- विशेष द्रष्टव्य—श्याम सपिणी उपमान का रामावनी के लिए अत्यन्त सामक और सत्राक प्रयोग हुआ है । सपिणी कम्बु की ओर (मयूर की ओर) जा रही है । रामावनी की सपिणी मनना लफ भाई । छत्र और मयूर का जन्मजात बर है । इसी कारण वही लफ आकर दत्त गई ।

द—भ्रमरावनि—मनहु चढ़ी भौरह क पांती ।

घ—विच्छी—रोमावली विछलूक कहाऊ ।

न—कालिनी—की कालिंदी विरह सताई ।

चलि पयाग अरइल विच आई (४६) ।

[२१] कटि—(प) भ ग—भ ग लक जनु माझ न तागा

(फ) कमानाल के रेने—दुइ-खड नलिन माझ जनु तागा (२१५)

(ब) केहरि लक—लक पुहुमि अस आहि न काहू ।

केहरि कही न ओहि सरि ताहू (४७) ।

[२२] नामि (नाम गाम्भीर्य) भ—सागर की भवर

समुत् भवर जस भव गभीर ।

[२३] पीठ (ठ)—मलयगिरि—मलयागिरि क पीठि सवारी

वेनी नागिन चनी जो नारी ।

[२४] उरु (ड) कदनी स्तभ—जुरे जघ सोभा अति पाये ।

केरा खभ फरि जनु पाये ॥

[२५] चरण (ड) कमल—कवल चरन अति रात विसयी ।

(७) उपमान रूपो का सौंदर्य एक सर्वोक्षण

सक्षय म नखशिल और रूप वणन म प्रयुक्त उपमाना की यही रूप रेखा है जसा कि पहले ही कहा जा चुका है कि इन उपमाना का दो कोटिया हैं (१)

प्रकृति से गृहीत उपमान (२) अथ सामारिक वस्तुओ से सम्बन्धित उपमान ।

नख शिख वणन म अधिकांशत उपमान प्रकृति से गृहीत हैं । कमल भ्रमर चंद्र, सूर्य प्रभति उपमान प्रकृति धरत गृहीत हैं । खभ प्रभति उपमान अथ सामारिक वस्तुओ से गृहीत उपमाना की कोटि म आत हैं । अथ सामारिक वस्तुओ से गृहीत उपमाना की सख्या अपेक्षाकृत कम है । यथा—माग के निण अंसि धार नासिरा के लिए सतुवध और तनवार एय उरोज क निण कचन के सडडू और सटटू ।

जायसी ने नारी रूप क वणन म भारतीय काव्य परम्परा की उपमान सम्बन्धी शास्त्रीय हकिया का सम्यक रूप से परिपात किया है । प्राय काव्य परम्परा प्रचलित उपमाना की ही समानता से सबत्र चमत्कार उत्पन्न करने का प्रयत्न किया गया है यथा—

“भौर कस वह भावनि राना

वनी नाग मलयगिरि पनी’

‘नागिन यापि सीहि चहुंपाना’

तहरें लेट मनहु कालिंदी

कशों से सम्बन्धित भमर नाग, नागिन लहरमयी यमुना आदि उपमान भारतीय काव्य परम्परा के उपमान हैं। भारतीय साहित्य में इनका प्रयोग होता आया है।

आचार्य डा० हजारिप्रसाद द्विवेदी ने स्त्री रूप के केश सम्बन्धी भारतीय काव्य परम्परा में प्रयुक्त भारतीय उपमानों पर विचार करते हुए लिखा है—

‘गावधन के मत में केशों में दीघता, कुटिलता तथा निविडता और नीलिमा आदि गुण वर्णित किए जाने चाहिए। — देवन कामधनु के मन में मूढता और नील रोम सौभाग्य के लक्षण है। इन गुणों को बतलाने के लिए कवियों में माधारणतः निम्नलिखित उपमायें रूढ हैं अधकार शंखान मध मयूरपुच्छ भमर श्रेणी चमर यमुना नरग नीलमणि नील कमल आकाश, घूप का घुसा इत्यादि केश की केशों के लिए माधारणतः सप्त तलवार भ्रमर पत्ति और घमिला या जूड़े के लिए राहु की उपमायें प्रचलित हैं। केश के बीचोबीच का भाग के लिए रास्ता, दड़ गणधार आदि उपमायें दी जाती हैं।’

उपमानों के चयन में कविपय स्वयं पर जायसी की मौलिकता तथा स्वतंत्र उन्मुक्त तबोन कल्पना शक्ति ने मौल्य को जीवन रूप प्रदान किया है। मौलिक उपमानों का आनन्दन में जायसी परम्परागत उपमाओं की सीमित परिधि से ऊपर उठे हुए तथा मुक्त है। जायसी के मौलिक उपमान प्रधानतः प्रकृति से गहिन न हो करके अत्यन्त भासारिक पदार्थों से गृहीत हैं—

‘घु घरवार थाकें विव भरी । सकरें पम चहै गिउ परी ॥

(घु घराती बलवा के लिए)

केइ यह सुरग खरीरा बाधे—(कपोता के लिए)

खांटे धार रहिर अनु भरा—(भाग के लिए)

जुरी राम रखन क सना—(कछिनिया के लिए)

जातनु दोउ लट्टू एक साया—(कृषा के लिए)

गौड सुराही के अम नई—(श्रीवा के लिए)

नसशित वगन में सम्बन्धित उपमानों के विषय में समष्टि रूप में हम कह सकते हैं—

(१) जायसी ने न्यगिनत यजन में प्रायः भारतीय काव्यशास्त्र के परम्परागत उपमानों का सहारा लिया है। प्रायः सभी उपमान साहित्य के विभिन्न विष्टे उपमान

हैं। परम्परागत उपमानों के माध्यम से किया गया रूप वणन पर्याप्त काव्यात्मक है। कही-कही अनिशयाक्तिपूर्ण वणन भी हैं घूट जो पीक लीक सब देखा।'

(२) नखशिख वणन में जायसी पूणत सफल हैं। कही-कहीं मौलिक उपमानों के सहारे सौंदर्यवद्धन किया गया है।

(३) सम्पूर्ण नखशिख वणन काव्यात्मक है रत्नसन से बिछड़ी पद्मावती का वणन जीवन्त और यजनापूण है।

(४) कही-कही जायसी ने नवीन मौलिक उपमानों की याचना भी की है यथा श्रीवा के लिए सुराही कुच के लिए सट्टू। वस्तुतः ये फारसी साहित्य के उपमान हैं।

(५) नखशिख वणन में जायसी ने शीघ्र से जाघ तक का ही वणन किया है नीचे के उपाग का नहीं। वणन त्रय शीघ्र से ही प्रारम्भ होता है।

(६) आत्मशतपा रूप में कथित नागमती और पद्मावती के अपने-अपने नखशिख वणनों में प्रगल्भता के दर्शन होते हैं। नारीत्व का सर्वोत्तम रूप शील तथा सज्जा है। उसका तकाजा है कि वे रामावति आदि के वणनों की अवहेलना कर जातीं किन्तु जायसी की तुलिका उस वणन के नेत्र का स्वरण न कर सकी।

(७) नखशिख प्रमुखतया रामी पद्मावती का ही दिया गया है।

(८) जायसी के समकालीन हिन्दी साहित्य में सीताराम तथा राधाकृष्ण के नखशिख हम उपलब्ध होते हैं।

तुलसीदास ने सीता राम का नखशिख वणन किया है। विद्यापति सुरदास नन्ददास, मीरा प्रभृति भक्त कवियों ने राधा-कृष्ण का नखशिख वर्णन किया है। निम्नूणिया की रत्न परम्परा में निराकार का नखशिख वणन सबसे असम्भव था। अतः कबीर, दादू जादि ने इस परम्परा की ओर ध्यान नहीं दिया। सीताराम और राधाकृष्ण के व्यक्तित्रयो में आध्यात्मिकता का प्राधान्य है। वे स्वयं नख से शिख तत्र सौंदर्य से वनित कर्त्तव्य तथा स्वाभाविक अलंकारों से अलङ्कृत हैं। फिर भी सीता और राधा के प्राप्त नखशिख वणन जायसी की अपेक्षा अत्यल्प और अधिशद हैं। अतः हिन्दी के मध्ययुगीन साहित्य में नखशिख वणन का काव्य सौंदर्य की दृष्टि से जायसी मध्ययुगीन कवियों की पंक्ति में सर्वप्रधान रूप से पाठकों के समक्ष आता है।

(८) अथ विषयो के वणनों से सम्बन्धित उपमानों का सौंदर्य

नखशिखेतर विषयों के वणन से सम्बन्धित उपमानों का सुविधा की दृष्टि से दो कोटियों में रखा जा सकता है।

(१) मानवीय भावनाओं के वणन में प्रयुक्त उपमान (भाव वणन के उपमान) ।

(२) वस्तु वणन एवं कार्यों के उपमान ।

(१) मानवीय भावनाओं के वणन में प्रयुक्त उपमानों का सौंदर्य

भाव वणन के उपमानों के माध्यम से जायसी ने मानवीय भावनाओं की अत्यन्त मार्मिक अभिव्यक्ति की है। इस प्रसंग में उदाहरणों द्वारा हम यह स्पष्ट करने का प्रयत्न करेंगे कि जायसी ने अनेक उपमानों उत्प्रेक्षाओं रूपकों, दृष्टान्तों तथा अन्य सादृश्यमूलक अलंकारों के माध्यम से मानवीय भावा तथा रागात्मक प्रवृत्तियों को सूक्ष्म अवन द्वारा साकार उपस्थित कर दिया है—

काह हसों तुम मोसों किएउ और सो नह ।

तम मुख चमक बीजुरी माहि मुख बरस मेह ॥

इसे पदमावती की प्राप्ति के पश्चात् सद्य आगत हर्षोत्फुल्ल पति के लिए नागमती ने कहा है (क्याकि वह अवसान में डूबी हुई थी) । प्रस्तुत दोहों में विद्युत् की कौंध तथा मह वषण के अप्रस्तुत विधान-द्वारा व्यञ्जना को मार्मिकता प्रदान की गई है। इस संयोगकारीन उपालभ के उद्बुष्ट निदर्शन की सम्पूर्ण मार्मिक सजीवता उपमानों पर ही आश्रित है। नागमती के धारासार अधु वषण करने वाले नयनों की उपमा मेह से तथा रत्नसंन के प्रसन्न वदन की उपमा विद्युत् से दी गई है।

पिउ वियोग अस बाउर जोऊ ।

पपिहा नित बोन पिउ पीऊ ॥

प्रस्तुत चौपाइ में वियोग तथा नागमती के व्यथित हृदय के लिए पपीहा की रत्न के उपमान का सुगुम्फन किया गया है। विरह को अपेक्षाकृत अधिक तीव्रता प्रदान करने के साथ ही उपमान में वक्तव्य के सौन्दर्य का भी अभिवृद्धन किया है। पपीहा की रत्न का उपमान लौकिक है किन्तु साहित्य में रुचिवद्ध हो गया है। नागमती की विरहावस्था का चित्रण करने में जायसी प्रकृति क्षेत्र से गृहीत तथा नोत्र दृष्ट उपमानों का आश्रय लेते हैं।

(६) प्रकृति क्षेत्र से गृहीत उपमानों का सौंदर्य

सारस सारस जोड़ी— सारस जाये कौन हरि मारि कियोपा लीह ।

सुरि हरि पीजर हों भई विरह काल मोहि दीह ॥

रक्त दुरा मानू गरा हाड भयउ सब सल ।

घनि सारस होइ रर मुई पीउ समेटहि पख ॥

प्रथम दोहे में नागमती ने अपने और रत्नसेन को सारस की जोड़ी का उपमान दिया है। दूसरे दोहे में भी सारस का उपमान वक्तव्य की प्रपणीय गुणिता तथा प्रभावापन्नता को सजीव और सशक्त बना रहा है। ध्या के लिए प्रयुक्त सारस के उपमान को यदि निकाल लिया जाय तो यजना पगु और अशक्त हो जायगी।

कवल जो विगसा मानसर विनु जल गयउ सुखाइ ।

कवहु बेलि फिरि पनुहै जा पिउ सीच आइ ॥

प्रस्तुत पद में नागमती की ध्या को उपमाना के माध्यम से जीवन्त रूप में उपस्थित किया गया है। कमल मानसर जल बलि आदि उपमानों ने उक्त दोहे को पदमावत का ही नहीं अपितु हिंदी वाङ्मय का एक अमूल्य हीरा बना दिया है।

नन लागि तेहि मारग पदमावति जेहि क्षीप ।

जस सेवातिहि सेव बन चातक जल सीप ॥

जायसी ने प्रस्तुत दोहे में चातक तथा सीप एवं स्वाति के उपमानों द्वारा वक्तव्य को अधिक मार्मिक और सजीव बनाया है। उ होने साधारण सी बात को भी जीवन्त बना दिया है। रत्नसेन ने गजपति से अपने प्रेम की तीव्रता को स्पष्ट किया।

सरग सीस धर धरती हिया सो प्रम समुद्र ।

नन कौडिया होइ रह लइ उठहि सो बुद ॥

प्रस्तुत दोह में रूपक के लिए जायसी ने प्रकृति के ही उपमाना का आश्रय लिया है—

(१) स्वर्ग (२) धरती (३) समुद्र (४) कौडी शीश हृदय प्रेम नयन ।

प्रकृति से गहीत इन उपमाना को सजोते हुए लेइ लेइ उठहि सो बुद में जायसी की तूनिना का स्वाभाविक उत्कण्ठ दशनीय है।

पदमावती ने ध्या से प्रकृति के उपमाना के माध्यम से कहा—

जावन चांद उआ जस विरह भयउ सग राहु ।

पटतहि पटत छीन भइ बहै न पारौं बाहु ॥

यौवन रूपी चन्द्र के उग्र हात ही विरह रूपी राहु ने उम प्रसित कर लिया और अब चन्द्र क्षण-क्षण क्षीण होता जा रहा है। उगता है कि यदि पदमावती इन उपमानों का आश्रय न लेती तब या तो वह इस भाव की व्यञ्जना ही न कर पाती या यदि धरती भी तो वह गद्य होता और उसमें कवितागत उसी तीव्रत्व की सिद्धि न हो पाती।

रत्नसेन नागमती की भेंट पर—बठनाई क नारि मनाई ।

जरी जो बनि साचि पलुहाई ॥

यहाँ भी सूखी लतिका के पल्लवित होने के उपमान द्वारा 'कठ नाइ क नारि मनाई' की गद्यात्मक उक्ति में उल्लिखित कायात्मकता के स्वरो का स्पन्दन भर दिया गया है।

नागमती न रत्नसेन को प्रवृत्ति के उपमानों के माध्यम से उपानम किया—

भवर पुरुष बस रहै न राखा । तज दाख भट्टा रस चाखा ॥

तजि नागेसर फूल सोनवा । कवन बिसौराहि सौ मन लावा ॥

नागमती ने प्रथम चौपाई में स्वयं को नाइ और पदमावती को महुआ और रत्नसेन के लिए भ्रमर उपमान किया है। द्वितीय चौपाई में वह अपने को नागेसर फूल और पदमावती को वसन का फूल मानती है। रत्नसेन के लिए भ्रमर का उपमान देती है। यदि वह प्रकृति क्षेत्र से इन उपमानों का न लेती तो उसका हृदयस्थित की अभिव्यक्ति में वह तावता न आ पाता और वे भाव या तो अत्यक्त रहते या व्यक्त परन्तु अतीव्र। पदमावती भी रात के एकाकीपन का अभिव्यक्ति के लिए प्रकृति क्षेत्र से ही उपमानों का चयन करती है—

सूभर सरावर हस चल पटतइ गए विद्याइ ।

कवल न पीतम परिहर सूखि पत्र बर होइ ॥

यद्यपि हम दोहे में उपमानों के जात्रय से ही धम, वाचन तथा उपमेय सभी युक्त कर दिए गए हैं फिर भी प्रस्तुत उपमानों ने उक्ति में शक्ति तथा मार्मिकता का संवर्द्धन किया है। सरोवर सूखने के अनंतर हम तो अत्रय चले जाते हैं परन्तु कमल सरावर को नहीं त्यागता। भले हा वह सूख जाय सारा। उक्ति-सौम्य प्रकृति के उपमानों पर ही आश्रित है।

राघव चेतन न भी अरनी यथा कथा के लिए उपमानों का चयन प्रकृति क्षेत्र से ही किया है—

वित कर मुह नन भए जाउ हरा जहि बाट ।

सखर नीर विद्योह जिमि दरकि दरकि हिय पाट ॥

पदमावती के सौम्य स्त्री जन की विछड़न जाय काना से राघव चेतन का सरोवर स्त्री हृदय उसी प्रकार फट गया जिस प्रकार जन सूख जान पर सरोवर के बीच दरारें फट जाती हैं। राघव चेतन न अपने लिए सरोवर का और पदमावती के लिए जल का उपमान प्रकृति क्षेत्र से लिया है। जायसो न सोव जीवन को अत्यन्त सन्निधि तथा मूर्खता में दसा था यह उक्त उक्ति में स्पष्ट है।

पदमावती तथा नागमती दोनों रानियाँ सदा हात समय अपने हृदयगत भावोच्छ्वासा की अभिव्यक्ति के लिए भी उपमानों का चयन प्रकृति क्षेत्र से करती हैं—

आजु सूर दिन अथवा आजु रनि ससि बूड ।

आजु नाचि जिउ दीजिए आजु आगि हम जूड ॥

करण भावापन्न रानिया के वक्तव्य का आधार प्रकृति क्षत्र से गहीत उपमान ही है । सूर्य और चंद्र हृष और सुख के प्रतीक हैं । सूर्य का अस्तमित होना चंद्रमा का डूबना, नागमती और पदमावनी दाना के सुखो के अवसान का द्योतन करता है । रत्नमेन के साथ ही दोनों रानियों के हर्षादि का पयवसान हो गया । जब दोनों रानियों के जीवन को आलोकित करने वाला चंद्र-सूर्य रूपी (रत्नमेन) अस्त हो गया, जीवन अधकार से 'याप्त' हो गया तो फिर ऐसे जीवन से अच्छा है कि उस अग्नि में जलाकर समाप्त कर लिया जाय । आजु नाचि जीउ दीजिय । यही पर यह कह देना समीचीन प्रतीत होता है कि जायसी द्वारा प्रयुक्त प्रकृति क्षत्र से गहीत उपमान (जिनके माध्यम से जायसी ने मानवीय हृष विपात् की अभियोजना की है) । (१) कही-कही उपमान जैसे रात नहीं हात और (२) कही-कही स्पष्ट ही उपमान प्रतीत हो जाते हैं । इसके लिये ऊपर उद्धृत प्रायः अनव पद्यों में उदाहरण मिल जायेंगे—

आजु सूर दिन अथवा आजु रनि ससि बूड । इत्यादि दोहे में चंद्र सूर्य रात और दिन किमी उपमेय के लिये प्रस्तुत उपमान सदृश चान नहीं होते किन्तु यदि ध्यानपूर्वक देखा जाय तो स्पष्ट हो जाता है कि सूर्य चंद्र हृष और सुख (आनन्द) के उपमान हैं । दिन और रात सुख एवं दुःख के उपमान हैं ।

(१०) लोक जीवन से गहीत उपमानों का सौंदर्य

प्रकृति क्षत्र से उपमानों का चयन करना में जायसी अत्यन्त कुशल हैं । साथ ही नाक-उपमानों की नियोजना में भी वे अत्यन्त पट हैं । यथा—

पपीहा—पिउ विपाग अस बाउर जीऊ । पपिहा नित वोन पिउ पीऊ ॥

हिंडोल—हिय हिंडोल अम डोल मोरा । विरह भनाइ दइ क्षणोरा ॥

पीतपत्ता—नन जस विवर पात भा मारा । तेहि पर विरह देइ पत्रचोरा ॥

भरसाय—सागिउ जर जर जम भासु । फिरि फिरि भूजति तेजउ न वारु ॥

ओरी—वरस मघा क्षकोरि पनोरी । मारि दुइ नन चुव जस आरी ॥

लोक जीवन से गहीत उपमानों में इन पत्तियों में बान्यात्मवृत्ता का जो सरल और जीवत स्पन्दन भर दिया है वह जायसी जम कुशल कलाकार ने ही सम्भव था । विरह सन्तप्त शरीर का उपमान पीत वणन का पत्ता अन्निमग रोन हुए तथा अश्रु प्रवाहित करते हुए नशा का उपमान छप्पर की चूनी हुई आरी वियोगिनी के लिये प्रयुक्त भट्टभूजे की तपन भरसाय का वह दाना जो भांड के बाहू की प्रतप्त बानका

सं उच्छल कर भी उसी म गिर गिर कर रह जाता है इत्यादि । स्पष्ट है कि नागमती की पुञ्जीभूत कृष्णा की मुरारित करने के लिए तथा उसकी मामिक अभिव्यक्ति के लिए जायसी ने लोक जीवन से उपमानों का चयन किया है ।

जायसी ने लोक जीवन की अथ वस्तुओं से भी उपमानों का चयन किया है । जैसे—विरह तप्त पदमावती के शरीर के लिए कंठारी म जलते हुए घी का उपमान—दग्धि कराह जर जस घीउ । बेगि न आव मलमगिरि पाउ ॥ जायसी ने वियोग वणन की ही भाँति सयोग कालीन चित्राकन के लिए भी सादृश्यमूलक उपमानों से द्वारा पदमावन के वाक्य मीदय को अपेक्षाकृत अधिक तीव्रता प्रदान की है । जैसे—मिह्न रो चित्तौड मे मय आगत रत्नसन को देखकर नागमती के प्रफुल्ल वदन और हर्षतिरेकमय दशा का चित्रण करने के लिए फूलवारी का उपमान जस भुइ दहि असाढ पलुहाई । — — —

आहि भाति पाहुनी वह बारी । उठी करिल नइ कोप सवारी ॥

उस पद का सारा सौम्य पुनवारी की लताआ म नई आई हुई कोपलो के उपमान पर हा निभर है ।

जायसी ने वही—वही एक सम्पूर्ण भाव को ही प्रेम का उपमान बनाकर उदृष्ट वाक्यात्मकता का परिचय दिया है जमे—

‘मुहम्मद बाजो प्रेम की ज्या भाव त्यो खल ।

तिन फूतहि क संग ज्या हाइ पुनायन तल ॥

प्रस्तुत दाह म लोक दृष्टान्त व मात्रम स प्रेम का सभाव व्यक्तता की गई है । तिल और फून के साहचर्य स सुरभिमय स्नह (तेल) की निष्पत्ति होती है । प्रेम के आनन्द और आश्रय का सम्बन्ध जब तिल और दुग्ध के सन्ध होगा, तभी विर स्याथी मोरम विरीण करने पाव मन्त्र की निष्पत्ति हो सकती है ।

(११) वस्तु-वणन एवं कार्यों के उपमानों का सौंदर्य

अथ विषया क वणनो स सर्वत्रित उपमाना की दूरग्री कोटि म वस्तु वणन एवं कार्यों स सर्वत्रित उपमाना की गणना की जा चुकी है । इन वणना म भी जायसी ने लाक्षणिक उपमाना प्रष्टिन शत्र स गहीत उपमाना तथा अथ प्रकार के उरगतो का आश्रय लिया है । इन उपमाना व मात्रम स चित्रा म रग भर कर गा उपसाहन अत्रि तीव्र मामिक तथा अनुभूतिपूण मुत्तर वाक्याभिव्यक्ति की गई है जस—

(१) ‘ओनई पटा चहू निजि छाई । छूतहि बान मय शरि लाई ॥

वाणों क निर मेघ की वृत्ते तथा छूत हुए बाणा के लिए ‘धारासार मघ की सडी’ के उपमाना व द्वारा एक मुत्तर जीवत दृश्य उपस्थित किया गया है ।

सागर की छाती पर मत् तथा तीव्र गति से भागते हुए जलयानों के लिए त्रमश 'गरियार बल और तुपारन्शीय अश्व' के उपमानों द्वारा सुन्दर अभिव्यञ्जना की गई है—

'कोई जसभन घाव तुखार । कोई जइस बल गरियार ॥'

उदधि समुद्र के प्रतप्त जल को लौह कटाह में खींचते हुए तेल का उपमान भी अधिक गाढ़ बना देता है—

“तलफ तेल कराह जिमि तिमि तलफ सब नीर ॥”

जायसी ने अनेक लोकोक्तियों और मुहावरों का भी उपमान रूप में प्रयोग किया है, यथा—

“माये नहि बसारिय जी मुठि सुआ सलोन ।

कान टुहँ जेहि पहिरे का लेइ करव सो सोन ॥”

भावी सौत की आशका से नागमनी ने हीरामन शुब के लिए वजनी—स्वर्ण कणफूल के उपमान का प्रयोग किया है जिससे कान में पहनने से कान टूटने का भय बना रहता है। प्रस्तुत पद में फाटि पर ओहि सोना जेहि से टूट कान वाली कहावत को ही उपमान रूप में रखकर दृष्टांत दिया गया है।

उपयुक्त सम्पूर्ण विवेचन के आधार पर हम कह सकते हैं कि जायसी एक उत्कृष्ट कोटि के रस सिद्ध कवि थे। उनकी कृति की अजस धारा में स्वाभाविकतः अनेक अलंकारों का समावेश हो गया है। ये अलंकार स्वभावज हैं आरोपित नहीं। अतः पन्मावत के काव्य सौन्दर्य में मवद्वन्द्व की दृष्टि से इन उपमानों का महत्वपूर्ण योग है। मध्ययुगीन तथा रीतिकालीन कवियों को सदृश जायसी को अलंकारों की अनावश्यक और बमल ठूस ठाम नष्ट करनी पड़ी है। रससिद्ध इस भारतीय महाकवि के काव्य में मानसरोवर की भाँति सद्यः स्वतः अलंकार-बमल विकसित हुए हैं। इन अलंकारपदमों की नव-नव सुरभि तथा स्वजात सौंदर्य ने पन्मावत को हिन्दी साहित्य का एक अमूल्य ग्रंथ रत्न बना दिया है।



रस

भाव्याभिव्यञ्जना

जायसी, कुतबन आदि सूफी कवियों की रचनाओं का प्रधान विषय प्रेमताव का निदर्शन एवं प्रेम व्यापारों का वर्णन होने के कारण उनकी भाव-व्यञ्जना-पद्धति की सीमा भी स्वभावतः बना तन पट्टी की है जहाँ तब उससे अनुकूल समर्थ भावों का प्रश्न आ सकता है। सूफियों ने सब कहा प्रेम का विरह-पक्ष को विनाश महत्व दिया है और इसी कारण जितना ध्यान उन्होंने प्रीति एवं प्रेमियों के विषय में

उसकी अवधि में घेते जाने वाले विविध कष्टों तथा उसका अंत करने के उद्देश्य से किए गए विभिन्न प्रयत्नों का वर्णन की ओर दिया है उतना उसके अंतिम मिलन को भी नहीं दिया है। विरह को दशा वर्तत वह मन स्थिति है जिसमें रहते समय अपने सारे जीवन को ही प्रमत्तता के प्रति नितान्त एक निष्ठ बना देना पड़ता है। संयोग या मिलन के अनुभव में उनकी तीव्रता नहीं रह जाती और १ इमी कारण उसमें किसी प्रकार की गति लक्षित नहीं है। विरह का भाव में एक विविध अंत प्ररणा निहित रहती है जो प्रेमी या प्रेमिका को कभी चैन की सास नहीं लेने देती और सतत उदागशील बनाकर हा छोड़ती है। वह आगे बढ़ने का प्रयत्न करता है माग में अनेक प्रयत्न समक्ष आते हैं। वह सघर्ष से जुझता है, घबराना नहीं। प्रिय के मिलन की महत्-तीव्र आकांक्षा लेकर शूला पर भी वह उत्साहपूर्वक चला जाता है।

मुल्ला नाऊ, जायसी, कुतबत आदि सूफी कवियों ने भाव-व्यञ्जना के क्षेत्र में व्याहमासा और प्रकृति वर्णन का बहुत महत्व दिया है। प्रत्येक मास के ऋतुपरक प्रभाव का निदर्शन एक नामक-नायिका पर तज्जय प्रभावविशेषों का इन कवियों ने सफलतापूर्वक चित्रण किया है। इन वर्णनों का प्रसंग में प्रायः सबत्र भारतीय वातावरण की अवतारणा ही द्रष्टव्य है। जहाँ फारसी साहित्य की कायस्थितियों का प्रभावतिशय्य हुआ है वहाँ वर्णन अत्युक्तिपूर्ण किंवा अनिर्दिष्ट हो गए हैं। जायसी के पात्रों के नयनों में रक्त के अंशों की दूरि-दूरि पड़ते हैं और उनके स्थला पर स्वाभाविकता का स्थान अत्यक्ति लेने लगती है। जायसी के अतिरिक्त प्रायः सभी सूफी कवि विरह वर्णन के प्रसंग में भारतीय मर्यादा का ध्यान नहीं रखते। कहा कही ये कवि विरहिणी के भावों में स्वयं बह जाते हैं और उनके स्थला पर क्वचित क्वचित उच्छ्वसना और वीभत्सता भी दृष्टिगोचर होती है। इन कवियों के संयोगवत्त्वा के वर्णन या तो भोगविनामय हैं या कही कही दृश्यपरक। प्रेम तत्व की व्याख्या शीघ्र की लोकांतर कल्पना, प्रमत्तत्व का अपूर्वता-असदता कही कही साम्प्रदायिक सिद्धांतों का परिचय आदि का भी पूरा पूरा परिचय इनकी रचनाओं में मिलता है। प्रेम का प्रसंग में ही उत्साह, शोक, दुःख, ईर्ष्या, कष्ट, दया सहृदयता एक सुजनना परक भावों की व्यञ्जना भी यहाँ प्रचुर मात्रा में दीक्ष पड़ती है।

मुख्य रूप से पात्रों के द्वारा रति, शोक, श्रेय, और मुदात्ताह नामक स्थायी भावों की व्यञ्जना कराई जाती है। पन्मावन में भय का आलवन समुद्र वर्णन का प्रसंग में और वीभत्स का आलवन युद्ध वर्णन के प्रसंग में हम पाते हैं। हास का तो अभाव ही अभाव है। जायसी की भाव-व्यञ्जना के सबब में यह समय रखना चाहिए कि उन्होंने जबरनस्ती विभाव अनुभाव सचारी भावों को ठूस कर पूरा रस की रस

बदा करने की कोशिश नहीं की है। भावोत्कप मात्र ही उनका प्रयोजन रहा है। पदमावत में यद्यपि श्रृंगार ही प्रधान है पर उसके सभोग पक्ष में स्तम्भ, स्वप्न, रोमांच नहीं मिलते। वियोग में अश्रुओं का बाहुल्य है। भावाभिव्यञ्जना के प्रसंग में दो बातें विशेष द्रष्टव्य होती हैं—

(१) कितने भावों और गूढ़ मानसिक विचारों तक कवि की दृष्टि पहुँची है।

(२) कोई भाव कितने उत्कप तक पहुँचा है।

जायसी में भावों के भीतर संचारियों का सन्निवेश बहुत कम मिलता है। पदमावत में रति भाव का प्राधान्य है पर उसके अंतर्गत भी हम असूया, गव आदि दो एक संचारियों को छोड़ शीघ्र अवहित्या आदि अनेक भावों का कहीं पता नहीं पाते।

भावा के उत्कप के क्षेत्र में जायसी बहुत बड़े चढ़ हैं किन्तु यह उत्कप मुख्यतः विप्रसन्न पक्ष में ही अधिक दिखाई पड़ता है।

पदमावत मूलतः एक प्रेम कथा है। अतः श्रृंगार रस का सयाग और वियोग पक्ष का समावेश उसमें विशद रीति से हुआ है। श्रृंगार रस के अतिरिक्त अन्य रसों का भी समावेश कथा प्रसंगों के कारण हो गया है। यशोवन्त रस वरुण वात्सल्य वीर शांत और वीभत्स हैं। वीर शांत और वीभत्स का सबंध प्रधानतः उत्तराद्र के युद्धों से है। करुण रस जोगी-स्वप्न और सती स्वप्न में व्यापक रूप से निरूपित हुआ है। वात्सल्य और शांत के छोटे छोटे प्रसंग कई बार आए हैं।

श्रृंगार रस

सयोग पक्ष

यद्यपि पदमावत वियोग श्रृंगार प्रधान काव्य है पर इसमें सयोग श्रृंगार का भी पूरा वर्णन हुआ है। पदमावत में वर्णन सभोग श्रृंगार का उद्दीपन की दृष्टि से निरूपा गया है। जायसी ने रत्नसेन-नागमती का सयोग का केवल एक विप्रसन्न किया है। रत्नसेन तिहल से लौटकर आता है। तिनभर तो व्यस्त रहा पर भद्र निशि नागमती पह आवा नागमती में मान का भाव जाग्रत होता है। वह मान बरती है और अंत में कहती है कि—

‘तू जागी होइगा बरानी। हीं जरि छार भण्ड तोहि लागी ॥

सपरनी को दृष्टि में रखती हुई वह कह उठती है—

बाह ह सी तम मोसा किएउ और सो नह।

तुम्ह मुख चमक बीजुरी माहि मुख बरसन मह ॥

इस अवसर पर रत्नसेन की चाटुकारिता द्रष्टव्य है—

भलहि सेन गगाजल दीठा । त्रमुन जो साम नीर अनि माठा ॥
 बाह भएउ तन दिन दस दहा । औ बरसा सिर ऊपर अहा ॥
 अन्त म वह जस भवा लता है—

क' लाइक' नारि मनाई । जरी जो बलि सावि पलुहाइ ॥
 रत्नसन बरात सजा कर आ रहा है पदमावती के हुलास और प्रेमातिशय को कोई सीमा नहीं—

हुलम मन दरस मदमान । हुलम अघर रग-रसरत ॥
 हुलसा अन्त आप रवि पार्थ । हुलसि हिया बचुकि न समार्थ ॥
 हुतस कुच बसनी बढ टूटे । हलसी भूजा बलय कर फूटे ॥
 बाजु चाँद घर आवा सुरू । बाजु सिंगार होइ सब बू ॥
 अग-अग सब हुलस, कोइ कतहू न समाइ ।
 ठावहि ठाय विमानि गइ मुरछा तन आइ ॥

रत्नसेन पदमावती की मुहाग रात का आयोजन है । बकि दपति को धवन गहू के सानवें खड म ले जाता है । समवत सात खड म मूफिया क सात मुवामात निदिष्ट है । अन्तिम खड म पहुँच कर ही प्रिय स मिनन होता है ।

सज की कोमलता के लिए जायसी की अत्युक्ति इष्ट है—

अति सुकुमारि सज सो ठाणी, छव न पाव कोई ।

देखत नच तिनहि सिन पाव घरत कम हाई ॥

दोना क मन म सकोच चिंता है । पदमावती ना और भी सेवोचसोना हो गई है—

हौं बारी औ दुनहित पीव तहन यह सज ।

ना जानौ बस होइहि अन्त कत के सज ॥

सभोग चित्रण—

फारसी के कवियों ने कही-ज' प्रेम के मासत स्वप्न का चित्रण किया है पर उनक काया म समाग चित्रण का अभाव है । उनके सभोग प्रमति वणनों म कभी-कभी तमबुक का दीगर टकी और हा जाता है । रूमि का कथन है—

' परदा बरदागे बिरहना गा नि मन । मो न सस्य वासनम वा परहन ॥ ''

(परदा उठा दो और साफ-साफ कह दो कि यार के साथ कुर्तों पहन कर नहीं सोती यार के साथ सोने का सुरत कुर्तों उतार कर सोने म है ।)

अभीर सुसरा न भी शीरों-सुसरा मसनवी म सभोग का चित्रण किया है ।

गिरफ्त दस्ते उन दीगर चू मग्नान । गु' अज बज्म गहमूप मबिम्ता ॥

' न खुशत आ तशानए नब खुशक बेताब । दहन अज आवे हैवाँ कद सराब ॥
 चू फारिग गुद जं शवत हाय चू नाश । कशोद आसवरा चू गुन दरगोश ॥'^१
 (दोनों ने एक दूसरे का हाथ पकड़ा ; व महफिज स शविस्ता (शयन कक्ष) की ओर चल । सबप्रथम उस प्यासे होट वाले तथा मूख लव बेताब ने मुह को आवे ह्यात स सराब किया । और जब मधुपान से फारिग हुआ तो उसको अपनी गोद म खींच लिया ।) इसके अनन्तर खुशरो ने उन दोनों के रमण का यथाथ चित्रण किया है । ईरान के सूफी कवियों म इश्क मजाजी—^२इश्क हकीकी के चित्रण मिलते हैं पर स्पष्ट रूप स सभोग के चित्रण वहाँ की मसनविया म नहीं मिलते । जामी की मसनवी यूसुफ जुलेखा म इस प्रकार का चित्रण नहीं मिलता । निजामी ने भी इस प्रकार का चित्रण नहीं किया है । खुसरो की यह प्रवृत्ति भारतीय वातावरण के कारण है । इसका मूलस्रोत भारतीय साहित्य म है । फारसी साहित्य की सबप्रथम मसनवी म सभोग चित्रण अमीर खुसरो की शीरी खसरो म ही मिलता है । अकबर कालीन फजी ने भी नल दमन म इस प्रकार का चित्रण किया है— अजदीदा वदीना राज गुफतदु । बज सीता व सीता वाज गुफत^३ । सम्भव है कि जायसी न अमीर खुसरो वा भारतीय परम्परा स गहोन करके ही सभोग का विलसित चित्रण किया है ।

संस्कृत के काव्या म सभोग के अनेक प्रकार के वर्णन मिलते हैं इस प्रसंग म प्राय कवियों ने कामशास्त्र को आधार बनाया है । कालिदास^४ न कुमार सम्भवम म सभोग का सविस्तार चित्रण किया है । श्री हृष न नपथ महाकाव्य म नल और दमयती के सभोग का चित्रण किया है । इस महाकाव्य के अठारहवें सग म सभोग का बड़ा विशद चित्रण मिलता है । विल्हण ने^५ चौरपचाशिका म चोर कवि की सभोग-स्मृतिया का वर्णन किया है । गीतगोविंद म^६ जयदेव न राधा और वृष्ण की भाति भाति की सभोग-केनित्रीयाओ को चित्रित किया है । प्राकृत और अपभ्रंश साहित्य म भी सभोग के वर्णन मिलते हैं ।

वस्तुन भारतीय उक्षणकारा ने महाकाव्य म सभोग चित्रण को एक आवश्यक तत्व के रूप म माना है और नभक्त इसी कारण महाकविया न सभोग चित्रण स

१—खुसरो शीरी अमीर खुसरो पृ० २४० (अलीगढ़ यूनिवर्सिटी १९२७)

२—नलदमन, फजी पृ० २१६ (नवत्रिंशोर प्रस सखनऊ १९३० ई०)

३—कुमार सम्भवम अष्टम सग ।

४—नपथमहाकाव्यम् अष्टांश सग श्लोक ५४-६८

५—श्रीविल्हण कविकृत चौरपचाशिका ओरियंटल बुक एजंसी पूना ।

६—गीतगोविंद हिंदी अनु० डा० विनयमाहून शर्मा ।

अपने महाकाव्यों को सजाना शुरू किया। इस प्रकार इस चित्रण का परम्परा ही चल पड़ी। साहित्य रूपणकार का कथन है कि महाकाव्य में सभोग का चित्रण भी होना चाहिए— सभोग विप्रत्रभोच मुनिस्वगपराध्वरा।^१ दण्डी ने भी 'उद्यान सलिल शीटा मधुपान'^२ रत्नोमत के द्वारा महाकाव्य में सभोग चित्रण को एक आवश्यक तत्व माना है। भारतीय महाकाव्यों में धीरे धीरे सभोग-चित्रण एक रूढ़ि बन गया। प्रायः महाकाव्यकारों ने प्रसंग उचित होने पर सभोग के रसमय वर्णन किए हैं।

'आतामारू राहू' छिनाईवार्ता मदनबदन सावलिगा, माधवानलकामकदला, नलदमल रस रतन प्रेम प्रगास पुहुपावती प्रमति असूफी वायो में सभोग चित्रण का कविया ने रसमय वर्णन किया है। यहाँ सभोग चित्रण की भारतीय परम्परा प्रदर्शन के लिए कवि पंक्तिमा अपक्षि है— छिनाईवार्ता में सीरसी और छिताई की रति आडा का चित्रण मिलता है। छिताई कोक बला और आसनो कमनवध की रीतिमा विपरीत रति आति में चतुर थी—

मदनबान तन जावन सहा। उठि मुरसी आंचल गहा।

छारत कर कचुकी लजाई। फून्ड द्रष्टि दीया बुजाई ॥

अधर प्रकाश कुच गहन न देई। छुनन न अग छिताई देई ॥'

आसन-कमन विध वध। विपरित गनिन चोज अनि सध ॥

गणपति ने कामकला और माधव के विनास एवं बेलि-मुद्ध का मविस्तार वर्णन किया है। माधव को कवि ने साक्षात् कामरु का अवतार कहा है। चूडिया का फटना, मुक्ताहार का टूटना आभरणा का टिहर जाना साट का भार न सह सकना आदि का माधवानल कामकला में वर्णन हुआ है। बलिकिसन ररमणीरी में कवि पृथ्वीराज ने रविमणी के याना के सुनन, मातिया के छहराने आदि का सभागतलीन चित्रण किया है।

विद्यापति ने भी अपने कवियों में सभोग का चित्रण किया है। अब प्रश्न

१-साहित्यदण, विश्वनाथ, पण्डपरिच्छद, श्लोक ३०३।

२-वाव्यादश दण्डी, प्रथम परिच्छद, पत्राक १६।

३-आतामारू राहू ना० प्र० सभा, काशी, पृ० १४१ ८२ ८३।

४-छिनाईवार्ता ना० प्र० सभा काशी छद १६२ स २००।

५-माधवानल कामकला प्रदध पृ० १०६ १०७।

६-बलिकिसन ररमणीरी छ १७६ २७ ७८।

७-विद्यापति पत्रावती, स० रामकृष्ण बनीपुरी सहस्रियामराय पत्रा।

यह है कि जायसी के सभोग वणन का मूल-स्रोत क्या है ? फारसी की सूफी वणनात्मक मसनविया में सभोग का इस प्रकार का चित्रण नहीं मिलता । प्रख्यात मसनवीकार निजामी और तामी की कृतियां में वही भी इस प्रकार का सभोग चित्रण नहीं मिलता है । जायसी मसन आदि के काव्यों में जो सभोग वणन मिलता है उसके मूल में प्रधान रूप से भारतीय प्रभाव और परम्परा है साथ ही गौण रूप से सूफी प्रेम शक मजाजी—शकहमीकी का भी प्रभाव है—पर यह सूफी या ईरानी प्रभाव नगण्य सा है ।

जायसी ने दम्पति के सभोग का जमकर वणन किया है । यहाँ कवि ने मूलतः लौकिक सभोग का वणन किया है

पिउ पिउ करत जीभ धनि सूखी बोनी चातक भाति ।
 परी सो बूद सीप जनु माती हिए परी सुख-साति ॥
 भई जूय जस रावन रामा । सज विधासि विरह सग्रामा ।
 नीह लक वचन गट टूटा । कीह सिगार अहा सब तूटा ॥
 औ जोवन ममत विधासा । विचना विरह जीउ जो नासा ॥
 टूट अग जग सब भसा । छटी मग भग भ वेसा ॥
 कचुकि चूरि चूरि भइ तान । टूट हार मोति छहराने ॥
 पुहम सिगार सवारि जो जीवन नवल यमत ।
 अरगज जेउ हिय लाइ क मरगज कीट वन ॥^१

इस प्रसंग में मीमता शब्द द्रष्टव्य है । एक आरम्भमन् हाथी का अर्थ और दूसरी ओर अहता या अह का अर्थ । अह का विध्वंस साधना में अपभ्रित है । इस अवसर पर बेवारी बाबा पन्मावती प्रिनती करती है कि ह प्रिय तुम्हारी आना मेरे मिर माये पर है पर मेरा निवन्न है कि मधु का थोड़ा थोड़ा चरतो—

जो तुम्ह चाहत सा करहु नहि जानहु भन मत् ।
 जो भाव सो होइ माहि तुम्हहि प चहौ अनत् ॥^१

रत्नसेन सच्चा सायक है वह मरन जीने से नहीं डरता—

‘सुनु धनि पम सुरा के पिए । मरन जियन डर रहै न गिए ॥

इस प्रसंग में जामी का कथन उद्धरणीय है— सामाजिक प्रेम को छत्र कर पियो ताकि तुम्हारे ओष्ठ और अघिक गुद्ध सुरा का पान कर सकें ।^१ यह सभोग चित्रण स्थूल हो गया है । सुराही प्याना प्रेम सुरा आदि का सूक्ष्म स्वरूप दर्शन नहीं मिलता ।

१—पन्मावत (डा० बागुशेवशरण अग्रवाल) पृ० ३१७

२—वही प ३१८

३—यूमुफ एण जुलसा अनु० रत्न टी० एच० प्रिन्सिपल लखन प० २४ ।

सूक्तियों में मत्पान ईश्वरीय प्रेम का प्रतीक है। वही से मुहाण रात के समय कवि ने इसकी योजना की है। हमारे घम-समाज और साहित्य में रति का आत्यन्तिक चित्रण वर्जित है। काम भी घम अथ और माग की तरह उपाये है। भारतीय घम साधना में काम का भी महत्व है। सभ्यत यज्ञ तत्र साधना का प्रभाव है। इन प्रसंग में कौणिक और गणनाय जी के मन्त्र पर चौरामी आसनों के चित्र, वाग्विद्यालय नयने और विद्यापति के समोग-वर्णना की ओर भी दृष्टि का बना जाना स्वाभाविक है। कबीर में भी अध्यात्म पथ का 'तौत्रिक' रति प्रसंग का ही सहारा मिला है। आज भी रत्नसुवानी कवि जुही की बत्ती और पवन शेफाली और मिश्रि विद्दु की श्रीडा प्यक्त करन स तहा चके हैं। 'नागमी न अत म स्पन्द रूप स इने अध्यात्म की ओर मोड दिया है—

करि सिगार तापहें का जाऊ । ओही देखीं ठाहिं ठाऊँ ॥
 नन माहें है उहै समाना । देखीं तहा माहिं बोड जाना ॥
 रत्नसेन के साम रहने के कारण पन्मावती को पावस अत्यन्त सुखद प्रतीत होता है—
 'चमक बोडु बरस जन सोना । दादुर मोर सब्र मुठि लोना ॥
 रगराती प्रीनम मग जागी । गरज गगन चौकि गर लागी ॥

विरह स्थिति में नागमनी का बूदें बग की तरह लगती हैं पर पन्मावती को सयोग दशा में वे ही बूदें सोने की-सी प्रतीत होती हैं। जायसी का पद ऋतु बघन परपरगत ही है। पन्मावती का गार मन्त्रि हारर राजा के पास जाती है उस समय का एक मनोहर विचित्र कवि ने खासा है—

गात्रन नद पठावा आप सुजाइ न म ॥
 तन भन जाउन गात्रि क दद च भी ल मँ ॥

मा का गानना—ममाम की उक्ता या अभिनाय है। बिना म मन की तयारी के तन की सब तयारी व्यय हो जाती है।

नायन-नायिका के बीच कुछ वाक चातुय और परिहास भी भारतीय प्रेम-प्रवृत्ति का एक मनोहर अंग है। भारतीय प्रवृत्ति के अनुसार सुयोग पथ की भासा बलिपा का भी बद्ध विधान हा जाने स जायसी का प्रेम आर्तनी जीको द्वारा बिल्वून मुरमी कह जाने स बान बाव बना गया है। राजा की गारी कहानी सुनकर पन्मावती कहती है कि तू जोगी और मैं रानी तिरा-मिरा क्या छाप ?

हो रानी तू जागि भियारी । जोनिहिं भासिहिं कौनि बिहारा ॥
 एही भक्ति सिष्टि सब छदो । एही भव रावन गिय हरी ॥
 सभोग शृंगार की परम्परा के अनुसार जायसी न अभिहार का पूरा बघन

किया है। अभिसार मिनन, छूत क्रीडा वाकचालुय रति बाग्नि की व्यजना पर्याप्त रसमय है।

वियोग शृंगार का पदमावत में अत्यन्त विशद चित्रण हुआ है। नागमती और पदमावती दोनों के विरह पदमावत में मिलते हैं। दोनों लगभग एक समान हैं। इनमें कोई विशेष भेद नहीं है। कवि प्रेम मात्र में भेद नहीं करता। प्रेम चाहे लौकिक हो चाहे पारमात्मिक प्रकार भेद हो सकता है तत्त्वभेद नहीं। पदमावत के ५७ छण्डों में पद्मह छण्ड नागमती और पदमावती के वियोग का चित्रण करते हैं।

नागमती का वियोग 'नागमती वियोग छण्ड नागमती सन्देश छण्ड चित्तौर आगमन छण्ड पदमावती नागमती विलाप छण्ड पदमावती-नागमती सती छण्ड' आदि प्रसंगों में अभिव्यक्त हुआ है। विद्वानों का विचार है कि नागमती वियोग और सन्देश जसी वस्तु-सौ हिन्दी काव्य में अत्यन्त नहीं ही है। केवल इन्हीं दो छण्डों को लिखकर जायसी अमर हो जाते। नागमती का अपना पति एक दूसरी स्त्री के सौंदर्य का वणन एक तोते के मुख से सुनकर सात समुद्र पार सिंहन द्वीप की ओर चला जाता है। वह अपना सब कुछ छोड़कर जाता है जोगी बनकर जाता है। नागमती की गाथा भी सूनी है—इसी पृष्ठभूमि पर उसका दारुण विरह चित्रित हुआ है। वेदना का इतना मामिक, गम्भीर पवित्र एवं प्रभविष्णु वणन अत्यन्त दुर्लभ है। जायसी का एक एक दोहा विरह का अगाध सागर है—

सारस जोरो कौन हरि मारि वियाधा नीर ।
झुरि झुरि हों पाजर भई विरह कान मोहि दीह ॥
जिह पर कता ते सुखी तिन गारो ओ गव ।
कत पियारा बाहिर हम सुख भूला सब ॥
परवत समुद अगम विच, धीहड धन बन डाम्ब ।
किमि क भेटों कत तुम्ह नामाहि पाव न पाख ॥

वियोग हमारे यहाँ चार प्रकार का माना गया है पूर्वानुराग मान प्रवास और वरुण ।^१ (१) पूर्वानुराग जो कुछ आचार्यों ने अभिलाष मात्र मानकर गम्भीर वियोग के अनुपयुक्त समझा है। पदमावत में प्रथममान और ईर्ष्या मान दोनों की सुन्दर योजना की गई है। इन दोनों मानों के वणन में जायसी की चित्तवृत्ति अधिक स्थी है; प्रवास, जाय, विरह के वणन, म. न. जायसी, वज्रोत्त है ।

'जायसी का विरह वणन अत्युक्तिपूर्ण होने पर भी मजाक की हद तक नहीं पहुँचने पाया है उसमें गम्भीर भरा हुआ है। इनकी अत्युक्तियाँ बात की बरा मात नहीं जान पड़ती हृदय की अत्यन्त तीव्र वेदना के कारण सबेस प्रतीत होती हैं।

उनके अन्तगत जिन पद्यों का उल्लेख होता है वे हृदयमय ताप की अनुभूति का आभास देने वाले होने हैं, बाहर म ताप की मात्रा नापने वाले मानदण्ड मात्र नहीं। जाड़ के दिनों म पड़ोसियों तक पहुँच उन्हें बेचैन करने वाले शरीर पर रसे हुए कमल के पत्ता का भूँवर पापड़ बना देने वाले बातल का गुनावजल सुखा डालने वाले ताप से कम ताप जायसी का नहीं हैं पर उन्होंने उसके वेनात्मक और दृश्य अंश पर जितनी दृष्टि रखी है उतनी उसकी बाहरी नाप-जोख पर नहीं जो प्रायः ऊहात्मक हुआ करती है। नाप जोख करने वाली ऊहात्मक पद्धति का जायसी ने कुछ ही स्थानों पर प्रयोग किया है जब राजा की प्रम-पत्रिका के इस बगन म—

बाखर जरहि न बाहू छूआ । तब दुख देखि चला तेइ मूआ ॥

अथवा नागमती के विरह-नाप की इस व्यंजना म—

जेहि पखी क नियर हाइ कहै विरह क वात ।

सोई पखी जाइ जरि तरिवर होहि निपात ॥

इस ऊहात्मक पद्धति का दो चार जगह मन्वार चाट जायसी ने किया हो, पर अधिकतर वेनात्मक स्वरूप का अत्यन्त विभक्त यंजना ही जायसी की विषयता है। इन्होंने अत्युक्ति की है और सूत्र की है पर वह अधिकविश सददना के स्वरूप में है परिणाम निर्देश क रूप म नहा है।

जायसी ने जहाँ हृत्प्रकाश का माध्यम से विरह-ताप की मात्रा का अधिकतम सुचित करने के लिए ऊहात्मक या वस्तु-व्यंजनात्मक पद्धति का सहारा लिया है वहाँ विरह-ताप का मृष्टि भर म व्याप्त भी देखा है—

अम परजरा विरह कर गटा । मध साम मए धूम जो टटा ॥

दादा राहु नतु गर दाया । मूरज जरा चान जरि आया ।

ओ सब नरतन तराई जरहीं । दूटहि लूक, धरनि मह परहीं ॥

जर सा धरती ठावहि टाऊ । दहकि पलाम जर तहि दाऊ ॥

यहाँ सैधों का श्याम होना, राहु-नतु का काला हाना सूत्र का तपना, चन्द्रमा का क्षीण हाते जाना पलाम के फूलों का जल हाना आदि सत्य हैं। ये विरह ताप के कारण ऐसे हैं यही बात कनिष्ठ है।

नाप के अतिरिक्त विरह क ओर—ओर अगों का भी विन्यास जायसी ने इसा हृदय-हारिणी और व्यापकत्व विधापिनी पद्धति पर वास्तु प्रकृति का मूल-माध्यमर जगत का प्रतिबिम्ब-मा दिखाने हुए किया है। नागमती के विरह ओर रत्न से समाप्त सप्तार प्रभावित है—

कुन्कि-कुहुकि जस बाज्य राई । रषत आंगु धु पुची होइ राई ॥

बह-बहें टाड़ होइ बनवासी । तह-तहें हाइ धुपुकि क रासी ॥

तेहि दुख भए परास निपाते । लोहू बूडि उठ होइ राते ॥
राते बिब भीजि तेहि लोहू । परवर पाक, पाट हिय गोहू ॥

सूर की गोपियो ने मधुवन को कोसते हुए कहा था—

मधुवन तूम वत्त रहत हरे ।

विरह-वियोग श्याम सुंदर के काहे न ठाढ़े तरे ?

कौन पाज ठाढ़े रहे वन मे काहे न उकठि परे ?

नागमती का विरह-वणन हि दी साहित्य में एक अद्वितीय वस्तु है। नागमती उपवन के पेड़ों के नीचे रात रात भर रोती फिरती है। इस दशा में पशुपती पेड़ पल्लव जो कुछ सामने आता है उस वह अपना दुखड़ा सुनाती है। वह पुण्य दशा शय है जिसमें ये सब अपने सग लगते हैं और यह जान पड़ने लगता है कि इन्हें दुख सुनाने से भी जी हलका होगा। सब जीवों का अधीश्वर मनुष्य और मनुष्यों का अधीश्वर राजा। उसकी पटरानी जो कभी कभी बड़-बड़ राजाओं और सरदारों की बातों की ओर भी ध्यान न देती थी वह पक्षियों से अपने हृदय की वेदना कह रही है हृदय की नस उदार और यापक दशा का कवियों ने केवल प्रेम दशा के भीतर ही वणन किया है यह बात ध्यान देने योग्य है।

बाल्मीकि के राम सीता-हरण होने पर वन में वक्ष-वक्ष से पूछते फिरे कालिदास का यन्मेष से संदेश देता रहा और नागमती भी उन्माद की स्थिति में पक्षी-द्रुत की व्यवस्था करती रही—

फिरि फिरि रोव बोइ नहि डोला । आधी रात-बिहगम बोला ॥

तू फिरि फिरि दाहैं सब पाँसी । केहि दुख रनि न लावसि आसी ॥

जायसी ने यहाँ सामान्य हृदय तत्व की सृष्टि-व्यापिनी भावना द्वारा मनुष्य और पशु-पक्षी सबको एक जीवन सूत्र में बद्ध देखा है।

पदमावती से कहने के नये नागमती ने बिहगम से जो संदेश कहा है वह अत्यन्त ममस्पर्शी है। उसमें मान गव आदि से रहित सुख भोग की क्षालना से वरुण अत्यन्त नग्न शीतल और विद्युद्ध प्रेम की क्षालक पाई जाती है—

पन्मावनि सो बहहु बिहगम । कत लोभाइ रही करि सगम ॥

तोहि चन सुख मित्र सरीरा । मो कह हिय दुद दुम पीरा ॥

हमहु विआही सग ओहि पीऊ । आपुहि पाइ जानु पर-जीऊ ॥

मोहि भोग सो पाज न बारी । सोह दीठि क चाप निहारी ॥

विप्रलम्भ शृंगार ही पदमावती में प्रधान है। विरह दशा के वणन में जहाँ

कवि ने भारतीय पद्यों का अनुसरण किया है, वहाँ कोई अशुचिकारक वीभत्स दृश्य नहीं आया है। वृक्षता ताप वेदना आदि के वर्णन में भी उन्होंने शृंगार के उपयुक्त वस्तु सामने रखी है, केवल उसके स्वरूप में कुछ अंतर दिखा दिया है, जो मदिमनी स्वभावतः पश्चिमी के समान विवक्षित रहा करती थी वह सुसुन्दर मुरझाई हुई लगती है—

कैवल्य सूक्ष्म पल्लुरी बहरानी । गलि गलि क मिति छार हेरानी ॥

विरह-वर्णन के प्रसंग में पदमावत में जहाँ कवि भी फारसी साहित्य द्वारा पोषित भाव मिलते हैं वहाँ कभी-कभी वीभत्सता भी आ गई है, जैसे

विरह सरागहि भूने मामू । गिरि-गिरि पर रक्त क औमू ॥

बटि-बटि मासु सराग पिरोवा । रक्त क औमू मासु सब रोवा ॥

खिन एक बार भासु अस भू जा । खिनहि चन्दा सिप अस भू जा ॥

वियोग-वर्णन की ही भाँति कहीं-कहीं सयोगवर्णन के प्रसंग में भी इसी प्रकार के वीभत्स दृश्यों को उपस्थित किया गया है। पादन की नवागता वधु सोचती है कि वही मेरे कटास तो उसके हृदय को बेधकर पाठ की ओर नहीं जा निकले हैं। यदि ऐसा है तो तू ही लगाकर उम सींच ल और जब वह पीठों से चीक कर मुझ पकड़े तो गहरे रस में उमने घो डालू—

मकु पिउ दिस्टि समानउ सालू । हुलसा पीठि बदावी सालू ॥

कुच-तू वी अर पीठि गढोवों । गहे जो हूकि, गाड रस घोवों ॥

विरहजय वृक्षता के भी अत्युक्तिमूलक वर्णन दहिबोइला भइ कन्न सनेहा और हाड भए सब विगरी प्रभृति पद्यों में मिलते हैं—इन सब स्थलों में अभीरता और प्रतिपाद्य की प्रभविष्णुता सबन है।

नागमती का शारहमासा वेदना की प्रभविष्णुता, मासिकता कोमलता, मधुरता, प्रकृति-व्यापार के साथ सहचारिता अहमिता प्रजिलता और मंदोपरि उत्तम व्यक्तता के दृष्टिकोणों से हिन्दी साहित्य का एक महाद्य रत्न है। इसका प्रतिमान पावद ही हिन्दी साहित्य में मिन। प्राकृतिक वस्तुओं और व्यापारों का दिग्दर्शन और माप ही दुःख के नाना रूपों और कारणों की दशावस्था के माध्यम से जामसी ने एक सुन्दर सन्निवृत्त भाव प्रवण विन प्रस्तुत किया है।

‘पुष्प नखत मिर ऊपर आवा । हों विनु नाह मदिर का छावा ॥’

बरम मेह चुव ननाहा । छार छार होइ रहि विनु नाहा ॥

जग जन बूढि जहाँ गगि टाकी । मारि नाव खवक विनु पायी ॥

‘कानिब सरद चद उजियारी । जग सीतल ही बिरहै जारी ॥’

सखि झूमर गावहि अग मोरी । हौं झुराव विछुरी भारी जोरी ॥

इन स्थलों पर परिवर्तमान ऋतुओं और प्राकृतिक वापारों के साथ विरहिणी के करुणा कातर हृदय का सामंजस्य उपस्थित किया गया है। बरस मघा झकोरि झकोरी । मोरि दुइ नन चुब जस थोरी ॥ विरहिणी की इस प्रकार की सादृश्य भावना कवि परम्परा सिद्ध है। सूरदास का निस दिन बरसत नन हमारे । बाला पन इसी प्रकार की सादृश्य भावना से आप्लावित है।

हृदय भावनाओं की तीव्रता, सशक्तता और स्वाभाविकता की दृष्टि से भाव सहज ही उत्कृष्ट को पहुँच जाते हैं—

‘रात दिवस बस यह जिउ मोरे । लगीं निहार कत अब तोरे ॥

यह तन जारौं छार क कहीं कि पवन उडाव ।

मकु तेहि मारग उडि पर कत घर जेहि पाव ॥

संक्षेप में यही कहा जा सकता है कि विरह वणन के क्षेत्र में जायसी बजोड़ हैं, उनका बारहमासा हिन्दी साहित्य में एक अत्यन्त वस्तु है। नागमती के अश्रुमय स्वरूप के चित्रण में जायसी पूर्णतः सफल हैं।

करुण

शृंगार के अनन्तर करुणा ही ऐमा रस है जिसमें जायसी की सर्वाधिक धासक्ति है। विप्रलम्भ शृंगार के जोड़ में भी करुण रस का सुन्दर निरूपण हुआ है। दो स्थलों पर मुख्यरूप से करुण रस की सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है (१) रत्नसेन के सिंहल गमन के अवसर पर कवि द्वारा प्रस्तुत किया गया चित्तोर का दृश्य और (२) रत्नसेन की सिंहल की विदाई के समय का दृश्य।

रत्नसेन सिंहल जाने के लिए जोगी होकर और राज-पाट छाड़ कर जा रहा है। माँ रो रही है कि रत्नसेन जा रहा है अब घर में अधियारा हो रहा है। रानियाँ रोकर प्राण छाड़े दे रही हैं वे बाल नोच-नोच कर खलिहान कर रही हैं वे मरना चाहती हैं पर मरती नहीं चारों ओर हाहाकार मचा है नौ मन मोनी एस मन बाँध के आभूषण सोड-पाड कर फेंक डाले गए—

‘रोषत माय न बहुरत बारा । रतन बना घर भा अधियारा ।

रोवहि रानी तजहि पराना । नोचहि बाग करहि खरिहाना ॥’

१—बारहमासा ‘पद ऋत वणन के प्रसंग में प्रकृति चित्रण वाले अध्याय के अंत में सर्बिस्तार वणन द्रष्टव्य है। विरह की अत्युक्तियों का भी इसी प्रबंध में अग्र्यत्र वणन हुआ है।

१—जा० पं०, पृ० ५५-५६।

शैलीगत विवेचन

रत्नसेन की सिंहल से विदाई का दृश्य भी कवणा-प्लावित है। ज्योही पदमा वती ने चलने की बात सुनी तो उसका हृदय घसक उठा उठा घसकि जिउ बी सिर घुना। सखियों का भेंटना रानियों का रोना माता पिता, भाई आदि का रोना कवण रस के ही परिकर से अभि पक्त हुए हैं।

रोवहि मातु पिता बी भाई। कोउ न टेक जो कन्त चलाई ॥
भरी भरी सब भेंटत हेरा। अन अत सौ भएउ गुरेरा ॥
पुत्री जब पति-पर जाती है तो सचमुच कवणा का अपार सागर उमड़ ही पडता है शकुन्तला का विदाई का प्रसंग भी इसी प्रकार का अत्यन्त कवणा पूरित है।

वात्सल्य

वात्सल्य रस के उदगार दो स्थला पर विशेष रूप से द्रष्ट य हैं—

(१) रत्नसेन के जोगी होकर घर से निरवने के अवसर पर

(२) बाल की युद्ध-यात्रा के अवसर पर।

इन दोनों स्थलों पर अभि-यजना माता के ही मुख स है। रत्नसेन की माता का वात्सल्य मुख के अनिश्चय द्वारा यक्त होता है और बादल की माता का 'शका सचारी द्वारा। रत्नसेन की मा कह उठती है—

कमे घूप सहव बिनु छाहा। कसे नीद परिहि भुइँ माँहा ॥

कसे सहव खिनहि खिन भूला। कमे लाव कुरबुटा रुला ॥

तुनसी और मूर ने कौशल्या और यशोदा के मुख के ऐसे अनिश्चय की बड़ी मुदर व्यजना कराई है। ऐसे स्थान पर अनिश्चय और शका के सचारी भाव उपत्पित हात हैं। वात्सल्य के अतगत शका का एक उदाहरण द्रष्टव्य है—

बादन राम मोर तुइ वारा। का जानसि कस होइ जूहारा ॥

बरिमाहि सल बान धनपोरा। धीरज धीर न बाधिहि तोरा ॥

उपयुक्त दोनों स्थलों पर मा के कोमल हृदय की मनोरम झाकी निखलाई गई है।

वीर रस

जायमी का वीर रस का वणन उत्तम कोटि का है। सेना की सजावट

१-जा० प्र० (ना० प्र० मभा) पृ० १७० १

२-द्रष्टव्य, अभिमान शकुन्तलम अक्ष ४।

और युद्ध की तयारी का वणन, चन्दाई की हतवचन का वणन घोर घमासान युद्ध का वणन-अस्त्रों - शस्त्रों के वणन, गोरा - वादन के क्षात्र तेज द्वारा - शौचका अभिय रूजन आदि प्रमाँों म जायसी ने वीर रस का जीवत वणन - चित्रण किया है।

बरखा गए अगम्त के दीठीं। पर पलानि तुरगन पीनी ॥

वे रों राहु छोटा बहु सूहू। रहै न दुख कर मून अँकरह ॥

यहा उत्साह या आशापूण साहस का रूपांश दृश्य है। रत्नसेन, गणवमेन, गोरा वादल, आदि क्षत्रिय हैं अलाउद्दीन भी योद्धा है। युद्ध के प्रसंगा म वीर रस उमड पडा है। गोरा का वीर रस प्लावित एक चित्र दशनीय है -

- सब कटक मिलि गोरहि छँका। गूजत भिष जाइ नहि टेवा ॥'

जेहि निसि उठ सोइ जनु खावा। पनटि सिष तेहि ठाव न आवा ॥

गोरा के अंतिम क्षण का वीर - रस पूण चित्र तो और भी मार्मिक हो उठा है -

भाँट बहा - घनि गोरा तू भा रावन राव ॥

जाति समेटि बाधि क तुरय देत है पाव। १

युद्ध वणन के प्रसंग म डाकिनियो का वीररस - वणन भी दृश्या है। युद्ध जय वीरमत्ता और भयानकता के भी रूप कहीं - कहीं देखने को मिल जाते हैं। रस की दृष्टि स वीर रस का भी सुन्दर परिपाक पन्मावत म हुआ है।

अथ रस भाव

त्रोध के प्रसंग पन्मावत म कम हैं। अलाउद्दीन की चिट्ठी मिनत पर भी क्रोध का उमन्तित रूप नहीं लिखाया जा सका है। यहाँ क्रोध का वन् आवश्यक नहीं है जिसम नीति और विचार नहा रह जाना -

सुनि अम तिसा उग्य त्ररि राजा। जानहु तडवि डेव घा गाजा ॥

का मोहि निष दखावसि आई। कहीं तो सारदूज धरिवाई ॥

तुषत जाइ कहु मर न घाई। होइहि इम वन्द की नुई ॥

रौद्र रस के भी स्थल पन्मावत म मिलते हैं -

हों रनयभउर नाह हमीह। वनरि माथ जइ दीह गरीह ॥

हों तो रतनसन सव बधी। राटू वेधि जीता सरधी ॥

जौ अस लिखा भपउ नहि ओछा। जियत सिष क गहि को मोछा ॥

इतना होने पर भी रौद्र रस का परिपाक नहा है। इतनेम की मृत्यु के अनन्तर उपस्थित किया गया दश्य बडा ही शांत - प्रशांत है। पदिमती के उस समय के रूप की एग सनक लिखाकर कवि ने परिस्थिति की गम्भीरता की ओर इ गित कर दिया है -

शारीरत विवेचन

पद्मावति पुनि पहिरि पटोरी । चनी साय पिय के होइ जोरी ॥
 छोटे केश मोनि तर छू । जानहु रनि नखन सत्र टूटा ॥
 दोउ सोति चडि छाट बईठी । औ सिवनीक परा तिह दीनी
 वे इतर लोक म पति से मिनन की कामना स शान है -
 एव जो बाजा भएउ बियाहू । अउ दूसरे हाइ आर निबाहू ॥
 अही जो गाडि कन तुम्ह जोरी । आदि अत लइ जाइ न छोरी ॥
 दोनो रानिया सती हो जाती है । हिंदू सती नारी का यह चित्र अत्यन्त
 शांत मार्मिक करण और महत् है -

आजु सूर दिन अथवा आजु रनि ससि बूड ।
 आजु नाचि जिउ दीगिय आजु आगि हम्ह जूड ॥
 नागि नठ आगि हिय होरी । छारि भई जरि अग न मोरी ॥
 मगु वणन के प्रसंग म भय का सुदर रूप मिनता है । पदमावत म मूलत
 शृंगार वीर और करण रस का ही सुदर परिष्कार हुआ है । तौकिक प्रेम आध्या
 तिमिक प्रेम के बढ़ाने भक्ति रस की भी अभिव्यक्ति सुदर रूप म हुई है । जायसी
 के यहाँ हास्य का ता नितान्त अभाव है । शृंगार और करण रस के सुदर चित्र
 पद्मावत म व्यापक रूप म मिलत हैं । भावो का उत्कण्ठ रस परिष्कार की स्वाभा
 विकता प्रेम भाव और प्रमानुभूति की तीव्रता पदमावत के रस प्रसंग म विशिष्ट
 आरपण का केन्द्र है ।

अलंकार

अनम का अर्थ है भूषण । जो अलंकरण-भूषण का बहू है अलंकार ।
 का म अनारार का उदाहरण मीथ्य - ममदन क निग हाता है । यह तो य भावो
 का हो या उसी अभिव्यक्ति का । भावा का भूषण करना उठ रमणीयता प्रदान
 करना, अभिव्यक्ति को प्राञ्जल यतना आर उन प्रभविष्णु बनाना अनारार का काम है ।
 अनारार की मायकता इसी म है कि रमभाव आदि के तापय ता आशय प्रहण करके तो
 उनका सनिवण किया जाय । रस मिद्ध वक्रिया का अनारार के लिए प्रयास नती
 करता पड़ना । निरूप्यमाण के व्यंग्यता की कठिनाईयों के लिये पर भी प्रतिभाशाली
 कवियों के समस्त अनारार प्रथम स्थान प्राप्त करा क निग होडा होडा दूट-दूट

१-वामनवक्ति (अनद्विनि अनकार) ।

२- वाक्यशोभाकरानपमनि अनकारान प्रचरत । वाक्यात्म ।

३- रनभावात्नारारय मात्रिय विरिगणनम । अनद्विनीनो सर्वांनमनारारय सायनम
 धमातोष ।

पढते हैं। सचमुच जब रस सिद्ध कवि का उद्बलित हृदय अभिव्यक्ति में प्रवृत्त होता है तो अलंकार स्वतः हाथ जोड़-जोड़ कर आने लगते हैं।

यह द्रष्टव्य है कि अनंकर भाव-भाषा के भूषण हैं। यदि ये भाव-भाषा-धारा से सहज संपृक्त नहीं हैं। यदि उसके अंगी बन कर नहीं आए हैं तथा यदि भावों को सजीव और प्रभविष्णु नहीं बनाते हैं, तो ऐसे अलंकार प्रमत्त-साध्य ही होंगे और वे रचना में अरोपित-से लगेंगे उनसे सौंदर्य-वर्द्धन नहीं होगा। यदि रस भाव अर्थात् अलंकार सजीव हो, तो भरी अप्रस्तुत योजना भी उसकी शाभावद्धि कर सकती है। सचमुच भावों का उत्कृष्ट दिखाने और वस्तुओं के रूप, गुण और त्रिया का अधिक तीव्र अनुभव कराने में कभी-कभी सहायक होने वाली युक्ति अलंकार है।

काव्य में अलंकारों का महत्वपूर्ण स्थान है। दण्डी, भामह उदभट और बेशवदास प्रभृति अलंकारवादियों ने तो यहाँ तक कहा है कि कविता में अलंकार प्राण-स्वरूप है। भूषण के बिना कविता वनिता और मित्र शोभा ही नहीं देते। अलंकार का क्षम बड़ा ही 'यापक' है। कहने के ढंग निराले और जनत हैं और उनके प्रकार भी अलंकार हैं। आचार्य वामन का कथन है कि अलंकार के कारण ही काव्य ग्राह्य होता है और वह अलंकार मौल्य है। विश्वनाथ ने भी लिखा है कि शब्द और अर्थ के जो शाभाति-शायी घम हैं वे ही अलंकार हैं।

उन परिभाषाओं से स्पष्ट है कि काव्य में अनंकारों का महत्वपूर्ण स्थान है। सचमुच वे काव्य के शोभाकारक घम हैं।

पदमावत में अलंकार-विधान

प्रायः काव्य में अलंकारों का विधान सांख्य के आधार पर होता है। पदमावत में स्वरूप वाधन के लिए तथा भावाभिव्यजन को अधिक तीव्र बनाने के लिए जायसी ने सांख्यमूलक अनंतरा का प्रभन परिमाण में सफ़्त प्रयोग किया है। पदमावत चित्ररेखा और बहरानामा के आन्तरिक प्रसाधनों में उपमा उत्प्रेक्षा तथा रूपक का महत्वपूर्ण स्थान है। इनमें भी हेतुप्रेक्षा जायसी को बहुत प्रिय थी। जायसी जब उल्लसित भाव से बिलसित कल्पनाओं के सहारे रूप-सौंदर्य की गाढ़ अभिव्यक्ति तथा भाषा की अधिक तीव्र व्यंजना करने लगते हैं तब उपमाओं की धारातार बर्षा होने लगती है। उत्प्रेक्षा की झड़ी लग जाती है, रूपकों से जीवन प्रतिभाएँ साकार उपस्थित होने लग जाती हैं और गद्य अलंकार भी काव्य प्रसाधन-द्वेष मानो स्वतः हाथ जोड़-जोड़ कर आने लगते हैं। अनंकारों से प्रांजना और प्रभविष्णु बना हुआ

१ - अनंतरांतराणि हि निरूप्यमाण दुषटाऽपि रस समाहित चेतसा ।

प्रतिभानवत कवे अह पूर्विकया परापनति ॥ ध्वन्यालोक ।

शतोगत विवेचन

पदमावत लोक और काय की भूमि को अपनी सुरभि से उद्वेलित किए हुए है।

१—शब्दालंकार

जायसी को शतगलवारो म अनुप्रास (विनेपन वत्थानुप्रास) यमक और श्लेष विशेष प्रिय थे। उन्होंने बड़े ही समय के साथ इन अलंकारों के प्रयोग किए हैं। परवर्ती रीतिवालीन कविया की भांति उन्होंने यमक अनुप्रास आदि को ही नक्य बनाकर खेनवाड नहीं किया है।

सोरह सहस पाड घोडसारा* । (१०) (घोड घोडसारा ताटानुप्रास)

कुह-कुह करि कोइल राखा* । (११) (अनुप्रास)

भूमि जो भोजि भएउ सब गरू* । (१८) ()

सखी सहस दस नेवा पाई* । () ()

भा भादों दूभर अति भारी* । (१३५) ()

पविहा पीउ पुकारत पावा* । (१५३) ()

रग रकत रय हिरदय राता । (२७८) ()

उपयुक्त उदाहरणों की ही भांति जायसी ने वत्थानुप्रास आदि का प्रयोग सचित्र अर्थात् स्वाभाविक रीति से ही किया है।

यमक अलंकार के निम्नलिखित उदाहरण द्रष्टव्य हैं —

जाति सूर औ छाडें सूर* ।

गई सो पूजि मन पूजि न आसा* ।

तू हरि तक हराए केहरि* ।

रसनहि रसनहि एकी भावा* ।

इनम सूर रगनहि पूजि और हरि शतम यमक अलंकार का श्लेष

स्पष्ट है।

श्लेष

जायसी शिल्लिखत शतग द्वारा अनेक अर्थों का अभिधान (कथन) करने की

१—पदमावत का वाक्य सोदय पृ० ८५ ।

२—जा० प०, ना० प्र० समा, वागी, पृ० १० ।

३—यही, पृ० ६८ ।

५—यही, पृ० १०७ ।

७—यही पृ० १५३ ।

६—यही पृ० ५ ।

११—यही, पृ० १०७ ।

४—यही पृ० ६८ ।

६—यही, पृ० १५३ ।

८—यही पृ० २७८ ।

१०—यही, पृ० ६७ ।

१२—यही पृ० २६५ ।

पना में सिद्धहस्त हैं ।

रतन बना घर भा अधियारा ।^१

धनि ती पिउ मह सीउ मुहागा ।

दुहुहे अर एव भिति नागा ॥^२

हग जो रहा सरीर मह पाख तरा गा भागि ।

इन पक्तियों में रतन (रत्न रत्नघेन) मुहागा (सौभाग्य सुहागा) और हस (जीव हस) शब्द शिष्ट हैं ।

धनि जोवन ओ तावा दीया । ऊच जगत मह गाकर दीया ॥

एव दीया तें दसगुन लहा । दिया दक्षि सब जग मुह चरा ॥

दिया कर आग उजियारा ।

दिया मदिर निसि वर अजोरा । दिया नाहि घर मूसहि चोरा ।^३

उपयुक्त पक्तियों में दिया शब्द का सुन्दर और स्वाभाविक शिष्ट प्रयोग बहुत ही सुन्दर बन पड़ा है । दान और दीपक के अर्थ यहाँ पर सुलभ हैं । दिया (दीपक दान) दसगुन (दश गुना दशगुण दसगुन (गन वक्तिया) आग (आग के जम भविष्य में समक्ष) आदि शिष्ट शब्दों के प्रयोग से ये पक्तियाँ अधिक अर्थव्यक्त और प्रभविष्णु हो गई हैं ।

अर्थालंकार

पढ़ने ही इ गित किया जा चुका है कि सादृश्यमूलक अलंकारों में उपमा उत्प्रेक्षा और रूपक जायसी को विशेष प्रिय हैं ।

(१) उपमा—रूपवर्णन के प्रसंग में जायसी की उपमाओं पर पर्याप्त प्रकाश डाला गया है । उसमें स्पष्ट है कि जायसी के शिष्ट नख वर्णन में उपमाओं का प्रभूत परिमाण से प्रयोग हुआ है । परम्परानुमोदित लोक-गृहीत और मौलिक उपमाओं के द्वारा जायसी ने रूपवर्णन में अलंकारों की भरमार कर दी है ।

(२) उत्प्रेक्षा—जायसी के काव्यों में उत्प्रेक्षा के तीनों भेदों (वस्तुत्प्रेक्षा पदोत्प्रेक्षा और हेतुत्प्रेक्षा) का सफा एव प्रचुर प्रयोग मिलता है । नख शिष्ट वर्णन और अन्य रूप-वर्णन के प्रसंग में उत्प्रेक्षाओं का अत्यन्त सुन्दर प्रयोग हुआ है ।

(क) वस्तुत्प्रेक्षा—एक वस्तु की दूसरी वस्तु के रूप में सम्भावना की जाने की वस्तुत्प्रेक्षा कहते हैं—

१—जा० प्र० ना० प्र० सभा काशी प० ५५ ।

२—यही प० १५ ।

३—यही पृ० १५१ ।

शैलीगत विवेचन

कचनरेख बसोटी बसी। जनु घन महें दामिनि परगसी ॥
 मुरज बिरिन जो गगन बिसेखी। जमुना मांह मुरसती दखी ॥'

यहा पर श्यामवर्ण केशा के मध्य भाग के त्रिये स्वरूपोत्प्रेक्षा का विधान किया गया है।

रत्नसेन के साथ सोनह सहस्र राजकुमार जोगी-जोगिया-व्रथा-धारण करके निम्न पद्ये । वे ऐसे सुशोभित थे मानो टेमू फूला हो-

बना बटक जोगिह कर व गेरजा सब भेगु ।
 बस बीस चारिहु दिसि जानो पूना टेमु ॥'

पदमावती की वरोनिया भी कुद और ही जान पडती हैं-

वरुनी का बरनों इमि बनी। साध धान जान दुइ बनी ॥
 जुरी राम रावन क सेना। बीच समुद्र भए दुइ नना ॥'

पदमावती की बटि की सूदमता की अभिव्यक्ति के लिए भी स्वरूपोत्प्रेक्षा का विधान किया गया है।

मानहु ना न सट दु भण। दुहुं विच नवतार रहि गए ॥

सती होने के समग्र पदमावती न केशो को 'छोर दिया है। केश राशि म सुगु फिन मोतिया भी छूट पडी है एसा लगता है मानो रात्रि म सब नक्षत्र टूट गए हैं। यहा तारो का टूटना और मोतियो का छटना अमगल का जनक है-

छोरे केस मोनि लर छूने। जानहु रनि नखत सब टूटी ॥'

(त्र) फलोत्प्रेक्षा-रूप-वर्णन के प्रसंग म फलोत्प्रेक्षा के भी मुत्तर उदाहरण मिलते हैं जैसे-

पुत्प गुगय बरहि एहि आसा। मकु हिरवाइ नेइ हम्ह पास ॥'
 बरखत तपा लहि होइ चूर। मकु सो रहिर नेइ देइ सँदूर ॥
 बनन दुवात्स वानि हाइ चह सोराग ओहि माग ।
 सवा बरहि नखत सब, उव गगन जस गाग ॥'

(ज) हेतुत्प्रेक्षा-यह अन्कार उत्पन्न की यजना के त्रिये बडा शक्तिशाली माध्यम है। जोन म बाय और कारण एव साथ बहून ही बम देखे जाते हैं। प्राय

१-जा० प्र० ना० प्र० सभा बाशी

२-जा० प्र०, ना० प्र० सभा बाशी प० ५२ (दोहा ६)

३-बही प० ४३।

४-बही प० ४७।

५-बही, प० २६६।

६-बही प० ४३।

७-जा० प्र०, ना० प्र० सभा, बाशी प० ४२।

कारण परोक्ष ही रहता है। अतः यदि कोई रूप या क्रिया अपने प्रकृत रूप में हमारे सामने रख दी गई तो वह उस प्रभाव का प्रमाण-स्वरूप लगने लगती है जिस कवि खूब बढ़ाकर लिखाना चाहता है और हम इस बात की ध्यान-बीन में नहीं पड़ते जाते कि हेतु ठीक है या नहीं। जायसी की हेतुप्रक्षा अधिकतर असिद्धविषया ही मिनती है। नलाट का बणन करता हुआ कवि कहता है—

सहस किरिन जो मुरुज लिपाई । देखि लिलार सोउ छपि जाई ॥

सूय छिपता अवश्य है पर उसके छिपने का जो हेतु कहा गया है वह कवि कल्पित है और उस हेतु का आधार 'तज्जित हाना सिद्ध नहीं है।'

इसी प्रकार की हेतुप्रक्षा दाता पर की गई है—

हसत दसन अस चमके पाहन उठ क्षरविक ।

दारिउ सरि जा न क सका फाटेउ हिया दरविक ॥^१

हेतुप्रक्षा के सहारे जायसी ने विरह की तीव्र दाहकता को भी स्पष्ट किया है। नागमती के विरह में मधों का श्याम होना राहु-केतु का दग्ध होकर काला होना सूय का तपना चन्द्रमा की कना का खडित होना पलास के फूलों का लाल होना आदि दिखाया गया है। ये सब सत्य हैं। वे विरह-ताप के कारण ऐस हैं केवल यह बात कल्पित है। हेतुप्रक्षा से कवि विरह-ताप के प्रभाव की व्यापकता को बढ़ाता बढ़ाता सृष्टि भर में दिखा देता है—

अस परजरा विरह कर गठा । मेघ साम भए घूम जो उठा ॥

दाढ़ा राहु केतु गा दाघा । सूरज जरा चाद जरि आघा ॥

ओ सब नखत तराई जरही । टूटहि लूक घरति मह परहीं ॥

जर सो घरती ठारवाँ ठाऊ । दहकि पलास जर तेहि दाऊ ॥

भवर पतग जर ओ नागा । कोइन भुजइल डोमा हागा ॥

बन-पक्षी सब जिउ लेइ उड । जल मह मच्छ दुखी होइ बुड ॥^१

पदमावती के वियोग में रत्नसन रत्न के आँसू रो रहा है। उसके आँसू समग्र सृष्टि को रक्तिम बनाए दे रहे हैं—

नन्हि चनी रक्त के धारा । क्या भीजि भएउ रतनारा ॥

सूरज बूडि उठा होइ राना । ओ मजोठ टेसू बन राता ॥

१-जा० प्र० ना० प्र० सभा काशी सूमिका पृ० १०६ ।

२-वही पृ० ४४ (दोहा ६) ।

३-जा० प्र० ना० प्र० सभा, काशी पृ० १६३ (दोहा १२) ।

भा बसत रातीं बसपती । औ राते सब जागी जती ॥
 पुहुमि जो भीजि, भगउ मब गरु । औ रात तहू पवि पसेरु ॥
 इ गुर भा पहार जो भीजा । प तुम्हार नहि राव पसीजा ॥^१
 इसी प्रकार के और भी अनेकष उदाहरण हेतुप्रभाओ के दिए जा सकने
 हैं । यहां विशेष द्रष्टव्य यह है कि इन हतुप्रक्षाआ वाले स्वला म काई न बोई
 अय सुंदर अलवार भी निहित रहता है ।

रूपक

जायसी ने साग निरग और परम्परित रूपओ का भी पर्याप्त प्रयोग किया
 है । साग रूपन के रूप म वे कही रही शस्त्रास्त्रा की जानकारी प्रकट करने लगे हैं—

कहौ सिगार जसि व नारी । दारु पिपहि जसि मतवारा ॥

सँदुर आगि सीस उपराहो । पहिया तरि वन चमकन जाहा ॥

बुच गोला दइ हिरदय लाई । अचन पुजा रहे ज्युवादी ॥

रगना बूक रूति मुग लोले । लवा जर सो उनव बोले ॥

अनक जजीर बहुत गिउ बाधे । सीर्वाह हस्ती टूहि बाध ॥

बीर सिगार दोउ एव डाऊ । रयु-सात गट भजन नाऊ ॥^२

इन दक्तियों मे वार रस की सामग्री म श गार रम की सामग्री का आराप
 किया गया है । यह अवश्य है कि इस प्रकार व भइ उदाहरण कम मिलते हैं ।

साग रूपक के कुछ सुंदर उदाहरण लिए जा सकते हैं—

नन कीडिया हिय समुद गुरू सो तेहि महँ जाति ।

मन मरजिया न हाइ पर हाथ न आव मानि ॥^३

यहां अप्रस्तुत न तो परम्परा प्राप्त है और न रूप-साम्य पर निर्भर ।

गगन सरोवर समि बचन कमुन तरारुह पाम ।

तू रवि ऊया भीर होइ पीन मिना लइ वाम ॥^४

प्रस्तुत साग रूपर के उदाहरण म रूपकानिशोक्ति का भी चमत्कार द्रष्टव्य
 है । गगन समि तरारुह और रवि कमुन निम्न, पन्मावनी, मन्विया और रत्नसन
 के लिए प्रयुक्त है । इनका सादृश्य रूपक के द्वारा यमन सरोवर बचन कमुन
 और भीर म स्पष्ट किया गया है । तिल-नन्त चायिन शान्तकारा के मुमन य
 अलवार ससष्टि की भी गुत्तर सष्टि द्रष्टव्य है ।

१-जा० प्र० ना० प्र० सभा वागी, प० ६८ (पृष्ठा १२) ।

२-जा० प० ना० प्र० सभा, वागी पृ० २२५ ।

३-वही प० १२६ (दोहा ३) ।

४-वही पृ० ६८ (दोहा २) ।

वही वही रूपक का प्रयोग अथ अलकारों के सिलसिले में भी हुआ है। जैसे—
 हीरामन जो देखसि नारी। प्रीति-वेनि अपनी हिय नारी ॥
 कहेसि कस न तुम्ह हाहु दुहेरी। अरुझी पेम जा पीनम बली ॥
 प्रीति वेनि जिनि अरुझ वाई। अरुझ मुग न छूट साई ॥
 प्रीति वेनि ऐस नन जग। पलुहा सुख, बाहत दुख वाढा ॥'

इसी प्रकार —

अब जोउन वारी को राखा। कुजर विरह विधास साखा ॥'
 और सेज-नागिनी फिरि फिरि डमा ॥'

विरह मयूर नाग वह नारी। तू मजार बरु वेगि मुरारी ॥

यहाँ नारी के 'नागिनी बनाने के साथ ही विरह को मयूर और रत्नसन का मजार भी बना डाला गया है। पहले में तो सौम्य त्रिद्यमान है पर दूसरे में मजार नागिनी से भद्दापन आ गया है।

किसी-किसी स्थान पर तो जायसी ने अलकारों की महज नित अत्यन्त जटिल और गूँथ पाजता की है। जन- देवपाल-दूती के प्रसंग में दूती ने पत्मापती को प्रतीभन किया और कहा—

जोउन जन तिन-तिन जम घटा। भवर छपान हस परगटा ॥

जस जम यौवन रूपी जस तिन-तिन घटता है वैसे ही बगे शरार रूपी नदी या शरोवर में पानी की बालू के भवर छिपते जाते हैं और हस (मानमरावर से आते हैं और) दिखाई पड़ने लगते हैं। एक प्रकार जिस पक्ति में साग रूपक की योजना की गई है। जन का आशय जग पर किया गया है उस यौवन का उल्लेख है दूसरी पक्ति में रूपकानिशयाक्ति माननी पड़ना है। दोहा पक्ति या एक मात्र विचार करने पर नदी या शरोवर के ही जग भ्रमर (पानी के भवर) और हम टग्त जा शरार के दुश्य का पूरा करते हैं। जन दूसरी पक्ति में अनिशयाक्ति सिद्ध हो जा पर ही साग-पत्मा होना है। पर अनिशयोक्ति की मिद्धि के लिए शब्द के द्वारा भवर शरार का दूसरा अर्थ बना भौरा बना पड़ना है। तब जाकर उपमेय अर्थात् वान कश की उपनयिनी होती है। इस प्रकार रूपक को प्रसाद या अथी मानने से शब्द और अतिशयोक्ति उदात्त अर्थ हो गाने हैं। अलङ्कार का यह मत अर्थात् भाव सत्तर ठहरता है—यौवन-रूपी जन काल देश रूपी भवर (जगावत) और शरार कश रूपी हस। यौवन और जन में उमग के धम को शरार साधम्य मान है।

१-जा० प्र० ना० प्र० सभा वाशी पृ० १०८ (दोहा १८) ।

२-वही, प० ७४ ।

३-वही प० १५३ ।

४-वही, पृ० १६३ ।

शैलीगत विवेचन

काले केश का पहलू तो अनिशयोक्ति में बाने (बसन्त वाणी) भौरा के साथ बणें सादश्य है फिर श्लेष द्वारा रूपक में पहुँच कर मकर (जवाब) के साथ कुछ आकृति-सादश्य है। इस प्रकार प्रस्तुत चौपाई में अतिशयोक्ति (रूपकाति-शयोक्ति) श्लेष अगागिभाव गन्तर सागरूपक आदि कई अस्कार एक दूसरे से उतने हुए हैं। जायसी के अलंकार चोषण के निशान के लिए यह एक पंक्ति ही पर्याप्त है।

अतिशयोक्ति

जायसी की अतिशयोक्तिया भी अत्यंत मनोहर हैं। रूपकानिशयोक्ति-भेद में भी अभेद-वे द्वारा उन्हें ऐसी मनोहर और रमणीय वस्तुएँ सामने रखी हैं कि हृदय सौंदर्य की भावना में मग्न हो जाता है। हेतु-प्रेमा की भाँति यह अलंकार भी कवि को बहुत प्रिय है। जायसी के काव्यो में स्थान स्थान पर इसका प्रयोग मिलता है। रत्नारो नेत्रों के बीच घूमती हुई पुतलियों की शोभा की ओर कवि इस प्रकार इशारा करता है-

‘ राते व वन करहि अनि भवौ । घूमहि माति चहहि अपसवौ ॥ ’
इसी कथन और भ्रमर वाले रूपक की अतिशयोक्ति में जायसी और जगह भी बड़ी सुंदरता से गए हैं। प्रेम-जोगी रत्नसेन के मिहन गम में पकड़े जाने पर पद्मावती विरह में अचेत पत्नी है आँसू नहीं खोती है। इनमें कोई सखी आकर कहती है-

कवन बली तू पद्मिनि गह निमि भवउ विहानु ।
अबहु त मपुट सोतमि जप रे उवा जग मानु ॥
यह सुनते ही पद्मावती आँसू खोती है जिगकी सूचना रूपकानिशयोक्ति के वन में कवि इन शब्दों में देता है-

मानु नाव सुनि कवन विगामा । फिर क मकर लीह मनु बागा ।
यहाँ भी कवि ने केवल कथन-पर बड़े मोरे का उतार करके आँसू खोने (डिंके) के बीच वाली पुत्री निर्याद देने की सूचना दी है।

वहीं-वही रूपकानिशयोक्ति बदन ही दुबों हा गई है जमे-
जो लगी पानि-दी होहि बिरामो । पुनि सुरगिर होइ समु परासो ।
पद्मावती में देवपान की दूती कहती है कि जब तक तू बाने कैंतो पानी

१-पद्मावत का काव्य गौण्य पृ० ८६-८७ ।

२-जा० प० ना० प्र० समा पृ० ११० ।

३-जा० प्र० (ना० प्र० समा, वाणी) पृ० ११० ।

अर्थात् युवती है तब तक विलास कर ले फिर जब श्वेत केशा वाली हो जाएगी, तब तो काल के मुहम पडन के लिए जल्दी जल्दी बढ़ने लगेगी। जमुना की काली धारा सीधे समुद्र में नहीं गिरती है। जब वह श्वेत धारा वाली गंगा के साथ मिलकर श्वेत गंगा ही हो जाती है तब समुद्र की ओर जाती है जहां जाकर उसका अलग अविनाश नहीं रह जाता। यह अतिशयोक्ति दुर्वोध हो गई है। दुर्वोधता का कारण है अप्रसिद्धि। जायसी ने इस पद्य में यह स्वतंत्रता दिखाई है कि परम्परा में व्यवहृत प्रसिद्ध उपमान न लेकर स्वकल्पित अप्रसिद्ध उपमान लिए हैं जिससे एक प्रकार की दुरूहता आ गई है। काल केशा के लिए कालिंदी नदी की और श्वेत केशा के लिए गंगा की उपमा प्रसिद्ध नहीं है।^१

अत्यन्त-अत्युक्ति भी जायसी का एक प्रिय अलंकार है। यश धभव आदि की असंभवता से संबद्ध वणन पदमावत में मिल जाते हैं। जायसी इस तिलसिने में एक निश्चिन्त सख्या भी बता देते हैं—

सोरह सहस धाड घोड सारा ।^१ छापन काटि कन्क दल साजा ।^२

सात सहस हस्ती सिहनी ।

जनु कलास ऐरावत बली ॥

त्रिलसहू नो नख नच्छि पियारी ।^३

सपी सहस दस सवा पार्त् ।^४

रतन नागि यहि वत्तिस कारो ।^५

टूटे मन नो भाती फूटे दस मन काच ।^६

चना कटक जागिह कर क गरजा सब भस ।

बास बीस तारिहु तिसि जानी फूना टेसु ।^७

रोव रतन-मान जनु चूरा । जह होइ ठाड़ होइतह कूरा ॥

(एतने आँसू गिर रहे हैं कि वह जहां भी छडा होता है वहां रतना का कूडा एकत्र हो जाता है) कोमलता सुकुमारता सुन्दरता आदि की व्यञ्जना के लिए लोकोत्तियों का भी अतिशयोक्तिमूलक प्रयोग द्रष्टव्य है—

मलय समीर साहावन छाहा । जेठ जाड लाग तेहि माहा ॥^१

शया का छुई-मुई पन भी देखने योग्य है—

१-जा० प्र० ना० प्र० सभा वाशी । प० ११३ । २-वही प० ११० ।

३-जा० प्र० ना० प्र० सभा वाशी ।

४-वही प० ५४ ।

५-वही पृ० १२७ ।

६-वही प० १७ ।

७-वही पृ० ५५ ।

८-वही ।

९-वही, प० ८७ ।

१०-वही प० ११ ।

शैलीगत विवेचन

अति सुकुमार सेज सो डाली छुव न पाव कोइ ।
 देखत नबोहि खिनहि खिन पाव धरत कस हाइ ॥^१
 फारसी मसनवियो म विरह वा प्राय अत्युक्ति मूनव एव ऊत्सुक वणन
 मिनता है । जायसी भी उस पद्यनि से पर्याप्त प्रभावित हैं—
 जेहि पखी के निपर होइ, कहै विरह क बाव ।
 साईं पखी जाय जरि तरिवर हाहि निपात ॥^२
 रोने का विश्वव्यापी प्रभाव दिखाने के लिए भी जायसी ने अत्युक्ति का

आश्रय लिया है—
 ननन चली रक्त क घारा । कया भीजि भएउ रतनारा ॥
 भा बसत राती बनसपती । औ रात सय जोगी जनी ॥^३ ॥
 इस प्रकार के अत्युक्तिमूलक वणनो म उत्प्रेक्षा बलकार या आध्यात्मिकता के भी
 आश्रय की बात कही जा सकती है ।
 तदगुण —नयन जो देखा कवल भा निरमल नीर सरीर ।
 हसत नो देखा हस भा दसन जोनि नग हीर ॥

प्रस्तुत दोहे म नयन, शरीर दान एव मुस्मान के परम्परा प्रचलित उमाना
 के माध्यम से जायसी ने गान् सौंदर्याभियक्ति का अत्यंत सफल प्रयोग किया है ।
 वही-वही रूपकातिशयोक्ति की ही भांति तदगुण अन्वकार की भी गूढ़ और
 अयगमित योजना मिनती है । देव पाल की दूती अनेक प्रकार के पन्वानो को
 साकर पन्मावती के सामने रखनी है वह उन्हें हाथों से भी न छूँर कहती है—
 'रतन छत्रा जिह हायह सँती । और न छुवौं सा हाय सवेनी ॥
 दमक रग भए हाय भँजोठी । मुबुता नेउ वै पुपुची दीठी ॥'^४

अर्थात् जिन हाथा मे मैंने उस त्रिय रतन (राजा रतनसेन) का स्पश किया
 अब उनम और वस्तु क्या छूऊँ ? उस त्रिय रतन या माणिक्य के प्रभाव से मेरे हाय
 इतना ताव है कि मोती भी अपने हाय म लेकर देवनी हूँ तो वह गुजा (हाय की
 तलाई से गुजा का सान रग और देरने से पुतली की छाया पडने के कारण गुञ्जा
 वा सा बाला दाग हो जाता है अर्थात् उमका बुद्ध भी मूल्य नहः पन्ना ।
 अब हम के अन्वकारों पर विचार कीजिय । सबसे पट्ट तो 'रतन पन् म हम श्रेय
 मिनता है । फिर दूसरे चरण म वाकु वप्राक्ति । तीसर चौथे चरण म जन्तिलता है
 उस रतन के स्पश मे मेरे हाय ताव हुए इमका विचार यदि हम गुण

१— जा० प०, ना० प्र० सभा पृ० १२८ ।

२—जा० प० ना० प्र० सभा, काशी पृ० १५८ (दोहा १८) ।

४—वही प० ।

३—वही पृ० ६८ ।

की दृष्टि से करते हैं तो तदगुण अलकार ठहरता है। फिर जब हम यह विचार करते हैं कि पदिमनी के हाथ का स्वभावन लाल है (उन में ताली का आरोप नहीं है) तब हमें रस स्पष्ट रूप हेतु का आरोप हेतुप्रेषा कहनी पड़ती है। अतः यहाँ इन दोनों अलकारों का संदेह-संकर हुआ। चौथे चरण में तदगुण अलकार स्पष्ट है। पर यह अलकार निम्न भी हमें योग्य अथ तक नहीं पहुँचाता। अतः हम रक्षण से मुक्ता का अर्थ लेते हैं। बहुमूल्य वस्तु और घु घुची का अर्थ लेते हैं तुच्छ वस्तु। इस प्रकार हम इस व्यंग्य अर्थ पर पहुँचते हैं कि रत्नसेन के सामने मुझ ससार की उत्तम से अत्तम वस्तु तुच्छातितुच्छ दिखाई पड़ती है।

इन उदाहरणों से स्पष्ट है कि जायसी ने अलकारों से अर्थ पर अर्थ भरने का कसा कड़ा काम किया है। सिद्ध में ताल माग के इस वर्णन में भी जायसी ने तदगुण और हेतुप्रेषा का मोल किया है—

भोर साँझ रवि होइ जो राता । ओहि देखि राता भा गाता ॥^१

वहीं-वहीं जायसी ने उक्ति के द्वारा अत्यन्त रमणीय रूप विधान (इमेजरी) किया है, जैसे—

हीरा लेइ सो विद्रम धारा । विहसत जगत होइ उजियारा ॥

व्यय विषय इतना ही है कि पद्मावती जब हसती है तब उसके अरुण अक्षर तथा श्वेत दाँतों से ज्योति विकीर्ण होती है। जायसी ने इस उक्ति में एक व्यापक दृश्य और विशाल चित्र का समावेश किया है—हीरे की सी ज्योतिमती वह जब विद्रम वर्ण की छति धारा का सप्रसारण करती है तब सारा ससार उदभासित आलोकित हो उठता है। प्रस्तुत चित्र के अन्तर्गत् रूप विधान भी अनुस्यूत है—
'उषा की अरुण श्वेत मधुर ज्योति के उज्यवानीन दृश्य का ।'^२

व्यक्तिरेक— असभा सूर पुष्य निरमरा । सूर चाहि दस आगर करा ॥^३

सुम्न फिरत जस निरमन तेहि ते अधिक सरीर ।

लका बुझी आगि जो लागी । यह न बुझाइ आगि बजागी ॥^४

व्यक्तिरेक के दो और सुन्दर उदाहरण दिये जाते सवत हैं—

का सरिवर तेहि देउ भयक् । चाँद कलकी यह निकनक् ॥

ओ चाँदहि पुनि राह गरासा । वह बिनु राहु सदा परगासा ॥^५

१—जा० घ० ना० प्र० सभा काशी पृ० ११३—१८।

२—पद्मावत का काव्य-सौम्य पृ० ८८।

३—जा० घ०, ना० प्र० सभा काशी पृ० ६।

४—वही पृ० २०६।

५—वही पृ० १०८।

६—वही पृ० ४२।

वह पदिमनि चित उर जो आनी । काया कुन्न द्वादस बानी ॥
कुन्दन बनक ताहि नहि वासा । वह सुगंध जस कबल विगासा ॥
कुन्दन बनक कठोर सो अगा । वह कोमल रग पुहुप मुरगा ॥'

प्रनीप -

वदन देखिषटि चद छाना । दसन देखि क धीजुल जाना ॥'
बलि विप्रम दानी बड कहे । हातिम बरन तियागी अहे ॥
सरभाहि सरि पूज न कोऊ । समुद सुमेरु भडारी दोऊ ॥'
सदेहानकार-पदभावत म खडित रूप म कुछ स्थलो पर ही यह अलवार मिलता है जैसे -

मनहु चढी मौरहु क पाती । चदन खाभ बास क माती ॥
की कालिंदी विरह सताई । चनि पयाग अरदल बिच आई ॥

प्रस्तुत चौपाई के प्रथम दो चरणो म उत्प्रेक्षा है और 'की कालिन्दी' - - -
वाने चरणा म खडित रूप मे सदेहालवार है । बृद्ध अय अलवारो के भी मुदर
उगाहरण देष जा सकते हैं -

दष्टात - (दष्टात स्तुस धमस्य वस्तुन प्रतिविम्बनम् ॥ साहित्य दण
अध्याय १०) ।

का भा जोग कयनि क कये । निवस पिव न बिना नधि मथ ॥'

(विगयोत्ति)

मुहमद बाजी प्रेम नी ज्या भावे त्यो मेन ।
तिल कनहि के सग ज्यो होय फुलायल तेल ॥'

अर्थांतरवास

मिलिषटि विछुरे साजन अकम भेंटि गहत ।
तपनि मुगसिरा जे नहहि ते अदा पचुहत ॥'
राती पिउ के नेह मइ सरग भाएउ रतनार ।
जो रे उवा गो अथवा रहा न कोइ ससार ॥'
रवत दुरा मामू गरा हाड भयउ सब मस ।
पनि सारत होइ ररि मुई पीउ समटहि पस ॥'

१-जा० प० ना प्र० राभा, कानी, पृ० २०६ ।

२-वही पृ० २३ ।

४-वही प० ४६ ।

६-वही पृ० १४२ ।

८-वही पृ० १५४ (शोहा १०) ।

३-वही पृ० ७ ।

१-वही पृ० ५१ ।

७-वही पृ० ३०० ।

९-वही पृ० ।

निदशना -

घरती बान बेधि सब राखी । साखी ठाढ देहि सब साखी ॥

यहां पर निदशना के साथ ही 'यमक' का भी सौंदर्य दशनीय है । इसी प्रकार दानो के बणन में तृतीय निदशना का प्रयोग है -

• 'हारी जोति सो तेहि परछाही ॥

विरोध -

'ना जिउ जिए न दसव अवस्था । कठिन भरनतें पम वेवस्था ॥'

घनि सूख भर भादो माहीं । अबहु न आपूहि सीचेहि नाहा ॥'

कातिक सरल चंद उजियारी । जग सीतल हौं विरहै जारी ॥'

प्रत्यनीक -

वसा लक बरन जगझीनी । तेहि ते अधिक् लक वह छीनी ॥

परिहस पियर भए तेहि वसा । लिए डक लोगह कह ड सा ॥

सिध न जीता लक सरि हारि लोह बनवासु ।

तेहि रिस मानुस रक्त पिय खाइ भारि क मामु ॥'

सो तिल देखि कपोन प गगन रहा धुब गाडि ।

खिनहि उठ खिन बूढे डोन नहि तिन छाडि ॥'

भ्रम -

भूलि चकार दीठि मुह लावा । मघ घटा मह चंद देखावा ॥

चकई विछुरि पुकार, कहा मिली हो नाह ।

एक चांद निसि सरग मह दिन दूसर जल माह ॥'

विभावना -

जीव नाहि प जिए गोसाईं । कर नाही पर कर गुसाईं ॥

सवन नाहि प सब विछु सुना । हिया नाहि प सब विछु गुना ॥

नयन नाहि प सब विछु देखा । कौन भाति अस जाइ बिसेखा ॥'

परिवराकुर -

रोवहि रानी तजहि पराना । नोचहि वार करह सरिहाना ॥

पदमिनि ठगिनि भई पित साया । जहि ते रतन परा पर हाया ॥'

१-जा० प्र० ना० प्र० सभा वाशी ।

२-वही, पृ० १५३ ।

४-वही पृ० ४७ ।

६-वही, पृ० ४५ (दोहा) ।

८-वही, पृ० २३ ।

१०-वही, पृ० ५६ ।

३-वही, पृ० १५३ ।

५-वही, पृ० ४७ (दोहा १८) ।

७-वही पृ० २४ ।

९-वही, पृ० ३ ।

रोक्त माय न बहुरत वारा । रतन चला घर भा अघियारा ॥
विनोक्ति -

बहा छिया ऐ चन्द हमार । जेहि विनु रनि जगत अ गियारा ॥
पदभावति विनु कत दुहेली । - - - - -
जग जल बूझि जहा लागि लाकी । मोरि नात्र खेवक विनु पाकी ॥
सरोत्तिक -

उलू न जान निवस कर भाज ॥
कान टुट जहि पहिरे कानेइ बरव सो सोन ॥

पदभावत की लोकोक्तियो के सम्बन्ध म परिशिष्ट और भाषा के सिद्ध
सिले म इस प्रबन्ध मे सविस्तर विचार किया गया है ।

विचरला म भी लोकोक्ति अलकार के उदाहरण मिलते हैं -

वहाँ चलाई मरन की पीछहि पवरी पैठ ।
परनारी के नायक बनज पराए सठ ॥

मुहमद भलिन पम मधु भोरा । नाउ बड रा दरसन घोरा ॥

मसला (मसलानामा) का तो सम्पूर्ण सौंदर्य ही लोकोक्ति कहावत और
मुहावत पर ही निर्भर है -

बुधि विद्या के कटक महें मोहि मन वा विस्तार ॥

जेहि घर सामुहि तरणि है बहुअन कौन सिवार ॥

अन्त न समुद्र करमि वा बठ । वाहिनि बनिपा आजुहि मठ ॥

पुप पाप एक रूप न जानी । दूध क दूध पानी वा पानी ॥

दीपक -

परिमल पम न आछ छपर ॥ - - - - -

सिद्धि मिद्ध जिह दिस्ट गमन पर विनु छर विछ न बसाइ ॥

१-जा० प्र० ना० प्र० सभा, काशी, प० ५५ ।

२-वही पृ० १२६ ।

३-वही ।

४-वही प० ३६ ।

५-वही पृ० ३६ ।

६-विचरेमा, पृ० १०१ ।

७-वही प० ७४ ।

८-मसला, ना० प्र० सभा काशी की हस्तलिखित प्रति ।

९-मसला ना० प्र० सभा काशी की हस्तलिखित प्रति वा उद्धृत ।

१०-वही ।

११-जा० प्र० ना० प्र० सभा काशी प ६१ ।

१२-वही पृ० १०३ ।

उत्तर—

मुहम्मद विरिध जो नइ चन काह चल भुय टोइ ।
जोवन रतन हिरान है मकु धरती मह होइ ॥^१

अनवय—

का सिंगार ओहि बरनों राजा । ओहि क सिंगार ओही प साजा ॥^१

परिणाम—

नन नीर सौं पोता किया । तम मद चुवा बरा जस जिया ॥^१
जौ तुम चहहु जूझि पिउ बाजा । कीह सिंगार जूम में साजा ।
जोवन आइ सौंह होइ रोपा । पिछना विरह काम दन कोपा ॥
भोहैं धनक नन रस साध । वहनि बीच बाजर विप बाधे ।
अलक फास गिउ मेलि अमूया । अघरअघर सौं चापहि जूझा ॥
कु भस्थल कुच दोउ में मना । पेलौं सौंह समारहु कना ॥^२

बादल की पत्नी के इस कथन में परिणाम अलवार की अभिव्यक्ति हुई है ।

श्लेष और मुद्रा—जायसी की श्लेष और मुद्रा अलवार भी बड़े प्रिय हैं ।

वाम्बदग्ध्य प्रदर्शन—हेतु अनेक स्थलों पर इस प्रकार के प्रयोग द्रष्टव्य है—

सिधि गुटिका अब गो सग कहा । भएउ राग सत हिए न रग ॥
सोन रूप जासौं मुख खोलौं । गएउ भरोस तहा का बोलौं ॥
जहूँ लोना बिखा क जाती । कहि क सनेस आन को पाती ॥
जो एहि धरी मिनाव माटी । सीस डेउ बनिहारी ओटी ॥

इन पक्तियों में श्लेष और मुद्रा अलवार के सौन्दर्य स्पष्ट हैं ।

हारिल भई पय में सवा । अब तह पठवौं कौन परेवा ॥

घोरी पडुक् कह पिउनाऊ । जौ बित रोख न दूमर ठाऊ ॥

जाहि बया होइ पिउ कठ लवा । कर भेराव सोइ गौरवा ॥

हारिल घोरी पाडुक् बिततराख बया नवा और गोखा शर्णों में श्लेष का चमत्कार दशनीय है ।

विपादन और अगाधिभाव सकर—

गहै बीन मकु रनि बिहान । ससि बाहन तह रहै आनाई ॥

पुनि धनि सिष उरैलै लाग । ऐमेहि प्रिया रनि सब जाग ॥

प्रस्तन उद्धरण की प्रथम पक्ति में विपादन अलवार का प्रयोग हुआ है ।

१—जा० प्र०, ना प्र० सभा वाशी पृ० २६८ (दोहा ३)

२—वही पृ० ४० ।

३—वही पृ० ६४ (दोहा ४१६) ।

४—वही, पृ० २८४ ।

द्वितीय पक्ति म द्वितीय पर्यायोक्ति अलंकार का प्रयोग हुआ है। इस प्रकार इन दोना के मेल से अगाधिभाव सकर का प्रयोग भी कहा जा सकता है। विपत्तन अलंकार के इसी प्रकार के प्रयोग विद्यापति, गुरदास तुलसीदास आदि ने भी किए हैं—

दूरि करह बीना कर धरिवो ।

मोहे मग हाँन रय नाहीं नाहिन हांन च को डरिवो ।

इत्यादि ।

अप्रस्तुत—प्रशसा सप्तष्टि सकर—

एल क जाइहि वान प धनुष छीं क हाय ॥

प्रस्तुत पद्य म देवपान की दूती के मुख स वद्धावस्था या यह वणन गूँ अप्रस्तुत प्रशसा द्वारा कवि ने कराया है। वान या तीर यौवन काली सीने शरीर का उपमान है और धनुष वद्धावस्था के झुके हुए शरीर का। ये दोनों प्रमथ यौवन और वद्धावस्था के काय हैं। अतः काय द्वारा वारण के निशे से यही अप्रस्तुत प्रशसा हुई जा रूपवातिशयाक्ति द्वारा मिद्ध हुई है। इस प्रकार दोनो का अगाधिभाव सकर है। सचमुच ये दोना अलंकार यहाँ नीर-भीर की भाँति इस प्रकार भिन गए हैं कि दोना का पायजन कठिन है। रसास्वादन म स्पष्ट ही मिलावट जान पड़ती है। वान शब्द का शब्दात्मक अर्थ वण (रग या कानि या वण) लेने से श्लेष अलंकार की समष्टि भी हुई और यहाँ पर निर-नदुन पाय ने दोनों को पृथक् भी किया जा सकता है।

विशेष

जायमा का अनन्तरा के प्रयोग म अगामाप दगता प्राप्त थी। उन्होंने कहीं कहीं ऐसी समन्वार पूण अलंकारिण शनी का ममावेश किया है जिसके प्रभाव या समन्वार की ओर लोका का ध्यान भी नहीं गया है जैसे—

कवनहि विरह—बिया अस वाली । बेसर-बरन पीर हिय गाँ ।

बगर बरन पीर हिय गाँ डग पति का अर्थ अथय भे से तीन डग का हो सकता है—

(१) कमन बेसर वण हो रग है हृदय म गाँ पीर है।

(२) गाँ पीर स हृदय बसर—वण हो रग है।

(३) हृदय म बसर—वण गाँ पीर है।

इनम म पहला अर्थ तो ठीक नहीं हागा क्योंकि कवि की उक्ति का आधार कवन के बरन हृदय का पीना होना है सारे कमन का पीना हाता नहीं। दूसरा

अथ निम्नचयत सीधा और ठीक ज़चता है पर अन्वय इस प्रकार खीचतान कर करना पड़ता है— गाड़ी पीर द्विय केसर बरन । तीमरा अथ यदि लेते हैं, तो पीर का एक असाधारण विशेषण 'केशर-बरन' रखना पड़ता है । इस दशा में केशर बरन का लक्षणा से अर्थ करना होगा ; केशर बण करने वाली, पीला करने वाली और पीडा का अतिशय लक्षणा का प्रयोजन होगा । पर योरोपीय साहित्य में इस प्रकार की शब्दी अलंकार—रूप से स्वीकृत है और हार्ड पेलेज कहलाती है । इसमें कोई गुण प्रकृत गुणी से हटाकर दूसरी वस्तु में आरोपित कर दिया जाता है जैसे यहाँ पील पन का गुण 'हृदय' से हटाकर पीडा पर आरोपित किया गया है ।

एक उदाहरण और लीजिए—

जस भुइ दहि असाइ पलुहाई ।

इस वाक्य में पलुहाई की सगति के 'भइ' शब्द का अर्थ उस पर के घास-पीधे अर्थात् आधार के स्थान पर आधय लक्षणा से लेना पड़ता है । बोल चाल में भी इस प्रकार के रूप प्रयोग आते हैं । जैसे इन दोनों घरों में झगडा है । योरोपीय अलंकार शास्त्र में आधय के स्थान पर आधार के ब्ययन की प्रणाली को 'मेटानमी अलंकार' कहेंगे, इसी प्रकार अंगी के स्थान पर अंग व्यक्ति के स्थान पर जाति आदि का 'सामासिक' प्रयोग (Synecdoche) अलंकार कहा जाता है ।

उपयुक्त विवेचन के आधार पर सक्षेप में कहा जा सकता है कि पदमावत में अलंकारों का अत्यन्त सुन्दर और स्वाभाविक प्रयोग हुआ है । यह भी स्पष्ट किया जा चुका है कि पदमावत समासोक्ति पद्धति पर निरूपा हुआ हिन्दी का एक उत्कृष्ट कौटिल्य का प्रबन्ध काव्य है । समासोक्ति भी एक अलंकार है—इसे विशेषण-विच्छिन्न मूलक अलंकार भी कहा जाता है । इसका सारा सौंदर्य विशेषणों के प्रयोग पर ही निर्भर करता है । कवि क्या प्रसंग में कतिपय ऐसे विशेषणों का प्रयोग कर देता है जिससे प्रस्तुत अर्थ के साथ ही सहृदय के चित्त में दूसरे अर्थ का भी आभास होता चलता है । हिन्दी में कबीर और जायसी तथा बंगला में कबीर से प्रभावित रवीन्द्रनाथ टैगोर समासोक्ति अलंकार के अत्यन्त कवि मान जा सकते हैं । इन कवियों ने समासोक्ति अलंकार के जैसे सुन्दर प्रयोग किए हैं, वस अर्थ किसी कवि में शायद ही मिले ।

कबीर—ममता तिण ना चर साल चिता सनेह ।

चारि जु बाँधा पम क डारि उहा सिर सह ॥

जिहि सर घड़ा न दूखता अब मैगन मति हाइ ।
देवल बूडा कलस भूँ पयि तपाई नाई ॥^१

जायसी—

सो दिल्ली अत निरहर देग । को न बहुरा कहै सदेगु ॥
तो गवने सो तहौ कर होई । जो आव जिछु जान न छाई ॥
अगम-अथ पिय तहाँ सिधावा । जो रे गउउ सो बहुरि न आवा ॥^२

रवीन्द्रनाथ टगोर—

‘याबार दिने एइ कथाटि यन यन याइ ।
या देखेछि या पयेछि तुलना तार नाइ ।
एइ ज्योति समुद्र माथ मे शतजन पद्म राजे
तारि मधुपान करछि घय आभि ताइ ।
याबार दिने एइ कथाटि जानि य यन याइ ॥
याबार समय हन बिहगर । एखनि कुनाय रिक्त हव ।
सत-न गीति भट्टनीड पहिबे घुनाप अरुणपर आनेन ॥’

बबीर के विरोध विचित्रिभूत पदो म उनवा सतरुप प्रधान हो उठना है जायसी के काव्यो म भी का निचिन माटी के भाडे जैसे पद्यों म उनरे सत रूप की प्रधानता हो उठी है किन्तु सबत्र ऐसी बात नहा है। सचमुच बबीर जायसी और रवीन्द्रनाथ समासार्थि अलवार के क्षेत्र म भारतीय साहित्य क भवद्येष्ठ कवियो मे हैं।

छन्दविधान

जायसी ने पद्मावत की रचना दोहा और चौपाई नामक मात्रिब छंदा में की है। पद्मावत म आदि मे अत तक—सबत्र सान चदानियों के परचात एउ दोहे का विधान किया गया है। य छन्द-युग्म कथा प्रधान वणनामत्र प्रब-ध-वाच्या की अर्पित गति और प्रवाह का वर्णन देने म पूण समथ हैं। अपनी डम मूनभूत गुणवत्ता के कारण म छन्द अवधी के कवियों के कन्हार रइ हैं। विजमावशीयम (कालिदास) म कृष्णायन (प० द्वारिकाप्रसाद मिश्र) तक इग छन्द (युग्म) की एक अविच्छिन्न रूप से चली आनी हुई धारा के हम दशन हात हैं। समष्टि रूप म कहा जा सकता है कि प्राय अवधी भाषा के काव्य ग्रंथों म यही छन्द रूप व्यवहृत

१-बबीर प्रयावली ना० प्र० सभा, काशी, पृ० १६ १७ ।

२-जा० प्र०, ना० प्र० सभा काशी, पृ० २६४ ।

३-विजमावशीयम् (४/८)

है। दोहा और चौपाई का प्रारम्भिक अवस्था में (यद्यपि दोहा छंद अपभ्रंश भाषा के कवियों के हाथों से सवर चुका था) जसा सवार जायसी ने अपने मनोभावों के अनुरूप अपनी समथ तूनिका से किया है वसा सेंवार शृंगार सरहपाद से आज तक तुनसीदास के अतिरिक्त कोई स्तर कवि नहीं कर सका है।

पन्नावत में चौपाई की सात अर्द्धालिया के पश्चात् एक दोहे की योजना की गई है। आखिरी क्लाम में भी छंद-योजना का यही रूप है। चित्ररेखा में भी छंद योजना का यही रूप है—चित्ररेखा में कुछ स्थलों पर तीन चार पांच चौपाई की अर्द्धानियाँ ही मिलती हैं पर उस्मानिया विश्वविद्यालय के पुस्तकालय में चित्ररेखा की एक हस्तलिखित प्रति है इसमें सात अर्द्धानियों के पश्चात् एक दाहे का विधान सबन मिलता है। अक्षरावट में एक दोहा पश्चात् एक सोरठा और उसके पश्चात् चौपाई की सात अर्द्धानियाँ की योजना हुई है। कहरानामा में कहखा छंद की योजना हुई है। इस ग्रंथ के प्रत्येक छंद में १४ पक्तियाँ हैं। मसलानामा में भी दोहा चौपाई और चौपाई वाली शैली ही प्रयुक्त है। इस प्रकार दोहा चौपाई सोरठा, कहरवा प्रभृति छंद जायसी के काव्यों में प्रयुक्त हुए हैं।

दोहा—चौपाई

“श्लोक” लौकिक संस्कृत का प्रतीक है। इसका उदय नई साहित्यिक मोड़ की सूचना है। ‘गाथा’ का उदय प्राकृत के दूसरे मांड की सूचना है। तीसरे झुकाव और मोड़ की सूचना लेकर एक दूसरा छंद भारतीय साहित्य के प्रागण में प्रवेश करता है यह दोहा है। जस श्लोक लौकिक संस्कृत का, गाथा प्राकृत का प्रतीक हो गया है उसी प्रकार दोहा अपभ्रंश का। कभी कभी एकाध दोहे प्राकृत के भी बताए जाते हैं। जसे हेमचंद्र की समस्यापूर्ति वाला प्रबंध चिंतामणि का यह दोहा—

पइली ताव न अनुहरइ गोरी मुहकमलसस ।

अद्विटी पुनि उन्नमइ पडिपयनी घणसस ॥^१

पं० हजारीप्रसाद द्विवेदी का कथन है कि विचार किया जाय तो इस दोहे में कोई ऐसा विशेष लक्षण नहीं है जिससे इसे अपभ्रंश का दाहा न कहकर प्राकृत का कहा जाय। मुझ तो यह दोहा अपभ्रंश का ही लगता है और सच बात तो यह है कि जहाँ दोहा है वहाँ संस्कृत नहीं प्राकृत नहीं अपभ्रंश है।^२

दोहा अपभ्रंश का साङ्गता छंद है। यह छंद का पहल प्रयोग कब हुआ—यह कहना कठिन है। विनमोवशीयम नाटक में इस छंद का अपभ्रंश भाषा में निबद्ध रूप मिलता है—

१—पं० हजारीप्रसाद द्विवेदी हिंदी साहित्य का आदिकाल पृ० ६०—६१ ।

२—पं० हजारीप्रसाद द्विवेदी हिंदी साहित्यकार आश्रितान, पृ० ६०—६१

महं जाणिअं मिअलोअणी णिसमए काइ हरेइ ।

जाव ण णव जलि सामल धाराहए बरसेइ ॥^१

(मैंने जाना था कि कोई निशाचर मरी मगलोचनी प्रिया को हरण किए जा रहा है यह मेरी भूल थी । इसे मैंने तब जाना जबकि नव विद्युत् से समुक्त बाले मघ बरसत लगे ।)

रे र हसा कि गाइजद । गई अणूसारे मह लविखवज्जइ ॥

कई पइं सिविखउ ए गए लालस । मा पइ दिट्ठी जहण भरालस ॥^१

(हरे हस तुम क्यों छिप रह हो ? तुम्हारी गति स ही मैंने सब कुछ जान लिया है । तुमने यह सुन्दर गति कहाँ से सीख ली है ? तुमने जपन भार स धीरे धीरे चलने वाली उस प्रिया को अवश्य ही देखा है ।)

इन छन्दों की भाषा गुद टकसाली अपभ्रंश है । प्रथम उद्धृत छन्द तो स्पष्ट रूप से दोहा है और द्वितीय उद्धरण चौपाई से बिरबूल मिलता-जुलता है । उसे चौपाई का प्रारम्भिक रूप कहा जा सकता है । इन छन्दों में प्रयुक्त गुद-स्टैडड-या परिनिष्ठित भाषा न विद्वानां म विवात् प्रस्तुत कर दिया है । कारण भा स्पष्ट है । कालिदास न अपभ्रंश वही भी अपभ्रंश भाषा का प्रयोग नहीं किया है । वे संस्कृत के कवि हैं । अतः इन पद्यों की प्रामाणिकता व विषय में विद्वानों का सन्देह है । जकोबी और श्री एस० पी० पट्टि^१ इन पद्यों को कालिदास रचित या कालिदासकारीन रचना नहीं मानते ।

इन पद्यों के प्रतिकूल उनकी आपत्तियों का एकपूण एव प्रमाण सम्मत समाधान प्रस्तुत करते हुए डा० ए० एन० जगधर^२ डा० ग० वा० तगारे^३ डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी^४, डा० पी० एल० वसु प्रभृति विद्वानों ने इन पद्यों की प्रामाणिक और कालिदास की रचना माना है । इस सम्बन्ध में प० हजारीप्रसाद द्विवेदी का मत उल्लेखनीय है — अपभ्रंश का साहित्य ५वीं-६वीं शताब्दी में काफी मात्रा में

१—विश्वमोवशीयम चतुष अव (५१८)

२—कालिदास प्रभावली विश्व-परिषद् काशी द्वितीय खण्ड, पृ० २२३

(विश्वमोवशीयम ५१३२) ।

३—श्री एस० पी० पट्टि विश्वमोवशीयम भूमिका ।

४—डा० ए० एन० जगधर परमाय-प्रमाण भूमिका पृ० ५६। टिप्पणी १ ।

५—पुराण पत्रिका जून १९४२ ।

६—प० हजारीप्रसाद द्विवेदी हिंदी साहित्य का आदिकाल ६२ ।

डा० नामवरसिंह हिन्दी के विकास में अपभ्रंश का योग प्रथम संस्करण

वतमान था। दण्डी और भामह ने उस साहित्य को देखा था। एकाध शताब्दी या दो के तो अपभ्रंश का प्रयोग और दोहा ग्रंथ भी भिन्न गये हैं। यदि जगल में भटकते हुए प्रिय-विरह से याकुल राजा के प्रलाप में कवि ने तत्काल प्रचलित ग्राम्यजन के गैय पदों में से एकाध पद्य कहनवा दिया हो तो कोई आश्चर्य की बात नहीं। माइल्ल धवल की उक्ति से स्पष्ट ही है कि अपभ्रंश या दोहावध उन दिनों भल आदमियों की हसी की चीज थी। इस दृष्टि से विक्रमोवशीयम वाले दोहे का प्रक्षिप्त मानने का कोई आवश्यकता नहीं है। — आधुनिक अहीरा के अत्यन्त प्रिय विरहागान का खाका मूलतः दोहा छन्द ही है। इस प्रकार स्पष्ट है कि विक्रमोवशीयम में प्रयुक्त में ये छन्द अपभ्रंश भाषा के प्राचीन उच्चारण के रूप में गहीत किए जा सकते हैं। सारठा का सम्बन्ध सौराष्ट्र से जोड़ा गया है क्योंकि इसे कभी कभी सौरठठ दोहा भी कहा गया है और आभीर गुजरो का सौराष्ट्र से पुराना सम्बन्ध है। दोहा अपभ्रंश भाषा की प्रवृत्ति के अनुसार ह्रस्वात् छन्द के रूप में है। यह छन्द नवीन-दसवीं शताब्दी में बहुत लोक प्रिय हो गया था। इस छन्द में नई बात यह है कि इसमें तुक मिलाने जाते हैं। संस्कृत प्राकृत में तुक भिन्नाने की प्रथा नहीं थी। दोहा वह पहला छन्द है जिसमें तक मिलाने का प्रयत्न हुआ। और आगे चलकर एक भी ऐसी अपभ्रंश कविता नहीं लिखी गई जिसमें तुक मिलाने की प्रथा न हो।

ईरान के साहित्य में मुस्लिम-पूर्व काल में भी तुक मिलाने की प्रथा थी और बाद में तो फारसी गद्य में भी तक भिन्नाने लिखने की प्रथा चल पड़ी जिसका निश्चित अनुकरण विद्यापति की कीर्तिलता में भिन्नता है। छठी सातवीं शताब्दी तक भारतवर्ष में उत्तर-पश्चिम सीमान्त से अनेक नई जातियों का आगमन हुआ और उनके कारण इस देश की भाषा में भी नए-नए तत्व प्रविष्ट हुए और कविता भी नवीन कारीगरी से समृद्ध हुई। हो सकता है कि यह तुक भिन्नाने की नवीन प्रथा भी नवीन जातियों के सम्पर्क का फल हो। इसमें तो कोई सन्देह ही नहीं कि दोहा नवीन स्वर में बोलता है। अपभ्रंश कविता का मूल स्वर दोहा में ही अभिव्यक्त हुआ है।

दोहा छन्द का माध्यम से मुक्तक और प्रबंध रूप में अपभ्रंश में प्रचुर रचनाएँ मिलती हैं। प्रेमात्मानक परम्परा के कवियों ने प्रेय-पीर की अभिव्यक्ति के लिए इन्हीं छन्दों को माध्यम बनाया है। अतः दोहा-चौपाई को सूफियाना आविष्कार मानना बहुत बड़ी गलती है। आगे इन छन्दों की परम्परा पर विचार किया गया है और स्पष्ट कर दिया गया है कि सरहपाई से लेकर ५० दारिकाप्रसादों तक दोहे

चौपाई म काव्य लिखने की एक अविच्छिन्न परम्परा चली आई है । इसी परम्परा के राजमाग पर सूफिया न भी अपनी कृतिया के पय-चिह्न रखे है । ये छन्द उनके निजी आविष्टत छन्द नही है । जायसी के पूववर्ती अनेक चरित काव्यों और प्रबन्ध काव्यों मे दोहे-चौपाई के प्रयोग की प्रचुर सामग्री उपलब्ध है ।

दोहा-चौपाई की परम्परा और जायसी -

पूर्वांकित पक्तियों म कहा जा चुका है कि दाहा-चौपाई छन्दो के माध्यम से प्रबन्ध-काव्य लिखन की परम्परा अपने प्राचीनतम रूप म अपभ्रंश साहित्य की है । अपभ्रंश के काव्य षडबक-बद्ध हैं । पञ्जटिका या अरिल्ल छन्द की कई पक्तियां लिखकर कवि एक घत्ता वा ध्रुवक देता है । सहजपानी सिद्धो म से सरह पाद और कृष्णपाद के प्रयोग म दो ढो-चार-चार चौपाइयो के बाद दोहा लिखने की प्रथा पाई जाती है ।

अरिल्ल चौपाई का ही पूव रूप है । क्या-काय मे इसका खूब प्रयोग भी हुआ है । अपभ्रंश के काव्यों म घत्ता के स्थान पर दोह का प्रयोग कम होता था । जिन पदमसूरि के मूलमहाभाग म इसका उदाहरण मिल जाता है । परन्तु अपभ्रंश प्रबन्ध काव्यों म दोहा-चौपाई का प्रम बहुत लोकप्रिय नहा हुआ सम्भवत पूर्वो प्रदेश के कवियों ने प्रबन्ध काव्य में चौपाई और दोहा से बने षडबक का प्रयोग शुरू किया था । मौलाना दाऊद, जायसी आदि सूफी कवियों ने इसी प्रथा का अवलम्बन किया था । परन्तु धीज रूप में यह प्रथा बौद्ध सिद्धा की रचाओ म मिल जाती है । सरहपा ने लिखा है -

अइसें विमान सधि को पसइ । जो जइ अल्पिणउ जव न दीरइ ।

परिअ सजन सत्य बन्वाणइ । ॥१॥ बुद्ध बसत ण ज्ञाणमू-॥

गमगागमण न तेन विस्सण्डिअ । सो वि गिलज्ज भणहि हुउ पन्धि ।

। जीवन्तह जो नउजरइ सो अजरामर हाइ ।

गुरु उवासे विमय मइ सो पर घण्णा बोइ ॥

प० हजारीप्रसाद द्विवेदी का कथन है कि दोहे-चौपाई का राम पुराना प्रयोग शायद यही है । जो कुछ पुराना साहित्य उपलब्ध है उमगे लगता है कि पूर्वो प्रदेश के बौद्ध सिद्धों ने ही म शली म निरसना शुरू किया था । पश्चिम म पदद्विया षड अधिक प्रचलित था और पदद्विया से कभी-कभी चौपाई का अर्थ भी ल लिया जाता था । असा कि त्रिनदतमसूरि की चचरी के अतिरार जिन पाद के अत्यन्त स्पष्ट होता है । गोरसनाथ की मजाई जानेवाली वाजिया में भी इन पद्धति को क्वाचित

१-प० हजारीप्रसाद द्विवेदी द्विवेदी साहित्य का आन्वित १५० १९ टिप्पणी साहित्य की सूचिका ५० ६६ (जून १९५९) ।

खोज लिया जा सकता है और कबीरदास ने तो निश्चित रूप से इस पद्धति का निर्वाह किया था। पृथ्वीराज रासो में इस पद्धति का बहुत ही कम स्थानों में उपयोग हुआ है। रासो के ब्यानीसर्वे समय (पृ ११६८) में एक स्थल पर चौपाई-दोहा की पद्धति का प्रयोग मिलता है।^१ बौद्ध और जन कवियों ने चौपाई-दोहा छंदा का गठबन्धन बड़ ही सुन्दर रूप में किया है। स्वयम्भू के विशाल महाकाव्य 'पउम चरित' में दोहे-चौपाई की शैली का सुन्दर रूप दशमीय है। डा० रामकुमार वर्मा का कथन है कि यद्यपि चौपाई छंद का प्रयोग कुछ सिद्ध कवियों द्वारा भी हुआ है तथापि जन कविया ने दोहा छंद के साथ चौपाई का मूल बड़ सुन्दर ढंग से किया है। स्वयम्भू देव ने अपने पउम चरित में तो दोहा और चौपाई का प्रयोग ही अधिकतर किया है। सम्भव है रामनाथ के महाकवि तुलसीदास ने स्वयम्भू देव का पउमचरित देखा हो और उसी शैली के अनुकरण पर दोहा चौपाई की शैली में अपना रामचरितमानस लिखा हो।^२

इससे इतना तो स्पष्ट है कि मौताना दाऊन जायसी और तुलसीदास के समक्ष निश्चित रूप से चौपाई-दोहे वाली पद्धति बतमान थी। जायसी के पूर्ववर्ती मुल्ता दाऊन ने भी इसी शैली का अनुगमन किया है।

चौपाई और अरिल्ल छंद

सूफी प्रबंध काव्यों में मुख्यतः दोहा और चौपाई छंद ही समान रूप से समाप्त रहे हैं। अपमग्न श में अरिल्ल या अल्लि नाम का सोनह मात्रा का छंद प्राप्त होता है। इसे चौपाई का पूर्व स्वरूप माना जा सकता है। चौपाई छंद ही कवियनक छंद है। अपमग्न श के नाउन छंद दाहा के साथ चौपाई का गठबन्धन अपमग्न श के प्रारम्भिक काल में ही हो गया था पर क्या काव्य के लिये इसका महत्व बात में समझा गया। अतः की मात्राओं की मूल भेदना के अनिर्दिष्ट अरिल्ल और चौपाई दोनों छंदा में एकरूपता है। दोनों मात्रा छंद हैं। दोनों में सोनह मात्राएँ होती हैं। अंतर इतना ही है कि चौपाई के अन्त में दो गुरु का प्रयोग होता है और अरिल्ल के अन्त में दो ऋषु का जगै—

अहो महो अज्जु नाउ मुह्यतउ । ज एवड महतण पतउ ॥^३

सो जग जणमउ सो गुण मतउ । जे कर पर उवअर हमतउ ।

१-प० हजारीप्रसाद द्विवेदी हिन्दी साहित्य का आन्विकान प० ६६

२-डा० रामकुमार वर्मा हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास पृ० १६५ ।

३-भविस्सयत पहा १०/३/१३

४-प्रा० मू १६०

'अरिलन' छन्द के दस उदाहरणों में सातह सोलह मात्राएँ हैं और अन्त में दो-नौ लघु हैं। तुलसीदास के रामचरितमानस (सं० १६३१) में भी लघ्वन चौपाइयाँ मिल जाती हैं जैसे—

बहु दसकथ कवन त बन्दर । मैं रघुबीर दूत दसकधर ॥
जायसी के पदमावत में भी यह प्रवृत्ति मिल जाती है—

य विगना गए बजरी आरन । य सिधल आये रेहि कारन ॥^१

यह सच है कि जायसी की चौपाइयों में मात्राओं की कमी यही भी मिलती है पर प्रायः सातह मात्राएँ ही मिलती हैं। १४ १५ १६ और १७ मात्रा वाली चौपाइयाँ भी मिलनी हैं। इससे स्पष्ट है कि या तो जायसी के श्रवण का ठीक से सम्पर्क नही हो सका है अथवा जायसी ने कई प्रकार की चौपाइयों का प्रयोग किया है। प्रायः चौपाइयाँ दीर्घांत हैं।

जायसी ने पदमावत अक्षरावट आविरी बसाम बिपरेखा प्रभति श्रयो मे सवत्र (चौपाई की) सात पंक्तियों के पश्चात् एक दाह का विधान किया है। (अपवाद स्वरूप गुवन जी की जायसी श्रवावनी प० १। दाहा ४ में मात्र ६ पंक्तियाँ ही थी पर डा० गुप्त व संस्करण में उक्त अभाव की पूर्ति हो गई है)।

दोहे की व्युत्पत्ति और पदमावत

दोहा शब्द की व्युत्पत्ति के विषय में विद्वानों में मतभेद है। कुछ पण्डितों का कथन है कि दोहा शब्द शब्द से युक्त है परन्तु हमारे विरोध में यह कथन जाता है कि दोषक वणवत्त है और इसके ठीक विपरीत दो। मादिक छन्द है। दोषक में तीन भगण और दा गण आते हैं प्रत्येक चरण में ११ वण होने हैं। गण अद्वयम छन्द है। मात्रा ही नष्टि में दाह व प्रथम-तवीय और त्वीय चतुथ चरण समान होते हैं। दाह व प्रथम-तवीय चरणों में १३ १३ मात्राओं और त्वीय चतुथ चरणों में ११-११ मात्राओं वाली हैं। संस्तुन वण वत्त प्रधान है। इनके ठीक विपरीत अपभ्रंश हिन्दी तथा अन्य आधुनिक भारतीय वाच भाषाओं की प्रवृत्ति मादिक छन्द की रही है। अतः स्पष्ट है श्लोक और दाषक का साम्य या सम्बन्ध निराधार है।

कुछ विद्वानों का पक्ष या दो-पक्ष में दाह की व्युत्पत्ति माना है। प्राकृत की 'गाया' से भी इसकी निरति की गई है। दा गया-गे गया दो गण दोहा 'दोहा' में हा का प्रत्यय मान कर (दा-ग-ग पतिया वाता) दाग की निरति की जाती है। दाहा शब्द की व्युत्पत्ति के विषय में जो भी कहा जाय, पर यह

निश्चित है कि दा यहाँ सख्या का ही बोध कराता है। साखी सबदी दाहरा आदि म दोहे को 'दाहरा भी कहा गया है। दोहा-डा (स्वायक प्रत्यय) दोहडा-दोहरा दोहा भी कहा जा सकता है। इसे दो-सर (सर-स्रज लड़ी लड) से युत्पन्न भी कहा जा सकता है। दो-हार या दो-घड (घड घडी या परत) स भी दाह की निरक्ति की सम्भावना की जा सकती है।

वस्तुतः दाहा के हा की निरक्ति सदिग्ध है। अवश्य ही इसका सम्बन्ध पक्ति से होना चाहिए। इस माथिक छंद म कुन चार चरण होत है। इसम कुल ४८ मात्राए होती हैं। इसम कम से कम २४ और अधिक स अधिक ४६ वण आ सकते हैं। पिंगल शास्त्र म दोहे के हस मयूर आदि २१ भेद भी किए गए हैं।

जायसी के दोहो म कही-नही मात्राओं की कमी-वेशी बहुत आटवती है। तत्कालीन गूढ उच्चारण के नात न होने के कारण प्रतियों के विनापत फारसी लिपि म मिलन के कारण पुन उसे नागरी मे नाने के कारण तथा जायसी के ग्रन्था के टीक से सपादन के अभाव के कारण इस विषय म उपस्थित किए जा सकते हैं।

डा० गुप्त का कथन है कि जायसी के छन्द दोहा और चौपाई है किन्तु इनके विषय मे उठोने बड़ी स्वतन्त्रता दिखाइ है। धनक उदाहरणा को दकर के गुप्तजी ने यह सिद्ध किया है परत यह भली भांति प्रमाणित है कि जायसी दोना छंदो की मात्राओ के सम्बन्ध म पर्याप्त स्वतन्त्रता रखते थे।^१ जायसी ने प्राय मात्राओ का ध्यान रखा है जस—

भा वसाख तपन अति तागी । चावा चीर चदन भा आगी । (१६ १६)

कवल जा विगमा मानसर जिनु जा गयउ सुखाय । (१३ ११)

बबहु बनि फिरि पमहै जो पिउ सीच आइ । (१३ ११)

दाऊ उलमई कृतवन और मजन ने पाँच चौपाइयो के पश्चात एक दोह का विधान किया है। जायसी १ सात चौपाइयो के पश्चात एक दोहे की योजना की है। तनसीदास न जाठ चौपाइयो के पश्चात एक दोह की योजना की है।

जायसी ने अपने काव्य के लिए दोहा और चौपाई छंद को ही सर्वोत्तम समझा कर अपनाया है। उनके समस्त छंद छंद रूप की विशाल परम्परा थी। उनका पीने दो सो वष पूव चदाया दोहा-चौपाई वाली शरी म ही शिक्षा गया था। मधु मालती^२ की जो प्रतियाँ मिली हैं (जिनका उल्लेख बनारसीदास जी ने अद्भुत म किया है -)

१-डा० मानाप्रसाद गुप्त जा० प्र० भूमिका प० ४१-४४।

२-मधुमालती की दा हस्तलिखित प्रतियाँ थी भायाणी जी भारतीय विद्या भवन के पास हैं। एक प्रति म लगभग ७०० छन्द (चौपाई-भेटे के विधान से) हैं।

उनमें भी यही शैली प्रयुक्त है। यह स्पष्ट है कि उम काल के साहित्य में इस छन्द का सब-सुन्दर प्रयोग जायसी ने ही किया है।¹

मसनवी शैली

मूलतः मसनवी फारसी साहित्य की एक काव्य शैली है। 'मसनवी' शब्द का अर्थ है 'बहुधा किये जानेवाले' का अर्थ है। मसनवी के छन्द में प्रत्येक पद अपने आप मस्वतब और पूरा होते हैं और वे तुकान्त होते हैं। ऐसा नहीं होता कि एक पाद के बाद दूसरे में चला जाए। अतएव मसनवी काव्य होने के कारण कवि को पूरी स्वतंत्रता बरतने का सुयोग मिलता है। प्रेमास्थान धार्मिक तथा उपदेशात्मक काव्यों के लिए मसनवी का ही सहारा लिया गया है। मसनवी अपने आप में एक पूरा प्रथम शब्द होता है। उस प्रथम का एक विग्रह नाम होता है। प्रेमास्थान में साधारणतः कवि अपने प्रथम शब्द का नाम नायक-नायिका के नाम पर रखता है। जैसे उम प्रथम शब्द में 'वर्णित विषय का भी आधार मानकर नाम दिया जाता है जैसे - साकीनामा। उसमें साकी का ही नाम भाव से वर्णन होता है। शराव के शेर की चर्चा होती है। यह प्रथम प्रतीकार्थक हो सकते हैं जिसमें शराव का किसी आध्यात्मिक भाव का प्रतीक माना गया है। नायक-नायिका के नाम पर भी अनेक प्रथम शब्दों का नामकरण हुआ है जैसे - मुसुफ जुनखा, सुमरा - शीरी आदि। इन प्रथम शब्दों में भी हैं जिनके नाम पूरा शब्दों का लक्षणिक हैं और उममें धार्मिक उपदेश देने की प्रवृत्ति की प्रधानता है। साधारणतः मसनवी संयोज्य होत है। पद्य में परमात्मा का गुणानुवाच रहने है। दूसरे में पगम्बर को स्मरण किया जाता है। तीसरे में पगम्बर के मोरारत की चर्चा रहती है। उसने या साधारणतः शायर करने का न गुनवाना गह-बहूत की प्रशंसा रहती है अथवा किसी महान व्यक्ति की तारीफ रहती है जिसमें उम प्रथम शब्द का सम्पन्न करता है। इसके बाद ही एक ऐसा पद्य रहता है जिसमें कुछ ही प्रकार का वर्णन रहता है कि जिस उद्देश्य से अथवा किस विषय का प्रेरणा में कवि ने उम काव्य - प्रथम शब्द का सम्पन्न किया है। उम पद्य का भीषण भी वह कुछ उसी प्रकार का पद्य है। उममें या ही मूल काव्य प्रथम शब्द का प्रारम्भ होता है। इस प्रथम शब्द के विभाग या सङ्घटन होते हैं और फिर वे विभाग या सङ्घटन गण-बद्ध किए जाते हैं। प्रथम शब्द के ऊपर उम पद्य में वर्णित विषय का सर्वत्र साधारणतः फारसी भाषा में दिया हुआ रहता है। अतः मसनवी एक उम

¹-रामानुज का काव्य गीत्य पृ० १/६-१६६।

संहार से ग्रय समाप्त करता है। मसनवी के कुछ विशिष्ट लक्षण इस प्रकार हैं—

(१) मसनवी म छंद स्वतः पूण होता है। वाक्य रचना के दृष्टिकोण से उसमें पूण वाक्य आता है।

(२) उसकी दाता अर्थात्तियाँ समान अत्यानुप्रास गण युक्त होती हैं।

(३) यह वाक्य शनी प्रकथन प्रधान होती है। इसका विषय कथा प्रधान होता है और उस कथा में विविध विषयों के सागोपाग बणन मिलत है।

(४) कथा के आरम्भ में ईश्वर पगम्बर मुहम्मद मुहम्मद के मित्र कवि के गुरु और सामयिक राजा की प्रशंसा रहती है।

(५) इसके पश्चात् कवि अपनी रचना के उदय का स्पष्टीकरण करता है।

(६) साधारणतः छंदा का परिवर्तन नहीं होता।

(७) पाँच या सात बंदा के अनन्तर एक बत रहता है।

(८) उसमें सामी सस्कृति (समेटिक बल्चर) का प्राधान्य भी कभी-कभी प्रदर्शित किया जाता है।

आरम्भिक काल की फारसी मसनवियों में धार्मिक अथवा रहस्यात्मक विषयों की चर्चा हुआ करती थी। ये प्रायः उपदेश प्रधान हुआ करते थे। कालान्तर में इन मसनवियों में विषय प्रमाह्वान हो गए। जिनमें सबेत्तों द्वारा कवि अनौचित्यता का परिचय देता जाता है।

इन प्रमाह्वानों की एक और विशेषता रही है कि इनमें बीच-बीच में गजल लिखे जाते थे। इन गजलों का उपयोग कवि ऐम मौके पर करता है जब कहानी का कोई पात्र अपने मन के भार को हलवा करना चाहता है। धीरे धीरे लम्बे काव्य ग्रन्थों के लिखने का प्रचलन नहीं रहा लेकिन मसनवियाँ का लिखा जाना बन्द नहीं हुआ। इसकी सहज शली व कारण बणनात्मक अथवा उपदेशात्मक छोटे छोटे काव्यों के लिए भी इसका प्रयोग होना रहा। आरम्भ में कवि ऐसे थे जो एक ही सीरीज में पाँच मसनवियाँ लिख देने थे। इस सीरीज का एक विषय नाम 'सम्स' था।

हाली का कथन है मसनवी में अलावा उन फरायज के जो गजल या कसोद में बाजिबुल अथा हैं कुछ और शरायत भी है जिनकी मरायात निहायत जम्री है। अजाजुमला एव रम्लकलाम है जो कि मसनवी और हर मुमलसल नजम की जान

१—पं० रामपूजन तिवारा सूफीमत साधना और साहित्य, पृ० ५२७—२८।

२—याउन ए लिटरेरी हिस्ट्री आफ परशिया (१९१६) पृ० ४७३ तथा इनाइ बलापोटिया आफ इस्लाम (१९३६), वाल्पूम ३, पृ० ४१०—११।

३—सूफीमत साधना और साहित्य, पं० रामपूजन तिवारी पृ० ५२८।

है। गजन और कसीदा में एक ओर के दूसरे पर स जसा कि जाहिर है कुछ रंग नहीं होना बसिलाफ मसनवी के कि इसमें हरबन को दूसरा बंन से ऐसा ताल्लुक होना चाहिए जसा जजीर की हर बटो का दूसरी बटो से होना है। "जामी का कयन है कि मसनवियों काव्य में आख्यान में प्रबन्ध वीरकाव्य तथा कयात्मक भी होती हैं। इसमें गेर के पहलू मिसरे का दूसरे में तुक होना है। मसनवियों पांच बहारा में लिखी जाती हैं। हजज रमन मारी खफीक और मुलकारिव।

यहाँ यह कह देना आवश्यक है कि फारसी की मसनवियों में जिन छंदा का प्रयोग हुआ है उनका उपयोग हिन्दी में प्रमात्माना नहीं हुआ है। मसनवी की दो अर्द्धालिया परस्पर तुलान होनी हैं। लम्बाई की कोई सीमा निर्धारित नहीं है और इसमें आठि स अत्र तक एक ही छन्द रहता है। कवि स्वतंत्र है कि वह या तो सात छंदा की मसनवी लिखे या बह इस सात हजार तक बढ़ाये। विषय निर्वाचन में भी कवि स्वतंत्र है। पौराणिक दार्शनिक रहस्यवादी धार्मिक आदि कोई विषय लिखा जा सकता है।^१

उपयुक्त कयन में यह धारणा दूर हो जानी चाहिए कि मसनवी कोई फारसी में प्रेमस्थान काव्य है। यह भी दूर हो जाना चाहिए कि मसनवी प्रबन्ध का सामान्य काव्य रूप है। वस्तुतः मसनवीनार अपनी मसनवी के लिए प्रेम मुद्र दशन, घम, आदि कोई भी विषय ले सकता है।

यह एक सामान्य नियम है कि 'मसनवी' जो एक पूरा पुस्तक के रूप में रहती है। ईश्वर की स्तुति में प्रारम्भ होती है। पुनः उसमें रमूल को बचना का जानी है। उसके माराज का भी बणन किया जाता है। परवान शाहवक्त या किसी महान व्यक्ति की प्रशंसा या स्तुति की जानी है। फिर श्राय निर्माण का कारण भी बतलाया जाता है। प्रेम तथा निम्न वाल कवि बीच बीच में गजन आदि भी दे दिया करते हैं। यद्यपि ये नियम तुर्की मसनवियों के हैं पर ये नियम फारसी मसनवियों में भी मिलते हैं। निजामी (नवा मजन 'सुमरा गीरी') सुसरो (मन्नू-नवा' शारा सुमरा) जामी (यूसुफ जुनवा') फत्री (नवदमा')

१-मुक्त्मा शर और शायरी शत्राज्य अलनाक हुमनगानी पृ० २१५।

२-फारसी साहित्य का इतिहास डा० अमर हिवमत पृ० १५३।

३-ए हिस्ती आफ ओनामन पात्री वा० प० ७७।

४-सना-मन्नू निजामी नवा किगार प्रेस नमनऊ।

५-सुसरो-गीरा " "।

६-मन्नू-नवा स० हबीबन रहमानघा अलीगढ़।

७-गीरी सुमरा मु० पू० अलागढ़। ८-यूसुफ एण्ड जुलमा प० टी० एच० प्रिन्टिग।

९-नवदमा, फत्री अवलकिगार प्रेस लगनऊ।

प्रमत्ति कवियों की प्रेम गायामक मसनविया में विशेषताएँ स्पष्ट रूप से मिल जाती हैं। प्रेमगाथाओं के साथ ही वीर प्रधान मसनविया — यथा फिर दोसी वक्त शाहनामा में ये तत्व स्पष्ट रूप से मिलते हैं।

फारसी में मसनवी लिखने वाले तीन महान कविया का नाम दिया जाता है। उनमें सनाई प्रथम हैं और अज दो फरीदुद्दीन अत्तार और जलालुद्दीन रूमी हैं। कहा जाता है कि मसनवी लिखने वाला मयलि अत्तार रूह थे तो सनाई दोनो धारों जम थे। जनानुद्दीन की सुप्रसिद्ध मसनवी को मसनवी ए मसनवी भी कहते हैं। इस गीत फारसी भाषा का कुरान कहते हैं। उसे पढ़ने पर लगता है कि जैसे वे भारतीय ध्यानार्थि साधना-पद्धति से प्रभावित हैं।

फारसी मसनवियाँ चार वर्गों में विभक्त हो सकती हैं —

(१) विशाल महाकाव्य।

(२) पर्याप्त विस्तार वाले प्रेमाख्यानक काव्य।

(३) पर्याप्त विस्तार वाले साधारण आख्यानक काव्य और

(४) ध्येय विशेष को उन्नत किसी गई कई कथाएँ जिनका सम्बन्ध किसी

कच्चे सूत्र के सहारे कर दिया गया है।

फिराँसी कृत शाहनामा फारसी की सबसे पुरानी मसनवी है जो सत्तार के सबसे प्रथम महाकाव्या में समाप्त है। इसमें केवल छन्द विधान ही मसनवी पद्धति पर है। मसनवी की अज विशेषताओं का इसमें प्रायः अभाव है। पर्याप्त विस्तार वाले प्रेमाख्यानक में फिराँसी कृत युसुफ जुलेखा प्राचीनतम रचना है। इस काव्य में मसनवी-शैली के सभी लक्षण मिल जाते हैं। फारसी प्रेमाख्यानक परम्परा का सब

१—रोज दी दर विशेष पृ० ४८ (सूफीमत साधना और साहित्य प० २३८ से)

२—परशियन एफूनुएस आन जिनी टा० हरनेव बाहरी पृ० ७७

मसनवी एज ए फाम आफ पर्सियन एपिक रिमेड ए माडल फार सूफी पोएट्स इन हिन्दी फाम लि अनिएस्ट टाइम्स डाउन टु १९१७ ए० डी० इट ओपेस विथ प्रज टु गोट ऐण्ड लि प्रेज आफ माहम्मद लि प्राफेण्ड आफ इस्लाम देन आफ लि स्लम आफ लि टाइम फायोड वाई पेनारमित्त लास एबाउट दी राण्टम प्रसीप्टर ऐण्ड हिन् फेमनी एन एनोडक्शन टु दी फमिनी आफ दी हीरो ऐण्ड दी हीराइन इज दन गिवन बीफार दी स्पोरी वीगित। एट हैज नो कटूज बट दी इवटस आर रिन्नाइन्ड अन्डर हन्निज। दी डिस्क्रिप्शन आफ प्लेसज ऐण्ड थिंग्स आर रान्ड लेंदी। आउट साइन् सूफी गिटरेचर, दीमस नवी फाम इज अवलुन इन दी सन्-ब्लेडस आफ दी १७थ ऐण्ड १८थ सेंचुरी।

३—दसाक्नोपोडिया आफ इस्लाम, भाग ३, प० ४११।

श्रेष्ठ कवि निजामी हुआ है। 'शीरी' 'सुमरा नरा-मजनु और 'दुपुनपेनर उसकी अत्यन्त ख्यातिप्राप्त मसनवियाँ हैं। फारसी प्रेमाख्यानक मसनवियों की शरी पर भारतवर्ष में भी रचनाएँ हुई हैं। हम क्षेत्र में अमीर सुमरो तथा अबुल फजी की कृतियाँ महत्वपूर्ण हैं। अमीर सुमरा कृत 'नरा मजनु और अबुल फजा कृत 'नरा दमन' मसनवी शैली के प्रमाण्य हैं। पर्याप्त विस्तार वाक साधारण आख्यानक काव्य के अंतर्गत अमीर सुमरो की अन्य मसनवियाँ गिनाई जा सकती हैं। चौथे वग के प्रतिनिधि कवि जनालुद्दीन रुमी हैं। इस प्रकार के काव्य प्रायः उपदेश प्रधान हैं। पञ्च धाग में मगधित होने का अर्थ उपदेश देने की भावना से सम्बद्ध माना गया है।

डा० बमरकून श्रेष्ठ का यह कथन कि हिन्दी प्रेमाख्यानक काव्य का सवध एवमात्र फारसी की प्रेमाख्यानक मसनवियों से है समीचीन नहीं है। यह अवश्य है कि हिन्दी प्रेमाख्यानक परम्परा के कवियों पर फारसी का प्रभाव पड़ा है उनकी कृतियाँ में मसनवी-पद्धति के दृष्टान्त भी होते हैं। उनकी कृतियाँ में भारतीय प्रभाव काव्यों की पद्धति का भी पूर्ण प्रभाव पड़ा है। अतः एवमात्र फारसी मसनवियों से सावधान्य जानना उचित नहीं है।

हिन्दी की प्रेमाख्यानक परम्परा में मुत्तमान कवि का का ही अर्थ है। यह नखर फारसी भाषा के ही ज्ञान वाले थे। फारसी को उद्भवन पर्यन्त ज्ञान वाले सय अमरक परम्परा में भारतवर्ष में आय थे। उनकी फारसी की रचनाएँ आज भी प्रायः हैं। फारसी भी फारसी के पश्चिम में। —होने फारसी गानवियों को अवश्य पता था। फारसी मसनवी पद्धति के (पूर्वनिर्दिष्ट पतियों में) का उपाय बताय गया है, वे परमायन में प्रायः मिल जाते हैं।

चरितकाव्य और मसनवी —

प्रेमाख्यानक मसनवियों की यह स्ति भारतीय चरित काव्यों की प्रभाव-रहितता से बहुत मिलती जाती है। नखून महाकाव्या में प्रारम्भ में मसनवाचरण वस्तु निर्देश आदि बातें ला जाती थी। परन्तु चरित काव्या विषयपर जन-चरित काव्या में तीसकरी की स्ति भी उगी तरह मिलती है जो मसनवियों में परम्पर और उनका गायियों की। बुद्ध चरित काव्या में प्रारम्भ में ही कवि अपने आश्रय दाता राजा का वचन करता और काव्य लिखने का कारण बताता है। चरित काव्या की अन्य स्तियाँ जग — गजन — प्रायः दुर्जन-निन्दा, पूर्व-कवि श्लाघा विलम्बना — प्रकाश कथा का गायन आदि मसनवियों में नहीं होती। चरित काव्यों की तरफ प्रेमाख्यानक मसनवियों की रोमान् अनीतिक परम्परा का उक्त और प्रथम भावना प्रधान होती है तथा उनका मग-विभाजन भा नाटकीय गायियों के आधार पर नहीं

वल्कि घटनाओं के वर्णन के आधार पर होना है। इस तरह चरित काव्य और मसनवी के रूप-विधान में बहुत अधिक साम्य है। हिन्दी के सूफ़ी प्रेमाख्यानक काव्यों में जा प्रबंध-रूपाँ मिनती हैं वे अधिकतर भारतीय चरित काव्यों की हैं। फारसी की मसनवी पद्धति और हिन्दी के सूफ़ी प्रेमाख्यानक काव्यों में जो साम्य दिखाई पड़ता है उसको देखते हुए यह कहना उचित नहीं है कि हिन्दी के सूफ़ी कवियों ने फारसी की मसनवी पद्धति का हूबहू अनुसरण किया है। आचार्य शुक्ल ने इस सम्बन्ध में लिखा है कि 'इन प्रमगाया काव्यों के सम्बन्ध में पहली बात ध्याते देने की यह है कि इनकी रचना केवल भारतीय चरित काव्यों की सगवद्ध शली पर न होकर फारसी की मसनाविया के ढंग पर हुई है जिनमें कथा सगौ या अध्याया में विस्तार के हिमायत विभक्त नहीं हानी बराबर चली चलती है कवन स्थान स्थान पर घटनाओं या प्रसंगा का उल्लेख शापक के रूप में दिया रचना है।' डॉ० माताप्रसाद गुप्त का कथन है कि पदमावत की मूल प्रति में खण्ड विभाजन नहीं था। उनका कहना है कि परवर्ती लेखकों ने प्रतिलिपियों में खण्ड विभाजन की व्यवस्था की है। और सम्भवतः उही प्रतियों का अनुसरण करके हिन्दी के परवर्ती सूफ़ी कवियों ने खण्डबद्ध शली में अपने काव्यों की रचना की है। इस प्रकार यह सिद्ध होता है कि पदमावत की रचना न तो फारसी, मसनविया की खण्डबद्ध शली में हुई है न अपभ्रंश के अधिकतर चरित काव्यों की सगवद्ध शली में। अपभ्रंश में हरिभद्र का णमिणाह चरित सगवद्ध काव्य नहीं है। प्राकृत में वाकाति राज का 'गडडगहा भी सगवद्ध नहीं है पर उमम एक विषय में संवक्षित छत्र एक साथ रखे गए हैं। आठवाँ शताब्दी में उद्योतन सूरि ने कुवचरमाला नाम का वृत्त कथा ग्रन्थ लिखा था जो सगौ या उद्योतना में विभक्त नहीं है उसी तरह प्राकृत में तरंग लाना और शीतलदा नामक कथा ग्रन्थ सगवद्ध नहीं हैं। इन प्रमाणा के आधार पर शोणमिनाय उपाधय ने लिखा है कि 'यह जगभव नहीं है कि कभी प्राकृत और अपभ्रंश की कथा के मूल मूल का प्रथम भी लिखे जाने हो जा सगवद्ध या सधियद्ध नहीं होते थे और बाद में सगौ या सधिया का जो व्यवहार होने लगा वह संस्कृत कथा का अनुसरण का फल है।' 'पदमावत की रचना भी प्राकृत अपभ्रंश के उपयुक्त कथा काव्यों की सगहीन पद्धति पर हुई है फारसी की मसनवी पद्धति पर नहीं।' फारसी कवियों के जामी नित्रामी

१-प० रामचन्द्र गुप्त जा० प० भूमिका प० ८।

२-जा० ए० एन० उपाधय शौनस्य कृत शीतलदा कथा अग्रणी भूमिका प ८४
(बर्क १८४६)

३-प० शम्भूनाथ सिंह हिन्दी के महाकाव्यों का स्वल्प विकास प ८१८ १८।

पञ्जी प्रमत्ति मसनवीकारो ने प्रसंगी के अनुकूल सबत्र सुखिया दी हैं। चदायन की अब तक प्राप्त सभी प्रतिया म सुखिया मिनती हैं। अब स्पष्ट है कि भारतीय पद्धति पर सभी प्रेमाख्यानों म सडो म विभाजन नहीं हुआ है। हिन्दी के सूफी कविया न इस सबष म फारसी मसनकिया का अनुरण किया है।

पदमावत के खड विभाजन को डा० माताप्रसाद गुप्त ने परवर्ती प्रतियों का प्रक्षेप माना है। डा० वासुदेवगरण अप्रवान ने उम कवित्त मानते-न मानते द्वये पमावत म स्थान दिया है। जिन प्रतिया के आधार पर डा० मानाप्रसाद गुप्त ने सपादन किया है उससे अधिक प्राचीन प्रतियो म खण्ड विभाजन मिलता है। मुल्ला दाऊद कृत चदायन की प्रति म भी खण्ड विभाजन के रूप म प्राय कडवकी के शापक दिए हुए हैं। अब यह एक प्रश्न है कि जायसी ने सडो की व्यवस्था की थी या नहीं। जायसी कृत पमावत ही प्राप्त प्रतियो का पुन सर्वेक्षण और वनानिक सपादन करके ही निश्चित रूप मे कुछ कहा जा सकता है। चदायन की अबतक प्राप्त सभी प्रतिया म गीपक या खण्ड विभाजन उन्नत है। अब सूफी प्रमाख्यानों की हस्तनिसित प्रतियो म भी खण्ड विभाजन मिनता है। ऐसा लागता है कि पमावत म खड विभाजन स्वय जायसी द्वारा ही किया गया है। इसे कवित्त न मानने का कोई कारण नहीं है।

पूर्वा कित पतियो म मसनवी के स्वरूप निरूपण क सितसिल मे यह स्पष्ट किया जा चुका है कि मसनवी का खण्ड म विभाजन हाता है। यह भी लिखा गया है कि ऐसा नहीं भी होता। अब पमावतकार न खण्डो या गगों म विभाजन किया हो या न किया हा पर उम मसनवी पद्धति के प्राय सभी नक्षण मिन जाते हैं। हाँ हम डा० शम्भूनाथ सिंह क शब्दा का बान कर कह सकते हैं कि पमावत की रचना मसनवी पद्धति पर हुई। इसम प्राकृत-अपभ्रंश की मगहीन कया काव्या की पद्धति के भी दशन होत हैं।

डा० शम्भूनाथ सिंह न यह प्रमाणित करन का प्रयत्न किया है कि सूफी काव्यो को गुणतया अपभ्रंश के तथा भारतीय लोचक्याओ की ही परपरा में मानना उचित है। यहाँ उनके तर्कों का उत्तर कर देना मगहीन है — 'गुवन जी ने प्रमाख्याना काव्यों की शनी के बारे म यह भी कहा है कि मसनवी के लिए साहित्यिक नियम तो कवन इतना ही समता जाना है कि सारा काव्य एक ही मसनवी छन्द म हो परम्परा के अनुमार उमम क्यारम के पहल ईश्वर स्तुति, पगम्बर की बाना और उम समय के राजा (शासक) की प्रशंसा होनी चाहिए। ये बाने पमावत इशावनी मगावती काव्य सङ्ग पाइ जानी हैं।' भारतीय

१-प० रामचन्द्र धुवन जा प० की भूमिका प० ४ (डा० शम्भूनाथसिंह टि०

महाकाव्य का स्वरूप-विनाय प० १४७ म उद्धृत।

चरित काव्या की अनेक प्रबन्ध रूढ़ियाँ फारसी की रोमांचक मसनवियाँ में भी मिलती हैं। जिस तरह हिंदू और जन कवि चरित काव्या में अपने धर्म और विश्वासा के अनुसार प्रस्तावना के रूप में ईश्वर देवता अवतार तीर्थ कर आदि की स्तुति तथा अपने आश्रयता की प्रशंसा करते थे और काव्य-रचना का कारण बताते हुए वस्तुनिर्देश लिखते थे उसी तरह हिंदी के मुसलमान प्रेमार्थानक कवियाँ ने भी ईश्वर और अवतार की जगह अपने मजहब के अनुसार अल्लाह और पैगम्बर की स्तुति की है। अतः उन्होंने फारसी के रोमांचक मसनवियों की प्रबन्ध रूढ़ियों का अनुकरण किया है या भारतीय चरित काव्यों की प्रबन्धरूढ़ियाँ का यह प्रश्न महत्वपूर्ण नहीं है। ये मुसलमान सूफ़ी कवि फारसी काव्या की विचारधारा और रूढ़ियों से अवश्य परिचित रहे होंगे अतः हो सकता है कि ये प्रबन्ध रूढ़ियाँ उन्हें फारसी-साहित्य से ही प्राप्त हुई हों पर व भारतीय चरित काव्यों की भी प्रबन्ध रूढ़ियाँ हैं जो फारसी मसनवियों में भी पाई जाती हैं। इस तरह हिंदी के सूफ़ी प्रेमार्थानक काव्यों को अपभ्रंश के चरितकाव्या तथा भारतीय लोक कथाओं की परम्परा में मानना उचित है। एम. सम्बन्ध में डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी ने बिल्कुल उचित कहा है कि 'उन साधारण का एक और विभाग जिसमें धर्म का स्थान नहीं था जो अपभ्रंश-साहित्य के पश्चिमी आकार में भीध चना आ रहा था, जो गावों की बठकों में कथानक रूप से और गान रूप से चल रहा था उपस्थित होने लगा था। इन सूफ़ी गावकों में पौराणिक आख्यानों के बदले इन लोक प्रचलित कथानकों का आश्रय लेकर ही अपनी बात जनता तक पहुँचाई।' फारसी की सूफ़ी काव्यधारा का भी उन पर कुछ प्रभाव अवश्य पड़ा है पर इन फारसी की रोमांचक मसनवियों की काव्यशैली में एकत्र अनुकरण नहीं किया जा सकता। एम. सम्बन्ध में श्री रामपूजन तिवारी का यह मत सवधा सही है कि हिंदी सूफ़ी काव्य इस परम्परा में प्रभावित तो अवश्य है किन्तु उसमें इसकी हबहब नकल नहीं की गई है। भारतीय वातावरण में सूफ़ी मत का विकास अरब और फारस जसा न होकर भिन्न रूप में हुआ। भारतीय चिन्ता धारा से वह बहुत प्रभावित हुआ। हिन्दी का सूफ़ी काव्य जितना भारतीय विचारधारा में प्रभावित मालूम होता है उतना फारसी या अरबी परम्परा से नहीं। परमावत अर्थ सूफ़ी प्रेमार्थानकों की अपेक्षा और भी स्पष्ट रूप में भारतीय चरित काव्या लिखित

१-प० हजारीप्रसाद द्विवेदी हिन्दी साहित्य की भूमिका च० सं० प० ७१।

डा० शामभूनाथ मिश्र हिन्दी महानाट्य का स्वरूप-विकास प० ४१।

२-प० रामपूजन तिवारी सूफ़ी काव्य परम्परा (निबन्ध) श्रवन्तिता, अक्टूबर

१९५४, प० ४५।

कथाओं तथा मौलिक लोककथाओं की शैली के निकट है। ' उपयुक्त मसनवी पद्धति व विवेचन के साध्य पर यहाँ इतना बह देना पर्याप्त है कि पन्मावत की रचना में मसनवी-पद्धति के प्राय सभी लक्षण मिल जाते हैं। यह भी स्पष्ट है कि जायसी फारसी के महान पंडित भी थे। अतः उनका पन्मावत में मसनवी काव्या की शैली पूर्णरूप में मिलती है यह अवश्य है कि उनमें भारतीय अपभ्रंश प्राकृत के चरित काव्या और सस्कृत के प्रबन्ध काव्या (महाकाव्या) का भी सुन्दर रूप मिलता है। इसीलिए तो विद्वानों ने कहा है कि ' वस्तुतः पदमावत में भारतीय प्रबन्ध काव्य की शैली और मसनवी काव्य शैली का सुन्दर सामंजस्य किया गया है। ' प्रारम्भ में ईश्वर स्तुति पगम्बर प्रशस्ति उनके चार चारों का गुणगान, शाहूख्त शेरशाह का उत्तम अपने बविकम का उत्तम विशाल वणन प्रधान काव्य वणनो का बविक्य एवं उनके सामोपाग निरूपण सात (चौपाई की) बंदों के अनन्तर (दोहे का) एक बंद आदि ने अन्त तक चौपाई-गद्दा छ। का ही प्रयोग उनमें भी सबत्र तुकान्तता के प्रयोग आदि ने मिनरर पन्मावत को मसनवी शैली का एक सुन्दर प्रबन्ध काव्य बना दिया है। मसनवी पद्धति पर ही उनमें वणन-बविक्य बविक्य और कथावस्तु का कुतूहल ही प्रमुख माना चाहिए। ' यहाँ पर यह यह देना सगत है कि मूत्रन हिन्दी के अनेक सूफी काव्य अधी मसनवीयों हैं जिनमें भारतीय प्रबन्ध-काव्या की शैली का भी सुन्दर रूप में समावेष हुआ है। पन्मावत का काव्य-सौन्दर्य नामक ग्रन्थ में हिन्दी तथा फारसी के प्रमाख्यानक मसनवी काव्यों के साम्यामाय्य का निरूपण करते हुए इस बात को स्पष्ट करने का प्रयत्न किया गया है कि यद्यपि पन्मावत इब्राहिमी आदि का प्र फारसी की मसनवी-पद्धति पर लिखे गए हैं तथापि उनमें भारतीय प्रबन्ध काव्यो अथवा अपभ्रंश के चरित काव्या की शैली का भी चरम परिपाक मिलता है।

निष्कर्ष

संग्रह में उपयुक्त मसनवी विवेचन का यह निष्कर्ष है कि हिन्दी सूफी प्रमाख्यानकी सजना में प्रायः फारसी मसनवी पद्धति का गहन किया गया है पर उनका अध्यानकरण नहीं किया गया है। हिन्दी के सूफी प्रमाख्यानकारों ने अपने कथाकाव्य के लिए माता लोककथाओं का विषय महत्व दिया है अथवा पौराणिक या ऐतिहासिक कहानियों का ही चयन है और जहाँ-जहाँ उहाँ-कोरी

१-डा० गम्भूनाथ सिंह हिन्दी मन्त्रालय का स्वल्प विभाग प० १९६४२०।

२-डा० रामकुमार वर्मा हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक ऐतिहासिक, प० २२६ ४४८।

३-डा० रामकुमार वर्मा का एक पत्र १९१९/१९६४ ई०।

कल्पना से काम लिया है अथवा मुस्लिम धर्मकथाया का आश्रय ग्रहण किया है वहाँ पर भी उन्होंने उस पर भरसक भारतीय रंग चढाने के प्रयत्न किए हैं। मगला चरण जैसे प्रसंगों के विषय में वे केवल मसनवी काव्या का ही अनुकरण नहीं करते, जनों के चरित्रकाव्या में भी इसी प्रकार का विधान विद्यमान है। यहाँ पर हमें पगम्बरा और नबिया की स्तुति की जगह तीर्थ वरों की वन्दना मिलती है। शाह वत्त की प्रशंसा की जगह आश्रयता के लिए कहे गए देव भक्ति सूचक शब्द दीख पढ़ते हैं तथा प्रायः एक ही प्रकार से वतलाए गए आत्मपरिचय भी उपलब्ध होते हैं जिनमें अपनी विनम्रता सूचित की गई रहती है। सूफी प्रमाख्यानों के वष्य विषय तथा उनके विकास क्रम को प्रभावित करने वाले आदर्शों की ओर ध्यान देने से पता चलता है कि उनके स्वरूप निर्माण में अनेक प्रकार के कारणों ने सहयोग प्रदान किया होगा और इसी कारण इनका महाकाव्यत्व भी बहुत भिन्न लक्षणों पर आधारित हो सकता है। सूफी प्रमाख्यान एक ऐसी रचना है जिसमें किसी प्रबन्ध काव्य के सभी तत्व वतमान हैं किन्तु जिसमें इनके साथ ही कथा आख्यायिका जन चरित्र काव्य धर्म कथा महाकाव्य एवं मसनवी की भी विशेषताओं का सम्मेलन हो गया है और यही इसकी सबसे बड़ी विशेषता है। सभी उपन्यास सूफी प्रमाख्याना का आकार प्रकार ठीक एक समान नहीं कहला सकता और न ऐसा एक भेद उसने रचना—कलानुसार भी टहराया जा सकता है। परन्तु इसमें भी संदेह नहीं कि उनमें कुछ ऐसी विनम्रता है जो उन्हें असफी प्रमाख्यानों से भी पृथक् कर देती है।" निष्कर्षतः हम यह सकते हैं कि शली की दृष्टि से पदमावत में फारसी मसनवी और भारतीय प्रबन्ध काव्य की पद्धतियाँ के सुन्दर सामंजस्य के कारण अदभुत सौन्दर्य आ गया है।

जायसी का रहस्यवाद

रहस्यवाद

(रहस्य शब्द जिस सना से व्युत्पन्न है उसके पाँच अर्थ होते हैं—(१) एकत गुप्तता (२) छिपन वा स्था (३) कोई अज्ञात बात, (४) स्त्री-गुरूप-सभोग, (५) वानून स समत कोई अनुबध) शानुत्तल म— रहस्यास्यायीव स्वासि मूदु कर्णान्तिवचर या रामचरित म रहस्य सायूनामनुपधि विगुद्ध विजयते एसी गोपन आचरण या गुप्त बात के अर्थ म आया है। साहित्य स भिन्न अर्थ म आबर रहस्य शब्द कुछ उपदेशात्मक अर्थ देने आगता है जसे यागवन्वय म्मनि म अथ भिख्यात दोषस्तु रहस्य व्रतमाचरेत या भगवदगीता म भक्तोसि म सत्ता वेति रहस्य हुमतदुत्तमम। अंगरेजी का शब्द मिस्टिफ या मिस्टिसि म यूनानी धातु मुस्टीस से बना है जिसका अर्थ है जीवन और मृत्यु की सच्चाई का गुप्त पान जानने वाला व्यक्ति।

(मूलत रहस्यवाद शब्द मरुतन के रहस्य और वाद से बना है किन्तु आधुनिक हिन्दी म यह शब्द अपने वनमान अर्थ म मरुत स गृहीत न होकर आन भाषा के मिस्टिसि म के अर्थ म उसी के तौन पर प्रयुक्त होने लगा है। सम्पत्ता के ऐतिहासिक विकास क गाय-साय रहस्यवा की व्याख्या भी बदलती गई है जो हमारे नये बदिब बान म रहस्यमय था वह आज भी आश्वत सनातन भाव से रहस्यमय है। तेमा मानना मनुष्य की बुद्धि के सारे बभव और श्रुतिव वा अपमान करना है। 'गडे आगुरी वायुनी मिस्त्री चीनी भारतीय ईसाई, इस्लामी कोई भी रहस्यवा हो उसके मून म दा-तीन बातें एक ही मिनती हैं और वे कविना म रहस्यवाद के अध्ययन म बहुत उपयोगी हैं एक तो बान के यपा स

१-प्रभावर माचवे रहस्यवा आधुनिक हिन्दी काव्य की प्रवर्तियाँ पृ० १

२-पन्नावत का काव्य सौन्दर्य रहस्यवाद।

परे कोई वास्तविकता है यानी वह जन्म मृत्यु के बन्धनों से परे अजन्मा-अमर है। मनुष्य उसे पाना चाहता है। उस अज्ञात अलक्ष्यता के प्रति उसके मन में एक निरंतर अवेपण भावना काम करती रहती है और पाप या घुराई कुछ नहीं है केवल भास मान है। वह है तो इसीलिए कि विश्व को सङ्घन स्वयं शासित मानने से अपूर्णता पग्न होती है। इस दृष्टि से रहस्यवाद की जो दो चार परिभाषाएँ हमारे काम का मिनती हैं वे इस प्रकार की है

(१) परमोच्च के साथ प्रत्यक्ष मिनन के परम पवित्र आनन्द को उपलब्ध करने का मानवीय मन का प्रयत्न रहस्यवाद है (प्रिगल पटिसन दि आडिया आफ गाड)।

(२) प्रेम भाग में परमात्मा की प्राप्ति का और उसके लिये आवश्यक सफ़्त सेवा के आदर्श से प्रेरित किसी व्यक्ति के आत्म निरपेक्ष आग्रह को रहस्यवाद कहते हैं (टी एच० ह्यू दि फिनामाफिन्ल बेसिस आफ मिस्टीसिज्म पृ० ६०)।

(३) रहस्यवाद आत्म का नरात्म से एसा सम्बन्ध है जिसमें अपने व्यक्तित्व हेतुओं से परे वह बहतर जादगों की प्राप्ति के लिये सामरस्य से या प्रेम से प्रयत्न करे। इस प्रकार रहस्यवाद विश्व की अगण्डता के साथ भाव मन्त्रों का आनन्दमय सशेषण है (हेवलाक एलिस)।

(४) रहस्यवाद एक प्रकार की दिव्य अनुभूति है सिद्धांत नहीं, यह तो एक प्रकार का आध्यात्मिक वातावरण है कोई दशन पद्धति नहीं (स्पेजियन)।

आज का 'याख्यातार रहस्यवाद को आंतरिक सामञ्जस्य स्थापित करने की एक कला मानता है, जिसके द्वारा मनुष्य विश्व-ब्रह्मांड को सम्पूर्ण और असङ्घित समझता है।^१ एक समय था जब रहस्यवादी ने तात्पर्य उस व्यक्ति से था जिसको परमात्मा सम्बन्धी ज्ञान और रहस्यों का पता हो और उस बात पर जोर दिया जाता था कि वह गुरु द्वारा प्रदत्त उच्च ज्ञान को स्वयं तक सीमित रखे। सूफियां यहाँ अरिफ उस साधक को कहते हैं जो ईश्वर के विशेष कृपापात्र है और भगवान् उन पर अनुग्रह करके इस रहस्य को साक्षात्कार कराना है।^२ उनमें ऐसे लोगो की संख्या अवश्य सामान्य है जो इस रहस्य के जानने के अधिकारी हैं और जिन्हें इस मुख्य गुह्य ज्ञान की प्राप्ति होती है। अतएव यह बिल्कुल स्पष्ट है कि साधना के क्षेत्र में रहस्यवाद से जो कुछ समझा जाता था ठीक वही आज नया समझा जाना है वैसे प्राचीन काल का साधना क्षत्र वाचा रहस्यवाद तथा आधुनिक काल का रहस्यवाद—दोनों एक ही भावना-परमात्मा और आत्मा के अन्तरण और गहरे

१—राधाकमल मुक्जों थ्योरी एण्ड आट आफ मिस्टीसिज्म, नूमिना पृ० ९ १६३७

२—श्री रामपूजन निवारी सूफी मन-साधना और साहित्य पृ० ५।

सम्बन्ध पर आधारित है।^१

हिंदी के विद्वानों ने भी रहस्यवाद की परिभाषा दी है। प० रामचन्द्र गुप्त ने लिखा है कि जहाँ कवि उस अनंत और अज्ञात प्रियतम को आलंबन बना कर अत्यंत चित्रमयी भाषा में प्रेम की अनेक प्रकार से यजना करता है वहाँ रहस्यवाद होता है। डा० श्यामसुन्दरदास का कथन है कि चिंतन के क्षेत्र का ग्रहणात् कविता के क्षेत्र में जाकर कल्पना और भावकता का आधार पाकर रहस्यवाद का रूप पकड़ता है। डा० रामकुमार वर्मा का मत है कि रहस्यवाद जीवात्मा की अतर्निहित प्रवृत्ति का प्रकाशन है जिसमें वह द्रिश्य और अतीतिक शक्ति से अपना शांत और निश्चल सम्बन्ध जोटना चाहती है और यह सम्बन्ध यहाँ तक बढ़ जाता है कि दोनों में कुछ भी अंतर नहीं रह जाता। जीवात्मा की सारी शक्तियाँ इसी शक्ति के बभ्रव और प्रभाव से ओतप्रोत हो जाती हैं। प्रसाद जी के मत से अपरोक्ष अनुभूति समरसता तथा प्राकृतिक सीन्धु के द्वारा अहम् का इहम् से समन्वय कर देना रहस्यवाद है। यष्टि दष्टि को उहोने छायावादी कहा है और ममष्टि तष्टि को रहस्यवादी कहा है। महादेवी वर्मा ने अपनी सीमा का असीम तत्व में सो देने का रहस्यवाद कहा है। प्रायः सभी विद्वानों ने दृश्य जगत में व्याप्त उस अज्ञात एवं अगोचर-असीम मत्ता से रागात्मक सम्बन्ध स्थापन की भावना को रहस्यवादी भावना कहा है। रहस्यवाद के जगत कवि उम अज्ञान एवं विराट सत्ता के प्रति अपने ऐसे भावों-गार व्यक्त करता है जिसमें सुख दुःख आनन्द विषाद हाम परिहास सयोग-वियोग आदि घुन मिल रहते हैं। वह अपनी ससीमता को अव्यक्त शक्ति की असीमता में तीन करके एक व्यापक आनन्द का अनुभव किया करता है।

साधना या भावना के रूप में रहस्यवाद आध्यात्मिक अनुभूति की वह अवस्था है जिसमें प्रेमी प्रियतम व भक्त ईश्वर व या साधन माध्यक अपराध साक्षात्कार का चरम प्रयत्न करता है। उसके अंतर्गत एक मूर्ख आध्यात्मिक दुष्टि और परिपक्व आत्मानुभूति के द्वारा निमित्त ममति में परिष्कार एक ही दिव्य सत्ता को देखने की चष्टा की जाती है। रहस्यवाद का क्षेत्र अतिम सत्य और अनंत की मोन या व्यक्तिगत अनुभूति (पमनन रिषताइजशन) और फिर उम सत्य की जीवन में अनुभव करने तक ही सीमित है। आत्मा परमात्मा, जीवन और जगत

१-श्री रामपूजन निवारि मूफी मन-गाथना और साहित्य प० ५।

२-प० रामचन्द्र गुप्त हिंदी साहित्य का इतिहास प० ६६८।

३-डा० श्यामसुन्दरदास कवीर छायावादी भूमिका पृ० ४६।

४-डा० रामकुमार वर्मा कवीर का रहस्यवाद प० ७ १९४४

५-त्रयशक्तिप्रमाण काव्य तथा अन्य निबंध प० ६९।

के सम्बन्ध में गम्भीर मनन चिन्तन और विचार करना दर्शन का विषय है। रहस्यवाद जीवन में अनेक प्रकार के विशाल अनाविज्ञ और असीम के प्रति महत् रागात्मक अनुभवा अनुभूतियों का फल है।

प० रामचन्द्रगुप्त^१ ने विद्वतापूण विचारा और प्रमाणों के आधार पर यह स्पष्ट कर दिया है कि किश प्रवार आय जाति के तत्त्व चिन्तका द्वारा प्रतिपादित अद्वैतवादी सिद्धांत को सामी पगम्बरा मतों में रहस्य भावना के भीतर स्थान मिला। यहूदी ईसाई और इस्लाम मतों के बीच तत्त्वचिन्तन की पद्धति या ज्ञान का स्थान न हाने के कारण अद्वैतवाद का ग्रहण रहस्यवाद के रूप में ही हो सकता था। भारत में तो यह ज्ञान क्षेत्र से निकला और अधिकतर ज्ञान क्षेत्र में ही रहा पर अरब फारस आदि में जाकर वह भाव क्षेत्र के बीच मनोहर रहस्य भावना के रूप में फला। रहस्योमख सूफियों और पुराने कथोलिक ईसाई मतों की भावना समान रूप से माधुय भाव की ओर प्रवृत्त रही। जिस प्रकार सूफी ईश्वर की भावना प्रियतम के रूप में करते थे उसी प्रकार स्पेन इटली आदि यारोपीय प्रदेशों के भक्त भी। जिस प्रकार सूफी ज्ञान की दशा में उस मातृक से भीतर ही भीतर मिला करत थे उसी प्रकार पुराने ईसाई भक्त साधक भी दुलहिनें बनकर उस दूल्हे से मिलन के लिए अपने अटर्देश में कई खण्डों के रगमहन तयार किया करते थे। ईश्वर की प्रति रूप में उपासना करने वाली सफो टेरेसा आदि कई भक्तियों भी योरोप में हुई हैं।

अद्वैतवाद अद्वैत भावना पर आश्रित रहस्यवाद

अद्वैतवाद मूलतः एक आधुनिक सिद्धान्त है। उसके दो भाग हैं—(१) आत्मा और परमात्मा की एकता और (२) ब्रह्म और जगत की एकता। इन दोनों का सम्मिलित रूप सवदान है—जिसके लिए सव खल्विद ब्रह्म कहा गया है। गीता के दसवें अध्याय में भगवान न जपनी विभूतिया का जो सववाद की भावात्मक प्रणाली पर निरूपण किया है वह अत्यन्त रहस्यपूर्ण है। जायसी उसमान आदि सूफी कवियों ने प्रकृति की समस्त विभूतिया में परम प्रिय की प्रतिभासिद्ध सत्ता का अनुभव किया है। रहस्यवाद दो प्रकार का होता है—भावात्मक और साधनात्मक। हमारे यहाँ योगभाषा साधनात्मक रहस्यवाद है। तत्र और रसायन भी रहस्यवाद हैं। अन्तर्धान या ब्रह्मवाद को लेकर चलने वाली भावना से गुप्त और उच्चतराटि के रहस्यवाद की प्रतिष्ठा होती है।^१

१-प० रामचन्द्र गुप्त जायसी प्रयावली भूमिका पृ० १५६-६०।

२-वही पृ० १६०।

‘अद्भुतवाद का प्रतिपादन सबसे पहले उपनिषदों में मिलता है।’ उपनिषदों में केवल रहस्य की टोह की भावना ही नहीं, उसे व्यक्त करने में रहस्यवादी कविता शैली भी अपनाई गई है। उपनिषद भावमत वेदान्त बौद्धों का शून्यवाद तांत्रिकों का समाज द्रोह आदि के प्रभाव भी आरम्भिक रहस्यवाद के मूल में हैं। शुक्ल जी का मत है कि ‘अवतारवाद का मूल भी रहस्य भावना है।’ ‘पति या प्रियतम के रूप में भगवान की भावना को वृष्णव भक्तिमाग में माधुर्य भाव कहते हैं। इस भावना की उपासना में रहस्य का समावेश अनिवार्य और स्वाभाविक है। (भारतीय भक्ति का स्वरूप रहस्यात्मक न होने के कारण इस माधुर्य भाव का अविक प्रचार नहीं हुआ। आगे चलकर मुसलमानी जमाने में सूफिया की देखा देखी इस भाव की ओर वृष्ण भक्ति शाखा के कुछ भक्त प्रवृत्त हुए। इनमें मुख्य मीराबाई हुईं जो ‘लोक लाज खोकर अपने प्रियतम श्रीवृष्ण के प्रेम में मत्तावली रहा करती थी। उन्होंने एकबार कहा था कि वृष्ण को छानकर और पुरुष है कौन ? सारे जीव स्त्री रूप हैं। सूफियों का असर कुछ और वृष्ण भक्तों पर भी पूरा पड़ा पाया जाता है। चतुर्थ महाप्रभु में सक्तियों की प्रवृत्तियाँ साफ शान्त होती हैं। जस सूफी बख्शाल गाने पाते ‘हान की दशा में हो जाते हैं वैसे ही महाप्रभु की मण्डली भी नाचते-नाचते मूर्च्छित हो जाती थी। यह मूर्च्छा रहस्यवादी सूफियों की रुढ़ि है।

शुक्ल जी ने ठीक ही उद्धृत किया था कि मीराबाई के ‘लोक-लाज खोने’ और श्रीवृष्ण के प्रेम में मनवानी रहने के मूल में सूफिया का भी प्रभाव है। भारतीय सूफी-सन्तों कवियों की परम्परा तो पुरानी है ही साथ ही हिन्दी प्रमगाथावादी परम्परा भी बड़ी पुरानी है। जायसी के जगमग पौन दा सो वष पूव मौलाना ताऊ दनमई (चतुर्थ प्रभु १३७६) ने सूफी प्रेमपरम्परा का एक महत्वपूर्ण काव्य लिखा है। इस ग्रन्थ में अनेक स्थलों पर रहस्यवाद के सक्तों की मुन्दर योजना हुई है।

‘मीराबाई पर तो सूफी प्रभाव है ही, साथ ही ‘कबीर दादू आदि सत्तों के पदों में प्रेमत्रय बिल्कुल सूफियों का है। इनमें म दादू दरिया साहब तो शान्ति स मूनी ही जान पड़ते हैं। कबीर में माधुर्य भाव जगह जगह पाया जाता है। वे कहते हैं —

हरि मोर विय मैं राम की बहुरिया ।’

१—प० रामचन्द्र शुक्ल जायसी प्रयावली भूमिका, प० १५६-६०।

२—प्रभाकर माधवे हिन्दी काव्य की प्रवृत्तियाँ, (रहस्यवाद), प० ५।

३—प० रामचन्द्र शुक्ल जायसी प्रयावली, भूमिका, प० १६१।

४—वही पृष्ठ १६२।

‘राम की बहुरिया कभी तो प्रिय से मित्रने की उत्कण्ठा और माग की कठिनाता प्रकट करती है, जमे -

~ मिलना कठिन है, कस मिलोगी पिय जाय ?

समुनि सोचि पग धरौं जतन स बार बार डगि जाय ।

ऊची गल राह रपटीली, पाँव नही ठहराय ।

और कभी विरह दुःख निवदन करती है ।^१ और इन समस्त स्थलों पर उनमें मूफी प्रभाव द्रष्टव्य है । सचमुच कबीरदास म जो रहस्यवाद पाया जाता है वह अधिकतर सूफिया के प्रभाव के कारण ।^२

जायसी के समस्त सूफी रहस्य प्रवृत्ति के अतिरिक्त टहयोगियो बौद्ध, शून्य वाग्निया तांत्रिको रसायनिको आदि की साधनात्मक रहस्य की प्रवृत्तियाँ भी विद्यमान थी । उन्होने हठयोगियो के अथ साधनात्मक उपादानो के साथ ही उनकी रहस्य की प्रवृत्ति और ईश्वर को मन के भीतर ही ढूँढने और समझने की प्रवृत्ति को भी गृहीत कर लिया है । कहा जा सकता है कि पदमावत का रहस्यवाद मूलतः अद्वैत भावना पर आश्रित रहस्यवाद है ।

रहस्यवादी भक्त परमात्मा को अपने परम साध्य एवं प्रियतम के रूप में देखता है । वह उस परम सत्ता के साक्षात्कार और मिलन के नियमकाल्य का अनुभव करता है । जस मेघ और सागर के जल में मूलतः कोई भेद नहीं है फिर भी मेघ का पानी नदी रूप में सागर से मित्रने को यात्रुल रहना है । ठीक उसी प्रकार की अभेद जय व्याकुलता एवं मिलनजग्य विह्वलता भक्त की भी होती है । जायसी की रहस्यो-मुक्तता भी इसी श्रेणी की है । कबीरदास म जो रहस्यवाद पाया जाता है वह अधिकतर सूफियो के प्रभाव के कारण । रहस्यमयी परोक्षसत्ता की ओर संवत करने के लिए जिन दशयो को व सामन करते हैं वे अधिकतर वदात और हठयोग की बातों के खड किए हुए रूप में मात्र होते हैं । जत कबीर म जो कुछ रहस्यवाद है वह सब एक भावुक या कवि का रहस्यवाद नहीं है । हिंदी के कवियों में यदि कहीं रमणीय और सुन्दर अद्वैती रहस्यवाद है तो जायसी म, जिनकी भावुकता बल ही ऊँची कोटि की है । वे सूफिया की भक्ति-भावना के अनुसार कही तो परमात्मा को प्रियतम के रूप में देगकर जगन के नाना रूपों में उस प्रियतम के रूप माधुय की छाया दगते हैं और कही सारे प्राकृतिक रूपों और व्यापारो का ‘गुण्य के ममामम के हनु प्रकृति के शृंगार उत्कण्ठा या विरह विह्वलता के रूप में अनुभव करत हैं । दूमरे प्रकार की भावना पदमावत में अधिक मिलती है ।^३

१-५० रामचन्द्र गुवन, जायसी प्रभाषिणी (भूमिका) प० १६०-३ ।

२ वही, प० १६४ । ३ ५० रामचन्द्र गुवन, जायसी प्रभाषिणी, (भूमिका) प० १६४ ।

उस रहस्यमयी सत्ता का आभास देने व लिए जायसी बहुत ही रमणीय और ममस्पर्शी दृश्य सकेन उपस्थित करने में समर्थ हुए हैं जैसे पद्मावती व 'पारस रूप का प्रभाव
 'अहि निन दसन जोति निरमई । बहुत जोति जोति ओहि भई ॥
 रवि ससि तखत त्रिपदि ओहि जाती । रतन पदारथ मानिव भोनी ॥
 जह जह बिहोमि सुभध्वहि हमी । तह तह छिटकि जोति परगसी ॥
 दामिनि दभकि न सरवरि पूजी । पुनि आहि जानि और को दूजी ।'

नयन जो रेखा बनल भा निरमल नीर सरीर ।

हसत जो रसा हस भा, दसन जाति नग हीर ॥'

प्रस्तुत पत्तियां म उग पराग ज्योति पूज की ओर अत्यधिक क्षीप्ति के द्वारा जो सकेन किया गया है उसकी रमणीयता और प्रभाव विभक्तता अनुपम है । पदमावत म लौकिक सौंदर्य तत्वों के माध्यम म अत्यधिक मुदरनम सत्ता की ओर इंगित करना कवि का एक महत् प्रतिपाद्य था वह अबसर मिलने पर उस सत्ता की ओर इंगित करने से नहीं चूकता ।

अयोक्ति समासोक्ति

पद्मावत का अयोक्तिपरक प्रथम निम्न करने व अनेक प्रयत्न किए गए हैं । और प्राय इयत्त जिन तन चित्त उर मन राजा कीया । हिय सिधन बुधि पदमिनि चोहा वाली पत्तियां पेन का गर्भ हैं और कहा नी गया है पद्मावत व प्रणेतृ जायसी न प्रथ के अर्थ म स्पष्ट पापित किया है कि उनकी रचना एक कथात्मक अयोक्ति है । क्या व अर्थ में अयोक्ति व रूप म आहान या मार्टीरिस्ट जाह दिया है । जायसी की अयोक्ति व तीन पक्ष हैं— पण्डिता द्वारा किया गया अर्थ, सूत्री ग्राहनापरक अर्थ और क्या प । वास्तव म जायसी की क्या अयोक्ति ही है । जायसी पर गीता व बुद्धि योग का स्पष्ट प्रभाव दिखाई पता है ।

इस प्रसंग म इतना कहना पर्याप्त है कि जिन पत्तियां (तन चित्त उर मन राजा कीया) । व आधार पर जायसी की सम्पूर्ण कथा को अयोक्ति निम्न करने का प्रयास किया गया है जोर जायसी की अज्ञानता का दिक्कत भा किया गया है— व पत्तियां जायसीरतन नहा हैं । व पत्तियां पद्मावत म प्रतिष्ठित हैं और यदि व प्रतिष्ठित न भी हों तो भी पद्मावत म समासोक्ति-वदति ही निम्न हुआ है ।

जायसी का प्रकृतिमूलक रहस्यवाद

प्रकृतिमूलक (नेच्यूरल) रहस्यवाद म प्राकृतिक सौन्दर्य व द्वारा अहम् का इन्त म सम्बन्ध स्थापित करने का धरम प्रयत्न पाया जाता है । कविका प्रकृति

१-जायसी प्रभावता, नारीप्रनारणी सभा, काया ५० ४४ ।

२-बहा ५० २५ रोहा ८ ।

की शक्तियों में किसी अनन्त सत्ता का भाव होना है। उसे ऐसा लगता है कि प्रकृति के कण-कण में एक अनन्त सत्ता अनुभूत है। प्रकृति के समस्त तत्व उसी अनन्त सत्ता द्वारा चानित अनुपासित और आकर्षित हैं। दृश्य जगत-प्रकृति उसकी सृजना है (आकर सब जगत यह साजा) उगने ही चाँद सूर्य तारे बन, समुद्र पर्वत शिखरों की भी सृजना की है-

सरग साजि कं धरती साजी । बरन बरन सष्टी उपराजी ।

साजे चाँद सूरज औ तारा । साजे बन कहें समुद्र पहारा १ ॥

इस समस्त सृष्टि का परिचालन उसी के इच्छित पर हो रहा है -

'साजह सब जग साज चलावा । औ अस पाछें ताजन लावा ।

तिन्ह ताजन डर जाइ न बोना । सरग फिरइ औ धरती डोला ॥

चाँद सुदज कह गहन गरासा । औ मेघन कह बीजू तरासा ।

नापे डोर काठ जस नाचा । खेल खेनाइ फिर गहि साँचा ॥'

यह भावना वेद, उपनिषद् कुरान और सूफ़ी कवियों में समान रूप से पाई जाती है।

सूफ़ियों की धारणा है कि सृष्टि के रोम रोम में इल्लह जो निःसर्ग दे रही है, वह उसी (परम आलम्बन) की छाँवी है जो हम लुभाने के लिए ही हो रही है। गितारे चमक-चमक के साथ उसी की ओर खिंच रहे हैं चाँद उसी की ओर बढ़ा जा रहा है, सूरज भी उसी के पर में पड़कर जन रहा है। सक्षेप में उसने चारों ओर प्रेम का बीज बिछर दिया है। उसने उगकर सबको आलम्बन से आश्रय बना लिया है और इसी से हम भी उसके वियोग में पड़ गए हैं।'

मानव प्रेम की कहानी के भीतर सूफ़ी साधना में मान्य इसी विश्वास के अनुसार आध्यात्मिक प्रेम की व्यंजना ही जायसी का सक्षय प्रतीत होता है। जायसी ने भी कहा था 'अस्ताह इस परम शौग्य का हेतु है और वह प्रेम चाहता है प्रेम से प्रभावित होकर उसने अपने मुँह का आर्षण लिया और उसमें अपना रूप अपने आप व्यक्त करने लगा। देन काल की रचना करने उसने एक उपवन का डोल डाला

१-चित्ररेखा पृ० ६४ ।

२-यही पृ० ६५ ।

३-यही पृ० ६६ ।

४-शिराए ब्रह्मगोत्रनिषण ॥२॥ तस्यैव वाच पृथिवी धारीरम योतिरूपमयमाग्नि रतदावारयव ।

५-देगिय निवस्थान शूरा जनानुरीन हमी की कविता और चम्पायन, मुन्ना दाऊर कृत (प्रारम्भिक पत्तियाँ) ।

६-५० चम्बनी पांडेय, लखनऊ अथवा सूफीमत पृ० ११६ ।

७-५० चम्बनी पांडेय लखनऊ अथवा सूफीमत पृष्ठ ११८ ।

जिसका प्रत्येक पक्ष उसके कमाल को प्रत्यक्ष करता है ।

भावार्थक रहस्यवाद की प्रतिष्ठा के लिए प्रकृति में परमात्मा की छाँकी देखना स्वाभाविक ही नहीं अनिवार्य है । यही कारण है कि पाश्चात्य एवं भारतीय सभी रहस्यवादी प्रकृति के पदों के पीछे परमात्मा के दर्शन करते रहे हैं । उपनिषदों में इस भावना का प्रतिपादन अत्यन्त भावमय एवं रहस्यात्मक शली में किया गया है । इस स्थल पर प्रकृति के समस्त पदार्थों को उसी विराट ब्रह्म का अंग रूप कहा गया है—(तस्यैव वाचं पृथिवी शरीर आदि^३) । पुरुष सूक्त का तो मूल प्रतिपाद्य ही समस्त प्रकृति का विराट ब्रह्म रूप में वर्णन है । जलालुद्दीन रूमी ने भी प्रकृति के कण कण में परमात्मा की सत्ता की 'यक्तिगत अनुभूति की थी । वह सबंध और शली की अनेक कविताओं में भी कहा-कहा प्रकृति की अंतरात्मा की ओर रहस्यपूर्ण संकेत मिलते हैं ।'

जायसी ने प्रायः प्रकृति के माध्यम से परोक्ष सत्ता की ओर संकेत किया है । मिहलद्वीप की अमराई की अनिवचनीय सुखदाई छाया का वर्णन करते हुए कवि ने उस छाया का आध्यात्मिक संकेत भी दिया है—

घन अमराज लाग चहुँ पासा । उठा भूमि हुत लागि अवासा
ठरिवर सब मलय गिरि लाई । भइ जग छाँह रनि हाइ आई ॥

मलय-समीर सोहावन छाहीं । जेठ जाठ लाग तहि माहीं ।

ओही छाँह रन होइ आव । हरिहर सब अवास देयाव ॥

पथिक जो पहुच सहिक धामू । दुख बिसरै सुख होइ बिसरामू ।

जेइ वह पाई छाँह अनूपा । फिरि नहि आइ सहे यह घूपा ॥

जायसी ने प्रकृति का चित्रण साधक के रूप में भी किया है । मानव की भाँति समस्त प्रकृति भी उसी परमप्रिय की साधना में निरत रहती है । मानसरोवर भी प्रियतम की साधना में सलग्न है । पदमावती विराट ब्रह्म-स्वरूप है—सरोवर भक्त या साधक है । भक्त भगवान के अनिवचनीय रूप-सौंदर्य को देखकर विस्मय विमुग्ध है—

'सरवर रूप विमोहा, हिये हिलोरहि सद् ।

पार्वे छुब महु पावौ, एहि मिस लहरहि देद ॥'

सम्पूर्ण सृष्टि उस प्रियतम के अमर धाम तक पहुँचने के लिए प्रगतिमान

१—दी मिस्टिसिज्म थाफ इस्नाम, पृ० ८०-८१ ।

२—ब्रह्मणोपनिषत् ३।१२ ।

३—देखिए जायसी प्रपावली की भूमिका, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी पृ० १६५-६६ ।

४—जायसी प्रपावली, नागरीप्रचारिणी सभा काशी पृ० १०-११ ।

५—वही पृ० २४ ।

है, किन्तु वहाँ तक पहुँचने के लिए साधना की पूणता अत्यन्त आवश्यक है अपूणता की स्थिति में वहाँ पहुँच पाना अत्यन्त कठिन है—

‘घाइ जो बाजा के सर साधा । मारा चन भएउ दुइ आधा ।
चाण सुहज जो नखत तराई । तेहि डर जतरिख फिरहि सबाई ॥
पवन जाइ तह पहुँच चाहा । मारा तस तोटि भुह रहा ।
अगिनि उठी उठि जरी नियाना । घुवा उठा उठि बीच बिलाना ।
पानि उठा उठि जाइ न छावा । बहुरा रोइ आइ भइ चूजा ॥

साधक सरोवर अपने प्रियतम पदमावती के चरण स्पशमान से निमल एव रूपवान हो जाता है । उसके दशन मान स हा वह आनन्दतिरक की नहर स लहर उठता है । उसके युग युग के बल्मय विनष्ट हो जाते हैं । उसकी युग युग की साधना जय परितप्तता गीतनता में परिणत हो जाती है—

‘वहा मानसर चाह सो पाई । परम रूप इहा लगि आई ।
भा निरमन तिह पायन परसे । भावा रूप रूप के दरसे ।
मलय ममीर बास तन आई । भा सीतल ग तपनि बुझाई ॥

उस परम रूपा पदमावती के दशन एव स्पश जय प्रभाव की इन पक्तियों में सुन्दर रहस्यमय अभि यक्ति हुई है । कभी कभी जायसी गूढ दार्शनिक सिद्धांतों की यजना प्रकृतिमूर्त अ योक्तियाँ एव रूपकों के माध्यम से इनने सुन्दर और उत्कृष्ट ढंग से करते हैं कि बुद्धि चमत्कृत हो जाती है ।

सृष्टि के समस्त महाभूत उसी परम सत्ता तक पहुँचने के लिए गतिशील हैं । सृष्टि के पूव में मान एक तत्व था । सब कुछ अद्वैत रूप था । न जाने किस निर्मोही ने जीव को प्रियतम से जीर धरती को स्वर्ग से अलग कर दिया । पहले धरती जीर स्वर्ग दोनों भिन्ने हुए थे—एक थे । न जाने किसने जीव और ईश्वर में भेदकता की सृष्टि की—

‘धरती सरग मिले हुत दोऊ । केइ तिनार के कीह विछोऊ ॥

प्रकृति के स्रष्टा सृष्टि चिन्तन में भी जायसी ने सुन्दर रहस्यपूर्ण सकेत किए हैं—इस प्रसंग में किलकिला समुद्र का वणन दिया जा सकता है—

‘धरती नइ सरग नहि घाटा । सकल समुद जानहु आ ठाटा ।

सातवें सागर के वणन में कवि ने समुद्र के आस्थात्मक पक्ष का उदघाटन किया है ।

‘दखि मानसर रूप सोहावा । हिय हुनास पुरइनि होइ छावा ।

‘भा अधियार रन मसि छूगी । भा भिनुसार किरिन रवि फूटी ॥

‘अस्ति-अस्ति सब साथी बोन । जय जो अहै नन बिधि खोल ।

‘जा अस आव साथि तप जोगू । पूज आस मान रस भोगू ॥’

इन पत्तियों में मानसरोवर के भीतर उम प्रियतम की विक्रान्ता से उत्पन्न विश्व-यापो आनन्द और हर्षातिरेक की योजना की गई है। 'उस अतर्ज्योति का आभास मात्र पाकर मानस (सातवा मानसरोवर और हृदय) ज्योतित हो उठा। पुरश्न-मात और फुल क्षणदल के रूप में उन्नाम मानसर में चारा आग याप्त हो गया। इस ज्योति के साक्षात्कार मात्र से अज्ञान नशाघकार का विनास हो गया।' स्पष्ट है कि ब्रह्म प्रियतम की अवस्थिति के मूलभूत कारण स्वरूप जन्तजगत और बाह्य जगत में अदभुत सामंजस्य और विम्ब प्रतिविम्ब स्थिति है। इन पत्तियाँ में पराक्ष सत्ता के सकेत उसका अपार ज्योति एव तर्ज्याय विश्व-यापो आनन्द और प्रफुल्लता आदि की अत्यन्त सुन्दर अभियोजना हुई है। यह सत्ता हृदय में ही है—

पिठ हिरदय मह भेंट न हाई । कारे मिलाव कहीं केहि रोई ।

कबीर न भी— ऐसा लो नहि तसा लो मैं केहि बिधि कहा अनूठा लो ।

भीतर कहीं तो जगमय ताज, बाहर कहीं तो मूठा लो—

बाहर भीतर सबल निरतर गुरु परतापें दीठा लो ।'

कहने के बावजूद भी कहा था कि प्रियतम तो पास में ही है मरख भोग जगन में ढूँढने जाते हैं—

मोको कहीं ढूँढ बंद में तो तेर पास में ।

ना मैं देवन ना मैं मन्त्रिज ना छात्र कनास में ।

सोजी होय, दो तुरत मिलिणों पनभर की तालास में ।

बहुत दिनन के विछुरे हरि पास । भाग बढ घर बढ आए ॥

शुक्ल जी ने ठीक ही कहा है कि कबीर का चित्रा में अमजरी की न वह अनेकरूपता है और न मधुरता। जायसी का दृश्य सकेत अत्यन्त रमणीय और मशस्पर्शी है।'

प्रकृति के बीच दिखाई देने वाली सम्पूर्ण दीप्ति उसी परोक्ष सत्ता से ही उदभाषित है। निखिल ससति का आलाप और सोन्ध्य उम्मी की ज्योति का प्राद भास और छाया स्पष्ट मात्र है। इस बात का आभास पन्मावती के प्रति रत्नसन के ये वाक्य से रहे हैं—

अनु घनि । तू निखिअर निखि माहीं । हों निखिअर जेहि के तू छाहीं ।

पौंहि यहीं जोति औ करा । मुहज के जोति चाँद निरमरा ॥'

प्रियतम के समूची प्रकृति और निगिन सन्मृति को प्रम-वाणों में बंध रहा है—

उन वानह अस का जो न मारा । बधि रहा सगरी ससारा ।

गगन नगन जो जाहि न गने । व गव वान ओहि के हने ॥

है, किंतु वहाँ तक पहुँचने के लिए साधना की पूणता अत्यंत आवश्यक है, अपूणता की स्थिति में वहाँ पहुँच पाना अत्यंत कठिन है—

‘घाइ जो बाजा के सर साधा । मारा चक्र भएउ दुइ आधा ।
चाद सुरुज औ नखत तराई । तेहि डर अंतरिख फिरहि सबाई ॥
पवन जाइ सह पहुँच चाहा । मारा तस ताटि भइ रहा ।
अग्नि उठी उठि जरी नियाना । घुबाँ उठा उठि बीच बिलाना ।
पानि उठा उठि जाइ न छूवा । बहुरा रोइ आइ मुइ चूआ ॥

सायक सरोवर अपने प्रियतम पदमावती के चरण स्पशमान से निमल एव रूपवान हो जाता है । उसके दशन मात्र से ही वह आनन्दतिरेक की लहर से लहर उठता है । उसके युग युग के कल्प विलम्ब हो जाते हैं । उसकी युग युग की साधना जय परितप्तता शीतलता में परिणत हो जाती है—

कहा मानसर चाह सो पाई । पारस रूप इहाँ लगि आई ।
भा निरमल तिहू पावन परसे । भावा रूप रूप के दरसे ।
मलय समीर आस तन आई । भा सीतल ग तपनि बुझाई ॥

उस परम रूपा पदमावती के दशन एव स्पश जय प्रभाव की इन पक्तियों में सुंदर रहस्यमय अभिप्रेक्ति हुई है । कभी कभी जायसी गूढ़ दार्शनिक सिद्धांतों की व्यंजना प्रकृतमूलक अयत्तियों एव रूपकों के माध्यम से इतने सुंदर और उत्कृष्ट ढंग से करते हैं कि बद्धि चमत्कृत हो जाती है ।

सृष्टि के समस्त महाभूत उसी परम सत्ता तक पहुँचने के लिए गतिशील है । सृष्टि के पूव में मान एक तत्व था । सब कुछ अद्वैत रूप था । न जाने किस निर्मोही ने जीव को प्रियतम से और धरती को स्वर्ग से अलग कर दिया । पहले धरती और स्वर्ग दोनों मित्रे हुए थे—एक थे । न जाने किसने जीव और ईश्वर में भेदकता की सृष्टि की—

धरती सरग मिले हुत दोऊ । केइ नितार के कीह बिछोऊ ॥

प्रकृति के सृष्टिचित्रण में भी जायसी ने सुंदर रहस्यपूर्ण संकेत किए हैं—इस प्रसंग में किन्नरिका समुद्र का वणन दिया जा सकता है—

‘धरती लेइ सरग लहि बाग । सकल समुद जानहु आ ठाग ।

सातवें सागर के वणन में कवि ने समुद्र के आत्मात्मिक पक्ष का उदघाटन किया है ।

देखि मानसर रूप साहावा । हिय हुनास पुरइनि होइ छावा ।

भा अधियार रन मसि छूटी । भा भिनुसार किरिन रबि फूटी ॥

अस्ति-अस्ति सब साधी बोल । अब जो अहै नन बिधि खोल ।

जो अस आव साधि तप जोगू । पूज आस मान रस भोगू ॥’

इन पक्तियों में मानसरोवर के भीतर उस प्रियतम की विकटता से उत्पन्न विश्व व्यापी आनन्द और हृषातिरेक की यजना की गई है। 'उस अतज्योति का आभास मात्र पाकर मानस (सातवा मानसरोवर और हृदय) ज्योतिष हो उठा। पुरइन पात और फूल शतदल के रूप में उल्लास मानस में चारों ओर 'याप्त' हो गया। इस ज्योति के साक्षात्कार मात्र से अज्ञान नशाघकार का विनाश हो गया।' स्पष्ट है कि ब्रह्म प्रियतम की अवस्थिति के मूलभूत कारण स्वरूप अतजगत जीव बाह्य जगत में अदभत सामजस्य और विम्ब प्रतिविम्ब स्थिति है। इन पक्तियों में परोक्ष सत्ता के संकेत उसकी अपार ज्योति एवं तज्जय विश्वव्यापी आनन्द और प्रफुल्लता आदि की अत्यंत सुंदर अभियजना हुई है। यह सत्ता हृदय में ही है—

पिउ हिरदय मह भेंट न होई। कारे मिलाव कहीं बेहि रोई।

कबीर ने भी— एसा लो नहि तसा लो में कहि विधि कहा अनूठा लो।

भीतर कहीं तो जगमय ताज, बाहर कहीं तो मूठा लो—

बाहर भीतर सकल निरंतर गुरु परतापे दीठा लो।'

कहने के बावजूद भी कहा था कि प्रियतम तो पास में ही है मरख लोग जगल में ढूढ़ने जाते हैं—

मोको कहीं ढूढ़ वद म ता तेरे पास म।

ना मैं देवल ना मैं मस्जिद ना छावे बलास में।

खोजी होय, दो तुरत भिनिही पलभर की तालास म।

बहुत दिनन के विछरे हरि पाय। भाग बड घर बठ आए ॥

सुवन जी ने ठीक ही कहा है कि 'शरीर व चिन्ता में इमजरी की न वह अनेकरूपता है और न मधुरता। जायसी के 'नय-संकेत अत्यंत रमणीय और मगसर्ग हैं।'

प्रकृति के बीच दिग्दर्श देने वाली सम्पूर्ण दीप्ति उसी परास सत्ता से ही उदभाषित है। निखिल ससति का आनाम और सौम्य उमी की ज्योति का प्राभास और छाया स्पर्श मात्र है। इस बात का आभास पन्नावती के प्रति रत्नेन के ये वाक्य दे रहे हैं—

अनु घनि । तू निसिअर निसि माहीं। हों तिनिर इति क न ॥

चाँदहि कहीं जोति औ कर। मुह्र क जति ॥

प्रियतम ने समूची प्रकृति और निम्न सन्धि के ॥ ५० ॥ ५० ॥

उन वानह अस को जो न मारा। इति ॥ ५० ॥ ५० ॥

गगन नयन जा जाति न न । ॥ ५० ॥ ५० ॥

घरती बान बेध सब राखी । साखी ठाँ देहि सब साखी ॥
 रोव रोव मानुप तन ठाढे । सूतहि सूत बेध अस गाढ़ ।
 बरनि बान बस ओपह बेधे रन बन ढाँख ।
 सौजहि तन सब रोवाँ, पखिहि तन अस पाँख ॥

प्रेममूलक रहस्यवाद

हिन्दी के सूफी कवियों की रहस्य भावना के मूल में राबिया मसूर रूमी आदि की ही भाँति जायसी के प्रेम की अभिव्यक्ति की लौकिकता में ही अनौकिकता भी अनुस्यूत है ।

जायसी का कथन है कि प्रियतम की प्रेम वेदना की अनुभूति अनिवार्य है । इसका मम तो वही जानता है जिसने हृदय में प्रेम घाव हो चुका है ।

‘प्रम घाव दुख जान कोई । जेहि नागे जान प सोई ॥’

जायसी की देन

साधनात्मक रहस्यवाद को जायसी की एक बहुत बड़ी देन यह है कि उन्होंने इस शुष्क और योगमूलक साधनात्मक रहस्य भावना को अत्यन्त सरस और मधुर बनाया है । यह अवश्य है कि प्रसंग उपस्थित होने पर जायसी अपनी बहुज्ञता वृत्तयोग रसायन आदि की सविस्तर चर्चा करते हैं और शायद इसी कारण कतिपय आलोचक इसे ‘शठा रहस्यवाद घोषित करते हैं और जायसी के ‘थूठे रहस्यवाद में आ फसने के कारण खिन्न भी होते हैं परन्तु यह आलोचना ठीक नहीं है क्योंकि जायसी के मूल रहस्यवाद से इन बातों का कोई विरोध नहीं है । अपनी विलक्षण और अपूर्व प्रतिभा के द्वारा जायसी ने इनके मूलभूत सिद्धांतों को अत्यन्त सरस और काव्यात्मक रूप में उपस्थित करने का सफल प्रयत्न किया है । वे चार प्रकार से अपनी रहस्यदर्शिता की अभिव्यक्ति में सफल हुए हैं—

(१) रूप वर्णन के द्वारा—सूफियों ने प्रेम-तत्त्व के उदय का मूल कारण सौन्दर्य तत्त्व कहा है । रूमी ह्वरूनेनिया और जायसी ने जिस सौन्दर्य-तत्त्व के आध्यात्मिक पक्ष का उदघाटन किया है वह रहस्यवाद के अन्तर्गत आता है । सूफियों ने आध्यात्मिक सौन्दर्य की यजना के लिए लौकिक सौन्दर्य का आश्रय

१—रूमी, पोएट एण्ड मिस्टिक, पृ० ३० ।

लव विल नाट लेट हिज फेथफुल सर्वेंटस हायर
 इम्माटल ब्यूटी दाज देम आन एण्ड आन,
 फ्राम ग्लोरी इटू ग्लोरी डाविंग नियर
 ऐट ईच रिमव एण्ड लविंग टू बी ड्रान ।

लिया है। जायसी के लिए भी अलौकिक आध्यात्मिक सौंदर्य की व्यंजना के लिए लौकिक सौन्दर्य का वर्णन करना और 'परदे वृता मे नूरे खुदा देखना अनिवाय और आवश्यक था।

पद्मभावती का रूप-वर्णन करते समय जायसी अवसर पाने पर परोक्ष सत्ता की ओर संकेत करने में नहीं चूकते। जमे तुलसीदास रामचरितमानस के पाठका को वारम्बार राम के परब्रह्मपरमेश्वरत्व की याद दिलाते चलते हैं ठीक वैसे ही जायसी अवसर मिलते ही परम सत्ता के रूप सौन्दर्य के सृष्टि-यापी प्रभाव और लोकोत्तर कल्पना की रमणीय अभिव्यक्ति द्वारा पाठको को उद्योति रस प्लावित करते चलते हैं। वे 'पारस' के प्रतीक विधान द्वारा भी उम सत्ता के साक्षात्कार की यचना करते हैं—

- (क) पारस जोति लिलार्टाह ओती ।
दिष्टि जो कर होइ तेहि जोनी ॥^१
- (ख) होतहि दरस परप भा मोना ।
धरती सरग भएउ सब मोना ॥^२
- (ग) तीनि लोक चोन्हु ख^३ सब पर माहि मूनि ॥^४
- (घ) भा निरमन तिह पायन परमे । पाया रूप रूप क दरस ।
'नयन जो देखा कवन भा, निरमन नीर मरीर ॥
हसत गो देखा हस भा, दसन जोति नग हीर ॥
- (ङ) उह वानह अम वा जो न मारा । बधि रहा सगरी समारा ।
गगन गसन जो जाहि न गने । व सत्र वान ओती क हने ॥^५
- (च) जहि तिन दसन जोति निरमई । बहुत जाति जोति ओति भई ।
रवि सभि नसन त्पिहि ओति मोती । रतन पदारथ मनिक मोती ॥^६
- (छ) वेनी छोरि पार जो बारा । सरग पतार होइ अधियारा ॥^७

इन पंक्तियों में स्पष्ट है कि जायसी ने लौकिक सौन्दर्य के द्वारा आध्यात्मिक सौन्दर्य की जीवित अभिव्यक्ति की है। स्पष्ट है कि जायसी का विराट उपास्य गुद्ध सौन्दर्य स्वरूपी है। जायसा प्रेम और सौन्दर्य के विनिष्ट रहस्यवादी कवि हैं। अगरेजी म रोजेटी शनी दार्शनिक आन्ति सभी इसी प्रकार के रहस्यवादी हैं। रोजेटी की रहस्याभिव्यक्ति में प्रेम के वासनात्मक स्वरूप की भी यत्र-तत्र अभिव्यक्ति मिलती है।

१-ग० घ० ना० प्र० सभा कागी पृ० २११ ।

२-वही पृ० २५६ ।

४-वही पृ० २१ ।

६-वही पृ० ४४ ।

३-वही पृ० ३६ ।

५-वही पृ०, ४३ (६१४-५) ।

७-वही, पृ० ४१ ।

शरी को सौंदर्य में विश्वास था और जायसी भी उसी आदर्श सौंदर्य के उपासक थे। शरी के हिम टूटनेकेबहुअल "यूटी" में वही आदर्श सौंदर्य की अभिव्यक्ति की गई है। जायसी के सौंदर्य चित्रण में और घाउनिंग^१ के सौंदर्य चित्रण में यह समानता है कि ये दोनों कवि विश्व के समस्त पदार्थों में ईश्वर के दर्शन करते हैं। दोनों ने प्रेम को जीवन का मूलतत्त्व माना है।

विरह धन के प्रसंगों की उद्भावना के द्वारा भी जायसी ने रहस्यमयी सत्ता की अभिव्यक्ति की है। सूफी साधना में आध्यात्मिक विरह का अत्यंत महत्व पूर्ण स्थान है। यदि विरह नहीं है तो तप जप धम नम आदि सब व्यर्थ है—

जब लगी विरह न होइ तन हिये न उपनइ पेम ।

तब लगी हाय न आव तप करम धरम सतनेम ॥^१

समस्त सृष्टि प्रियतम के विरह में जन रही है—

विरह क आगि मूर जरि बापा । राति नेवस जारहि उहि तापा ॥

औ सब मखन तराई जरई । टूटे तक धरति भह परई ॥

जर सो धरती ठवहि ठाऊ ॥

शास्त्रिकता जागरण की स्थिति जाशिक अनुभूति की स्थिति विग्रहावस्था विघ्नावस्था मिलन के पूर्व की स्थिति और साक्षात्कार या तादात्म्य की स्थिति के जायसी ने अत्यंत मनोरम चित्र प्रस्तुत किए हैं। अनेक रूपको प्रतीका और अयोक्तियों में इन चित्रों में प्रभविष्णुता और तीव्र प्रभावाभि यजना शक्ति के जाकषण भर लिए हैं। कबीर ने भी ब्रह्म के साक्षात्कार की स्थिति का चित्रण किया है—

हरि सगत सीतल भया मिटी मोह की ताप ।

निस वासर सुख निधि लहा अंतर प्रगटा आप ।^१

जायसी ने परम ब्रह्म रूपा पदमावती और साधक सरोवर के तादात्म्य या साक्षात्कार का एक अत्यंत मनोरम चित्र प्रस्तुत किया है—

बहा भानसर चाह सो पाई । पारस रूप इहाँ लगी आई ॥

मनय समीर वास तन आई । भा सीतल ग तपनि बुझाई ॥

न जनों कौन पौन नेह आवा । पुन्य दसा भ पाप गवावा ॥

विगसा कुमुद देखि ससि रेखा । भ तह ओप जहाँ जोइ देखा ॥

पाया रूप रूप जस चहा । ससि मुख जु दरपन होइ रहा ॥

१—मिस्तीसिद्धम इन इ गलिश लिटरचर प ४१ ।

२—चित्ररेखा, (स० शिवसहाय पाठक) प ७० ।

३—कबीर ग्रन्थावली नागरी प्रचारिणी सभा काशी ।

नयन जो देता कबल भा, निरमल नीर सरीर ।

हमत्त जो देखा हस भा दसन जोति नग हीर ॥^१

साधक और साध्य के प्रस्तुत रहस्यात्मक चित्र म समासोक्ति, रूपकातिशयोक्ति एवं गौडी लक्षणा जय रमणीय तत्वो ने सम्मिलित रूप म अदभुत सौंदर्य की स्रष्टि की है ।

कवीर और जायसी के उपयुक्त चित्रणा को देखने से दोनो के काव्यत्व का अंतर भी स्पष्ट हो जाता है ।

जीव प्रियतम को भेटने के लिये वकल्य का अनुभव करता है—

‘परवत समुल अगम बिच बीहड घन वन ढाख ।

किमि क भेटौं कत तुम्ह नामोहि पाव न पाख ।’

यहाँ पर नागमती विरह का प्रस्तुत अर्थ है साथ ही प्रियतम से मिलने के लिए जीव या साधक का परम वकल्य भी अभिव्यजित है ।

अस पर जरा विरह कर गठा । मेघ साम भए धुम जो उठा ।

दाधा राहु केतु गा दाधा । सूरज जरा चाँद जरि आषा ॥

औं सब नखत तराईं जरही । टूटहि लूक धरनि मह परही ॥

गर सो धरती ठावहि ठाऊ । दहकि पनास जर तेहि दाऊ ॥^२

अवसरोचित मूर्त्तियों के द्वारा भी जायसी ने रहस्यात्मक अभिव्यक्ति की है जैसे—

‘वस भीन जल धरती अबा बस अवास ।

गो पिरीन प डुवीं मह अत होहि एव पास ॥

मद्यली—आम क बहाने कवि ने साधक और साध्य के प्रेम आधार तज्जय नकट्य—मिन्नन की ओर इ गित किया है ।

सादश्यमूनक अलवारो के माध्यम स भी जायसी ने रहस्यात्मक अभिव्यजना की है । जैसे—

सोत रूप जासौं दुख खोनीं । गएउ मरोस तहाँ का बोनीं ।

जह सोना जिरवा के जोनी । कहि क सदेस आन को पाती ॥

जो एहि परी मिलावे मोहा । सीस देठ बनिहारी ओही ॥^३

प्रस्तुत पत्तियों म रत्नमन-भक्तभावती के प्रथम समागम के अवसर पर राजा के रगायनी प्रलाप म घातुआ क नामा के उल्लेख हुए हैं । यहाँ पर श्लेष अलवार के

१—जायसी प्रयावली नागरोप्रचारिणी सभा प० २१ ।

२—जायसी प्रयावली, नागरोप्रचारिणी सभा प० २५ ।

३—वही, प० १६३ ।

माध्यम से रहस्य भावना को अभिव्यक्ति मिति है ।

वहा सो खोएहु बिरवा लोना । जेहि ते अधिक रूप ओ सोना ।
का हरतार पार नहि पावा । गधव वाहे कुरकटा सावा ॥

सवदशा सग्रह^१ म बनाया गया है कि पारद (पारा) ससार सागर का पार कर देता है—पारद और अम्रक हर और गौरी क शरीर के रस हैं । इनके मिलने से जरा मरण को जीतने वाले रस की निष्पत्ति होती है ।

उपयुक्त विवेचन क आधार पर हम कह सकते हैं कि जायसी ने अद्विती साधनात्मक प्रवृत्ति की अभिव्यक्ति के लिए हठयोगियो मे प्रपन्नित पद्धति को स्वीकार किया है । भावात्मक रहस्यवाद की तो उनके पदमाचत म अत्यन्त सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है । सब मिलाकर निष्कल्प रूप म कहा जा सकता है कि सचमुच हिन्दी के कवियो मे यदि कहा मनीय सुन्दर अद्विती रहस्यवाद है तो जायसी म जिनकी भावकता बहुत ही ऊँची कोटि की है ।

प्रतीक-योजना

सफी साधना और साहित्य म प्रतीको का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है । सूफियो के रक्षक उनके प्रतीक ही रहे हैं । यो तो किसी भी भक्ति भावना म प्रतीको की प्रतिष्ठा होती है पर वास्तव म तत्सर्वक म उनका परा प्रसार है । प्रतीक ही सूफी साहित्य के राजा हैं—सूफी प्रेम को सब प्रतीको म श्रेष्ठ बताते हैं । 'सूफी साहित्य प्रतीको से भरा पडा है । उनका सारा बभव प्रतीको पर अवलम्बित है ।' फारिज का कहना है कि प्रतीको के प्रयोग से दो लाभप्रत्यक्ष होते हैं—एक तो प्रतीका की ओट लेने से धम-आवा टल जाती है दूसरे उनके उपयोग से उन दाता की अभिव्यजना भी खूब हो जाती है जिनके निदर्शन म वाणी असमय बिबा मूक होती है । इनक अतिरिक्त प्रतीक पद्धति एक तीसर प्रकार से भी उपयोगी होती है । इनसे साहित्य मे विचित्र सौंदर्य पा जाता है । प्रतीको के सहारे प्राय चमनित अर्थ की भी योजना हाती है ।

(१) मुठटी भर घून—सूफियो की मान्यता है कि मानव सात और जनत

१—प हजारीप्रसाद त्रिवेदी नाथ संप्रदाय प १७३

२—प चन्द्राली पाडव तसबुफ अथवा सूफीमत प ६७

३—वही प ६६

४—स्टडीज इन ऐस्नामिक मिस्टीसिज्म प० २३२

(तसबुफ अथवा सूफीमत के उद्धृत) ।

का मिश्रित रूप है। उसमें मृत्यु और अमृत दोनों तत्वों का समावेश है।^१ मानव में देवी और मानव दोनों अंशों का निवास है। प्रेम से पवित्र होकर ही वह अपने स्थूल सीमाभाव से मुक्ति पाता है। प्रेम की साधना से मानवी और देवी स्वरूपों के बीच का अंतर समाप्त हो जाता है।

मानुस मेम भएउ वकुण्ठी । नाहिन काह छार एक मूठी ।^२

सचमुच प्रत्येक मनुष्य मुट्ठी भर धूल का ही जीवित रूप है। प्रेम तत्व से ही इस धूल में चिदश का प्रकाश होता है। प्रेम वह महत् तत्व है जिसके कारण मानव का पार्थिक रूप अतः मनुष्यतः देवी अंश से मिलने के लिये समाकुन हो उठता है। मानव और दिव्य आत्मभाव में प्रेम ही कारण सामरस्य की स्थापना होती है।

पिउ हिरदय मह भेंट न होई । को रे मिनाय वहाँ केहि रोई ॥^३

यह दिव्य आत्म तत्व ही सूखी परिभाषा में प्रेमिका है।

(२) पदमावती—पदमावती लौकिकता तो रत्नमेन की प्रेमिका और पत्नी है, परन्तु अलौकिक रूप में वह ब्रह्म है। वह विश्वव्यापी महा योति का ही नाम है। वही ज्योति चंद्रमा के रूप में आकाश में उदित होती है। वही शिवलोक की मणि है जो सिंहलद्वीप का प्रकाशित करने के लिए प्रवृत्त होती है। उसी महाज्योति की रश्मि पिता के मस्तक पर तेज बनाकर माता के घर में अवतरित होती है। परम ज्योति रूपा पद्मावती को जन्म देने के लिए छाया रूप में परिवर्तित होना पड़ता है—

चम्पावति जा रूप उतिमाहीं । पदुमावति क ज्योति मन छाहीं ।^४

चम्पावती रानी का मन में पदमावती रूपी महाज्योति की भास्वर छाया पड़ती है। प्रतिबिम्बवाद के अनुसार ईश्वर रूपी परम ज्योति प्रतिबिम्ब या प्रतिरूप है उसी की छाया घट घट में प्रतिबिम्बित है। पदमावती का मानवदिग्गम आना तो मानो स्वर्ण की सलोनी प्रणिया है जो अरूप ज्योति है उम भौतिक जगत का रूप सौंदर्य प्राप्त करने के लिये माता के उत्तर में जाना ही पड़ता है।^५

पद्मावती के मुख्य रूप से दो प्रतीक हैं एक अमृत और दूसरा मृत। दोनों निश्चित सौंदर्य के प्रतीक हैं।

१—डा० वासुदेवशरण अग्रवाल पदमावत प्राकरण पृ० ३८

२—जायसी प्रयावती, (हिन्दुस्तानी अकदमी) पृ० २-२।१६६।२

३—जायसी प्रयावती नागरीप्रचारिणी सभा काशी ।

४—डा० वासुदेवशरण अग्रवाल पदमावत प्राकरण, पृ० ३८ ।

५—जायसी प्रयावती नागरीप्रचारिणी सभा काशी ।

६—डा० वासुदेवशरण अग्रवाल पदमावत प्राकरण पृ० ३६ ।

सूय चद्र - विगुद्ध महाज्योति के रूप में पदमावती सूय थी जो रत्नसेन के हृदय में भर जाती है। वही पदमावती अपने पंचभौतिक सौंदर्य में चंद्रमा है— जिससे मिलने के लिए रत्नसेन रूपी सूय व्याकुल होता है। जो सूय को भी प्रकाशित करने वाली निखिल ब्रह्माण्ड— वापी महाज्योति है वही पदमावती का अमृत रूप है — जायसी इसी रूप के लिए सूय का प्रतीक प्रस्तुत करते हैं। पदमावती की भौतिक देह उस अमृत ज्योति का मूल रूप है जो सौंदर्य के समस्त तत्वा से अलूत है जो पौडश थ गार मन्त्रित है और जिसके सालह कलाओ से पूरा सौंदर्य को चंद्रमा मानकर सम्पूर्ण काव्य में वर्णन किया गया है। पदमावती रूप की पारस है। वह रूप का देने वाली है।

पारस जोनि निनाटहि ओती । दिस्टि जा करे होइ तेहि जोनी ॥

कहा मानसर चाह सो पाई । पारस रूप इहाँ लनि आई ॥

भा निरमल निह पायह परमे । पावा रूप रूपके दरम ॥

रूप रूप प्रतिरूपो बभूव (ऋग्वेद ६।४७।१८) वैदिक दर्शन के अनुसार प्रकृति की अ यक्त अवस्था दपण है जिसमें चतुर्थ ज्योति का आभास पड़ता है। उससे ही प्रथम सृष्टि होती है। जिनके मूल रूप है व उस रूपया माज्योनि के प्रतिबिम्ब हैं—
पाए रूप रूप जस चहे।

ससिमख सब दरपा होइ रहे ॥

ससार के समस्त रूप, सौंदर्य और आनोक उषी महाज्योति की छाया में द्योतित है। ससार में —

नयन जो दखा कवन भा निरमल नीर सरीर ।

हसत जो देखा हस भा दसन जोति नग हीर ॥

पदमावती के मुख के लिए समस्त पदार्थ दपण में सदृश्य हैं। उसके नयनों के रूप में कमल शरीर से निरमल नीर हसी से श्वेत हृम और दशन—ज्योति से नग हीरे बन हैं। रूप—सौंदर्य की भास्वरता के विविध अंगों के प्रभाव को यहाँ मार्मिक रूप में दृष्ट्य है। उसकी प्राप्ति का साधना माग में हृदय की सम्पूर्ण शक्ति से होती है। रत्नसेन के हृदय में वह ज्योति भर उठती है —

जनु होइ सुखज भाइ मन बसी । सब घट पूरि हिए उरगसी ।

पदमावती रूपी सूय रत्नसेन के शरीर में भरकर उसके हृदय को प्रकाशित कर देता है। पलस्वरूप रत्नसेन स्वयंम सूय बन जाता है और पुन पदमावती की उसी सूय

१—डा० वासुदेवशरण अग्रवाल पदमावत का प्राक्वथन पृ० ३६ ।

२—जा प्र ना० प्र० सभा वाणी ।

३—वही ।

४—वही प २५ ।

की द्याया या चन्द्रमा बताता है —

अत्र हौं मुखज चाँद वह छाया । जल विनु मीन रक्त विनु काया ।

किरिन करा भा प्रम अकूह । तो ससि सरण मिलीं होइ सूर ॥

तहाँ भवर जिउ कवला गधी । भइ ससि राहु केरि रनि वरी १ ॥

सूय चन्द्र पुरुष और स्त्री के भी प्रतीक हैं। रत्नसेन सूय है जोर पदमावती चन्द्रमा वही जाती है। रत्नसेन स्त्री सूय अशात उष्ण और तीव्र जालोक से समुक्त है पदमावती स्त्री चन्द्रमा शांत स्निग्ध शीतल और सूय को अपनी ओर आकृष्ट करता है। विवाह के पश्चात् इन दोनों की सामरस्य स्थिति दिखाई गई है। उनकी सामरस्य स्थिति को ही हम अद्वय भाव यामनभाव या युगनद्ध होना कह सकते हैं। जायसी ने सूय और चन्द्र के इस रूपक को सिद्धा से प्राप्त किया है। पदमावत म प्राय सूय और चन्द्र के प्रतीकों का प्रयोग हुआ है।

दुहु दिसि चाँद मुखज चमवाही । नखत ह भरे निरखि नहिं जाही १ ।
तुलनीय — चाँद मुखज राखवे दुइ कानेर कुञ्ज (गापीचन्द्रेर गान १)

चन्द्र-सूय इना-पिगता वाम-दक्षिण आदि को वश म करना और सिद्धि प्राप्त करना हठयोगिया की साधना का उद्देश्य है। डा० वामुदेवशरण अग्रवाल का मत है कि वस्तुन चन्द्र सूय के प्रतीकों म चन्द्र अग्नि-शाम का ही उपबन्धण हुआ है। यह जगत अग्नि-सोम का ही रूप है। (जग्नीशामाशम जगत) प्रम काया म सूय-चन्द्र के प्रतीकों को कवियो न नायक-नायिका के रूप म अभूतपूर्व माधुय प्रदान किया है।

गगा-यमुना क प्रतीक चन्द्र और सूय क नामांतर हैं। उह ही इडा-पिगता भी कहा जाता है। —

धूप छाह दुः पिय करगा ॥ दूनी मिली रहह एन सगा ।

तुभ्र गगा जमुना न नारी निस्ता मुहम्मद जोग ।

नवा करहु मिति दूनहु औ मानहु सुख भोगे ॥ १

इह ही धूप-झाह दिन-रात, सावरा-गोरा गगा यमुना कहा गया है।

रसायन और धातुवाक के अनुयायिया म चन्द्र-सूय की ही भांति सोना और रूपा भी विविष्ट पारिभाषिक अर्थ के चोत्कथे। सिद्धि आचार्यों न सोन और

१-जा० प्र० ना० प्र० सभा काशी पृ० २६ दोहा १।३ ।

२-वही प० ४५ दो० १०।३ । ३-पद्मावत का प्रारम्भिक, पृ० ४० ।

४-वही, पृ० ४०-४१ ।

५-जा० प्र०, ना० प्र० सभा काशी पृ० १६७ दोहा १।३।६ ।

रूपे की परिभाषा ॥ को मान लिया था । कम्बुनिपा का एक चर्यागीत इस प्रकार है —

सोने भरिती करुणा नात्री । रूपा थाई नाहिन गावी ॥'

(भागची चर्यापद ८)

(करुणा की नाव सोने से भरी हुई है उसमें रूपा या चाँदी रखने के लिए स्थान नहीं है ।) इस पद के अनुसार सोने को गुरु या वज्रस्थानीय और चाँदी को रूप का भंडार या समार कहा गया है जा कि अनित्य और अस्थिर है । पद्मावती स्वर्ण रूप है । चम्पावती रूपा या चाँदी की प्रतीक है । स्वर्ण के चाँदी सम्पर्क में आते ही मलिन पद जाता है और उसे शुद्धि या सन्नोनी प्रक्रिया की आवश्यकता पड़ती है । गुरु में ही रूप की उत्पत्ति निहित रहती है । रासानिका के अनुसार पारद की सिद्धि शरीर की अमत्त्व एवम् जीवामुक्ति के लिए आवश्यक है । पारद की सहायता से कुधानु स्वर्ण में परिवर्तित हो जाती है । पारद ही एक गौर गुरु का रूप है । जिसकी सावना से शरीर अमर हो जाता है द्रुतगै और पारद वह रस या प्रम है जिसके पभाव से मायक को मुनणमय पद्मावती की प्राप्ति होती है । जायसी ने कितने ही स्थानों पर सोना चाँदी पारा अमरक हस्तान सुनगा आदि के प्रतीकों का उपयोग करते हुए जान दूषकर रमायन दशन के संकेत अपने काव्य में रखे हैं जो अविनाश में द्वयथक हैं । बारहवानी साना साने की गुरुद्धि का समस्त ऊचा आदर्श है । सावन के लिए यह आवश्यक है कि बारहवानी सोना बने —

बाक दुआत्म वानि होइ वह सुटाग वह माग ।

मागसहस्रार चक्र का प्रतीक है । कम्बुनिपा की उक्ति है —

वाम दाहिण चापी मिलि मिनि मागा ।

वाटत मिनिन मग सुन सागा ॥

(भागची चर्यापद, ८)

स्पष्ट है कि वाम-दक्षिण को वश में करके माग या सहस्रार में ले जाने से ही महासुख का सग प्राप्त होता है । द्वादशवर्ती स्वर्ण ही सहस्रार तक पहुँच सकता है ।

साधना के साम्प्रदायिक प्रतीक

जायसी ने सूफी प्रेम साधना के अलगत कुत्नी योग की सब परिभाषाओं को अगीवार कर लिया है । इसके कारण पद्मावत पर भारतीयता का गहरा रंग चमक गया है । सूफी साधनात्मक शब्दावली सरन बनकर भारतीय भावनाओं के साथ

इस प्रकार धूलमिल गई कि पन्ते समय दोनो म कोई विरोध या पाथक्य दिखाई नहीं देता^१। रत्नसेन गोरखपथी योगी का भय बदन कर अपनी आध्यात्मिक यात्रा म आगे बढ़ता है। वह हाथ मे किंगरी, सिर पर चक्र गले म जोगपट्ट तथा रुद्राक्ष, बानो म मुद्रा तथा शरीर पर कथा डालकर पदिमती की खोज म निकलता है। उसके कथ पर बाघवर और परो म खडाऊ है।^१

(क) (अनहदनाद के लिए) घडियाल

घरी घरी घरियार पुकारा । पूजी वार सो आपनि मारा ।

नौ पीरी पर दसव दुवारा । तेहि पर वाज राज घरियारा ।^१

(ख) (शरीर के नौ द्वार के लिए) नौपीरी

'नौ पीरी पर दसव दुवारा । तेहि पर वाज राज घरियारा ॥''

'नव पवरी बाकी नव खडा । नवहु जो चड जाइ बरह्य डा ॥

(ग) (ब्रह्मारूध के लिए) दशम द्वार

'दमवें दुटार गुपुन एक नाकी । अगम चढ़ाव बाह मुठि बाकी ।

भेनी कोई जाइ ओहि पाटी । जौ लै भेत् चह होद चाटी ।

दसव दुवार तारवा लेला । उनटि दिस्टि जो लाव सो देवा ॥

नौ पीरी शरीर के नौ द्वार हैं जिन्का उल्लेख अथर्ववेद के अष्टचक्रा नवगारा देवानां परयोष्या इस वचन से ही मिलने लगता है। जायसी की विशेषता यह है कि इन नौ द्वारों की वचना का शरीरस्थ चक्रा के साथ मिला दिया है और उह नव राष्ठा के साथ सम्बन्धित करने एक-एक राष्ठा का एक एक द्वार बहा है। इन नव के ऊपर दमवा द्वार है। मध्ययुगीन साधना म इसका बडा महत्व रहा है। बहा जाता है कि सन्द्धार का अमृत इसी दशम द्वार म होकर नीचे चरता रहता है। इसी प्रवेश भाग को कौंच द्वार भी बन्ग गया है। इस टडे भाग को 'बननाल की सना दी गई है।

(घ) (शरीर के लिए) दुग

गत् तस वाज जसि तारि बाया । परखि देखि है आहि की छाया ।^१

१-डा० वामुदेव शरण अग्रवाल पन्मावत प्राक्कथन पृ० ४२ ।

२-जा० प्र० (ना० प्र० सभा) पृ० ५३ दोहा १ ।

३-जायसी प्रयावली ना० प्र० सभा प० १६ (दोहा १८१) ।

४-डा० वामुदेवशरण अग्रवाल पन्मावत, प्राक्कथन, प० ४२ ।

५-जा० प्र० ना० प्र० सभा वाशी प० १६ (दोहा १७) ।

(ड) चारि बसेरे

'जायसी ने भारतीय परिभाषाओं के साथ ही अत्यन्त कशलता के साथ बड़ी सरलता में सूफी साधना के चारि बसेरे का भी उल्लेख कर दिया है—

नवो खण्ठ नव पीरी औ तहू धञ्ज क्वार ।

चारि बसेरे सौं खण् सात सौ उतर पार ।

मान्यगीन साहित्य में नगर—वणन एवं अभिप्राय था उस कसौटी पर जायसी का सिंहलगट वणन इतना भरा पुरा उतरता है कि बहुत कम काव्य इस विषय में उनकी समता कर सकते हैं।^१ एक और सिंहन का आध्यात्मिक वणन और दूसरी धार उसकी समद्धि और बभव का वणन दोनों का सुन्दर जोर पूण निर्वाह जायसी के काव्य की विशेषता है।

सूफी साधना का यात्रा में प्रतीक का बड़ा महत्व है। फरीउद्दीन^२ अत्तार ने सोज प्रम मारिफत अनासक्ति एकरव कतूहल एव परमात्म प्रम के महासागर में निमग्न होने की सात घाटियाँ की यात्रा का वणन किया है।

सूफी साधना में साधक को प्रम माग का पथिक (सात्रिक) माना गया है। उसे अपने गतव्य की प्राप्ति के लिए यात्रा की चार अवस्थाओं को पार करना पड़ता है।

जानुद्दीन का कथन है कि इश्वर के यहाँ जाने का यह माग कठिनाइयों से भरपूर है। यहाँ पथ उनके निये नहीं हैं जिनमें स्त्रणता है।^३

यदि साधक के पथ में कठिनाइयाँ आएँ तो भी उनका भय नहीं मानना चाहिए। वीर की भाँति आगे बढ़ना चाहिए।^४

(१) शरीअत (धर्म ग्रन्थों के विधि निषेध का सम्यक परिपालन)।

(२) तरीक्त (बाह्य क्रिया कलाप से दूर रहकर हृदय शुद्धि के द्वारा ईश्वर चिन्तन)।

(३) हकीकत—(भक्ति और उपासना के द्वारा सत्य का सम्यक बाध जिससे साधक तत्वदष्टि सपन्न और त्रिकालीन हो जाता है।

(४) मारिफत (सिद्धावस्था—जिसमें साधक साध्य में लीन होकर प्रममय हो जाता है)।

जायसी ने पन्मावती के मान्यम से ईश्वरी ज्योति को प्रकट करने का प्रयत्न किया है। इसीलिए उसने सौन्दर्य का विशद चित्रण भी किया है। नायक रत्नसन

१—डा० वामुदेवशरण अग्रवाल पदमावत प्राक्कथन प० ४३।

२—मिस्टीसिज्म अडरहिन प० १३१—३२।

३—रूमि पोएट गड मिस्टीसिज्म निकरसन प० ७१।

४—ईरान के सूफी कवि, प० १११।

यामा का प्रतीक है। सिंह-यात्रा आध्यात्मिक यात्रा का प्रतीक है—

रत्नसेन चार बमेरा को पार करते हुए पन्मावती को प्राप्त करता है।

रत्नसेन का पहा पडाव सागर तट पर होता है। इसे शरीरत का प्रतीक कहा जा सकता। रत्नसेन का पहा तक का माग विरोध कठिन नहीं है जितना कि दूसरी अवस्था—तरीकन—में प्रवेश करते समय समुद्र की भीषणता और भयकरता का पथ—

प गोसाइ सन एक विनाती । मारग कठिन जाब बेहि भाँती ।

साठ समुद्र अमूय अपारा । मारहि मगर मच्छ घरियारा ।

उठ लहरि नहि जाइ सभारी । भाविहि कोइ निवहै बपारी ॥

खार, खार दधि जल, उदधि सुर बिलकिला बकूत ।

को चलि नाथ समुद्र ए है बाकर अस बूत ॥^१

रत्नसेन प्रेमपथ का एक सत्यनिष्ठ पथी है। वह यात्रा के प्रत्युपा प्रत्यवाया का प्रबन्ध प्रत्याख्यान करता हुआ गतिमान होता है। वह छ सागरा को पार करके सानवें सागर के पाम पहुँच जाता है। यहा से उसकी तीसरी (हकीकत) यात्रा प्रारम्भ होती है—

सतएँ समु मानसर आए । मन जो कीट साहस सिनि पाए ।

देखि मानसर रूप सोटावा । हिय हुआस पुरइनि होइ छावा ।

भा अधियार रनि मनि छूी । भा भिनुसार डिरिन अत्रि फूगी ।^२

चौथी अवस्था मारिफ्त का है। हकीकत के मनानुसार चणकी दो स्थितियाँ हैं— (१) हाजी जीर (२) इल्मी। हाजी मारिफ्त की अवस्था का वर्णन हम निम्न लिखित पक्तियों में मिलता है—

‘जोगी दूळि दूळि सो लीहा । नन रोपि ननहि जिउ दीहा ॥

जेहि मद चढ़ा पतारेहि पाल । मुषि न रही ओहि एन पियाल ॥^३

जायसी ने इन चार अवस्थाओं का उल्लेख असरावट में भी किया है—

वही सरोवन बिस्ती पीर । उघरिन असरफ ओ जहगोर ॥

राह हकीकत पन चूकी । पठि मारिफ्त मारि बुडूकी ॥ ।

जायसी को शरीरत अर्थात् विधि पर पूरी आस्था थी वे इन साधनावस्था का प्रथम सोपान कहते थे—

साँची राह सरोवन जेहि बिसवास न होइ ।

१—जा० प्र० ना० प्र० सभा काशी प० ४६ (दोहा २) ।

२—वही पृ० ६७, (दोहा १०।१२-२-३) ।

३—वही ।

पाँव रखे तेहि सीढी निभरम पहुँचे सोइ ॥^१

और काम करे परतु हृदय म निरन्तर अपने (लक्ष्य प्राप्य) भगवान का ध्यान उसे करते ही रहना चाहिए -

परगन लोक चार बहु वाता । गपुत भाउ मन जासो राता ॥

ये चारो अवस्थायें परमात्मा के अनुग्रह से ही कल्प या हृदय में बीच उपस्थित होती है और अहवाल कहनाती है। इस अहवाल की स्थिति में भक्त अपने को भूलकर ब्रह्मानन्द में झूलने लगता है -

क्या जो परम तत मन लावा । घूम माति सुनि और न भावा ॥

जस मद पिए घूम कोइ नाद सुन प घूम ॥

तेहि तें वरज नीक हैं चढ रहसि क दूम ॥

उलटा साधन या गगन दष्टि -

नाथ योगियो मे उलटा साधन का बहुत प्रचार था। इस उजान साधन भी कहा जाता था। चित्त की जो अधोमुखी वस्तिया है उनसे उर्हें हटाकर उदयान या उध्वमाग मे लगाना यही उलटी साधना का लक्षण है। वे वण्णव बाउन और सूफी सबने इस परिभाषा को स्वीकार किया है।^१ जायसी ने काया साधन के अतगत अनक स्थलो पर गगन दष्टि अनुभव या उलटी दष्टि का उल्लेख किया है -

उलटि दीढ़ि माया सो रूठी । पलटि न फिरी जानि के झूठी ॥^२

दसब दुआर तास का लेखा । उलटि दिरिस्ट लाव सो देखा ॥

सैंध लगाना चोरी करना -

जायसी ने चोरी करने या सैंध लगाकर चोरी करने के अभिप्राय का उल्लेख किया है। इस अभिप्राय के मम को न जानने वाले इस जायसी का काय दोष मानते हैं पर वस्तुतः बात ऐसी नहीं है। नाथो सिद्धो के वण्णो मे यह अभिप्राय मिन जाता है। सिद्धो के अनुसार सबसे ऊँचा स्थान महासुख चक्र है। उसमें जो सर्वोच्च तत्वात्मक सत्य है उसकी सना सवशूय है। प्रकृति दोष के कारण उस सवशूय स्थान में अनक रूपो का मिथया सत्तार एकत्र हा जाता है। यह जीव मोहवश उसकी उसी प्रकार रक्षा करता है जिस प्रकार राजा अपने राज भटार की मजूवा के ररनो की करता है। सवशूय अवस्था की प्राप्ति के लिये अस्सी प्रकार के दोषो को दूर करना और लुटा कर रत्नमजूपा को रित्त कर दता आवश्यक है।^३ रत्नसेन

१-डा० शशिभूषणदास गुप्त आवस्वयोर रिनिजस कल्टस प० २६५-२६६ ।

२-जायसी ब्रयावली नागरी प्रचारिणी सभा प ५१ (दोहा ७१४) ।

३-द्रष्टव्य शशिभूषणदासगुप्त आवस्वयोर रिनीनियस कल्टस प ५४-५५ ।

(पदमावत प्राक्वधन प ४३ से उद्धत) ।

को भगवान शिव ने स्वयम उपदेश दिया था -

अब तैं सिद्ध भएसि सिधि पाई । दरपन क्या छूटि गई काई ॥
 वहाँ बात अब हौं उपदेसी । लागु पथ भून परदेसी ॥
 जो लगि चोर सेंधि नहिं देखे । राजा करि न मूस पई ॥
 चढे न जाइ धार ओहिं खूदी । पर त सेंधि सीस बल मू दी ॥
 सहज सुदरी सिद्ध योगी युद्धनद्ध महामुख

पदमावत म अध्यात्म और काव्य - दोना दृष्टिकोणा से पन्मावती - रत्न सन भेंट खड शिखर के समान हैं। जात होता है कि कवि न अपने काव्य शरीर के मध्य म रसकर उसे बहुत ही परिश्रम स सनाया है और साहित्यगत अभिप्राया के साथ साथ अध्यात्म अर्थों का एक कोश ही बना डाला है। सहजयान के अनुसार मस्तिष्क म जो सहसार चक्र है उसी का नाम उष्णीश कमल है। उस उष्णीश कमल म महामुख का निवास है। महामुख कमल म शक्ति का जो रूप है उस सहज सुदरी कहा जाता है। उस सहज सुदरी के साथ सिद्ध योगी सप्ता-सप्ता क लिए युगनद्ध होकर महामुख का अनुभव करता है। जायसी की परिभाषा म इसकी सना कविलास है -

'सात सण ऊपर कविलामू । तह सोवनारि सज सुखवामू ।
 तेहि मह पनग सेज सो डासी । वा कह एसि रची सुखवासी ॥

शरीरस्य सात चक्र ही सात सण्ड हैं। उसके ऊपर आठवा चक्र उष्णीश कमल या कविलास है। उसमें जो महामुख का स्थान है वही जायसी का सुखवामी या सुखवाम है। कविलास की परिभाषा कवि ने इस प्रकार की है -

साजा राजमदिर कविलामू ।^१ साने कर सब पुहमि अत्रामू ॥
 सोर मुपेती पूनह डासी । धनि ओ वन्त मिने सुखवामी ॥

डा० वासुदेवशरण^१ अग्रवाल का कथन है -

कविलाम नामक धवनगृह के विरुद्ध भाग म शयनागार और सुखवासी की धर्मों दीवारा और फर्त पर सोने का पालो चढाया जाना था। कवि की यह उक्ति 'सात कर सब पुहमि अत्रामू भौनि पस म जीवन का मत्य थी किन्तु आध्यात्मिक पस म सोना और रूपा सनेनवाची शक्त हैं। सोना का अय मुवण और मवहाय स्थिति भी है। सबशून्य उष्णीश कमल या सहमार म परम सौन्दर्य का मितन या महामुख का स्थान माना जाता था। वहाँ पहुँच कर साधक सहज सुदरी क साथ

१-जायसी प्रयागनी नागरी प्रचारिणी सभा प० ६२ ।

२-द्वैतप्य प० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, हिन्दी साहित्य का अनीत पृ० १७५ ।

३-डा० वासुदेवशरण अग्रवाल, पन्मावत प्राक्कथन, प० ४४-४५ ।

अनंत विलास करता है। इसे ही गिव या शक्ति का सम्मिलन कहते हैं। यही युगद्ध भाव या युगलभाव कहा जाता है — जिस प्रकार सहज-मुदरी निम्न वाग्चित्त या वजसत्व से मिलने के लिए अपने को सजाती है उसी प्रकार सखियाँ पदमावती का शृंगार करती हैं। जब रत्नसेन की योग साधना समाप्त हुई तो उसे भोग के लिए सखियाँ प्रेरित करती हुई विनोद करती है —

‘घातु कमाइ मिभे तें जोगी । अब कस जस निरधातु वियोगी ॥

कहाँ न खोए वीरो लोना । जेहि ते होइ रूप औ सोना ॥

प्रमथ म आगे बढ़न वाला ही कविलास का प्राप्त करता है, वही मृत्यु नहीं है सदासुख का बास है —

तिह पावा उत्तम कबिलासू । जहा न भीचु मदासुख बासू ॥

प्रमथ जो पहुच पारा । बरि न आइ मिल एहि छारा ॥

महामुख कमन के विषय म क्या है कि नहीं सहज मुदरी जागी के साथ सदा विलास करना चाहती है। वहा पं ने हुए जोगी को सदा सदा के लिए उसके साथ युगद्ध भाव या नित्य युक्त भाव प्राप्त होता है (शशिभूषणनाथ गुप्त भाव स्वयोर रिनीजस क्लृप्त ५० १३)। पदमावती भी रत्नसेन से इस बात की प्रतिज्ञा कराती है कि वह जन्म पय त उसे कभी जलग न होगा। जो सुखशानी म सदा उसके साथ निवास कर उसके साथ वह सदा प्रेम करेगी —

तासो नेह जो दिढ कर थिर आठहि सहैम । (पंमावत प्रा० प ४६)

रत्नसेन ने उसकी बात को स्वीकार किया और उसे विश्वास दिला दिया कि वह जन्म भर उससे अलग न होगा —

जेहि अपना सो ओटि मरि गयऊ । परम निनार न कबहू भएऊ ॥

मिलि क जुग नहि होउ निनारा । कहा बीच दुनिया नेनिहारा ॥

अब जिउ जरम जरम तोहि पामा । किएउ जोग आयेउ कप्रिनासा ॥

यहा यह द्रष्ट य है कि प्रमथाग म प्रभिका तो प्रतीक मान है। उसके साथ स्थूल भोग प्रम थाग की अध्यात्म साधना नहीं बन सकता। प्रमथार्थ साधना का तात्पर्य है अध्यात्म के प्रति वसा ही तीव्र आकर्षण जसा वामी को नारी के प्रति होता है। प्रेमी और प्रभिका के सम्मिलन म अध्यात्म दर्शन के साक्षात् आनन्द को देश और काल किसी प्रकार निरोहित नहीं कर सकते। इसीलिए प्रेमी और प्रभिका का मिलन स्वयम म एक पूण प्रतीक है।

सामरस्य सिद्धांत और जायसी का रहस्यवाद

भारतीय ब्रह्मवाद का एक अत्यन्त प्राचीन सिद्धांत है कि जो ब्रह्माण्ड म है वही पिंड म है। परम सत्ता तात्त्विकत समस्त विश्व म परिव्याप्त है। उसे ही मन

के भीतर डूँढना या समझना चाहिए । दार्शनिक सहजयानी, हठयागी नागपथी निगुण भक्त के सान, प्रथमार्गी सूफी — इन सबने इस ठोस सिद्धांत को एक मत से स्वीकार किया है ।^१ कहा गया है कि इन पिण्ड म ही शिव शक्ति का निवास स्थान है । शिव की अवस्थिति ऊपर सहमार म है और शक्ति का स्थान कुडलिनी भ नाभि के अधोभाग म । यह रूप शिव और शक्ति का यष्टिगत अघात पिंडगन रूप है । समिष्टि म परि प्राण बहत्तर विश्व म भी उनका यही रूप है ।

निखिल सष्टि का मून कारण शिव शक्ति का यह विघनपण विद्रोह ही है । इसी वियोग व कारण सारी सष्टि की रचना हुई है । पिंड और ब्रह्माण्ड की भी निर्मिति के मून म यही कारण है । इसीलिण तो बार-बार कहा गया —

जा त्रिछु पिण्ड सोइ ब्रह्मण्डे । - - - - - -

‘साधक का काय है यागिक त्रियात्रा द्वारा शिव और शक्ति का सामरस्य स्थापन । पारद और अभय कोई मामूनी वस्तु नहीं है वे हर जोर गौरी के शरीर के रस हैं । इनके गुद्ध प्रयोग स मनुष्य शरीर-त्याग किए त्रिता ही दि य देह पाकर मुक्त हो जाता है । — — — पारद और अभय के मिलन स जो रस उत्पन्न होता है वह मृत्यु एवम दरिद्रता का नाश करता है ।’ जायसी ने पदमावत म इस सिद्धांत को भी स्वीकार किया है ।

सातो दीप नबी खड आठी त्रिमा जो आहि ।

जा वरमहड सो पिंड है हरत अन्न न जाहि ॥ (अक्षरावट ८।६)

राश्वर मन के दार्शनिकों और साधका न पारद का शिव और अभय या मयव को शक्ति का मध्य प्रदान कहा है । पारद और गंधन के सामरस्य स ही जरा मरण का जीतने वाला रस प्रस्तुत होता है । हृत्पय रमन या हृत्पयाकाश म परम तत्व का ढटन की जो प्रवृत्ति उपनिषद कान^१ म आरम्भ हुई थी । उसम और निगुण सूफियों के दृष्टिकोण म कोई अंतर नहीं पडा । जायसी न कहा है —

‘अहुठ हाय तनु सरवर हिया कवन तेहि माह ।

ननहि जानहु निअरें कर पहु चत अवगाह ॥^२

जायसी स कई सौ वष पहन निगुण मन म भी यही भाव व्याप्त हो गया था —

१-डा० सामुनेवशरण अग्रवान, पदमावन, प्राक्कथन प० ५२ ।

२-आचाय प० हजारीप्रसाद त्रिवेदी नाय सम्प्रदाय प० १७३ (१६५०) ।

३-दार्शनिक उपनिषद ८।१-१ ॥ ४-पदमावन प्रथम खंड (१२१ दाहा ३) ।

हृदय अहुदह देवली बालह णाहि यवेसु ।

सतु सिरञ्जाणु तञ्चि वसइणिम्मत्त होइगवेसु ॥ (पाहुड दो० स० ६४)

हिए की जोति दीप वह सूझा । (१२५।४) जायसी का वक्तव्य है । इसी लिए उस परम ज्योति को प्राप्त करने का व्युत्कृतम स्थान मनुष्य का अपना हृदय ही है ।

जायसी का वशिष्टय यह है कि उन्होंने इम शुष्क और माघनात्मक रहस्य वात में अपने अन्तर का समस्त रस उड़ल कर बने सरस और मधुर बनाया है । निष्कपन कहा जा सकता है कि पदमावत में अवसर मिलने पर जायसी ने उस रहस्यमयी सत्ता की ओर अवश्य ही संकेत किया है ।

प्रियतम के प्रति जायसी का चिन्तन विशाल है और मनन अत्यन्त गहन । अन्तर के प्रेम की व्याकुलता अत्यन्त तीव्र है और उसकी अभिव्यक्ति अत्यन्त मार्मिक सशक्त । वे अपनी आध्यात्मिक अनुभूति में ऐसी सत्ता के साक्षात्कार का चरम प्रयत्न करते हैं जिसके साथ प्रकृति और मानवात्मा की लीला निरन्तर चलती रहनी है । उसी की प्राणिभासिक सत्ता की दीप्ति निखिल ससक्ति में परिभाषित है । ईम प्रकार गम्भीर चिन्तन गहन अप्रयत्न और विशाल एवम पवित्र मनन के माध्यम से वे अपने अन्तर के मनामावों का सशक्त रहस्यवादी शली में यक्त कर सके हैं । जायसी के समान रसमौल्य के प्रमी वस्तु ही विरल हैं । तौकिक सौन्दर्य की स्वर्गीय मूर्तिमा से मडिन करके प्रकट करने का जायसी जसा सामर्थ्य तो और किसी में तो शायद ही मिले ।^१

जायसी की काव्यभाषा

ठेठ अवधी जनता की बोली जायसी की भाषा

उत्तरी भारत के हिन्दी सूफ़ी प्रेमालयाना की भाषा प्रायः सबत्र अवधी दीख पत्ती है और उसम भी प्रायः ठेठ रूप का ही प्रयोग हुआ है। उसमान और नसीर पर बुद्ध भोजपुरी का प्रभाव लगिन हाता है। नूरमुहम्मद की इन्द्रावती म भोजपुरी और ब्रज भाषा दाना के प्रयोग स्पष्ट रूप म मिलते हैं। इन सूफ़ी कविया न प्रायः सम्भवबहुला अवधी भाषा का प्रयोग किया है। यद्यपि सूफ़ी काव्या म प्रयुक्त अवधी संस्कृत के तत्सम शब्दों और उमरी बोलचाल पदानुविधो से अनेकत नही है तथापि वह तत्कालीन लिप्यजन समादृत बोलचाल की अवधी भाषा की स्वाभाविक विशेषताओं से मन्नि है। उनकी अवधी स्वाभाविक एवं श्रुति मधुर है। बुद्ध नामा का कथन है कि वह सम्भवनिष्ठ साहित्यिक और परिष्कृत नहीं है फिर भी अवधी के स्वाभाविक रूप म उसका नातित्य और माधुर्य हृदयग्राही है। इन महान कविया न अपनी ममथ रक्षनी म जिन भाषा का एक महान साहित्य भाषा का रूप प्रदान किया है उस साहित्यिक न मानना अघाय है। अवधी भाषा का परिष्कृत और स्वाभाविक दाना रूप मगना-अमुना मगम की भाँति सूफ़ी काव्या की भाषा म दर्शनीय है। जायसी, कतबन आदि सूफ़िया की विशेषता यह है कि उन्होंने बोलचाल की अवधी म सहज सरल चिन्तु गूढ़-गभीर, अथपूज और ममथ व्यञ्जनाण की हैं।

जायसी हिन्दी के सूफ़ी कवियों के गिरामणि हैं। व अवधी भाषा के महा-कवि हैं। उनके पन्मावन म मवत्र अवधी भाषा का प्रयोग हुआ है। पदमावत म तत्कालीन अवधी का रूप सुरगिष्ठ है। इसी कारण डा० श्यामसुन्दरनाम न पन्मावत की अवधी को प्रामाणिक अवधी भाषा कहना युक्ति सगन माना है। डा० प्रियसन

१-डा० श्यामसुन्दरनाम और मत्पजीवन वर्मा सन्निष्ठ पदमावत ।

२-सर जार्ज प्रियसन, पन्मावती भूमिका ।

का कथन है कि पद्मावत में १६वीं शताब्दी में बोलੀ जानेवाली अवधी का जीवत रूप द्रष्टव्य है। इसलिए भाषा शास्त्र के वैज्ञानिक अध्ययन के दृष्टिकोण से भी पद्मावत की भाषा अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

‘जायसी की अवधी भाषा—‘गाम्निषो’ के लिए स्वर्ग है जहाँ उनकी रूचि की अपरिमित सामग्री सुरक्षित है। मथिली के लिए जो स्थान विद्यापति का है मराठी के लिए जो महत्व नानेश्वरी का है वही महत्व अवधी के लिए जायसी की भाषा का है।’

सोलहवीं शती में जब हिंदी का प्रखर सय अपने मध्याह्न को छून की तयारी कर रहा था पद्मावत की रचना उस उत्थानशील युग में हुई। जसा कि प्रायः ऐस का मोम होता है उस काल की भाषा और भाव—समृद्धि की संपूर्ण छाप इस पर लगी हुई है। जायसी अत्यन्त सवदनशील कवि थे। संस्कृत के महाकवि वाण की भाँति वे ‘गान्धो’ में चित्र निखन के धनी हैं निश्चय भी ऐसे कि जिनके पीछे ज्यों का अक्षय मोत बहता है। अनकार रस भाव जादि की काव्य—समृद्धि का तो यहाँ कोई अन्त ही नहीं मिलाता। किंतु कवि की सहज प्रतिभा बाहरी वणनो में परिमाम्पत् नहीं हो जाती। वह अनकार विगान के माध्यम से रस तक पहुँचने में सफल होती है।

जायसी सचमुच शताब्दी में चित्र लिखने की कला के अमर कलाकार है। अंग्रेजी के कवि ब्राउनिंग और हिंदी के कवि जायसी कल्पना—जनित चित्र की पूरी रेखाओं को मानस में प्रत्यक्ष करते हुए उसका उतना ही अंश शब्द—परिगृहीत करते हैं जितना उनकी दृष्टि में चित्र की योजना के लिए यूनतम आवश्यक होता है।

पद्मावत की भाषा की अदभुत शक्ति जायसी की पत्नी विशपता है। अपभ्रंश साहित्य की शताब्धि परम्परा जिस प्रकार विकसित होकर हिंदी को प्राप्त हुई थी उसका पूरा स्वरूप जायसी में देखा जा सकता है। उत्तर भारत की प्रधान साहित्यिक भाषा के रूप में अवधी का विकास १६वीं शती में हो चुका था। मौलाना दाऊद शत बदायन में यह बात स्पष्ट है। संस्कृत प्राकृत अपभ्रंश के बहुमुखी उत्तरा—धिकार को अवधी भाषा ने प्राप्त किया था।

सूफी कवियों की यह विशेषता रही है कि वे प्रायः स्थानीय भाषाओं में ही अपने काव्यों की रचना करते रहे हैं। नीलत काजी आलाओन आदि ने जो बगला के रहने वाले थे बगला में लिखा।^१ पंजाब के सूफी कवियों ने पंजाबी में सत्सिपूनों हीरराँवा आदि की सजना की है। यह सत्य है कि स्थानीय भाषा में सदेश

१—डा० वामुदशरण जगन्नाथ पद्मावत प्राक्कथन पृ २८। २—वही पृ ५६।

३—इस्लामी वागना साहित्य सुकमार भन।

४—पंजाबी सूफी पोएट्स लाजवती रामकृष्ण।

जायसी की काव्यभाषा

सुनाकर किसी स्थान की जनता पर अपेक्षाकृत अधिक प्रभाव डाला जा सकता है। गैल फरीदुद्दीन गजेणकर अपने शिष्यों से बातचीत करते समय 'हिन्दवी का उपयोग करते थे। ये उपदेश 'सियातन औलिया म सरक्षित है। ख्वाजा निजामुद्दीन औलिया भी अपनी बातचीत के बीच हिन्दवी का प्रयोग करते थे।' फारसी के प्रसिद्ध महाकवि अमीर खुसरो की हिंदी रचनाओं को पर्याप्त प्रसिद्धि मिल चुकी है। जनता में अपना सदेश सुनाने के लिए मुल्ला दाऊद ने अवधी का ही चयन करना सर्वोत्तम समझा होगा। संभवतः मुल्ला दाऊद ने अवधी का ही काव्यपरम्परा विकसित हो चुकी थी। डा० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या ने ठीक ही निष्ठा था कि कोसली भाषा बारहवीं शताब्दी के मध्य में पूर्णरूप से विकसित हो चुकी थी। जिस आजकल हम अवधी कहते हैं उसे डा० चाटुर्ज्या ने ठीक ही निष्ठा था कि कोसली कहा है। यह अवधि जनपद और पूर्वी मध्यप्रदेश की भाषा थी। स्पष्ट है कि अवधी के रूप में यह कोसली पूर्वी हिंदी का एक रूप है। इसी में पीछे चलकर सत्यवती तथा पदमावत रामचरितमानस आदि लिखे गए हैं। डा० मोनीचंद्र का कथन है कि 'उक्ति यक्ति प्रकरण के लेखक दामादर से स्पष्ट विदित हो जाता है कि पूर्वी उत्तर प्रदेश की जनभाषा पूर्वी हिंदी के संशुद्ध के पण्डितों से भी मायता प्राप्त हो रही थी और भाषा निर्माणकाल में ही बल्कि पूर्णरूप से विकसित हो चुकी थी और सम्भवतः इस भाषा का अपना साहित्य भी था जो खो चुका है।' 'विगना' का विचार है कि पूर्वी हिंदी का विकास १२वीं शताब्दी के मध्य में ही हुआ था। रोडा कवि वृत्त राउलबल ११वीं शताब्दी की कृति है। यह कवि रोडा की कविता का नामक अभिव्यक्ति है। डा० माताप्रसाद गुप्त का कथन है कि इसकी भाषा पुरानी दक्षिण वासनी है। जिस प्रकार 'उक्ति व्यक्ति प्रकरण की पुरानी वासनी है। सामान्य रूप से इसमें पोस्ट अपभ्रंश भाषा द्रष्टव्य है। निश्चय ही यह भाषा अपभ्रंश-तत्त्वा के पर्याप्त सम्मिश्रण से 'यू इंडो आयन स्टेज में सम्बद्ध है। इसमें उत्तर भारत के छ विभिन्न भाषाओं के प्रयोग की सुंदर वधाओं के व्यक्तित्व सौम्य व्यवहार के रूप में, अनवरण प्रसाधन आदि का

१—गिनम्पनेज आफ मडिवल इंडियन काल, यसक हुनेन प० १०५

२—उक्ति यक्ति प्रकरण (दामादर पत्रिका), भूमिका प० ७०

३—यही प० २।

४—यही भूमिका प० ७५

५—उक्ति यक्ति प्रकरण (भूमिका) डा० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या डा० मोनीचंद्र।

६—गिन आफ वस स्मूडियम म सुरगित गिनालय।

७—हिन्दी अनुशीलन पृष्ठ १३, अक्ष १, २, (१९६० ई०) प० २३।

ललित वणन है। इसमें बतमान अवधी का पूव रूप भी सुरक्षित है।^१

इस कृति के प्रकाशन से स्पष्ट हो जाता है कि दाऊद की चंदायन अवधी की प्रथम कृति नहीं है। अवश्यमेव उसके पूव अवधी काव्य की एक विशाल परम्परा रही है। गोव के आनोक में ११वीं से १४वीं शती के बीच का अवधी साहित्य भी प्राप्त हो सकेगा— ऐसी सम्भावना रोडा कवि कृत राउलवेल की प्राप्ति के अनन्तर बलवती हो गई है। लिग्विस्टिक सर्वे से यह ज्ञात होता है कि मुजफ्फरपुर तक बिहारी भाषाओं के क्षेत्र में भी मुसलमान अवधी का ही अपनी बोलचान की भाषा मानते हैं। इसलिए अवधी के इन पूर्ववर्ती क्षेत्रों के सूफी और सत मुसलमान कवियों ने यदि अवधी में रचनाएँ की तो अपनी बोलचान की भाषा में ही कीं^२ धीरे धीरे अवधी वहाँ के सूफियों की साम्प्रदायिक भाषा और प्रेम पीर की अभिव्यक्ति का माध्यम बन गई। यहाँ के सूफी कवियों ने फारसी अरबी के शब्दों का अपेक्षाकृत कम उपयोग किया है। दक्षिण के प्रमाख्याना की दक्खिनी हिंदी या हिंदवी भाषा पर फारसी अरबी का गहरा प्रभाव है।

अपभ्रंश की बहुमुखी अभिव्यक्ति से विकसित हुआ देश्य बोली का ज्वलत रूप पदमावन की अवधी में दर्शनीय है। कच्चा पूव सुक्व शरविक दरविक, नक्खन तप्प, कनप्प, भुम्मि नित्त कित्त खग्गि अग्गि जग्गि अक्थय हत्य आदि शब्दरूप अपभ्रंश परम्परा के निकटतर हैं। जायसी के शब्दों का अर्थ काव्यों के साथ तुलनात्मक अध्ययन हिंदी के अनेक प्राचीन काव्यों से उसका सम्बंध जोड़ देता है।^३

जायसी के काव्यों में तत्सम शब्द भी प्रयुक्त हुए हैं। तत्सम शब्दों के प्रयोग प्रायः वही हुए हैं जहाँ नामों का प्रश्न आया है। जायसी अरबी और फारसी के भी विद्वान थे। इस कारण तत्सम शब्दों में सशुद्ध, अरबी फारसी के शब्द मुख्य हैं।

जायसी ने अपनी प्रेम पीर की मार्मिक अभिव्यक्ति और काव्याभिव्यक्ति के लिए अवध जनपद की ही बोली को चुना है। यह बोली पूरबी अवध के गाँवों के बोलचान की बोली है। इस बोली का थोड़ा विकसित रूप आज भी इस प्रदेश में बोला जाता है। यद्यपि चार सौ वर्षों में उसमें पर्याप्त परिवर्तन आ गया है तथापि विद्वानों का कथन है कि उसमें कोई बहुत बड़ा परिवर्तन नहीं हुआ है जो

१—भारतीय विद्या वा० १७ प० १३२ (भा वि० भवन, बम्बई)

लेखक डा० एच भायाणी

२—लिग्विस्टिक सर्वे आफ इण्डिया (वा ६, प० ६)

३—वही, पृ० ६।

जायसी की काव्यभाषा

उसे पदमावत की भाषा से दूसरी ठहरा सके।' ए० जी० गिरफ ने जायसी की भाषा पर विचार करते हुए लिखा है कि 'जायसी की भाषा वह स्थानीय बानी है जो आज भी वहाँ बाली जाती है'। हिंदी में मुल्लादाऊद वृत्त 'चंदायन (१३७६ ई०) से लेकर नसीरुद्दत 'प्रेमदण (१६१७ ई०) तक लगभग छ सौ वर्षों की सूफी कायशासनाधारा की एक अविच्छिन्न परम्परा मिलती है। इस बीच अनेक सुंदर प्रेमान्यायक काव्यों की रचनाएँ हुईं किन्तु उनमें सर्वाधिक काव्य गुण-सम्पन्न, समग्र भाषा-सम्पन्न तथा लोकप्रिय ग्रंथ पदमावत ही है। इस ग्रंथ रत्न की अक्षय्य कीर्ति और महान सफ़लता के अनेक उपादानों में इसकी भाषा का सारल्य एवं साक्षात्करण रूप प्रमुख है। अत्यंत सहजता और उसी के अंतरान में अर्थ गाम्भीर्य और भाषा समयता के कारण यह ग्रंथ प्रायः विद्वानों को अत्यंत प्रिय रहा है। डा० रामकुमार वर्मा का कथन है कि 'पदमावत का महत्व उससे सुरक्षित रूप में है। अतः जायसी की रचना में तत्कालीन अवधी का रूप बच सका है। हिंदी साहित्य के जायसी ही ऐसे पुराने लेखक हैं जिनकी कृति वास्तविक रूप में हमारे सामने है। जायसी ने तत्कालीन बोनचाल की अवधी में अपनी रचना की है। इनकी कृति स्वभाविक बोनचाल के यथातथ्य शब्दों से संपूर्ण है।' भाषा की स्वाभाविकता, सरलता और मनोगत भावा के प्रकाशन की सामग्री के रूप में जायसी ने अवधी को साहित्य क्षेत्र में महत्वपूर्ण स्थान दिलाने का सफल प्रयत्न किया है। पदमावत का गणकोप उसमें प्रयुक्त मुहावरे, लोकोत्तियाँ सूक्तियाँ आदि सामूहिक रूप से १६वीं शताब्दी में प्रचलित बोनचाल की अवधी का ही रूप प्रकट करती हैं। उसमें मस्तुतनिष्ठ भाषा का आग्रह नहीं है। उसमें लोकवाणी की ताजगी (वेगनेग), स्वाभाविकता तथा मिठास पूरा मात्रा में है। यदि तुनसीदास और बेगवदास की भाँति जायसी में भी सस्त्रुत भाषा के पदों और गणों के प्रयोग किए होने तो पदमावत की भाषा कुछ दूरसे प्रकार की ही होती। तत्कालीन अवधी भाषा के अविश्वल नौकिक रूप का उस प्रारम्भिक अवस्था में जसा सवार शृंगार युग गुण जायसी ने अपनी समय तृति का स विद्या, बसा गोस्वामी तुनसीदास को छोड़कर हिंदी का कोई अन्य कवि नहीं कर सका है। भाषा की समथकता भी पदमावत के उद्दृष्ट काव्य-सौन्दर्य का एक गुण है। सचमुच जायसी हिंदी साहित्य

१-ए० जी० गिरफ पदमावत की भूमिका ।

२-वही, ।

३-डा० रामकुमार वर्मा हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ० ३०६ ।

४-वही पृ० ३१६ ।

के महान कलाकारों में से हैं ।^१

डा० कमलकुल श्रेष्ठ का कथन है कि वे अपने उपदेशों को साधारण जनता के बीच फलाने का प्रयत्न कर रहे थे । इस कारण उनकी भाषा जनसाधारण की परिष्कृत भाषा थी । इनका यही महत्व है ।^२ इस मत में उचित इतना ही है कि पदमावत की भाषा जनसाधारण की परिष्कृत भाषा है ।

अवधी भाषा और पदमावत

डा० बाबूराम सक्सेना ने अपने ग्रन्थ 'इवात्सूयान आफ अवधी' में अवधी भाषा का सूत्र भाषा वैज्ञानिक अर्थ में प्रस्तुत किया है । उन्होंने लिखा है कि हिन्दी भाषा की चार प्रधान उपभाषाएँ हैं । इनमें पूर्वी हिन्दी भी एक उपभाषा है । पूर्वी हिन्दी का विकास प्राचीन अक्षमागरी प्राकृत सहज है । पूर्वी हिन्दी की दो प्रमुख बोलियाँ हैं—अवधी और छत्तीसगढ़ी ।^३

डा० धीरेन्द्र वर्मा ने पूर्वी हिन्दी की बोलियों के अंतर्गत अवधी बघनी और छत्तीसगढ़ी की गणना की है । हरदोई जिले को छोड़कर शेष अवधी बोलती अवधी है । यह लखनऊ उन्नाव, रायबरेली सीतापुर खीरी फजाबाद, गोटा बहराच, सुल्तानपुर प्रतापगढ़ बाराबंकी में बोलती जाती है किन्तु इन जिलों के अतिरिक्त दक्षिण में गंगापर गताहाबाद फतहपुर, कानपुर मिजापुर तथा जौनपुर के कुछ भागों में भी बोलती जाती है । मिश्रित अवधी का विस्तार बिहार के मुजफ्फरपुर जिले तक है । पदमावत चित्ररत्न रामचरितमानस और कृष्णायन अवधी के सुप्रसिद्ध ग्रन्थ हैं ।

पदमावत की भाषा पूर्वी अवधी है उसमें पश्चिमी हिन्दी फारसी, अरबी संस्कृत के शब्दों के भी प्रयोग भी प्राप्त होने हैं । श्री सूयकांत गास्त्री का कथन है कि जायसी की कृतियों से भी हमें १६वीं शताब्दी के उत्तर भारत की जनभाषा का यथायथ प्रमाण मिलता है ।^४ सचमुच पदमावत तत्कालीन अवधी की जनभाषा का जीवन्त और ज्वलन्त रूप प्रस्तुत करता है । आगे के पृष्ठों में हम देखेंगे कि यह भाषा अत्यन्त नृतिमधुर यजनापूण समय सञ्ज्ञक एवं माधुर्यपूरित है । यह

१—डा० माताप्रसाद गुप्त जायसी प्रयावनी वक्तव्य, पृ० ३ ।

२—डा० कमलकुल श्रेष्ठ हिन्दी प्रमाख्यानक काव्य पृ० ३६८ ।

३—विशेष विवरण के लिए देखिए—डा० बाबूराम सक्सेना इवात्सूयान आफ अवधी ।

४—डा० धीरेन्द्र वर्मा, हिन्दी भाषा और लिपि पृ० ५० ।

५—श्री सूयकांत गास्त्री पदमावति (१९३४) प्रीफेस पृ० ६ ।

हिज बक्स, देहरादून इज ए वेल्थ्यूएवल विटनस टू दी पेक्चुअन कडीशन आफ दी वर्नाक्यूलर लैंग्वेज आफ नादन इण्डिया इन दी सिक्स्टीथ सेंचरी ।

जायसी की काव्यभाषा

पदमावत के काव्य-सौंदर्य का एक रहस्य है।

सूक्तियाँ, लोकोक्तियाँ, कहावतें, मुहावरे और जायसी

जायसी के काव्यो में सौंदर्य संवर्द्धन करने वाले प्रसाधनों में सूक्तियों, लोकोक्तियों, कहावतों और मुहावरों के भी महत्वपूर्ण स्थान है। ये सौंदर्य-वर्द्धक तत्त्व सबत्र भाषा भाव धारा से प्रकृत्या जल नरगवत सपत्त हैं कही भी ये आरोपित से नहीं गते।

हिंदी साहित्य में घाघ, भड्डरी आदि की कहावतों काफ़ी लोकप्रिय हैं, पर उन्हें साहित्य में समादर नहीं मिला है। सम्पूर्ण हिंदी साहित्य में सम्भवतः जायसी ही ऐसे कवि हैं जिन्होंने कहावतों और लोकोक्तियों को गंभीर करके 'मसला नामक एक सुंदर काव्य लिखा है।' हिंदी के अग्र सूफी कवियों में भी लोकोक्तियों के प्रयोग की प्रवृत्ति मिलती है—

‘जाके गोहन फनी बेवाई। सो का जाने पीर पराई ॥’

‘रहेन एकी अत कह, नारग दाडिम दाख।

‘दिवम चारि की बाँदनी फिर अधियारी पाख ॥’

‘कुछ तो अहै दार मह बारा।’

‘अग अग सब घ्याकुन पात वियोग।

बाँमू नदी बहावा पतन लोग ॥’

सुख सम्पति सब दीहा दाता।

मारु न छीर भात मो ताता ॥’

पट वाहर जेइ पाँव पसारा।

जाडा कठिन अत तहि मारा।

बातहि हाथी पाइयो वार्तहि हाथी पाँव।’

‘जा जहि के जम निखा लिनारा।

१—अखिल प्रथम खंड अध्याय ३ ‘मसला या मसलानामा।

२—नूरमुहम्मद, इलाकती पं० ७९ (१६०६ ई०)।

३—वही, पं० ३८।

४—नूराम सत्तावी नउदमन पं० ६३।

५—नूरमुहम्मद अनुराग बामुरी पं० १३६।

६—नूरमुहम्मद इलाकती।

७—नूर मुहम्मद इलाकती।

८—नासिमगाह, हग उवाहिर।

सो मो भय को मेटनहारा ॥^१

'आजु सिरान हिया दुख जरा ।

मुए धान जनु पानी मरा ॥

हिन्दी के सूफ़ी सता की भाषा में लोकोक्तियाँ सहज और सरल भाषा में स्वाभाविकतः अभिव्यक्त हुई हैं। मामिगता और सज ही हृदय स्पष्ट करने की शक्ति के कारण ये उक्तियाँ महत्वपूर्ण हो उठी हैं। जायसी के काव्यों में लोकोक्तियों महाविरों आदि का चरम सौन्दर्य दशनीय है।

(क) सूक्तियों से भाषा की व्यञ्जकता (सजेस्टिवनेस)

पदमावत की सक्तियों में सहज चमत्कार और वाग्बदध्य के साथ जायसी की भावकता का सौन्दर्य भी दशनीय है। सूक्तियों^२ से तात्पर्य वचिन्त्यपूर्ण सुन्दर उक्तियों से है जिसमें वाक्चातय ही प्रधान होता है। कोई बात यदि नए अनूठ ढंग से कही जाय तो उसने बहुत कुछ लोगों का मनोरंजन हो जाना है वससे कवि लोग वाग्बदध्य से कम काम किया करते हैं। नीति सम्बन्धी पदों में चमत्कार की योजना अवसर देखने में आती है। जम बिहारी के 'कनक कनक त सौगुनी मादकता अधि काय वाले दाह में अथवा रहीम के वस प्रकार क दोह म—

बड पेट के भरा मे है रहीम दख वानि ।

यातें हाथी हहरि क दिय दौत द्व काडि ॥

ज्या रहीम गति दीप की कृत्न कपूत की सो ।

वारे उजियारो नग बड अधरो हो ।

वस प्रकार के कथनों में आकर्षित करने वाली वस्तु जो होती है वणन क तग का चमत्कार। इस प्रकार का चमत्कार वित्त का आकर्षित करता है। यह अवश्य अपेक्षित है कि इस प्रकार के वाग्बदध्यपूर्ण कथनों में मन को भिन्न भिन्न भावों में लीन करने की पूर्ण क्षमता है— वाग्बदध्यप्रधानपि रस एवात्र जीविनम ।^३

भाव योजना वस्तु वणन और तथ्य प्रकाश सबके अतगत चमत्कारपूर्ण कथन हो सकता है। रहीम के ऊपर दिए गए दोहों में तथ्य प्रकाश क उदाहरण हैं। भाव व्यञ्जना क उदाहरण के लिए निम्नलिखित दोहा लिया जा सकता है—

यह तन जारों छार क कही कि पवन उटाव ।

मकु तेहि मारग उडि पर कत घर जहू पाँव ॥

१—उसमान चित्रावली ।

२—आचार्य रामचन्द्र शुक्ल जायसी ग्रन्थावली (भूमिका) पृ० १६८ ।

३—अग्निपुराण (बी आई एडीएन), साहित्य दपण (पी०बी०काणे), पृ० ४ से उद्धृत ।

४—आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, जायसी ग्रन्थावली पृ० १५५ ।

जायसी की काव्यमाया

जायसी ने वस्तु चित्रण की वचित्र्यपूर्ण सूक्तियों का प्रयोग भी सुदरता से किया है। जमे—

‘चकई बिछुरि पुकारे कहीं मिलों, हो नाह।
एक चाँद निमि सरग मह दिन दूसर जन माँह ॥’
कवि समय की बात है कि चक्वा चक्वी रात्रि म एक दूसरे से अलग रहते हैं, दिन म उनका मिलाप हो जाता है। जायसी का कथन है कि पदमावती के मुखचन्द्र के कारण दिन म भी रात का भान होता है और चक्वा चक्वी का बिछोह हो जाता है। प्रस्तुत उक्ति म तीव्र भाव व्यजना है आलम्बन क सौंदर्य की अनुभूति में एक चमत्कार है और है जायसी की भावुकता का उत्कृष्ट निदर्शन।

‘बस मीन जन धरती, अवा बस अनास।
जो पिरती पैं दुवो मह अत होहि एक पाम।’
प्रस्तुत दोहे म भाषा की उच्चकोटि की व्यञ्जकता सहज गंदा में मुखरित हुई है। ‘जेहिकर जेहि पर सत्य सनेहू। सो तेहि मिनइ न कछू सदेहू ॥ (तुलसीदास)
वानी बान की तीव्र यजना के लिए दूर स्थित दो वस्तुओं का सांनिध्य प्रदर्शित किया गया है—

‘जावर पोउ बस जेहि, तेहि पुनि ताकर टेव।
बनक सोहाग न बिछुर आटि मिल होइ एक ॥’

प्रेम का धाव स्वतः अनुभूत वस्तु है—

प्रेम धाव दुख जान न कोई। जेहि नाग जान प सोई ॥’
प्रियतम के साहचर्य से विमुक्त प्रेमिका की दगा अत्यन्त दयनीय होती है—
आवा पवन बिछोह कर, पाट परी वेकरान।
परिवर तजा जा चूरि के तगौ बहि के डार ॥’

पदमावत म पारमी कहानता की भी छाया बही कहीं दिखाई पडती है जम—
नियरहि दूर फून जस चाँटा। दूरहि नियर जइस गुर चाँटा ॥’
पारमी दूरी वावसर नजदीक व नजदीकी वेवसर दूर, दूरस्थित रसिक के लिए पास है और निकटस्थ अरसिक के लिए दूर है। निकट जाने के लिए दूर ऐसे जैसे फून के सग के कटि क लिए फून का रम और मौज्य दूर रहता है। दूर जाने के लिए ऐसे, जमे चींटे के लिए गुड। पारमी उक्ति म भी यही बात है कि दृष्टि

१—आचार्य रामचन्द्र शुक्ल जायसी प्रयागवली, पृ० २४ (दोहा ५)।

२—वही, पृ० १७१ (भूमिका)।

३—जा० पं० ना० प्रा० सभा, वानी पृ० १३७।

४—वही पं० ४६।

५—वही, पं० १७७।

माने के लिए दूर भी निकट है और बिना दृष्टि वाले के लिए नजदीक भी दूर है ।
प्रेम और वस्तुरी छिपाए नहीं छिपते ।^१

परिमल पेम न आछ छपा ।^२

फारसी— इश्क व मुष्क रा नतबां नहुफनन ।

कहीं-कहीं तो फारसी शायरो की उक्तियाँ पदमावत में ज्या की त्यो आई हैं । अला उद्दीन की चढ़ाई का वणन करते हुए घोड़ों की टापो से उठी घूल के आकाश में द्या जाने पर जायसी कहते हैं—

सत खड धरती भइ घट खडा । ऊपर अस्ट भार वरम्हडा ।

यह फिरदौसी के शाहनामे का ज्यो का त्यो अनवाद है—

जे सुम्म सितौरा दरा पहने दस्त । जमी शश गुदो अस्मां गस्त हस्त ।

अर्थात् उस लम्बे चौड़े मदान में घोड़ की टाप से जमीन सात खण्ड के स्थान पर छ ही खण्ड की रह गई और आसमान (तबक) के स्थान पर आठ खण्ड का हो गया ।

जायसी का फारसी साहित्य का अध्ययन बड़ा गम्भीर था । अपनी ग्राहिका शक्ति का परिचय देते हुए उन भावो या उक्तियाँ को जायसी ने अधिक सौंदर्य प्रदान किया है—यह उनकी विनोदता है ।

कुछ सूक्तियाँ जीवन के आचार-व्यवहार से भी सबद्ध हैं जैसे—

जो न कत के आयसु माही । कौन भरोस नारि व बाही ॥^३

अर्थात् स्त्री की शाभा पति की आना का पालन है । यदि नारी पति की आज्ञा नुर्वर्तिनी नहीं है तो उसका क्या भरोसा ? जिस प्रमी चाहे वही सुदरी है—

लोन विलान तहा का कहै । लोनी सोइ वत जहि चहै ।^४

यौवन के प्रति मनुष्य का राग स्वाभाविक है—

मुहमद विरिध जो नइ चल काह चन मुइ टोइ ।

जोवन रतन हेरान है मकु धरती पर होइ ॥^५

‘विरिध जो सीस डोलाव सीस घुन तेहि रीस ।

वूटे आड़ होहु तुम्ह केइ यह दीह असीस ॥^६

इन दोनों उदाहरणों में तथ्य प्रकाशन के साथ चमत्कार और भावुकता भी है । बुढ़ापे में कमर झक जाने और शिर हिनन तथा यौवन-अवस्था के प्रति राग से सबद्ध सूक्तियों के रूप में ये उदाहरण लिए जा सकते हैं ।

१—जा० प्र० ना० प्रा० सभा काशी प ३५ । २—वही, प ३४ ।

३—वही, प० २६८ (दोहा ३)

४—जा० प्र० हिंदूस्तानी अकेडमी प० ५५६

जायसी की काव्य भाषा

जायसी ने संस्कृत की भी सूक्तियों के द्वारा सहज ही गाढ़ 'यजना का प्रयत्न किया है। वहीं-वही तो संस्कृत की उक्तियाँ ज्यों की त्यों ले ली गई हैं। जैसे—

धन धन नग न होहि जेहि जोती । जल जल सीप न उपजहि मोती ॥
 धन बन 'विरह्य न चदन होही । तन तन विरह न उपन सोई ॥

जायसी की प्रस्तुत सूक्ति चाणक्य के निम्नलिखित श्लोक का अवधी रूपांतर है—

शले शले न माणिवय मोक्तिक न गजे-गजे ।
 साधवो नहि सवत्र चदन न बने-बने ॥

मज्जन छत मधुमालती में भी प्रस्तुत उक्ति मिलती है—

'रतन कि सागर सागरहि गजमोती गज कोय ।
 चदन कि बन-बन उपजइ विरह कि तन-तन होय ॥'

इसी प्रकार की और भी बहुत सी उक्तियाँ पदमावत में मिल जाती हैं। जैसे—

'भेंवर जो पावा बवल बह मन चीता बहु केलि ।
 आइ परा कोइ हस्ति तह, चूर किएउ सो बेलि ।'

पह इस श्लोक का अनुवाद जान पड़ता है—

रात्रिगमिष्यति भविष्यति सुप्रभात, भाम्बानुदेष्यति हसिष्यति पक्वश्री ।
 इत्य विचिंतयति बोशगते द्विरफ हा हत । हत । ननिनीगजउजहार ॥

इन सूक्तियों के प्रकाश में कहा जा सकता है कि जायसी का संस्कृत भाषा का भी अच्छा ज्ञान था। श्री टेकचंद जी का तो यहाँ तक कहना है कि हिंदू पौराणिक और लौकिक कथाओं के लिए एवम हिंदू संस्कृति और धर्म के तत्वा के जानाजत के लिए भी जायसी ने प्रख्यात हिंदू पंडितों से अनेक वर्षों तक संस्कृत भाषा का अध्ययन किया था। चित्ररेखा में भी सूक्तियों के कुछ प्रयोग द्रष्टव्य हैं—

'बत नहर पुनि आइव बत समुर यह खेल ।
 थापु-आपु बहै होइहै ज्यो पखिन मह डेन ॥'
 'मन इच्छा क लाख दम नियन मरउज्रिन बोइ ।
 जो लिखि घरा विमभर सा फिर आन न होइ ॥'
 राजपाट धन बाहै जग मह पूत पिपार ।
 जो दोषक घर नाहा जानउ जग अविपार ॥

जायसी द्वारा सूक्तियों प्रायः अत्यंत स्वामाविक रूप में ही प्रयुक्त हुई हैं।

१-श्री टेकचंद पट्टमावति (फोरवर्ड), श्री मूयवान्त शास्त्री द्वारा संपादित पृ० २

२-चित्ररेखा, पृ० ८४ ।

४-वही, पृ० ८६

३-वही पृ० ८५ ।

मुहावरों से चुस्त और अथपूण बनी भाषा

जायसी ने पदमावत चित्ररत्ना कहरानामा प्रभति ग्रन्थो की भाषा में अपेक्षाकृत अधिक तीव्रता तथा भाव-यजकता नाने के लिए सूक्तियों के साथ ही मुहावरों का प्रयोग भी अत्यन्त कुशलतापूर्वक किया है। उस काय में वे पूणत सिद्ध हस्त है। मुहावरों के प्रयोग से उनकी भाषा में चुस्ती आ गई है और वह भाव-यजना में अधिक सशक्त हो गई है। मुहावरों से सबलित उनकी उत्तियाँ सीधे हृदय को स्पष्ट कर लेती हैं। जैसे—(ती फटना हृदय फटना)—

जोवन नीर घटे का घटा । सत्त के घर जो नाह हिय फटा ।

यहाँ पर हृदय को सरोवर माना गया है। जल घट जान पर ताल या सरोवर सूख जाता है उसमें दरारें पड़ जाती हैं। कवि का प्रतिपाद्य है कि जैसे ताल या सरोवर का जन घटने पर उसका हृदय फट जाता है वैसे यदि यौवन क्षय से प्रिय का हृदय न फटे और उसकी प्रीति पूर्ववत् बनी रहे तो सुन्दर और यदि प्रीति टूट गई—हृदय फट गया तो उसका क्या अर्थ ?

कवि प्रायः मुहावरों के प्रयोग से भाषा का सशक्त बनाते हैं और उसकी यजना शक्ति में तीव्रता नाने का प्रयत्न करते हैं। जो ललक मुहावरों का प्रयोग जितनी ही स्वाभाविकता, और सफलता से कर सकता है, उसकी भाषा उतनी ही चुस्त स्वच्छ और ओजपूर्ण मानी जाती है। कहीं-कहीं तो जायसी ने उल्लसित भाव से वणन करते हुए मुहावरों की झडी लगा दी है। जैसे—

परी नाथ कोई छुव न पारा । मारग मानुप सोन उदारा ।

गऊ सिंह रँगहि एक बाटा । दूनो पानि पियहि एक घाटा ।

नीर क्षीर छाने दरबारा । दूध पानि सब कर निनारा ॥

धरम नियाव चने सत्त भाखा । दूवर बनी एक सम राखा ॥

सब पृथवी सीसाहि नई जोरि जोरि क हाथ ।

गग जमुन जो लगि जन तो लगि अम्मरनाथ ॥'

तत्कालीन बादशाह गोरशाह की प्रशंसा और उसके शासन का गुणगान करते हुए जायसी ने प्रस्तुत उद्धरण में मुहावरों की झडी ही लगा दी है—परी नाथ न छूना 'माग में सोना उछालना गाय और सिंह का एक घाट पर पानी पीने नीर-क्षीर विवेक, दूध का दूध और पानी का पानी धम-न्धाम पर चटना सत्य बोलना 'दुबल और बनी की एक समान रक्षा करना सिर नवाना, शीश झकाना 'हाथ जोड़ना जब लगि गग जमुन की धारा प्रभति मुहावरों का यहाँ पर सगुणन दृष्टव्य है।

जायसी की काव्य भाषा

कुछ और पद्य उदाहरणाय दिये जा सकते हैं—

'जोवन बान लेहि नहि बागा ।
देश-देश के बर मोहि आवहि । पिता हमार न औख जगावहि ॥'

राजा मुना दीठि भ आना ।
राजा बन्त मुए तपि लाइ-लाइ मुह माय ।

'बाहू छुव न पाए गए मरोरत हाप ।'
को अस हाप सिध मुख घाल ।

इन उदाहरणों से स्पष्ट है कि जायसी ने मूहावरो का प्रयोग अत्यन्त स्वाभाविक रीति से किया है ।

कहावतों से सजीव बनी भाषा

कहावतों के प्रयोग के क्षेत्र में जायसी हिन्दी साहित्य के सर्वश्रेष्ठ कर्ताकार के रूप में उपस्थित होते हैं । इनका मसला नामक ग्रन्थ अवधी कहावतों और मूहावरो का आवरण ग्रन्थ कहा जा सकता है । इस ग्रन्थ जसा कहावतों से भरा कोई अन्य ग्रन्थ हिन्दी में नहीं दिखाई देता । कतिपय उदाहरणों द्वारा यह बात स्पष्ट हो जायगी—

सामु यदि तरणी हो तो बना बहूए क्या भृंगार करंगी ?
'बुद्धि विद्या के बटक में एक मनुष्य की क्या गणना ? इन दो कहावतों का अत्यन्त स्वाभाविक और मार्मिक प्रयोग अपनी अमिट छाप छोड़ जाता है—
बुद्धि विद्या के बटक में मोहि मन का विस्तार ।
जेहि घर सामुहि तरणि हैं बहूअन कौन सिंगार ।'
चित्ररेखा में भी कहावतों का अत्यन्त सजीव प्रयोग हुआ है—
वहाँ चनाई मरन कौं, धीरुहि पकरी पठ ।
परनारी के नामक, बनज पराए सठ ।'
पुर कह सोइ जो घमहि घर । मरती वार सठ छाहें मरै ।
मनहि कलवि रोवहि हिय पाटा । मरी नाउ को लावइ पाटा ।'
दिया बुझाइ होइ अधियारा । को अब नसि बरइ उजियारा ।'

१—जायसी कृत मसला नागरीप्रचारिणी मभा की पोथी अखरोती और मसला की हस्तनिर्मित प्रति, पृ० ६२ ।

२—चित्ररेखा (हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय), पृ० १० ।

३—वही, पृ० ६५ ।

४—वही पृ० ६४ ।

'दोष ताहि जेहि सूझ न आगू ।
 उलू न जान दिवस कर भाऊ ।
 'जहर चुव जो जो कह वाता ।
 तुरय रोग हरि माये जाए ।
 साहस जहाँ सिद्धि तह होई ।
 भेटि न जाइ लिखा पुरबिला ।'
 'निक्से छिउ न बिना दधि मये ।
 घर के भेद लक अस टूटी ।
 विरवा लाइ न सूखन दीज ।
 'भेटि न जाइ कान क घरी ।

इन कहावतों का प्रयोग बड़े कौशल से किया गया है। स्पष्ट है कि कहावतों के प्रयोग के कारण इनकी भाषा बड़ी ही हृदयस्पर्शिनी और सजीव हो उठी है।

प्रत्येक भाषा में अपने महावरो और नोकोक्तियों का एक विशाल कोष होता है। साहित्य की श्रीसंपन्नता के लिए इनका होना आवश्यक है। साहित्य जीवन के अचन से सबद्ध रहता है—चाहे वह नोक साहित्य हो या अभिजात साहित्य (बना सिकल)। महावरो नोकोक्तियाँ और सूक्तियाँ जनकठ से निःसृत होकर साहित्य के अभिन्न अंगरूप में ही काव्य प्रसाधन बनती हैं। इनके प्रयोग से कवियों की उक्ति में तीव्रता सशक्तता स्पष्टता मार्मिकता प्रभावोत्पादकता आदि गुण आ जाते हैं। साथ ही भाषा भाव धारा में स्वाभाविक प्रवाह और गति आ जाती है। वक्तव्य में निखार आ जाता है। यही इन सबके प्रयोग की महत्वपूर्ण विशेषताएँ हैं। महावरो, कहावतें आदि के प्रयोग के विषय में शुक्ल जी के विचार उल्लेखनीय हैं— 'महावरो को अधिक प्राधान्य देने से रूढ़ पद समूहों में भाषा बधी सी रहती है। उसकी शक्तियाँ का नवीन विकास नहीं हो पाता। कवि अपने विचारों को ढालने के लिए नए-नए सचि न तयार करने बने बनाए सचि में ढालने वाले विचारों को ही बाहर करता है।'

जायसी के काव्यो में महावरो और कहावतें सवत्र स्वाभाविक रूप में प्रयुक्त हैं। यदि जायसी ने इनके प्रयोग न किये होते तो संभवतः उनकी भाषा में वह च्युस्ती चलतापन और सरनता न आ पाती जो किसी लोकभाषा या साहित्य भाषा की जीवत विशेषता है। जायसी की विशेषता यह भी है कि उन्होंने अपने काव्य में इनका एक विशाल कोश एकत्र करके रख दिया है। इनके प्रयोग से पन्नावत की भाषा सशक्त और जीवत हो उठी है।

जायसी की काव्य भाषा

भाषा-शक्ति

पदमावत की भाषा में समय भाषा के प्रायः सभी गुण उपलब्ध हो जाते हैं। इस सम्बन्ध में पदमावत के भाष्यकार डा० वासुदेवशरण अग्रवाल का कथन उल्लेखनीय है - 'मलिक मुहम्मद जायसी कृत पदमावत की भाषा ऊपर से देखने पर बोलचाल की देहाती अवधी कही जाती है, किन्तु वस्तुतः वह अत्यन्त प्रौढ़, अथ-सम्पत्ति से समृद्ध शैली है। अनेक स्थानों पर जायसी ने ऐसी शैलीय भाषा का प्रयोग किया है जिसके अर्थ लगातार कई दोहों तक एक से अधिक पदों में पूरे उतरते हैं। डा० अग्रवाल ने इस प्रकार के पाँच दोहों के उदाहरणों द्वारा इस बात के स्पष्टीकरण का प्रयत्न किया है। 'उनकी सजीवनी टीका के अध्ययन से भी स्पष्ट हो जाता है कि सचमुच जायसी की भाषा शक्ति अभूतपूर्व है। ठट अवधी के बोलचाल के शब्दों में शैली के द्वारा जो सम्यक्ता और चमत्कार शक्ति भर दी गई है वह प्रभविष्ण और हृदयस्पर्शी है -

'बरस मेह चुबहि ननाहा। छपर छपर होइ रहि विनु नाहा।'
 'बरस नन चुब घर माहा।

प्रस्तुत पंक्ति में 'नन' का अर्थ नेत्र के अतिरिक्त छप्पर में घुबई निकलने का प्रकाश आने वाला छेद भी है। जायसी का यह भी आशय है कि टूटे हुए छप्पर में से इन छिद्रों के रास्ते से घर के भीतर पानी टपक रहा है।

वाह हसो, तुम मो सौं त्रिएउ और सो नेह।
 तुम मुल चमन बीजुरी हम मुख बरस मेह ॥

नागमती का यह वक्तव्य अत्यन्त सहज और सरल भाषा में व्यक्त किया गया है किन्तु यह अपनी मार्मिकता के कारण सीधे हृदय को स्पर्श कर लेता है। इन पंक्तियों में लोक-व्यवहार की अवधी भाषा की व्यञ्जना और प्रभविष्णुता दर्शनीय है। ऐसे सज्जा उदाहरण पदमावत में भरे पड़े हैं। पदमावत की भाषा में जायसी के मनोभावों की पूर्ण अभिव्यक्ति हुई है। उनका भाषा अपने देश, काल, समाज और वक्तव्य-वस्तु की अभिव्यक्ति में पूर्ण समर्थ है।
 तुलसीदास का काव्य सबजन से प्रेरित है। उनका भाषा सत्कृतित्व साहित्य भाषा है। उन्होंने पंक्ति बग को भी दृष्टिपूर्व में रखा था। गूर का सागर भी भागवतों की प्रेरणा और आचारशिला पर बना है किन्तु जायसी

१-देखिए नागरी प्रचारिणी पत्रिका हीरक जयन्ती अंक सं० २०१०, पृ० ५५

अंक ३, पृ० १५५, (१५५ में १८६ तक)।

२-जायसी प्रयावनी, नागरीप्रचारिणी समा, काशी पृ० १५७।

की परिस्थिति ही दूसरी थी। इनके सामने न भागवत जसा कोई ग्रन्थ था और न अध्यात्म एवम् बाल्मीकि रामायण जसा। लोक प्रचलित कहानियाँ इन्होंने ली। इनका लक्ष्य जनता के हृत्प को छूना था। इनके सामने न तो पण्डित वग था और न मुल्ला वग। वे अपने उपदेश को साधारण जनता के बीच फनाने की कोशिश कर रहे थे। इस कारण उनकी भाषा जनसाधारण की परिष्कृत भाषा थी। इनका यही महत्व है।^१

‘यह तन जारों छार क कही कि पवन ! उडाव ।

मकु तेहि मारग उडि परों कत धर जह पाव ॥

इस पद्य मे भावो की तीव्रता भाषा की सुबोधता और अलङ्कृत यञ्जना कला का उत्कृष्ट सौंदर्य दशनीय है।

विरहिणी के मनोभावों का एक सुबोध चित्रण देखिए —

रक्त डरा मांसूगरा हाड भयउ सब सख ।

धनि सारस होइ ररि मुई पीउ समटहि पख ॥

कई लोगो ने फारसी प्रभाव कहकर इन पक्तियों की निन्दा की है किन्तु वे यह विचार करना भूल गए कि जायसी अपने कथन की प्रवर्णनीयता में सफल हैं या नहीं। फारसी प्रभाव हो या अन्य कोई यन्त्रि कवि अपने वक्तव्य की यञ्जना में सफल है तो उसे यो ही नहा टाना जा सकता। इन पक्तियों की यञ्जना द्रष्टव्य है। कही-कही जायसी अपने अभिप्रेत को घुमा फिरा कर इस कलात्मक ढंग से प्रस्तुत करते हैं जिसमें भाव एवं यञ्जना को आश्चर्यजनक मामिकता प्राप्त हो जाती है —

जोवन जल दिन दिन जस घटा । भवर छपान हस परगटा ।

इस पद्य में भ्रमर द्वारा काने केश और हंस द्वारा श्वेत केशो की यञ्जना का सौंदर्य द्रष्टव्य है।

भाषा की एक रूपता और उसकी कतिपय अन्य विशेषतायें

जायसी के भाषा सौंदर्य में उसकी एकरूपता का भी बड़ा महत्व है। पद्यमा वत चित्ररेखा और कहरानामा में जादि स अन्त तक एक जसी भाषा का प्रयोग हुआ है। यह भाषा सबध श्रुतिमधुर और त्रित्त है। वसम सहज उच्चायता का महान गुण विद्यमान है। जैसे —

पदमावनि भइ पूनिउ कना । चौदसि चान् उई सिघना ।

नयन जो देखा कवन भा निरमल नीर सरीर ।

हसत जो देखा हस भा दसन जोनि नगहीर ॥^१

१-डा कमलकुन श्रेष्ठ हिन्दी प्रमाख्यानक काव्य प ३६८ ।

२-जायसी ग्रन्थावली नागरी प्रचारिणी सभा काशी प० २५ ।

जायसी की काव्य भाषा

पडी बोनी और राजस्थानी (डिगन आदि) की अपेक्षा जायसी की भाषा में अधिक कोमलता और मृदुता भरी हुई है। उमम डिगन जसा बोझोलापन नहीं है। बबीर की भाषा में भी जायसी की भाषा के इस गुण का अभाव है। यह अवश्य है कि जायसी के काव्या में ऐसे म्वल कम हैं जहाँ ससृष्टोमुखी भाषा का रूप देखने को मिलता है —

बरनों सूर भूमिपति राजा । भूमि न भार सहे जेहि साजा ।
हय गप सेन चल जगपूरी । परबत टूटि उडहि होइ घूरी ॥
मुइ उडि अतरिख मत मडा । सड सड धरलीवरम्हडा ।
डाज गगन इद्र दरि बापा । बामुकि घाइ पठारहि चापा ॥^१
जिन स्वलो पर ससृष्टोमुख भाषा मिलती भी है वहाँ जो व भाषा का अवि-
कन रूप भी सुरक्षित रूप में प्राप्त होता है —

सवन सीप दुइ दीप सँवारे । कु डल बनक रचे उजियारे ।
मनि कु डन चलक अति लोने । जनु कौया लोकहि दुइ कोन ॥
दुहु दिसि चाँद मुहज चमकाही । नखत ह भरे निरखि नहि जाही ॥^२
प्रस्तुन पद्य में मवन (सस्कृत श्रवण) दीप (स० द्वीप) कु डल (स० कु डन), बनक (स० बनक) मनि (स० मणि), लोने (स० लावण्य), लोकहि (नाक) चाँद-मुहज (स० चन्द्र मूय), नखत ह (नखत्र) आए हुए मसृष्ट शब्द अपने तत्सम रूप में न आकर अवधी की प्रवृत्ति के अनुरूप तदभव रूप में लोकोमुख होकर आए हैं। इस प्रकार जायसी की भाषा को हम ठेठ अवधी का साहित्यिक या परिष्कृत रूप कह सकते हैं।

चित्ररेखा में बही रहा जायसी की भाषा का मसृष्टनामुख रूप भी मुखर हो उठा है जैसे

मुनउ बधा जम अमनरानी । जहाँ चित्ररेखा वह रानी ॥
नगर चद्रपुर उत्तम ठाऊ । चद्रभानु राजा कर नाऊ ॥
नगर अनूप इद्र जस छावा । बसे गोमती नीर मुनरा ॥
जिन वह नगर आइ कर देसा । जिन पावा बबिनाम विमेसा ॥
राद रब मनि मन्नि सँवारे । घरे बनस रचि सोनद दारे ॥
भानि भानि निसर सब नारी । बरन बरन पहिरे सत्र नारी ॥
जनु बबिलासक अछरी आई । चित्रमूर्ति चित बिप मुहाई ॥
दिन बमत अस दीजे रन सोरती होय ।
होई अनद असा घर घर निसि भो जान न बोय ॥^३

१—जायसी यथावती नागरी प्रामाणिकी समा काशी प० ५ ।

२—वही प० ४५ ।

३—चित्ररेखा, (हिंदी प्रचारण पुस्तकालय) प० ७८ ।

गोस्वामी तुलसीदास की भाषा भी इसी प्रकार की सस्कृतनिष्ठ अवधी भाषा है -

कहरानामा मे कही कही जायसी की भाषा का अत्यन्त प्रवाहमय, सगत् और रमणीय रूप देखने को मिलता है। जैसे -

भा भिनुसारा चल कहारा होनहि पाछिन पहरा रे ।
 सखी जो गावहि हुडक बजायहि हसि क बोना महरारे ॥
 सबद सुनावा सखियह गावा, घर घर महरा साज रे ।
 पूजा पानी दुलहिन आनी दूतह भा असवारा रे ।
 बाजन बाजे केवट साज भा बसत ससारा रे ॥
 मगलचारा हाइ जनकारा औ सग सेन सहरी रे ।
 जनु फनवारी फूनी वारी जिहकर नहि रस केली रे ॥
 सेंदर ल ल मारहि ध ध राति मांति सुभ डोरी रे ।
 भा सुभ भेसू फूने टेसू जनहु फाग होइ हारी रे ॥
 कहै मुहम्मद जे दिन अनदा सो दिन आगे आव रे ।
 है आगे नग रनि सबहि जग, दिनहि सोहाग को पाव रे ॥^१

भाषा का यह उद्दाम प्रवाह और उत्तम कोटि की व्यञ्जना जायसी की अपनी विशेषता है। सहज उच्चायता के साथ प्रवाहमयता भी उनकी भाषा का गुण है। उसम कनिमता के दशन तक नग होत। इस कारण उसमें भारप्रस्तता का नितात जभाव है। ठठ भाषा के कारण सबत्र स्वाभाविकता विद्यामान है। 'जायसी की भाषा वहत ही मधुर है पर उसका माधुय निराना है। वह माधुय भाषा का माधुय है सस्कृत का माधुय नहीं। वह सस्कृत की कीमलकात पदावली पर अवबिन नहीं। उसम अवधी अपनी निज की स्वाभाविक मिठास लिए हुए है।'^१

जायसी और तुलसीदास की भाषा

सगण भक्तिगारा के कवियो म से केवन गोस्वामी तुलसीदास जी की भाषा के साथ ही जायसी की भाषा की चर्चा किसी प्रकार की जा सकती है। ये दोनो अवधी भाषा के अमर रत्न हैं। दोनो ने महाकाव्यो का निर्माण किया है। दोनो ने महाकाव्यो के अतिरिक्त अय प्र थ भी लिखे हैं। इन दोनो के महाकाव्य- रामचरित मानस और पद्मावत हिंदी के सर्वोत्तम प्रबध काव्य के रूप म समादत हैं। रामचरितमानस परवर्ती कृति है। पद्मावत की रचना के ३५ वर्ष पश्चात

१-जायसीकृत महरानामा (मनेर शरीफ की प्रति), हस्तलिखित प्रति स।

२-प० रामचंद्र शुक्ल जायसी ग्रथावली प २०५।

जायसी की काव्य-भाषा

गोस्वामी तुलसीदास ने १६३१ वि० म इसका प्रणयन किया था । आख्यानक काव्यों के लिए पहले से ही चली आती हुई अबकी भाषा और दोहा चौपाई की शैली का दोनों महाकाव्यों म प्रयोग हुआ है ।

इन दोनों कवियों ने भाषा की महत्ता को स्वीकार किया था । इनके पहले विद्यापति कह चुके थे—

सबक्य बाणी बहुजन भावइ । पाइय रम को मम्म न पावइ ।
नेसिन बखना सब जन मिटठा । तैं तसन जपजों अबट्टठा ।
ऊ परमेसर हर सिर सोहइ । ई गिचवइ नाजर मन मोहइ ।'

कबीरदास ने भी कहा था सस्वीरत है कूप जल भासा बहता नीर । 'सूरदास ने भी भागवत की कथा को भाषा (प्रजभाषा) म कहा है—

'ध्यास कहै सुकदेव सों द्वादस स्वघ बनाइ ।
सूरदास सोई कहै पद भाषा करिगाइ ॥'

जायसी के परवर्ती कवि केशवदास ने भी भाषा को ही अपनी अभिव्यक्ति का माध्यम चुना था—

भाषा वाचि न जानही तिनके कुल के दास ।
तेहि कुल मह मति मद भो कौव केवदास ॥

जायसी ने भी कहा था—

आदि अत नस गाया अहै । त्रिखि भासा चौपाई कहे ।
इसी प्रकार की बात अपनी भाषा के विषय म तुलसीदास न भी कही है—

'नाना पृथग निगनागम समतयद्रामायण निर्गमन बचिदयतोपि ।
स्वान्त सुखाय तुलसी रघुनाथ गाया भाषा निवचमनि मजुनमायनानि ।'

भाषा अनिति भूति भलि साई । सुरसरि मन सब कर हित हार्द ।
स्पष्ट है कि लोक भाषा के ही माध्यम से इन दोनों कवियों न अपनी अभिव्यक्ति प्रकृत की है । कहा जा सकता है कि जायसी न कूपजन की भाषा बोधी हुई शास्त्रीय भाषा का प्रयोग नहीं किया है । उनकी भाषा अवघ प्रदश क जनकठ की अजम सविता बाणी के तत्कालीन बहता नीर का सर्वोत्तम निदान है । रामचरितमानस की अवघी परिनिष्ठ, परिमाजित और सम्युत्तमभिन्न है । उसम सम्युत्त की बोमनवान्तना पूष माया में है और पदमावन की भाषा ठा अबघी की उन्मृष्ट मापुरी मे आप्लावित है । उसम अबघी अपनी निज की मिगम लिए हुए है ।

१-विद्यापति कीत्रिलता प्रथम पत्रव पृ० २ ।

२-रामचरित मानस, कनिराज सम्पकरण पृ० १

दोनों महाकवियों की भाषा के स्पष्टीकरण के लिये एक एक उदाहरण पर्याप्त होंगे—

जब हुत कहिगा पखि सदेसी । सुनिउ की आवा है परदेसी ।
 तबहुत तुम्ह बिनु रहै न जीऊ । चातक भएउ कहत पिउ पीऊ ॥'
 भइउ चकोर सो पथ निहारी । समुद सीप जस ननद पसारी ।
 भएउ बिरह जरि कोइनि कारी । डार डार जिमि कूवि पृकारी ।
 बर्दों गुरुपद पदुम परागा । सुरचि सुवास सरस अनुरागा
 अमिय मूरिमय चूरन चारू । समन सक्न भवरुज परिवारू ।
 सुवृत सनु तन विमल विभूनी । मजुन मगल मोद प्रसूती ॥
 जन मन मजु मकुर मन हरनी । किये तिनक गुन गन बस करनी ।
 श्री गुर पद नख मनिगन जोती । सुमिरत दिय दृष्टि हिय होती ॥ १

एन दोनों उद्धरणों की तुलना से स्पष्ट है कि पदमावत में 'सदेसी सुनिउ पसारी कारी पखि प्रभृति ठेठ अवधी के शब्दों में सहज माधुर्य, सहज उच्चायता प्रवाह मयता स्वाभाविकता और व्यजनात्मकता है तो दूसरे छोर पर रामचरितमानस की भाषा में सुवास सरस अमिय मय भव-रज सुवृत तन विमल मजुन मगल मोद जनमन-मजु मुकुल-मल श्री गुर पद-नख दिय-दृष्टि प्रभृति सवृत तत्सम शब्दों का प्राचुर्य है। इसी कारण रामचरितमानस की भाषा सवृतगर्भित और शास्त्रीय हो गई है।

यदि गोस्वामी जी ने अपने 'रामचरित मानस की रचना ऐसी ही भाषा में की होती जसी कि इन चौपाइयों की है—

काउ नप होइ हम का हानी । चेरि छाडि अब होब कि रानी ।'

जार जोग सुभाउ हमार । अनभल देखि न जाइ तुम्हार ।

तो उनकी भाषा पदमावत की ही भाषा होती और यदि जायसी ने सारी पदमावत की रचना ऐसी भाषा में की होती जसा कि इस चौपाई की है—

उदधि आइ तेइ बधन कीहा । हति दसमाथ अमरपद दीहा ।

तो उसकी और रामचरितमानस की एक भाषा होती पर जायसी में इस प्रकार की भाषा कहीं दूढ़ने से एकाग्र जगह मिल सकती है। चित्ररेखा की भाषा पदमावत की अपेक्षा अधिक सवृतनिष्ठ किंवा सस्कृतोमुख है। जैसे—

सुनउ कथा जस अमलबानी । जहा चित्ररेखा बह रानी ।

१—आचार्य रामचन्द्र शुक्ल जायसी में दावली नागरीप्रचारणी सभा काशी
 पृ० २०५-६ ।

२—रामचरितमानस काशीराज संस्करण पृ १ ।

जायसी की काव्य भाषा

नगर चन्द्रपुर उत्तम ठाऊँ । चन्द्रभानु राजाकर नाऊ ।
नगर अनूप इन्द्र जस छावा । बसे गोमती तीर सुहावा ।
जनु बबिलास क बछरी बाई । चित्रमूर्ति चित चित्र सुहाई ॥
दिन बसत अस दीखे रैन सोरती हाय ।

“अवधी में इतनी बड़ी और व्यापक प्रबंध-रचना पहले इहीं की मिलती है। गोस्वामी तुलसीदास जी ने रामचरित मानस की रचना के समय इनकी पदमावती को बहुत सी बातों में आदश बनाया होगा। कम से कम मानस का वाह्य रूप और विनोद उसकी भाषा तो पदमावती से बहुत कुछ मिलती जुलती है अतः केवल इतना ही है कि मानव में हम अवधी का परिमार्जित सुसंस्कृत और सबया साहित्यिक रूप देखते हैं पर पदमावत में यह अपने ठेठ रूप में है। जिस भाषा का प्रयोग जायसी ने किया है उस पर उह पूरा अधिकार था। अवधी का स्वाभाविक माधुर्य जायसी की ही भाषा में प्रस्फुटित हो पाया है।”

जायसी शब्दों में चित्र प्रस्तुत करने वाले हिंदा के अयनम कर्ताकार हैं। चित्ररेखा में भी भाषा बड़ी ही अयपूर्ण हा उनी है—
अहै चित्ररेखा जु कहानी । निखे चित्र करि कचन बानी ।
बचन-कचन हीरा मोती । पिटवा हार हुई तस जोती ।
कविता औ गुन आगर सोई लै पिछई दुहुँ कहँ जिह होई ।
पदमावन की अवधी लाको-मुम्बी है और मानस की अवधी सस्टुतो-मुम्बी है। चित्ररेखा की भाषा और मानस की भाषा के आदश एक हैं। सबमुच अवधी के इन दोना महाकविया की भाषा के समस्त गुणों से अत्यन्त सुंदर भाषा का आत्म रूप है।

जायसी की अवधी और उनके प्रयोग का औचित्य

प० अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध का कथन है कि ‘ग्रामीणता के दोष से तो इनका (जायसी का) ग्रंथ भरा पड़ा है। इन्होंने इतने ठेठ ग्रामीण शब्दों का प्रयोग किया है जो किसी प्रकार बोध-मुनस्र नहीं। ग्रामीण शब्दों का प्रयोग इमनिष्ठ सन्तोष माना गया है कि उनमें न तो व्याकरणता होती है और न तो वे उतना उपयुगी होते हैं जितना कविता की भाषा के लिए उन्हें होना चाहिए।’

१-चित्ररेखा प० ७८ ।

२-गणेशप्रसाद द्विवेदी हिंदी प्रेम गाथा सपह पृ ४२ ।

कहीं-कहीं उसकी भाषा बहुत गवारी हो गई है जो जो उनके पद्या में अशुचि उत्पन्न करने का कारण होती है।'

अपने इस वक्तव्य के लिए उन्होंने कई पक्ष भी उद्धृत किए हैं। इनमें से एक दो पद्या के औचित्य पर विचार कर लेना उपयुक्त होगा।

दीठि दवगरा मेरवहु एका ।

प्रस्तुत उद्धरण में हरिऔध जी ने दवगरा मेरवहु शब्द को 'गवारी भाषा' के रूप में कहा है। स्पष्ट है कि इसी शब्दों के मौखिक प्रशंसा आचार्य सुवन, डॉ० वासुदेवशरण अप्रवान तथा जायसी के अर्थ अध्येता करने में अघाते नहीं। वस्तुतः 'दीठि दवगरा मेरवहु एका' की अभिव्यजना अत्यन्त तीव्र है -

विहरत हिया करहु पिउटेना । दीठि दवगरा मेरवहु एका ।

विरहिणी के मार्मिक मनोभावों की जो अत्यन्त चित्रात्मक और प्रभविष्णु व्यजना की गई है वह विहरत दवगरा मेरवहु शब्दों द्वारा ही संभव थी। प्रिय-प्रवास के पाठकों को ज्ञात है कि हरिऔध जी सस्कतनिष्ठ हिन्दी के पुजारी थे। यदि वे जायसी की इन पक्तियों में श्राभीणता और गवारी होने का दोष देखें तो स्वाभाविक है। खेद है कि जायसी की भाषा के अत्यन्त यजनामय वास्तविक सौंदर्य का वे सही मूल्यांकन नहीं कर सके।

भाषा-भावाभिव्यक्ति और जायसी

काव्य की भाषा केवल अर्थ बोध कराने के लिए ही नहीं होती वह भावोत्पत्ति के साथ चमत्कारपूर्ण अनुरजन भी कराती है। अर्थ वाङ्मयों विज्ञान ज्योतिष दशन आदि की भाषा नियन्त्रण अर्थ के अतिरिक्त कोई इतर अर्थ का बोध नहीं कराती परन्तु कवि की वाणी जितनी ही अधिक से अधिक अर्थों की यजना करेगी उतने ही उत्कृष्ट को प्राप्त होगी। नियन्त्रण अर्थ तक पहुँचने के लिए अर्थ वाङ्मय अभिधा शक्ति से ही काम लेते हैं। किन्तु काव्य प्रस्तुत के अनिर्दिष्ट अर्थ अर्थों की यजना के लिए अभिधा के अतिरिक्त नम्यण और यजना का भी सहारा लेता है। कविता की भाषा कलात्मक होती है और विज्ञान की भाषा मात्र तथ्यात्मकता को ही सद्भाषितता और शुद्धता होती है। भाषा मात्र शब्दों का प्रधान उपकरण ही नहीं कवि से परम साध्य भावाभिव्यजना का प्रधान भी है। वह शरीरगत सौंदर्य-व्यञ्जन ही नहीं करता भाषा के सौन्दर्य में तीव्रता भी लाती है। भावाभिव्यजना की दृष्टि से भाषा के दो पक्ष होते हैं— (१) साकेतिक और (२) विम्बाधामक (सिम्बालिक एंड प्रजेक्टिव)। साकेतिक भाषा में नियन्त्रण

जायसी की बाध्य-भाषा

सम्बन्ध द्वारा अर्थ-बोध मात्र लक्ष्य होता है। दूसरे प्रकार की भाषा में बिम्ब ग्रहण करना लक्ष्य होता है। इससे वस्तु या प्रतिपाद्य का बिम्ब (इमेज) या चित्र का अन्तःकरण में उपस्थित होता है। प्रायः महान् कवि बिम्बाधायक भाषा का ही माध्यम गहीत करते हैं। रसात्मक वर्णना में यह आवश्यक है कि ऐसी वस्तुओं का बिम्बग्रहण कराया जाय जो प्रस्तुत रस के अनुकूल हो, प्रतिकूल या बाधक न हो। जायसी प्रायः बिम्बाधायक पद्य का ही आश्रय लेते हैं। वे सबत्र बिम्ब

(इमेज) ग्रहण करते करते हैं। उन्होंने लिखा भी है -
 'अहे चित्ररेखा जु कहानी। लिखे चित्रकरि कचन वानी।'
 (चित्ररेखा पं० ७७)

डा० वासुदेवशरण अग्रवाल का भी कथन है कि जायसी वाणभट्ट की भाँति शब्दों में चित्र निखाने के घनी हैं। चित्र भी ऐसे जिनके पीछे अर्थों का अक्षय्य रस-स्रोत बहता है। 'कही-कही फारसी परम्परा से प्रभावित होकर जायसी एसा बिम्बग्रहण करते हैं जो अर्धचि-सा उत्पन्न कर देता है -

हिंया काङ्कि जनु लीहसि हाया। रुहिर भरी अगुरी तेहि साया।'
 प्रस्तुत पद्य पदमावती के 'नख शिख-वर्णन के प्रसंग का है। कवि एक सुन्दरी का चित्र उपस्थित करना चाहता है जिसमें उसकी हृदयलियाँ और अगुनियाँ लाल हैं। यह कल्पना की गई है कि हृदय का लेन के कारण ये लाल हैं। यहाँ हृत्प्रेक्षा के माध्यम से बिम्ब-ग्रहण अवश्य कराया गया है किन्तु प्रस्तुत रस के प्रतिकूलत्व के कारण कोई कवि दृश्य सामने नहा जाता।

जायसी की भाषा (एक सक्षिप्त सिंहावलोकन)

जायसी की भाषा अधिकांश पुरबी या ठर अवधी है। जायसी की अवधी अद्ध भागधी का ही रूपान्तर है। और अद्धभागधी पर शौरसेनी का बहुत कुछ प्रभाव है। शौरसेनी का ही रूपान्तर ब्रजभाषा है। इस लिए इटावा इत्यादि के भाग जहाँ अवधी ब्रजभाषा से मिलती है वहाँ की अवधी यन्त्रि ब्रजभाषा से प्रभावित हो तो यह स्वाभाविक है। जायसी की भाषा में बीच-बीच में पुराने अपभ्रंश-प्रयोग और पवित्रमी प्रयोग भी आ जाते हैं। अन्तः भाषा ऊपर से कुछ अव्यवस्थित भी होती है किन्तु उन रूपों का विवेचन कर लेने पर यह अव्यवस्था नहीं रह जाती। केवल अनुपायी भूषण देव यात्रि पृथक्त्रि कविता की भाषा से इनकी भाषा कहा स्वच्छ और व्यवस्थित है। चरणा की प्रीति के लिए अर्थ-सम्बन्ध और व्याकरण-सम्बन्ध रहित शब्दों की भरती कहीं नहीं है। शब्दों का वाक्य-व्यवस्था

१-डा० वासुदेवशरण अग्रवाल, पदमावत प्राक्कथन, पृ० ५।

२-जायसी प्रभावती, नागरीप्रचारिणी समा, काशी, पं० ४५।

रूप अवश्य कही कही मिल जाते हैं जैसे —

दसन दखि क वीजु नजाना ।

यहाँ लजाना के स्थान पर 'नजानी चाहिए। पूरबी अवधी में भी लजानी रूप होगा जिसे छन्द के विचार से यदि दीर्घांत करेंगे तो 'लजानि होगी।' किन्तु ऐसे व्याकरण-विच्छेद स्थान बहुत ही कम हैं। प्रायः सबत्र 'याकरण सम्मत ठठ अवधी भाषा का सौंदर्य दशनीय है।

तुलसीदास और जायसी की भाषा में चरण के अन्त में आए हुए किसी पद के लिंग का निर्णय करते समय यह विचार लेना चाहिए कि यह छन्द की दृष्टि से उच्चरन्त से दीर्घांत तो नहीं कर लिया है। कुछ लोग जायसी के देखि चरित पदमावति हसा और तुलसीदास के मरम बचन सीता जल बोना को याकरण विच्छेद मानते हैं और अपनी सुबुद्धि का आरोप करके वे मरम बचन सीता जब बोली। हरि प्रेरित लखिमन मति डोली। पाठ भी गलत लेते हैं। वस्तुतः ऐसे लाग भन जाते हैं कि हसा और बोना अवधी के वर्तमानकालिक हस और बोन के पदांत दीर्घ रूप है। इस प्रकार के दीर्घ रूप और सक्षिप्त रूप पदमावत में प्रचुर मात्रा में मिलते हैं। यहां कहने की आवश्यकता नहीं है कि इन सक्षिप्त रूपों का व्यवहार दोना लिंग में समानरूप हो सकता है। सो अथा जेहि सूझ न पीठी में सूझ शान्त सूझ का सक्षिप्त रूप है। वस्तुतः ऐसा प्रयोग १२वीं १३वीं और १४वीं शती की अवधी में होता था। उक्ति 'यक्तिप्रकरण (दामादर भट्ट) १२वीं शती और चन्दायन' (मुल्तानाऊ १३७९ ई.) नामक ग्रन्थों में ऐसे प्रयोग मिल जाते हैं।

जायसी की भाषा में मिलने वाले 'यूनपन्त्व दाप के विषय में विद्वानों की राय है कि इसका कारण है कि हमें उस काल का ठीक उच्चारण पान नहीं है। विभक्ति का तोप सम्बंध वाचक सवनामों का तोप तथा अण्य पदा का तोप जायसी के यहां काफी सख्या में मिल जाता है। परवर्ती काल के कवियों की भाँति शब्दों के अग भग करके छंदानकून तथा रसानकूल बना लेने की प्रवृत्ति जायसी में नहीं है। वे केवल पदान्त में हस्व का दीर्घ कर देते हैं जो अपभ्रंश काल से चला आता हुआ परम्परानमोदित तथा स्वीकृत नियम है।

जायसी की भाषा में समस्त पदों के प्रयोग कम ही हुए हैं। जहाँ ऐसे प्रयोग हैं भी वहाँ दास अधिक पदा के समास का नहीं। दो पदों के समास भी प्रायः तत्पुरुष हैं। वे भी प्रायः सस्मृत की रीति पर न होकर फारसी-परम्परा के अनु-

१—जायसी ग्रंथावली नागरीप्रचारिणी सभा काशी भूमिका प० २ १ ।

२—चन्दायन की रीलड लाइब्रेरी इंग्लंड की ३ ५ पन्नों की सचित्र प्रति ।

सूफ से हुई है फारसी रहस्यवादी साधना की 'पश्मीना योग' (ऊनपारण करने वाला) कहा गया है इसमें भी इस मत की पुष्टि होती है।^१

वान्तव म सूफीमत की साधना प्रेम पर आधारित है। अबुन हमन अल हूवरी का कथन है कि "वह गरम जो मूत्र बन के वास्ता से मुस्तफा होता है, वह साफी है और जो गरम दोस्त की मुहूर्तत म गब हो गर दोस्त से बरी हो वह सूफी होता है।" वस्तुतः सूफीमत का इतिहास मुहम्मद साहब के भवना स मदीना भागने के समय से प्रारम्भ होता है। अतः हम कह सकते हैं कि इस मत का इतिहास ६२३ई० के आस पास से शुरू होता है। इस पर साई नव अफनातूनी भारतीय बशान आदि के गहरे प्रभाव पड़े हैं। मसूर हन्नात्र भारत बघ म रह चुके थ। उसने बग़त का अध्ययन किया। उन्होंने गुजरात की भी यात्रा की थी। बहुर स्नानि पधिया का उसरु अतन हरु न क्रुड कर दिया था। उन ६२२ ई० म कत्न कर दिया गया।

मोफिया सफी और स्वभाम (गम्बूत) गम्बूत म अदभन मामजस्य है। वस्तुतः सूफी गम्बूत सूफ (ऊन)म ही व्यक्तन है। व्याकरण की दृष्टि म भी सूफी गम्बूत की 'सूफ' शब्द से उत्पत्ति हुई है। आरवरी निक नन श्राउन मारगोविष मोर बनी उदीन प्रभनि विद्वान न यह सिद्ध कर लिया है कि वास्तव म सूफी गम्बूत सूफ से ही बना है। जब तो विद्वान 'सूफ गम्बूत म सूफी गम्बूत का व्युत्पन्न मानते हैं उनक मत से सूफी वह सर्वो साधक है जो ऊनी चाग का व्यवहार करता है और परम प्रिय तम के रूप म परमात्मा की उपासना करना है तथा इसे अपने जीवन का चरम लक्ष्य मानना है।

सूफीमत या तसव्वुफ और उसका आविर्भाव

प्रायः विद्वान इस मत से सहमत हैं कि इस्लाम के रहस्यवादो सूफी नाम से प्रख्यात हैं और इस्लाम का रहस्यवाद या सूफीकरण ही तसव्वुफ है। प्रारंभ काल से ही 'सूफी और सूफी मत' गों की व्याख्या की जाती रही है, इन व्याख्याओं न इस गम्बूत का अर्थ और अधिक जटिल बना लिया है। फरीदुदीन अत्तार न(१२३०

१—ए विद्वारी हिस्टी आक परगिया, भाग १, प० ४१७

२—बशुन महजुब हुज्वरी (उद्द अनुवाद) पृ० ४१

३—माहम्मदनिजम एब० ए० आर० गिन्न, पृ० १००, १०१

४—अमून वाजार पत्रिका, पूजा अक १६५७ पृ० १८ (इन्धिया एउदी अरब बरह)।

५—शाऊन, द साइबनोफीडिया आर रिचिनन एण् एविवस वात्पूम १२ पृ० १०।
(निकल्सन न भाषाशास्त्र की दृष्टि से इसे ठीक नहीं माना है)।

ई०) 'तजविरातुल औलिया नामक ग्रन्थ में 'सूफी-मत' का सत्तर परिभाषाओं का उल्लेख किया है। कहा जाता है कि सूफी मत इस्लाम के अतगत् कोई ऐसा सघटित संप्रदाय नहीं है कि उसके मतो और सिद्धान्तों को एक मुसगठित और नियमित प्रणाली के अतगत रखा जाय। यानी धर्म की भाँति यह किसी संप्रदाय विशेष की प्रणाली में प्रथा हुआ नहीं है। हुजविरी (म० १०८२ ई०) का कथन है कि सूफियों के लिए सूफी सिद्धांत मूल से भी अधिक स्पष्ट हैं। अतः स्पष्ट है कि वे सिद्धांत-प्राप्त्या सापेक्ष नहीं हैं। सच्चा सूफी वह है जो अपवित्रता को पीछे छोड़ आया है।'

सत माहफ अल वरखी का कथन है कि परमात्मा सबधी सत्य को जानना और मानव जीवन से सबद्ध वस्तुओं से सदास लेना ही सूफी का धर्म है। ए० निकल्सन ने इस परिभाषा को प्राचीनतम कहकर समाप्त किया है। अबुल हुसेन अल नूरी ने सूफी और सूफी धर्म की व्याख्या करते हुए कहा है कि सूफी को सत्कार से घणा हाती है और ईश्वर से प्रेम।^१ जुनेद का कथन है कि सूफी मत वह ईश्वरीय प्रेम का मत है जिसमें ईश्वर पुरुष की निजी रवायों के लिए जीवन धारण करने दे। ईश्वर ऐसा कर देता है कि जीव उसी में जीन रहकर उसी के लिए जीता है। अबुल कुतबीनी के अनुसार सूफी मत सत्कार व्यवहार है। अबुसहर सालूफी के मत से विविध निषेधा से वचना ही सूफी मत है। बिगर अनहाफी ने बतलाया है कि सूफी वह है जो परमात्मा के सहारे अपन हृदय का पवित्र रखता है। अबु सईद फजलुल्ला ने सूफीमत की परिभाषा देने हुए बतलाया है कि गम्मात्र चिन्त से परमात्मा का ध्यान लगाना ही सूफीमत है। अबु वकर शिबनी ने कहा है कि यह परम त्याग अर्थात् इस सत्कार में अथवा आने वाले जीवन में परमात्मा के सिवाय अथ किसी ओर ध्यान नहीं जाने देना ही इसकी विशेषता है। जून नून मिन्नी ने सूफी के लक्षणों को बतलाते हुए लिखा है कि सूफी वह है जो धर्म और कर्म में सामंजस्य बनाए रखता है और उसका मोन ही उस अवस्था का परिवर्ष देना है और जो सत्कारिक बधना को दूर कर देता है। कुछ लोगो का यह मन है कि सूफी की विशेषता यह है कि उसका हृदय पवित्र है उसका कर्तव्य भी पवित्र है।

इन समस्त परिभाषाओं में इस बात पर जोर दिया गया है कि बाहर और भीतर की शुद्धि और पवित्रता बनाये रखना सूफी साधक का कर्तव्य है। उसके लिए

१—अल हुजविरी, दी कश्फ अल-महजब अनुवादक - ए० निकल्सन १६११ पृ० ३५।

२—लिटरेरी हिस्ट्री आफ दी अरब्स पृ० ३८५-३६२।

३—स्टडीज इन इस्लामिक मिस्टीसिज्म, पृ ४६।

४—इस्लामिक सूफी-म पृ० २०।

आवश्यक है कि वह अपनी समस्त इच्छाया, समस्त वासनाओं को मिटाकर परमात्मा की इच्छा पर ही अपने को छोड़ दे। सूफी मन की त्रिगुण रूप में विवेचना करनेवाले अन्तर्दृष्टी ने बाह्य और आन्तरिक जीवन की पवित्रता को ही सूफी धर्म माना है। उसका कहना है कि पवित्रता एक श्रेष्ठ वस्तु है चाहे जिस प्रकार की भाषा के द्वारा उसे क्यों न व्यक्त किया जाय और उसके विपरीत अपवित्रता है जिसका परि त्याग करना चाहिए।^१ विधि विधानों से मुक्त होकर निःशुद्ध विषय में प्राप्त इस शाश्वत तथा अमूर्त शक्ति की झलक सबत्र पाकर मुश्किम साधकों ने जो रहस्य अभिव्यक्त किए उन्हीं के सामञ्जस्य का नाम सूफी मत है। अतः सूफी मत या तम-बुफ भी रहस्यवाद ही है जो अतिनिहित भावना के सावधानिक एव सावधान होते हुए भी मूलतः मुस्लिम संप्रदाय के साथ संबद्ध है।^२

अरबी के प्राचीन साहित्य में नबीमुन सूफ का प्रयोग उक्त साधकों के लिए किया गया है जो सगार को त्याग चुके हैं और जिन्होंने सन्त्याग व्रत ले रखा है। बालात्तर में उनका ही प्रयोग इस प्रकार किया जाने लगा कि वह सूफी हो गया है।^३

यह भी कहा जाता है कि ऊनी वस्त्रों का प्रयोग मुसलमानों में ईसाई सतों से आया है। इसका प्रमाण यिनना है कि ७१६ ई० में उताफा अबहार ईसाइयों से लिया हुआ माना गया है। हसन अल बसरी के एक शिष्य फरकान् भावसी को इस ऊनी वस्त्र के व्यवहार के लिए दुरा बना कहा गया है। ७८४ ई० में हम्माद बिन सलमा बमरा में आया तो उसने फरकान् अल सानी को समझाया कि उसे ऊनी वस्त्र नहीं पहनना चाहिए क्योंकि वह ईसाइयों का वस्त्र है। बालात्तर में ऊनी वस्त्र का व्यवहार बन्द माना गया। सूफी साधकों ने इस धरना लिया। ऊनी वस्त्रों को इस्लाम सम्मन सिद्ध करने के लिए हथौठों का हवाला दिया गया। यहाँ तक कहा गया कि सन्त्यास करने के पश्चात् जब अबू बरर ऊनी चोगा पहन कर पगम्बर से मिलन गए तो उन्होंने पूछा कि तुमने परिवार वालों के लिए क्या छोड़ा है तो उन्होंने कहा था कि परमात्मा और उसके पगम्बर को। इस प्रकार की कथाओं से भी स्पष्ट है कि ऊनी वस्त्र सन्त्यास साधकों या परमात्मा के प्रेम में मस्त रहनेवाले सन्त्यासियों के लिए स्वीकृत हो चुका था।

‘सूफ’ (ऊनी वस्त्र) के साथ ही सूफी धर्म के मिलसिने में सफा का भी बड़ा महत्व है। ‘सफा सबत्र प्रशस्तीय है। पवित्रता परमात्मा के प्रेमियों का

१—श्री रामपूजन तिवारी सूफीमत-साधना और साहित्य पृ० १६०-६६।

२—डा० विमलचन्द्रमार जन्, सूफीमत और हिन्दी साहित्य पृ० ४।

३—बाउन, ईसाइयतोंकीडिया आफ रिजिजन एण्ड एथिकस, भा० १२ पृ० १०।

४—श्री रामपूजन तिवारी, सूफीमत साधना और साहित्य, पृ० १७२।

विगिष्ट गुण है। व मेघमुक्त सूयों की तरह हैं। अतार ने जो सूफी शब्द की सत्तर परिभाषायें की हैं उनमें १३ में सफा शब्द का प्रयोग है। जब कि सफा शब्द का प्रयोग केवल दो बार किया गया है।^१

यह बात ठीक ठीक ज्ञात नहीं है कि सबसे प्रथम किसके नाम का साध उपाधि रूप में 'सूफी शब्द' का प्रयोग किया गया।

जामी^२ का कथन है कि सूफी शब्द का सबसे प्रथम प्रयोग कूफा के अल हाशिम (ई० ७७७) के नाम के साथ हुआ। मामित्रो^३ का कथन है कि सूफी शब्द का प्रथम प्रयोग करने वालों में इन हीयान मुख्य हैं। उसने लिखा है कि ८१४ ई० के आस पास कूफा में मुस्लिम रहस्यवादीयों का सम्प्रदाय विद्यमान था। इसके अंतिम प्रधान अमरुत सूफी की मृत्यु ८२५ ई० में हुई। निक्मन^४ के मतानुसार अमरुत का जाहजिन (८६६ ई० में) सबसे प्रथम सूफी शब्द का प्रयोग किया था।

प्रारम्भ में वह शब्द यक्षियों के नामों के साथ सततत्व की उपाधि के रूप में जुड़ा रहता था, किन्तु पश्चात् वर्षों में ही भीतर इसका प्रयोग समस्त ईरान के रहस्यवादी साधकों के लिए होने लगा और दो सौ वर्षों के अन्दर ही सम्पूर्ण इस्लाम के रहस्यवादी साधकों के लिए होने लगा। तब से लेकर आज तक इस्लाम के सत रहस्यवादियों के ही लिए इसका प्रयोग होता है।

सूफीमत का आविर्भाव प्रारम्भिक इतिहास

सूफीमत का इतिहास तब से प्रारम्भ होता है जब मुहम्मदसाहब मक्का से मदीना गए थे।^१ अतः ६२३ ई० के आसपास इसका प्रारम्भ मानना चाहिए। प्रवृत्तिमूलक इस्लामी धर्म में पहली बार कतिपय ऐसे व्यक्ति सामने आये जिनमें भक्ति का सन्निवेश हुआ। आमा का गुद्दीकरण प्रारम्भ हुआ। इनमें अमरुत के अल्हमन (६४३ से ७२८ ई.) इब्राहिम बिन अधम (म० ७८३ ई.), अयाज (म० ८१ ई०) राबिया (८१ ई०) आदि हैं। राबिया अमरुत की रत्न धात्री थी। उसमें सबसे प्रथम प्रेम दर्शन का उदात्त और प्रखर रूप सामने आया है। एक स्थान पर उसने कहा है— पदा के प्रेम ने मुझ दर्शन अभिभूत कर दिया है कि मरे

१—श्री रामपूजन तिवारी सफीमत साधना और साहित्य प० १७३।

२—जामी मफातुन उमर नमाऊ नीज द्वारा संपादित कलकत्ता, १८५६ ई०

पृ० ३४ और ए निटरेरी हिस्ट्री आफ दी अरब्स पृ० २२६।

३—इसाइकोपीडिया आफ इस्लाम वाल्यूम ८ १६३४ पृ० ६८१।

४—इसाइकोपीडिया आफ रिजीजन एण्ड एविक्रम, वाल्यूम १२, पृ० १०।

५—मोहम्मदनिम एच० ए आर० गिंस पृ० १० १०१।

मार हैं। 'सन्तम रामक (अद्दुहमाण) आनि प्रअश प्रथाम समासपद का पतिप्रम देखा जा सकता है जैसे णवर चरण विनगिया। 'वही वान जायसी के लीक परवान म दशमीय है —

(१) नीक परवान पुरुष कर बोला। (—परवान लीक)

(२) भा भिनुसार किरिल-रवि पूगी। (—रवि-किरिल)

इसी प्रकार अ-यय-यय का लाय भी अपभ्रंशवान में ही प्रारम्भ हो गया था। इतना तो स्पष्ट है कि परवर्ती व्रजभाषा के कवियों के समान वडगा ताड-मरोड जायसी म नहीं है।

तुलसीदास नृननात्मक सस्मृत परम्परा के जानकर थे। अतः उनकी भाषा में प्राचीनता के प्रत्येक उक्षण और सस्मृत पदावलिया के विग्राम मिल जाते हैं परन्तु जायसी की पहुँच उतनी दूर तक नहीं थी। अतः वे सस्मृतनिष्ठ भाषा नहीं निम्न राके हैं। उनमें ठेठ अरमी का ही निराना माधुम्य है। पुरानी अपभ्रंश परम्परा के प्रयोग उनकी भाषा में मिल जाते हैं। ये प्रयोग मम्मदतत्त्वज्ञानी प्रचलित वाचाल की परम्परा में उठ चुके थे। परमावत में कई पुगली विभक्तियों के प्रयोग भी पाए जाते हैं। जम—अपभ्रंश की सम्प्रदायवाचक ह या 'हि विभक्ति सभी कारका में प्रयुक्त हुई है। सम्प्रदायवाचक तन का रूप भी जायसी में मिल जाना है। पचमी में प्रयुक्त प्राटन की गुना और अपभ्रंश की 'हुनो विभक्तियाँ जायसी में हूँ होकर आई हैं —

जब हूँत कल्या पति सैमी। सुनिउँ वि आवा है परैमी ॥

'तव हूँत तुम विनु रहे न जीऊ। चानक भइउँ कउन विउ पीऊ ॥

तुलसीदास और जायसी दोनों कवियों ने कवियत्र प्राचीन अपभ्रंश शब्दों का भी प्रयोग किए हैं। जम—निनिअर गमहर अहूँठ पुगी रिगन्तर सरह आनि। परमा वन की भाषा मूलन अवधी है परन्तु उनमें कही कदा पुरुष-भ-शय परिवर्ती रूप भी मिल जाते हैं। सर्वमत्त भूवरातिक विद्या-रूपा के विन और वचन अधिकतर पचिमी हिन्दी के ढंग पर कर्मानुसार प्रयुक्त हुए हैं। जम—धमिठन आइ कनी यह बाना।

साधारण विद्या में 'आउअ 'आव आनि वकारान रूपों के अनिश्चित उनके 'आवन, 'जान आनि नकारान्त रूप भी मिल जाते हैं। गडी बोनी की भाँति जायसी की अवधी में अरमक टूटन (जो कभी-कभी उपवर्त भी होते हैं) प्रयोग भी मिलते हैं। जैसे —

बड महाजन गियनगोनी ।

रहा न जावन आव तुदापा ।

जायसी ने 'अध वार आनि धानुओं का भी प्रयोग किया गया है। य धगला और

मथिली में अब भी चलती हैं —

‘माञ्जु हिनन अकाश ।

कवल न आछै आपनि धारी ।

सम्भव हैं तत्कालीन ठठ अवधी में यह प्रयोग प्रचलित रहा हो ।

इस प्रकार स्पष्ट है कि पदमावती की भाषा ठठ अवधी है तथापि उसमें पूरबी हिन्दी, पश्चिमी हिन्दी तथा प्राचीन अपभ्रंश के चिह्न मिल जाते हैं । मसला की भाषा ठठ अवधी है । चित्ररेखा की भाषा कहीं-कहीं संस्कृतनिष्ठ अवधी है ।

समष्टि रूप में कहा जा सकता है कि लोकभाषा का जायसी जसा गुप्त और साधक प्रयोग हिन्दी के किसी कवि ने नहीं किया है । प्रायः सभी अष्ट कवि संस्कृतनिष्ठ भाषा संस्कृत पदावली और संस्कृत के काव्यशास्त्र का पद-पद आश्रय लते हैं किन्तु धरती पर प्रवाहित होने वाली सब सुलभ सामान्य लोक-भाषा की जनगणना को वाच्यता के छाया-तले लाने का भागीरथ प्रयत्न किसी अष्ट कवि ने नहीं किया । इस दृष्टि से जायसी की भाषा का बड़ा महत्व है ।

सूफीमत . जायसी की प्रेम-साधना

'सूफी' व्युत्पत्तिमूलक अर्थ

'सूफी' शब्द की व्युत्पत्ति के विषय में बड़ा मतभेद है। विविध तर्कों एवं युक्तियों के द्वारा इस शब्द की विभिन्न व्युत्पत्तियों को सगत एवं समीचीन ठहराने के प्रयत्न किए गए हैं। प्रायः ये व्युत्पत्तियाँ सूफी साधकों के जीवन, को लक्ष्य में रखकर दी गई हैं। अब नसर अल सर्राज ने 'किताब अल-सुमा' में इस शब्द के विषय में लिखा है कि मूलतः सूफी शब्द अरबी के 'सूफ' शब्द से व्युत्पन्न है। इसका अर्थ ऊन है। भाषाशास्त्री इस व्युत्पत्ति को ठीक मानते हैं। अन-सर्राज का इससे विषय में कथन है कि ऊन का व्यवहार सत, साधक एवं पगम्बर लोग करते आए हैं, विभिन्न हृदीसों और विवरणा से यह बात स्पष्ट है। अतः 'ऊनी लिबास धारण करके एकांतिक जीवन व्यतीत करने वाले साधकों को दृष्टि में रखकर यह नाम रख दिया गया हो इसमें कुछ असंगति नहीं मालूम होती। नोएल् के ने भी इस व्युत्पत्ति का समर्थन करते हुए स्पष्ट कर दिया है कि इस्लाम की प्रथम दो शताब्दियों में प्रायः लोग ऊनी वस्त्रों का प्रयोग करते थे साधारण जीवन व्यतीत करनेवाले साधक तो इस प्रकार के 'ऊनी घोषा विशेष' का व्यवहार करते ही थे।' अनेक सूफियों, भाषा वज्ञानियों और अध्यात्मशास्त्रियों ने इसी मत के समर्थन में अपने मत प्रकट किए हैं। साउन ने इसी मत का समर्थन किया है। मासूदी को मूल आधार मानते हुए उसने लिखा है कि प्रारम्भिक काल से ही लोगों ने ऊनी वस्त्र धारण करने को जीवन की सहज साधना, सवता और वित्तासिता से दूर रहने का

१-स० जेम्स हेस्टिंग्स, इन्साइक्लोपीडिया आव रिलिजियन एण्ड एपिक्चर,
वाल्यूम १२ १९२१।

२-६० जी० बाउन, लिटरेरी हिस्ट्री आव परसिया (१९०६), पृ० ४१६।

प्रतीक मान लिया था।^१ हजरत मुहम्मद और उनके बाद के चार खलीफों ने भी इसी बात पर बल दिया था। अब बकर अल कलावधी^२ एव इत खल्दन ने भी सूफी शब्द को सूफ से ही 'युत्पत्ति' बताया है। 'नूई' मासियो ने भी इसी 'युत्पत्ति' को सर्वोत्तम माना है।^३

कतिपय विद्वान सूफी शब्द की 'युत्पत्ति' 'सफा' शब्द से मानते हैं। सफा अर्थात् पवित्र। कुछ लोग का कथन है कि 'याकरण' में सफा शब्द से सफवी रूप होगा 'सूफी' नहीं। हुज्वरी का कथन है कि मूलतः सफा शब्द से ही सूफी शब्द बना है। उसका कहना है कि जो लोग पवित्र थे वे सूफी कहलाए। कुछ विद्वानों का विचार है कि पैगम्बर मुहम्मद साहब के समय में मदीने की मस्जिद के सामने बेंच पर बैठने वाला संतों— अहल अल सुफफाह^४ के सुफफाह शब्द से ही 'सूफी' शब्द बना है। इस प्रकार जो लोग उस चबूतरे (सुफफ) पर बैठते थे वे सूफी कहलाए। इस 'युत्पत्ति' में भी वही दोष है— सुफफाह शब्द से सुफफी बन सकता है 'सूफी' नहीं। कुछ विद्वानों के अनुसार सफफे-अ-बन के सफफ शब्द से 'सूफी' शब्द बना है। सफफे-अ-बन अर्थात् प्रार्थना में निरत ईमान लाने वालों की पहली पक्ति। इस 'युत्पत्ति' के विषय में भी वही बात है कि सफफ शब्द से सफफी बनेगा सूफी नहीं। कुछ लोग बन् सूफा नामक एक यायावर जाति के 'सूफा' शब्द से इसकी व्युत्पत्ति न बताते हैं। सूफी संत भी अपने शिष्यों के साथ स्थान स्थान पर घूम करते थे। कतिपय विद्वानों ने ग्रीक शब्द सोफिस्ता में सूफी और थियोसोफिया शब्द से तस-वुफ की 'युत्पत्ति' करने के प्रयत्न किये हैं। सोफिया का अर्थ है ज्ञान। इस विषय में कहा जाता है कि सूफी साधक अनुभव सिद्ध ज्ञान को महत्वपूर्ण मानते हैं। अलबहनी (अमकाल ६७३ ई०) के समय में भी यह मान्यता थी कि सूफ (अन के अर्थ में) शब्द में सूफी शब्द बना। पर उसने यह मत प्रकट किया है कि उच्चारण में विकृति के कारण सूफी शब्द की 'युत्पत्ति' सूफ से ही जाने लगी।^५ उसका कथन है कि इसका अर्थ वह युवक है जो साफी (पवित्र) है। उनके अनसार यह साफी ही सूफी हो गया है। सूफी अर्थात् विचारको, वादल।^६ ब्राउन का कहना है कि यह निश्चित है कि सूफी शब्द की युत्पत्ति

१—इ० जी० ब्राउन, 'त्रिटरेरी हिस्ट्री ऑफ परशिया (१६०६) पृ० ४१७।

२—ए० एम० शुश्तरी, 'आउट लाइंस ऑफ इस्लामिक कल्चर वाल्यूम २०, (१९३८) पृ० ३७४।

३—इ. साइकनोपीडिया ऑफ इस्लाम, वाल्यूम ८ (१९३४) पृ० ६८१।

४—शुश्तरी 'आउट लाइंस ऑफ इस्लामिक कल्चर वाल्यूम २ सं० ४ पृ० ३७४।

५—अलबहनीज इण्डिया, अनु० सचाऊ पृ० ३३। ६—वही पृ० ३३।

हृदय में अन्तर्निहित प्रेम के प्रति न तो प्रेम शेष रहा, न घणा शेष रही ।^१

भारत में सूफीमत का प्रवेश

भारत में सूफीमत के प्रवेश की एक निश्चित तिथि बनाना कठिन है लेकिन इसमें संदेह नहीं कि यह प्रवेश मुसलमानों के आक्रमण के बाद ही प्रारम्भ हुआ । मुलाहिब ने ६६४ ई० में भारतवर्ष पर आक्रमण किया था । उसने मुल्तान, लाहौर और बग्नू तक के प्रदेश को लूटा था ।^२ ७११ ई० में मुहम्मद बिन कासिम ने बसरा के ग़ासक हज़ाज बिन युसूफ के आदेश से भारतवर्ष पर चढ़ाई की । उसने सिन्ध में मुल्तान तक के प्रदेश को जीत लिया । एक ओर तो इस प्रकार के लूटेरे और देश को जीतने वाले आक्रमणकारी आते रहे और दूसरी ओर व्यापारी । इसी समय के आस-पास दक्षिण भारत में अरब व्यापारियों के दलों के आने-जाने का उत्सव मिलता है । इन दलों के साथ आने वाले सईद नयरागाह और वावा फरवर अलदीन (फरवरुद्दीन) के नाम इस्लाम धर्म प्रचारकों में मुख्य हैं । मुसलमानों की सशक्त विजय के साथ इस्लाम का प्रचार तीव्रतर होता गया । कहा जाता है कि 'जव-स्ती धर्म-परिवर्तन करने वालों का प्रभाव सिन्धुओं पर नहीं पड़ा, लेकिन शांत और उदार सूफी साधकों ने उनके हृदय पर विजय प्राप्त करना आरम्भ कर दिया । ईसा की तेरहवीं शताब्दी में तथा उसके बाद बड़-बड़ धर्म प्रचारकों पीरा और सूफी साधकों के नाम मुन्नब की भिन्तें हैं । ईसा की चौदहवीं शताब्दी में इनका पूरा जोर रहा । धर्म प्रचारकों का यह जोर ईसा की पंद्रहवीं और सोनहवीं शताब्दी में बहुत कम ही गया और सोनहवीं शताब्दी में प्रायः नुप्त हो गया ।^३

शरह इस्माइल (१००१ ई०) नयरागाह (१०३९ ई०), गाह मुल्तान हमी (१०३५ बगान में आए थे) अ-दु-रा (१०५१ ई० में) दक्षिण-प्रवेश (१०७२ ई०) आदि सूफी दरवेश भारतवर्ष में धर्म प्रचार करने आए थे । अतः द्वितीय न 'कश्फ अल महजब' में सूफीमत का सुन्दर विवरण किया है । वह एक महान सूफी साधक था । वह कने के रूप में भारत में आया था । वह दानागवरग नाम से प्रख्यात है । उसकी मृत्यु लाहौर में १०२६ ई० में हुई । क़ाज़ा मुईनुद्दीन चिश्ती (११६० ई०) के आगमन के पश्चात् स भारत में सूफीमत का प्रमत्त इतिहास भिन्न लगता है ।

ईसा की तेरहवीं और चौदहवीं शताब्दी में सूफियों का पूरा जोर देश के कई भागों में रहा । पंजाब, कश्मीर, डक्कन, तथा देश के पूर्वी भाग में इन दो

१-मध्यपुरीन प्रमाहयान, डा० श्यामसागर पाण्डेय पृ० ४५ ।

२-गनीसरी आक पंजाब टाइम्स एण्ड कास्ट (१६१९), वाल्यूम १ पृ० ४६६ ।

३-श्री रामपूजन तिवारी, सूफीमत साधना और साहित्य पृ० ४०७ ।

शताब्दियों में इनका काय पूरे जोश के साथ हुआ।

यद्यपि सूफी सन्नों को इस्लाम प्रचारक कहा जाता है, तथापि इन्हें केवल इस्लाम का प्रचारक कहना ठीक नहीं है। वस्तुतः ये अत्यन्त उदार दृष्टिकोण के सत थे। लोग इनसे प्रभावित होकर मुसलमान बन जाते थे, फिर भी इनमें धार्मिक दृष्टिकोण बढ़ा यापक और उदार था। ये इस्लाम को अवश्य मानते थे पर विचार धारा की स्वतन्त्रता और धार्मिक विधि विधानों के क्षेत्र में स्वतन्त्रता के पक्षपाती थे। विधि विधानों का उल्लंघन करने के ही कारण घुल नून मिस्त्री एवं मसूर अल हस्लाज को बठोरतम दण्ड भोगने पड़े थे।

रुमी तक जिस उदात्त भावना के साथ सूफी मत का प्रचार हुआ था वह धीरे धीरे जन साधारण के लिए दुरूह होता गया। धार्मिक विधि विधान प्रमाद पूर्ण जीवन भिक्षा के साधन अशिक्षित जनों की प्रवचना प्रभक्ति अनेक मार्गों ने इसमें प्रवेश पा लिया। अतः में गिया सुन्नी विरोध ने सूफीमत को फारस में सदब क लिए उखाड़ फेंका। विद्वानों का कथन है कि गिया मत द्वारा ही सूफी मत का फारस से अंत हो गया।^१

औरंगजेब के पूर्ववर्ती मुगल सम्राटों के शासनकाल में भारत में सूफीमत की बड़ी उन्नति हुई। कहा जाता है कि फारस अरब तथा पश्चिमी एशिया के दूसरे देशों में बौद्धमत का पर्याप्त प्रचार हुआ था। सूफियों ने माला जपने की क्रिया बौद्धधर्म से ली है।^२ सूफियों में सहृद खाने का निषेध और अहिंसा पानन के सिद्धान्त जनधर्म से लिए गए हैं।^३ मसूर भारतीय चमत्कार विद्या इंद्रजाल के अध्ययन के लिए भारतवर्ष में आया था।

भारतवर्ष के योगमत का भी सूफियों पर पर्याप्त प्रभाव पड़ा है। आसन प्राणायाम आदि के लिए सूफी योगिया के ऋणी हैं। अबू सईद (म० यु० १०४२ ई०) ने योगिया से ही ध्यान धारणा की बातें सीखा थीं। फरीदुद्दीन अत्तार शख सादी प्रभृति अनेक प्रख्यात सूफी भारतवर्ष में आए थे।^४ उनके साथ ही फरीदुद्दीन फकरगज, हुज्वीरी आदि सूफी साधक धर्म प्रचाराय आए थे। धीरे धीरे सूफी साधकों ने धर्म प्रचार

१-विनोप के लिए देखिए, ए हिस्ट्री आफ परशियन लिटरेचर इन माडन टाइम्स, पृ० २७।

२-दि मिस्टिक आफ इस्लाम इटोडकान पृ० १७।

३-स्टडीज इन इस्लामिक पोइटी पृ० १३७।

४-दी स्पिरिट आफ इस्लाम पृ० ४५६।

५-ए लिटरेरी हिस्ट्री आफ परशिया वा० २ प० ५०० से ५३०।

की ओर और हिन्दुओं को मुसलमान बनाने की ओर ध्यान नहीं दिया ।^१ सूफियों को पहली बार एक ऐसी सत्कृति, एक ऐसी सम्पत्ता और एक ऐसे घम से पाला पड़ा कि वे उनसे प्रभावित हुए बिना न रह सके । उन पर भारतीय वातावरण का बहुत बड़ा प्रभाव पड़ा । मूलतः सूफी साधक और शान पिपासु थे । उन्होंने भारत वर्ष के अनेक घमों और विचारों का अध्ययन किया । धीरे धीरे एक ऐसा समय आया जब इस्लाम का सबधृष्ट मानन की हठधर्मिता उनमें नहीं रही । मूलतः सूफियों में हठधर्मिता कभी नहीं रही । इसीलिए फारस और भारत में (औरगजेब के काल में) उन्हें अनेकानेक याननाएँ मंहनी पड़ीं ।

ईश्वराराधन उसका ध्येय था, प्रेम उसका मूलमंत्र था । एकश्वरवाद में उनका आस्था थी । उनके लिए हिन्दू मुस्लिम एक अल्लाह की ही सतान थे, उनकी दृष्टि में जाति भेद निस्सार था । अनेक हिन्दू भी इसी प्रेम-व्यवहार के कारण उन पर श्रद्धा रखते थे ।

१४ सूफी संप्रदायों का उल्लेख

विद्वानों का कथन है कि अक्बर भी चर्चारिवत एक सूफी था । अबुल फजल ने 'आईन-ए-अकबरी' में तत्कालीन चौदह सूफी संप्रदायों का उल्लेख किया है— चिश्ती सुहारावर्दी हबीबी, तफूरी करवी, सक्ती, जुनेदी, काजरुनी तसी किरदीसी जदी इयाग, अवमी और हुवरी ।

१—चिश्ती संप्रदाय

भारतवर्ष के चार प्रमुख सूफी संप्रदायों में चिश्ती संप्रदाय का स्थान बड़े महत्त्व का है ।^१ कुछ विद्वानों का विचार है कि इस संप्रदाय के प्रवर्तक स्वामी इस हान सामी चिश्ता है ।^२ बहुत से विद्वानों की राय में स्वामी अबू अबदाल चिश्ती ही इस संप्रदाय के प्रवर्तक हैं । कहा जाता है कि स्वामी अबू-अबदाल स्वामी इसहाक सामी के शिष्य थे । अब इसहाक सामी एगिया माइनर में आकर चिश्त (सुरासन) में रहने लगे इसीलिए इस संप्रदाय की लागू चिश्ती कहने लगे ।

भारतवर्ष में चिश्ती संप्रदाय के प्रवर्तक स्वामी मुईनुद्दीन चिश्ती (११४२ ई० में १२३६ ई०) हैं । इनका जन्म सीम्तान के सजर शहर में ११४२ ई० में हुआ था । इन्होंने भीगपुर, भक्ता, गणौता और सुरासान की यात्रायें की थीं । तत्कालीन

१—ऐन एवशामिनेगन आफ दी मिस्टिक टेडे सीत्र इन इस्लाम, (१६३२) पृ० १४२ ।

२—इस्लामिक सूफीय, पृ० २८५ ।

३—जान ए० सुमान, सूफीज्म इट्स सन्ट्स एण्ड साइंस, पृ० १७४ ।

४—ग्लोसरी आफ टाग्ल्स एण्ड वास्ट्स आफ पंजाब, १६१६ ई०, पृ० ५२८ ।

अनेक सतों से इनका सम्बन्ध था। अतः मय गजनी चले आए और ११६२ ई० में गहाबुद्दीन गौरी की सेना के साथ दिल्ली आए। य ११६५ ई० में अजमेर गए और वही स्थायी रूप से रहने लगे। अजमेर में ही १२३६ ई० में ६३ वर्ष की अवस्था में इनकी मृत्यु हो गई।^१ ये बहुत बड़े सूफी सत माने जाते हैं। इनके शिष्यों में नुतुबुद्दीन बख्तियार शैख फरीदुद्दीन शकरगज निजामुद्दीन औलिया अलीअहमद साबिर और शैख सलीम अत्यन्त प्रसिद्ध हैं। इन शिष्यों के भी अनेक शिष्य प्रशिष्य हुए। इन शिष्यों ने चिश्ती संप्रदाय का सदेव सम्पूर्ण भारत में पहुँचाया। अमीर खुसरो को निजामुद्दीन औलिया का शिष्य कहा जाता है। निजामुद्दीन औलिया ने औलिया' नामक एक स्वतंत्र सम्प्रदाय चलाया, जिसका केन्द्र बदायूँ बना। कहा जाता है कि शैख सलीम चिश्ती के ही आशीय से अकबर को पुत्रोत्पन्न हुआ था जिसका नाम अकबर ने उसी के नाम पर सलीम रखा था। चिश्तिया सम्प्रदाय के सयद अशरफ जहाँगीर का नाम जायसी ने बड़े आदर के साथ लिया है। उसमान के गुरु चिश्ती सम्प्रदाय के थे।

२—सुहरावर्दी सम्प्रदाय

श्याजा हसन निजामी^२ उसे कुछ विद्वान ऐसे भी हैं जो मानते हैं कि सुहरावर्दी सूफी ही सर्वप्रथम भारत में आए थे और वे सिंध में आकर बस गए थे।

सुहरावर्दी सम्प्रदाय के प्रवक्ता या तो शहाबुद्दीन सुहरावर्दी थे या शैख जियाउद्दीन अथवा जियाउद्दीन के पिता अबुल नजीब।^३ शहाबुद्दीन के लिए कहा जाता है कि इनकी कब्र मुल्तान के किने में है, पर यह गलत है। इनकी कब्र बगदाद में है। य कभी भी भारतवर्ष में नहीं आए थे।

भारतवर्ष में इस सम्प्रदाय के प्रवक्ता हैं बहाउद्दीन जकारिया (मृत्युकाल १२६७ ई०)।^४ डा० रामकुमार वर्मा का कथन है कि भारत में सर्वप्रथम इस संप्रदाय को प्रचारित करने का प्रयत्न सयद जलाउद्दीन सुखपोष (मृत ११६६-१२६१ ई०) को है जो बुखारा में उत्पन्न हुए और स्थाई रूप से ऊच (सिंध) में रहे।^५

१—इनके विषय में विज्ञाप जानकारी के लिए देखिये—(क) ग्लिम्पसेज आफ मेडियल इण्डियन कल्चर पृ० ३६ ३७ ३८ (ख) नाइफ एण्ड टाइम्स आफ नेल्स फरीदुद्दीन गजेशकर खालिक अहमद निजामी पृ० ८०

२—ऐन इटोडक्शन टू दी हिस्ट्री आफ सूफीज्म इटोडक्शन पृ० ८।

३—मनोमरी आफ पनाब कार्टेस एण्ड टाइम्स प्रथम खण्ड, प० ५४४।

४—वही प० ५४४।

५—श्री रामपूजन तिवारी सूफीमत साधना और साहित्य, प० ४६६।

६—डा० रामकुमार वर्मा, हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास पृ० ३०४।

एन्होंने भारत के अनेक स्थानों में प्रचार किया। सिन्ध, गुजरात पंजाब आदि स्थानों में इनके केंद्र स्थापित हो गए थे। जलालुद्दीन तबरीजी सयद जलालुद्दीन मस्दूम जहानिया बरहानुद्दीन कुतुबे-आलम आदि सतों ने बंगाल, सिन्ध, बिहार गुजरात आदि स्थानों में इस संप्रदाय का प्रचार किया। १५वीं शताब्दी तक संप्रदाय ने संपूर्ण भारतवर्ष में अच्छा प्रचार किया। इस संप्रदाय वालों ने कई राजाओं को भी अपने धर्म में दाक्षिण किया। हैदराबाद का वर्तमान राजवंश भी इसी संप्रदाय की परम्परा में है। फिरदौसिया भी सुहारवर्दी संप्रदाय की एक शाखा है। मगावती के रचयिता कुतबन इसी संप्रदाय के थे।

३-कादरी सम्प्रदाय

इस संप्रदाय के प्रवर्तक हैं अबुल कादिर अल जीलानी (१०७८-११६६ ई०)। भारतवर्ष में इस संप्रदाय का प्रवर्तक महम्मद गौस थे। आज भी पेशावर से दिल्ली तक के लोग इनका नाम बड़े आदर से लेते हैं। दिल्ली का मुल्तान सिक्न्दर लोदी इनका ही गिण्य था। मुल्तान ने अपनी नदियों की गादी इनसे कर दी थी। ये १४२८ ई० में भारतवर्ष में आए थे। गौस ने सिन्ध (ऊँच) को अपना केंद्र बनाया था। वही पर १५१७ ई० में इनरी मर्यु हुई। इस संप्रदाय के सत्ता में भावोन्मत्त की प्रधानता थी। इस संप्रदाय वाले प्रायः अपनी टोपी में गुलाब का फूल लगाए रहते हैं। यह फूल इस संप्रदाय में अत्यन्त पवित्र माना जाता है। इस पगवर का प्रतीक भी माना जाता है। कादरी संप्रदाय का दो प्रमुख उपसंप्रदाय हैं-१-रजा किया और २-बहाविया। इसी संप्रदाय में प्रसिद्ध सत शेर मीर मुहम्मद मियाँमीर हुए हैं। ये दारागिरोह का दोशा गुरु थे। मियाँमीर के प्रिय गिण्य नरय मियाँ की भी बड़ी ख्याति है।

४-नकशबन्दी सम्प्रदाय

रहमत ऐन अल-हयात का अनुगार इस संप्रदाय के प्रवर्तक ख्वाजा उबदुल्लाह हैं। साधारणतः ख्वाजा बहाउद्दीन नकशबन्द (मर्यु १३८६ ई०) को ही इस संप्रदाय का प्रवर्तक माना जाता है। इस संप्रदाय की बड़ी व्यापक प्रतिष्ठा रही है। टर्की, चीन, भारत, जावा आदि देशों में भी इस संप्रदाय का अनुयायी पाए जाते हैं। भारतवर्ष में इस संप्रदाय का प्रचार करने वाले ख्वाजा बाकी गिल्लाह बरग माने

१-विशेष विवरण के लिए देखिए, इंडियन कल्चर, वा० १ पृ० ३६६-६७।

२-सूफीज्म इटल सेंट्स एण्ड थ्यान्स, पृ० ५३८।

३-रोज दी दरविशेस, पृ० ६६।

४-वही पृ० ४३५।

जाते हैं। वे अपने शैल के आदम पर भारत में आये थे। वे दिल्ली में आकर बस गए थे। यही पर आने के तीन वर्ष पश्चात् उनकी मृत्यु हुई। भारतवर्ष में इस संप्रदाय का प्रभाव विस्तार अहमद फारूकी के द्वारा हुआ। इनका जन्म सरहिन्द में १५६३ ई० में हुआ था। जहांगीर के शासनकाल में इस संप्रदाय वालों का बड़ा जोर था, पर स्वयं जहांगीर इनसे अप्रसन्न था। जहांगीर ने इन्हें कद भी बर लिया था और इसी कारण इन्होंने अपने परिवार वालों को अफगानिस्तान भेज दिया था। डा० रामकुमार वर्मा का कथन है कि जनसाधारण की दृष्टि इस संप्रदाय की ओर आकर्षित नहीं हुई। सफी संप्रदाय के अतन्त्र नयाबंदी संप्रदाय सबसे अधिक निबल और प्रभावहीन रहा।

५-शक्तारी संप्रदाय

भारतवर्ष के प्रमुख सूफी संप्रदायों में यह भी एक है। भारतवर्ष में इससे प्रवृत्त फारस के अब्दुल्ला शक्तारी हैं।^१ इनकी मृत्यु मानवा में १४०६ ई० में हुई। मुहम्मद गौस इमी संप्रदाय के सत हुए हैं। ये हुमाय के दीक्षा गुरु थे।^२ इस संप्रदाय वाले 'मैं हूँ और मैं एक हूँ' का सिद्धान्त मानते हैं। ये 'फना' की अवस्था को नहीं मानते। शाहपौर बहाउद्दीन जोनपुरी और सीयत अली कौसाम इस संप्रदाय के प्रसिद्ध सत हुए हैं।^३

६-मदारि संप्रदाय

इस संप्रदाय का भारत में प्रवृत्त करने वाले हैं शाह मदार बंदीउद्दीन। यह मूलतः उन्नीस संप्रदाय ही है। उत्तर भारत विशेषकर उत्तर प्रदेश में इसका १६वीं शती में बड़ा प्रचार हुआ था। अब्दुल कदूस गगुई और शाह मदार महान सतों में गिने जाते हैं। कथा जाता है कि जायसी की मा ने शाह मदार की मनोनी की थी और शीतना या अर्द्धांग रोग से जायसी तो बच गए, पर इनकी एक आँख जाती रही।

विशेष-

इन संप्रदायों का अपनी सरल ईश्वरोमुखी भावना के कारण जन-समुदाय में विशेष रूप से प्रभाव पड़ता रहा और समाज के निम्न घरातल के व्यक्ति जिन्हें हिन्दू समाज में विशेष सुविधाएँ नहीं थीं इन संप्रदायों में दीक्षित होते रहे।^४

१-इण्डियन कल्चर भाग १ पृ० ३३८।

२-वही पृ० ३३६ तथा इन्साइक्लोपीडिया आफ रिलीजन एण्ड एथिक्स, वा०११ पृ० ६६।

३-इण्डियन कल्चर भाग १ पृ० ३३८। ४-वही पृ० ३४०-४१।

५-डा० रामकुमार वर्मा हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ० ३०६।

डा० विमलकुमार जैन का कथन है कि उपयुक्त संप्रदायों के सूक्ष्म विवेचन से प्रतात होता है कि इनका पूण उत्थान मुगल काल में ही हुआ। अकबर, जहांगीर आदि अनेक मुगल सम्राट पीरो के परम भक्त थे। शाहजहाँ का पुत्र दाराशिकोहता मुमलिम और हिंदू रहस्य ज्ञान का अच्छा वेत्ता था। उसने सूफी मत और चण्णत का गम्भीर अध्ययन किया। तदुपरांत उसने दोनों मतों के गूढ़ सिद्धान्तों की तुलनात्मक विवचना की और बनताया कि इसमें कोई तार्किक अंतर नहीं है। कनेवर भिन्न अवश्य है, परन्तु आत्मा एक ही है। बहादरगाह भी गह होते हुए एक सत से बन न था। उसकी अनक कविताओं में सूफी मत के उच्च सिद्धान्तों की बड़ी विशद व्याख्या है। प्रस्तुत वक्तव्य में इतना जोड़ देना आवश्यक है कि उपयुक्त विवचन के आधार पर स्पष्ट है कि भारत में सूफी मत का उत्थान १४वीं १५वीं शताब्दी में शुरू हुआ। मुगलकाल में यह उत्थान पूणता की प्राप्त हुआ। इन समस्त सूफी संप्रदायों में गुरु परम्परा और विनिष्ट बाह्याचारा का ही अंतर था। इन संप्रदायों में आध्यात्मिक नेता को शेर मुरशिद या पीर कहते थे। मुसलमानों से स्वाभाविकतः इहे सम्मान मिलता था। हिंदू भी इनका सम्मान देते थे। कहा जाता है कि हिंदुओं ने तलवार का आग गरदन झुका दी थी, परन्तु तलवार से जो विश्वास नहीं उत्पन्न किया जा सकता, उस काय को इन सूफी सतों ने पूण किया। इन सूफी सतों ने आध्यात्मिक राजनीतिक और सामाजिक दोषों में बड़ा महत्वपूर्ण काय किया। मृत्यु के अनंतर इन सतों के समाधिस्थान, दरगाह या मकदरे बने। दिल्ली, आगरा, अजमेर फतेहपुर सीकरी मुल्तान देहरादून आदि स्थानों पर अनेक पीरों के समाधि स्थल और दरगाह दशमीय तीर्थ बन हुए हैं। इन स्थानों पर प्रायः 'उग हुआ करो' हैं।

हिंदुओं में मूर्तिपूजा का प्रचार था। मुसलमानों पर भी इसका प्रभाव पड़ा। वे समाधि-स्थानों की यात्रा करने लगे। इन स्थानों पर, दीप, चढ़ाव आदि का शरा उठाने की पीरो की पूजा शुरू की।

सूफियों के कुछ सत पूणत जायसी का जीवन बिताने थे। सत्य अगरक जहांगीर को समार से विरक्त हो गया तब उठेन इस्फ़हान की बादशाहत का स्थापन करके सूफीमत में दोषों को ली। एक मुहाविरा है कि 'आवे खां रहे तो येहतर दरबशी खां रहे तो यहतर।' य मत भी ईश्वर के पक्षों भक्त होते थे ये प्रायः विरक्त जीवन ध्यतीत करते थे। ज्ञान प्रेम और ईश्वरीय विरह की अनुभूति

१-डा० विमलकुमार जैन सूफीमत और हिंदी साहित्य पृ० २६।

२-एन इन्डियन टु दी हिस्ट्री ऑफ सूफी-म, इन्डियन पृ० ८।

इनके लिए सबस्व थी। इनमें ज्ञान की उत्कट पिपासा थी अध्ययनशीलता विद्वत्ता और कभी कभी आश्चर्यजनक जादू आदि के कार्यों के कारण इनकी कीर्ति और विस्तार पाती गई। इन दरवशों के करामातों की कथाएँ भी बड़ी रोचक हैं। इन करामातों ने भी साधारण जनता को आकृष्ट करने में पर्याप्त योग दिया होगा।

डा० कमलकुन श्रेष्ठ^१ का कथन है कि भारतवर्ष में सूफी सिद्धांतों में कोई विशेष उत्पत्ति न हो सकी। परन्तु ऐसी बात नहीं है। यह सत्य है कि भारतीय सूफी सतों ने प्रायः फारस के सूफी सिद्धांतों का ही विशेष विश्लेषण किया, किन्तु भारतीय सूफी सतों ने सूफी धर्म का अनक महत्तम तत्व भी दिए हैं। दाराशिकोह और दातागज उपनिषदों के प्रकाश पड़ित हुए हैं। दाराशिकोह ने उपनिषदिक धर्म और सूफी धर्म में सामंजस्य स्थापन का सफल प्रयत्न किया है। सूफियों के तापसी जीवन में भारतीय सूफियों ने योग का महत्तम तत्व जोड़ दिया है।^२ दातागज ने भारतीय सिद्धांतों के प्रकाश में सूफी सिद्धांतों की व्याख्या की है। उन्हें बहुत बड़ा सिद्धांत—निर्माणा भी कहा जाता है। गोरखपंथी साधुओं की भाँति चमत्कार प्रदर्शन की वस्तु भी सूफियों में प्रचलित ही उठी थी। जो कुछ पिंडों से ब्रह्मण्ड का सिद्धांत सूफियों को यागियों से ही मिला।^३

भारतवर्ष में अद्वैतवादी दशन तो अत्यंत प्राचीन है। शंकराचार्य ने दसवीं शताब्दी में इनमें पुनः प्राण प्रतिष्ठा का महान अनुष्ठान किया। शंकराचार्य के ब्रह्मसूत्र का भाष्य कभी अनक भाष्य लिखे गए। विद्वानों का कथन है कि मध्ययुगीन समस्त भारतीय दार्शनिक सिद्धांतों पर इस दशन की छाप अवश्य लगी है। एकेश्वरवाद और अद्वैतवाद में साधारण लोग विभेद नहीं मानते। मध्य युग में उत्तरी भारत में गोरखपंथी योगियों के योग सिद्धांत की बड़ी धूम थी। योगमत की प्रयत्नता का अनुमान इसी बात से लगाया जा सकता है कि मध्ययुगीन कवि सूरदास नन्दाना आदि ने अपने अमरगतों में योगमत और प्रेमभक्तिमत का दृष्ट दिखाते हुए भक्ति को श्रेष्ठतर प्रतिपादित किया है। तुलसीदास ने भी खीझ कर कहा था गोरख जगायो जोग भगति भगायो योग।^४ कबीर पर योग संप्रदाय की पूरी छाप पड़ी थी। योग उनकी साधना का एक महत्वपूर्ण अंग था। यागियों में ध्यान धारणा प्राणायाम सहस्र समाधि आदि का प्रचार था। गोरखनाथ ने हठयोग की एक प्रमुख

१—दृष्टय कमलकुन श्रेष्ठ हिन्दी के प्रमाख्यानक काव्य।

२—ब्रह्मदायुनी मुतख्तुतवारीख भाग ३ अनुवाककरकिंग।

३—देखिय गोरखवानी (स० १९९९) प १३५।

४—बणीप्रसाद हिन्दुस्तान की पुरानी सम्यता (१९३१) प ३३१-३५।

५—तुलसीदास कवितावली उत्तरकाण्ड पद ८४।

साधन माना था। इना पिंगला और सुपुम्ना को भ्रमण गंगा, यमुना और सरस्वती की सजायें दी गई थी। इस प्रकार योगी शरीर में ही त्रिवेणी की स्थिति मानते थे। शरीर में ही विभिन्न चक्रों की स्थिति अमृत, सहस्रार, त्रिपुटी अनहदनाद ग्रहणध्र आदि की साधनामूलक बातें योगमन में अपना पूरा प्रभाव किए हुए थी।

मध्ययुग में शिव धर्म का प्रचार था। नाथपण्डितों का बोलचाल था, तान्त्रिक मान्दिक सिद्धों का भी खूब प्रचार था। ये सब प्रायः शिव के भक्त हुआ करते थे। शकराचार्य के अद्वैत के प्रचार और प्रबल प्रतिपादन के बावजूद भी योगिया न शिव की महत्ता को ही स्वीकृत किया।

मध्ययुगीन हिन्दू साधनाओं में सम वयात्मिका वृत्ति का प्राधान्य था। शर्वों और वृष्णवो तत्व की धार्मिक भावनाओं में समन्वय के भाव प्रबल हो उठे थे। शिव को विष्णुभक्त और विष्णु को शिवभक्त तत्व बना दिया गया। राम और कृष्ण के भेद भी मिट रहे थे। इन दोनों को एक न माना जाने लगा था। भक्त और भगवान का यत्किन्तु सम्बन्ध ज्ञान और प्रेम का समन्वय, ज्ञान के द्वारा या प्रेम के द्वारा चिन्मय में लीन होने की साधना, सृष्टि के लक्षण कृष्ण में परमात्मा की लीला, प्रमा भक्ति की महत्ता नाम महत्ता, नाम-स्मरण, भक्त की दीनता और आत्मसमर्पण की भावना प्रगति कतिपय सामान्य विश्वास मध्ययुगीन सन्तो में दृश्य हैं। कबीर ने भक्ति और माग दोनों की महत्ता को स्वीकार किया है। रहस्यवादी प्रणयमूलक भक्ति भी उस समय के हिन्दू धर्म में विद्यमान थी। ग्यारह आसक्तियों में कान्ता शक्ति भी एक थी। गोपीजी कृष्ण की भक्ति इसी भाव से करती थी। बल्लभाचार्य ने गोपी बनना मानव जीवन का परम लक्ष्य माना है।^१

भारतवर्ष के सूफी कवियों का आध्यात्मिक मूल स्रोत फारस का प्रेम काव्य रहा है। परन्तु यहाँ के शानावरण, काव्य और मत्ता से वे पूरन प्रभावित हैं। सूफी साधना पर बड़ा प्रभाव यागियों का है। सूफी सत्ता के पन्मावत मगावती, मधु माननी त्रिनाबली आदि सम्मान प्रभाकरानका में नाथक की योगाचार का सपादन करना ही पन्ता है—यह जवश्य है कि केवल योग से ही सब कुछ नहीं होना—उत्तम अंतर में प्रेम-भाव का होना अत्यन्त आवश्यक माना गया है। इन मभा काव्यों में गारमनाथ, भक्त हरि और गोपीनाथ का उल्लेख मिलते हैं। वषण-भूषा तथा आसन भी योगिका के ही ग्रहण किए गए हैं। प्रायः इन प्रमा स्थानों में शिव की अवतारणा की गई है। इस प्रकार स्पष्ट है कि योग

१-१० कवचकृत श्रेष्ठ हिन्दी प्रेमसाधनक काव्य पृ० १३६।

मन्वत् रा मगोत्तयां नन्दीनां च गोपुनः।

गोपिनाथं च यदन्तु मन्वत्तु मन्वत्तु मन्वत्तु मन्वत्तु ॥'

संप्रदाय ने सूफियों को सम्यक् रूप से प्रभावित किया है। जायसी के पदमावत में योगमत अपने पूण बभभवत्त रूप में उपस्थित है। सहजयानी सिद्धों की परम्परा और नाथ-योगियों की परम्परा इन दोनों के सम्पर्क में आकर जायसी ने जीवन में उनका प्रत्यक्ष अनुभव किया था उन्होंने दोनों की विशेषताओं को स्वीकार करके अपने काव्य में स्थान दिया।^१ इतना ही नहीं जायसी वृत्त पदमावत तो जैसे नाथ सिद्ध परम्परा का ही एक प्रतिनिधि आकर ग्रन्थ हो गया है—'उसका पूर्वार्द्ध भाग तो सहजयान मार्ग और नाथ-योगियों के मार्ग का जैसे प्रतिनिधि ग्रन्थ ही बन गया है। इसमें इन दोनों धाराओं के अधिक से अधिक सकेत कौशल से यथास्थान विरोध हुए हैं।'^२

'सूफी साधना में भी अद्वैतवादी दशन था। दाराशिकोह ने भी अद्वैतवादी दशन की महत्ता का स्पष्टीकरण किया है। जायसी ने भी अखरावट में अद्वैतवादी दशन के सिद्धांत की बातें लिखी हैं। इस्लाम के एकेश्वरवात् का भी सूफी समर्थन करते हैं। योगियों से प्रभावित होकर दाराशिकोह ने समाधि प्राणायाम आदि की क्रियाएँ दी हैं। धार्मिक सहिष्णुता एवं सामंजस्य की भावना भारतीय सूफियों की विशेषता है। प्रसिद्ध सन निजामुद्दीन औलिया ने कहा था, हर कौम रास्त आहे, दीन व किवला गाहे^३ (प्रत्येक कौम अपना रास्ता अपना धर्म और अपना मंदिर होता है)। जायसी ने भी इसी बात को स्पष्ट शब्दों में कहा था—विधिना के मारग हैं ते ते। सरगनखत तन रोवाँ जेते ॥ (अखरावट)। रहस्यवादी प्रणयमूना भक्ति सूफी धर्म की रीढ़ है।

तत्कालीन मुस्लिम आक्रमणकारियों और शासकों के अत्याचारों से जनता का मन अवश्य ही खिन्न था। सगण निगुण धाराओं में भक्ति की मदाकिनी प्रवहमान थी। वेदांत का प्रतिपादन विशिष्टाद्वैत द्वैत शुद्धाद्वैत और द्वैताद्वैत रूपों में हो रहा था।

प्रायः मध्यकालीन धर्मों में गुरु की महत्ता का प्रतिपादन मिलता है। सूफियों में यहाँ गुरु को ईश्वर की ही तरह महत्त्व दिया गया है। उसे पथ-प्रदर्शक माना गया है। रामानंदी बल्लभी आदि सम्प्रदायों में भी गुरु की महत्ता पर जोर दिया गया है। कबीरदास और उनके अनुयायियों में यहाँ भी गुरु की महत्ता का जमकर प्रतिपादन किया गया है। गोरखनाथ सूरदास, तुलसीदास आदि ने भी गुरु की महत्ता को स्वीकार किया है। ईश्वर की कृपा पर सूफी और भारतीय दोनों सत

१—टा० वासुदेवचरण अग्रवाल पदमावत प्राक्कथन, पृ० ४४।

२—वही पृ० ४४।

३—हिंदुस्तानी भाग १ पृ० १०५।

विश्वास करते हैं। दाराशिकोह ने लिखा है —

‘वास्तव में अपने गुरु एवं ईश्वर को पाना उसी की कृपा पर है मानव के प्रयत्न पर नहीं।’

तुलसलीदास भी ‘मूक की वाचलता, पशु की गतिमानता उसी की कृपा का फल’ मानते हैं। सूरदास के पृष्टिभाग में तो भगवान का अनुग्रह ही सब कुछ है। सूफियों का भी विश्वास है कि परमात्मा ही अनुग्रहपूर्वक प्रेम के वाण भारत है। उसने ही धरती, गगन आदि सबको प्रेम-अनुग्रह में अपनी ओर खींचा है। जायसी ने पदमावत, अक्षरावट, चित्र रेखा आदि में गुरु-परम्परा और गुरु महिमा का सविस्तार गुणगान किया गया है। उसकी भावना है कि बिना गुरु पथ न पाइय भूल सो जो भेंट। (पदमावत प० ६३) स्पष्ट है कि सूफी साधक का लक्ष्य है प्रियतम का साक्षात्कार और इस प्रेम पथ पर गुरु साधन है मार्ग दर्शक है। ‘पेम पियाला पथ लखावा। आपु चाखि माहि दूद चखावा। (चित्ररेखा)। गुरु की कृपा से समस्त पाप धुल जाते हैं। — घोवा पाप पानि सिर मला। (चित्र-रेखा, प० ७४)। कबीर ने गुरु गोबिंद तो एक है वह कर दोना में अंतर नहीं माना है। जायसी ने भी इसी बात की पृष्टि की है— ‘आपुहि गुरु आपु ही चेला। (अक्षरावट प० ३३४)।

जायसी की प्रेम-भक्ति साधना

सूफीमत में प्रेम का महत्व और जायसी

सूफी-साधना और साहित्य में प्रेम का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। उनकी साधना प्रेम की साधना है उनका साधना भाग प्रेम पथ है उनका साध्य प्रेम-प्रभु है, उनका एक भरोसा एक बल एक आस विश्वास प्रेम ही है। यदि सूरी साधकों को प्रमी-साधक कहा जाय तो असंगत न होगा। प्रेम उनके काव्य के समस्त प्रतीकों में सर्वश्रेष्ठ प्रतीक है। रति का जो आनन्द है वही प्रियतम का प्रतीक है। सूफी चाहे जिस किसी को प्रेम का पात्र बहें परन्तु उनका प्रियतम परमात्मा ही है। उसी प्रियतम को वे अपने प्रेम का आलम्बन मानते हैं। उसी के प्रेम में वे समस्त ससार को निमग्न देखते हैं। प्रेम के पुल पर चलाए ही सूफी साधक भवसागर पार करते हैं। प्रेम ही उनका अमोघ अस्त्र है वही उनका परम साधन है। ‘प्रम ज्ञान भारिक की भीति ईश्वरीय देन है यदि मरण सागर भी प्रेम को अजित करना चाहें तो वह मभव नहीं है। ईश्वर के प्रेमी ब हैं जिनमें ईश्वर

१—पदमावत का काव्य सौंदर्य पृ० २२१।

२—मिस्तरस आफ इस्ताम, निबलसन पृ० ११२।

नय प्रेम करता है। मैं सोचता रहा कि ईश्वर से प्रेम करता हूँ। पर विचार करने पर ज्ञात हुआ कि प्रेम जो मेरे ऊपर छाया हुआ है उसका है।'^१

मानव स्वयं परमात्मा का अंश है। उसमें प्रेम भी दिव्य स्रोत से ही आया है और वह दबी विभूति स्वयं प्रेम रूप है। इनुल अरबी^२ के अनुसार प्रेम का मूल कारण सौंदर्य ही है परमात्मा सर्वाधिक सौंदर्य रूप है और सौन्दर्य की अनिवार्य प्रकृति है कि वह प्रेम किए जाने के लिए अपने को प्रकट करता है। ईश्वर ने अपने ही सौंदर्य को देखने के लिए दण्ड रूपी विश्व का निर्माण किया है।

आपु आपु चाहसि जो देखा। जगन साभि दरपन क लेखा।

घट घट जस दरपन परछाही। नाहे भिना दूर फुनि नाही ॥^३

अल्फराबी ने कहा है ईश्वर स्वयं प्रेम है। सृष्टि का कारण भी प्रेम है। प्रेम के माध्यम से सृष्टि की इकाइयाँ जो प्रेम के महास्रोत में जो पूरा सौंदर्य और सर्वोत्तम भी हैं निमग्न हो जाने के लिए जुड़ी हुई हैं।

विद्वानों की राय है कि वाह्य-सौंदर्य की कोई निश्चित परिभाषा नहीं दी जा सकती। जिस पदार्थ विशेष की ओर जिसका मन आकर्षित हो जाय वही सुन्दर है। यो समय समय पर सभी सुन्दर लगते हैं कोई रूप-रूप नहीं होता पर जिसकी जिधर रुचि हो उसके लिए वही सुन्दर है। क्षण क्षणे यत्रवतामुपति तदेव रूप रणीय मताया भी कहा जाता है। वह अवश्य सत्य है कि मानव निसंगत सौंदर्य प्रेमी है। अतः सौंदर्य से तात्पर्य समत्व और पूणता से है। मानव के समस्त प्रयत्नों के मूल में सुन्दर और पूण होने का लक्ष्य है। परम सौंदर्य रूप ईश्वर ही है अतः विश्व में एक मात्र वही पूण है, अतः वही मानस का वाय और आदर्श भी है। उस पूणता को प्राप्त करने के लिए मानव ईश्वर में अनुरक्त होता है। वह उसके साक्षात्कार की अभिलाषा करता है। सचमव प्रेम के लक्षणों में प्रियतम के साक्षात्कार की कामना महत्वपूर्ण है।^४ सौंदर्य वह है जो वास्तव में प्रेम को जन्म देता है। अतः आत्मा की दृष्टि सामारिक सौंदर्य से गुजरते हुए अत्यन्त लगी रहती है। पूण सौंदर्य ईश्वर में है। अतः वही सच्चे प्रेम का अविकारी भी है।'^५

१—इन ऐन ईस्टन रोज गार्डेन।

२—चित्ररेखा स० शिवसहाय पाठक पृ० ६६।

३—आउट लाइन आफ इस्लामिक कल्चर ए एम० ए० शुस्तरी, पृ० ३११।

४—स्टडीज इन अरबी मिस्ट्रीसिज्म इन दी नोयर एंड मिडिल इस्ट पृ० २०३।

५—अलगज्जाली दि मिस्टिक मार्गरेट स्मिथ प० १३।

६—आवारिफुल मारिफ (शेख गहाबुद्दीन उमर बिन सहरबर्दी) अनुवादक एच० विल्डर फोस क्लार्क प० ११।

(अलगज्जाला) ।

वस्तुतः सुदरता में एक जादू है जो मानव चित्त को अभिभूति कर लेता है। सौंदर्य और प्रेम में अयोय सम्बन्ध है। सौंदर्य जितना ही अधिक होगा प्रेम की मात्रा उतनी ही तीव्र होगी। ईश्वर सुदरतम है अतः उसका प्रेम ही वास्तविक और पूण प्रेम है। वदो में ईश्वर की उपासना का भाव वतमान है उसके मूल में एक यह भी कारण है। प्रारम्भ में सौंदर्य की स्तुति या प्रशंसा की भावना रहती है यही भावना विकसित होकर तल्लीनता का रूप में परिणत हो जाती है। हसन सुहरवर्दी ने ठीक ही कहा है कि सौंदर्य के गहरे चिंतन के लिए हृदय का झुकाव ही प्रेम है।^१

ईश्वरीय प्रेम पान जय होता है अतः प्राप्त आनन्द अनिवचनीय होता है। ईश्वरीय सौंदर्य ही वास्तविक सौंदर्य है। अतः उससे प्राप्त सौंदर्यानन्द का कोई आरंभ ही नहीं होता भक्त या प्रेमी विस्मय से अभिभूत होकर निर्वाक रह जाता है।

प्रेमानुरागी मर भी जाए ता अमर हा जाता है। प्रेमी केवल प्रेमी ही नहीं रहना चाहता है वह प्रियतम से मिलकर तागात्मता का अनुभव करना चाहता है। वह प्रेम पथ पर चलन के लिए अपना सबस्व त्याग देने को प्रस्तुत रहता है। शलभ दीपकमय हो जाना चाहता है कमल जल के सूखने के साथ ही सूख जाता है। मछली जल के वियोग में तड़प-तड़प कर प्राण दे देती है। वास्तव में प्रेमी प्रेम की अग्नि में झुलस झुलस कर सदैव प्राण दे देने को उद्यत रहता है। अबहल्लाज ने अपने वध के समय शिवली से कहा था ओ शिवली प्रेम का प्रारम्भ दाग्-कारक अग्नि है और अतः मृत्यु है।^२ ऐसा होने पर भी प्रेमी साधक अमरता को ही प्राप्त करता है। ममूर ने कहा था कि ईश्वर से मिलन तभी सम्भव है जब हम कष्टों के बीच से होकर गुजरें।^३ इसीलिए सूफी साहित्य में प्रेमी को भयावह कष्टों का सामना करना पड़ता है। ✓

यह अवश्य द्रष्टव्य है कि सूफियों की दृष्टि सन्व इस तथ्य की ओर रही है कि वास्तव का उन्नयन और परिमाजन किया जाए। सूफी ममार से अपना सबंध बनाए रखते हुए भी वास्तव को उपस्थित नहीं होने देना चाहता। ईरान के अनेक सूफी मद्गात्माओं (यथा-अलगज्जाली बाबा फरीद आदि) ने वैदा-

१-अलगज्जाली दी मिस्टिक पृ० १७७, (सूफी मत साधना और साहित्य पृ० ६५ से उद्धृत) ।

२-आउट साइन आफ इस्तामिक कल्चर, पृ० ३५० ।

३-अलगज्जाली दी मिस्टिक मागरेट स्मिथ अध्याय ४ ।

हिक जीवन का समथन किया है। मात्र सतानोत्पत्ति के लिए ही नहीं, अपितु ताजगी और और सतोप के लिए भी बवाहिक जीवन आवश्यक है। परती के साहचर्य से हृदय को सताप का अनुभव होता है। इससे ईश्वर की सेवा करने के लिए शक्ति मिलती है।

वासना के परिष्कार के साथ ही नैतिक प्रेम ईश्वरीय प्रेम में परिणत होने लगता है। सृष्टियों के अनपार सामारिक प्रेम (इश्क मनाजी) ईश्वरीय प्रेम (इश्क हकीकी) का प्रथम सोपान है। सपूण सूफी प्रेम काव्य इसी आधारशिला पर अलकृत हैं। जब प्रेमी में पूण स्फुरण हो जाता है तब उसमें सम दष्टि आ जाती है। वह सभी मजहबों से ऊपर उठ जाता है। उसका धर्म केवल खुदा का प्रेम है। रुमी का कथन है। इश्क का मजहब सभी मजहब से अनग है। खुदा के आशिकों के लिए खुदा के अलावा कोई मजहब नहीं है।^१

सच्चा प्रेमी सदा प्रणय की मन्दिरा से मतवाला रहना चाहता है—

मैं कुंवते जिस्मो कुंवते जानस्त मरा ।

मैं कागिफ असरारे निहानस्त मरा ॥

दीगर तनवे दीनवो उक्वा न कुनम ।

यक जुरआ पुर अज हर दो जहाँनस्त मरा ॥^१

सचमुच प्रेम की मदिरा अपार गुणकारी है। उससे शरीर और प्राणों का शक्ति प्राप्त होती है। उससे पीने से रहस्य का उदघाटन होता है अतः मैं उस मदिरा का एक घूट पीना चाहता हूँ। पीने के बाद मुझे जीवन और मृत्यु की चिन्ताएँ न सताएँगी। ईश्वर के प्रेमी से यदि प्रश्न किया जाए कि तुम कहाँ स आएँ तो उसका उत्तर होगा प्रियतम के पास से ?

तुम क्या चाहते हो ?

प्रियतम ।

/तुम्हें कहाँ जाना है ?

प्रियतम के पास ।

कब तक प्रियतम प्रियतम-नरते रहोगे ?

‘जबतक मिलन न होगा ।

— — —
उसने कहा क्या नाम है ?

मैंने कहा आशिक तेरा ।

१—रुमी पोस्ट एण्ड मिस्टक ए० निकल्सन प १७१ ।

२—ईरान के सूफी कवि प० ५१ (उमर खयाम) ।

उसने कहा क्या काम है ?
 'मैंने कहा सीदा तेरा ।
 उसने कहा आए कहीं ?
 मैंने कहा 'कूचा तेरा ।
 कब तलक पे फेरा—फाके मस्ती ?'
 'जाने मन दीदारे तक ।'

अल हुज्वरी^१ ने ठीक ही कहा है कि प्रेम प्रियतम की प्राप्ति के लिए विवकलता का ही नाम है ।'

यह ईश्वरीय प्रेम कुछ ऐसा निराला है कि इसमें एक बार गिरफ्तार हुआ व्यक्ति बंधन मोक्षकी कामना ही नहीं करता । इस प्रेम-बंधन में बंधा हुआ व्यक्ति छूटना ही नहीं चाहता—

अशी रस न छाहद रिहाई जे बंद ।

शिकारश न छाहद खलास अज कमन्द ॥^२

इस प्रेम पाशुय के कारण कटु भी मिष्ट हो जाता है । प्रेमी शूल को फूल समझ लेता है । इसी प्रेमोन्माद में सूली-सिंहासन और कारागार उद्यान बन जाता है । मसूर इसी तरह में हँसते-हँसते सूली पर चढ़ गया था । निस्तदेह प्रेम स्वर्गीय गुणों का स्रोत है ।

स्वर्गीय जयशंकर प्रसाद ने ठीक ही कहा था— इस शिथिल सुरभि स खिच-कर तुम आओगे—आओगे ।' प्रेम की वस्तु बेकली को जानकर प्रणय पान का मन भी गन ही जाता है । यदि कोई सच्चा प्रेमी है, सच्चे प्रेम में व्याकुल है तो उसका प्यार अवश्य उससे मिलेगा—

आशिक कि गुन के धार बहालश नजर न क्त ।^३

जब इशान मजाजी इशक हफीवी में परिणत हो जाता है, तब साधक आत्मा नष्ट पाता है वह ध्यान द्वारा ईश्वरीय सौन्दर्य पर विस्मय विमुग्ध होता हुआ चरम साक्षात्कार के लिए प्रयत्नशील रहता है । एक ऐसी स्थिति आती है जब कि प्रेमी स्वयं प्रेमरूप हो जाता है । प्रेम एक ऐसी रागिनी छेड़ देता है जिसके प्रभाव से प्रेमी का संपूर्ण व्यक्तित्व प्रेममय हो जाता है—

बरऊँ तिलम नशाब्न यक जमत्रमा इशक ।

जा जमजमा अमत्र पाए ता सर हम इशक ॥

१—आउट सादा आरु इस्तामिक कल्बर, वा० २ प० ५०२ ।

२—ईरान के सूफी कवि, प० २२४ (सप्त शाली) ।

३—वही पृ० ३३८ हाफिज) ।

४—वही पृ० ४०० (जामी) ।

सूफियों की रति में माधुय के साथ साथ मादक भाव भी रहता है, परन्तु उसमें निहित वासना को पवित्र वासना ही कहना उचित है क्योंकि ईश्वरीय रति का आनन्द नित्य और शांतिप्रद होता है। पूर्णांकित पक्तियाँ में कहा जा चुका है कि ईश्वर से प्रेम करना उसकी प्रमानुभूति द्वारा उसका साक्षात्कार एवं उसकी सत्ता में अपनी सत्ता का विलयन ही सूफी साधना का चरम उद्देश्य है। साधक की उत्कृष्ट प्रमानुभूति अनिवार्य होती है। उसकी अभियक्ति अत्यन्त कठिन है। यही कारण है कि सूफी कवि प्रायः प्रतीका या रूपों का माध्यम ग्रहण करते हैं। सनाई फरीदुद्दीन अत्तार रूमी फिरदौसी निजामी उमर खयाम हाफिज जामी आदि सूफी कवियों ने अपनी अभियक्ति के लिए प्रतीकों सवेता और तर्कों का आश्रय लिया है।

अलगज्जाली की यहाँ दो कथाएँ दी जा रही हैं। इनमें सूफी प्रेम साधना का अरुद्धा परिचय मिल सकेगा।

जुलेखा का सूफुफ से प्रेम हो गया है। उसका प्रेम इतना घना है कि जब कोई आकर कह देता था कि मैंने यूसुफ को देखा है तो वह उसे अपने गले का हार दे देती थी। उसके पास सत्तर हीरे थे। धीरे धीरे इसी प्रकार देते सब चुक गए। वह सूफुफ को याद किया करती थी। उसे तारों में यूसुफ का नाम लिखाई देता था। विवाह के पश्चात् उसके प्रेम में अधिक घनत्व आ गया था। उसने यूसुफ के साथ रहने से इनकार कर लिया। उसने यूसुफ से कहा — मैं तुमसे उस समय तक प्रेम करती थी जब तक ईश्वर को नहीं जानती थी। अब ईश्वरीय प्रेम मेरे हृदय में प्राप्त हो उठा है उस स्थान में अब मैं ईश्वर के अतिरिक्त किसी को नहीं रख सकती। इसी प्रकार की एक और कथा अलगज्जाली ने दी है मजनु लता के प्रेम में पागल हो गया। जब कोई उससे उसका नाम पूछता तब वह कहता था— लला। यह पूछने पर कि क्या तू मर गई। वह उत्तर देता था— लला मरे हृदय में है मैं लौटा हूँ। उसकी मृत्यु नहीं हुई है। एक दिन जब वह लौटा के घर के पास में जा रहा था तब फिसी ने कहा कि तुम आकाश की चार न देखो। लला के घर की दीवाना की आर देखो। शायद वह लिखाई पड़ जाय। मजनु ने उत्तर दिया — मैं तो आकाश के उन तारों से ही सतृप्त हूँ जिनका प्रतिबिम्ब लता के घर पर पड़ रहा है। और यही कारण है कि मजनु लला में ही खदा का नूर देखता था। रजाजा मुईनुद्दीन चिस्ती ने कहा है — ऐ मुईन! अपने की आँख से मोस्त का हुस्न न देख। तू मजनु की आँख से लला के हुस्न को

देख ।

स्पष्ट है कि लौकिक प्रेम जब उच्च पवित्र और आपक भाव भूमि पर पहुँच जाता है तब वह ईश्वरीय प्रेम में परिणत हो जाता है। भारतवर्ष का सूफी काव्य भी इसी प्रकार की विचारधारा से आप्लावित है।

इस्लाम के इतिहास से पता होता है कि हसन की मृत्यु के पश्चात् सूफी मतवाद के प्रेम प्रवाह की मनोमुग्धकारी तरंगों में समस्त मुस्लिम सत्तार तरंगित होने लगा। इस प्रेम धारा को प्रवाहित करने का श्रेय बहलश में राविया तथा उसकी सहेलियों को है साथ ही मसूर को भी। तत्कालीन अथ सूफी मनो ने इस काव्य में महत्वपूर्ण योग दिया। राधा भीरा तथा अदान के सदृश राविया तथा उसकी सहेलियाँ अपने को अल्लाह की दुलहिन समझती थीं। राविया कहती है -

हे नाय ! तारे चमक रहे हैं। लोगों की आँखें मुझ चूबी हैं। सम्राटों के द्वार की अगलाए बंद हैं। प्रत्येक प्रेमी अपनी प्रिया के साथ एकाग्र भेदन कर रहा है और मैं यहाँ अकली साथ हूँ। उसने निश्चय किया है हे नाय ! मैं तुममें द्वेषा प्रेम करती हूँ। एक तो यह मेरा स्वाद्य है कि मैं आपके अतिरिक्त किसी अन्य की कामना नहीं करनी। दूसरे यह मेरा परमाथ है कि आप मेरे परने को मेरी आत्मा से हटा देते हैं ताकि मैं आपका साक्षात्कार करके आपकी सुरति में निमग्न रहूँ। बिगो भी दशा में उसका अथ मुझ नहीं मिल सता। यह तो आपकी कृपाकोर का प्रसाद है।

अथ सूफी कवियों के सदृश राविया भी रसून की प्रायना करती है। 'हे रसून भला ऐसा कौन-सा प्राणी होगा जिसे आप प्रिय न हो, पर मरी तो दशा ही कुद्र और है। — — — उसमें उसके अतिरिक्त किसी और के लिए स्थान ही नहीं है। इन सत् महिलाओं तथा मसूर आदि के समय में सूफीमत अपनी प्रारम्भिक अवस्था में था। फिर भी इनकी रचनाओं तथा वाणिया में अल्लाह के पुनीत प्रेम के दर्शन होते हैं। ५० चन्द्रवती पाठ्य का कथन है कि कबीर आदि साधकों की तरह सूफी सत् महिलाएँ भी अपने को अनाद की बहुरिया मानकर अपने प्रणय निवेदन को उस तक निवेदिन करना चाहती थीं। सूफिया का परम प्रिय से प्रेम भीरा और अनाद की भाति है। मारा का गिरधरगोपान के प्रेम में लोन-नाज

१-मुईन बचरमे सिर हस्ने दोस्त न नुमापन। बरी बनीय मजनु जमाते सलारा। दीवान रजाजागरी बनेवाज ५० २४।

२-राविया दी मिस्टिक ५० २७।

३-ए तितररी हिस्टी आफ दी अरम्भ ५० २३८।

४-रन्डीज इन तामिल चिटरेचर ५० ११३।

खोती पडी और सत मत म आ जाने के कारण कुछ अधिक स्वच्छन्द होना पडा । दव्दासी जदाल माधव — मूर्ति पर आसक्त थी । वह कृष्ण के प्रणय की प्यासी थी । कहा जाता है कि अत म भीरा की ही तरह वह उसी मे समा गई । भगवान श्रीकृष्ण ने उसके प्रणय को स्वीकार किया^१ । यहाँ पर यह कथन असंगत न होना भीरा पर सूफी प्रभाव पडा है । इसी प्रबन्ध म अमन यह सप्रमाण सिद्ध किया गया है । वस्तुतः सूफियो क अनुसार सौंदर्य वह है जो वास्तव म प्रेम को जन्म देता है अत आत्मा सासारिक सौंदर्य से गुजरते हुए सर्वोत्तम की ओर झुक जाती है । वही ईश्वरीय सौंदर्य है । यही समाप्त के सौंदर्य का कारण है । पूण सौंदर्य ईश्वर मे है । अन वह सच्चे प्रेम का जविकारी है^२ ।

सूफी साफ-साफ कह देते हैं कि इश्कमजाजी इश्क हनीकी की सीनी है और वसी के द्वारा इमान मुदी को मिटाकर लदी बन जाता है । सूफियो के प्रेम का उदय देवदास और देवदासिया म हुआ । कमकाण्ठी नरिया के धार विरोध के कारण उसका परम प्रेम की पन्थी मिनी । सूफी साधको को अनेक कष्टों का सामना करना पडा । प्रमोदमत्त मसर को अननहक कहने के अपराध मे फासी दी गई । राविया को दुखा के सागर का सतरण करना पडा । इस प्रकार क अनेक प्रत्यूर्हों का प्रत्याख्यान करत हुए प्रम-गीर के ये सच्च साधक अपन प्रेम पथ पर प्रगतिमान रहे । यह द्रष्टव्य है कि अपन मूल रूप म यह प्रेम भावना इस्नाम की नही है । ईसा के पूव से ही अतवारो शवो तथा बौद्धा म इस प्रकार की प्रम-साधना की परम्परा चली जाती थी । ईरान अरब आदि देशो म इस साधना का प्रचार हुआ था । आठवी-नौवी शताब्दी म वसी प्रम-साधना ने इस्नाम के अन्तगत सूफी प्रम-भावना का रूप ग्रहण किया । रात्रिया उसके पश्चात ममूर (मृत्यु सन ७८४) के समय स अतगज्जाली (सन १११३) क समय तक अविच्छिन्न रूप के इस्नाम के साथ ही प्रम या मान-भाव की सूफी साधना भी चलती रही । सूफियों की साधना का मूलमंत्र है प्रम । सूफी साधक परम प्रममय ईश्वर के जिन (नाम-स्मरण) एवम फिक (ध्यान) म दीवाने बने रहते हैं और ससार के समस्त ऐश्वर्य को वे प्रम-रूप की मुहबत मे पात है वे हर जर्मे म प्रियतम का जलवा देखते हैं —

बेहिजाबी यह कि हर जर्मे म जलवा आशिकार ।
फिर भी पर्ना यह कि सूरत आज तक देखी नही ॥

१-प० चन्दावली पाडेय तस-बुफ अथवा सूफीमत प० ११ ।

२-अतगज्जाली दी मिस्टिक मागरेट म्मिय प० १०६ ।

जुनीदी' का कथन है कि प्रेम की विरोधता यह है कि अपने निजी व्यक्तित्व को समाप्त कर लिया जाय। इस आनन्द पर नियंत्रण नहीं है। यह ईश्वरीय कृपा निरन्तर विलय करने और आकाशा करते रहने से प्राप्त होती है।

वस्तुतः सूफी-साधना का प्रधान लक्ष्य है कि सृष्टि के कण-कण में प्रियतम का जलवा दखना उसके प्रेम-विरह में तटपन प्रलपन का जानना उठाना, साक्षात्कार का आनन्द उठाना और अतन्त्र चिर मिलन का आनन्द प्राप्त करना।

जायसी, कृतवन, मयन आदि कविया ने लौकिक प्रेम व बहान परलौकिक प्रेम का कथन किया है।

जायसी अपनी साधना द्वारा निराकार प्रेम-प्रभु की आरती उतारते हुए अपना सब कुछ उसी में निमग्न कर देते हैं। पन्मावत में प्रेम-माग, उमका महत्व प्रेम की गरिया उसका सौन्दर्य उम पथ की बढिनाई का स्थान-भ्यान पर अत्यन्त सुन्दर वर्णन किया गया है। जिसका हृदय प्रेम-याणा में विद्ध है वही इसके मम को जानता है —

‘प्रेम पाव दुख जान न कोई । जेहि लाग जान प साई ॥

ममूर न ठीक ही कहा था — ‘ईश्वर में मिलन तभी सम्भव है जब हम कष्टों के बीच से होकर गुजरें।’ प्रेम की व्यवस्था मृत्यु में भी बर्तित है — बढिन मरन तें पम बवस्था । नातिदानी कबीरदास पर भी सूफिया व प्रेम भाव का पर्याप्त प्रभाव पडा है। उनके प्रेम व जागृ और गूर है। उनका अनुगार प्रेम के पथ पर चलना अतिधारा पर चलना है। यह कोई खाना बे घर की राह नहीं है यह कोई खाना का घर नहीं है कि जब जी में आया चल पत् । इसमें प्रवेग पाव के लिए शीघ्र को उतार देना पन्ना है—

मीस उतार भुई पर ताबर रागे पावें ।

दास करीरा यो कहे ऐमा होय न आवे ॥

मीम उतार भुई परें सो पठ घर माहि ।’

जायसी न भी प्रेम पंथ पर चलन की बात को कुछ इसी प्रकार से स्पष्ट किया है—

ज्ञान निच्छि सा जाय पहुँचा । प्रेम अन्ध्रि मगन ते ऊँचा ॥

धुव ते ऊँच प्रेम धुव ऊँचा । मिर देइ पाँव देइ सो छूना ॥

प्रेम साक्षात्कार का घर समझने वालों को कदार ने सावधान किया था। जायसी ने भी कहा है कि वहाँ पहुँचने के लिए मिर काट कर उम पर पर रखना पडगा। बरब गिरीन बढिन है काजा। प्रेम के पन्ना पर वही चल सवेगा जो मिर (अभिमान—

१—आजुतास आफ र्नामिक कचर, ए० एम० ए० पुस्तकें प० ३११।

२—आजुतास आफ र्नामिक कचर प० ३५०।

अहभाव देकर चढ़ना चाहे। उस पथ पर काम शोध तण्णा आदि चोर बटमारी करते हैं। पथिक की उनसे क्षण-क्षण सावधान रहने की आवश्यकता है। यह प्रेम-पीर 'प्रबोध' से सर्वद्धित होती है—

‘उपजी प्रम पीर जेहि आई । परबोधत होइ अधिक सो आई ॥

बलफराबी का कथन है कि ईश्वर स्वयं प्रम है। सृष्टि रचना का मूल प्रेम है। सृष्टि की व्काइयाँ प्रेम के सहारे प्रेम के महास्रोत में जो पूण और सर्वोत्तम है। डूब जाने के लिए पूण रूप से जुड़ी हुई हैं।’

उपयुक्त विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि सूफियों के यहाँ प्रेम का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। प्रम ही कम है और प्रम ही धम है प्रम ही पथ है और परमात्मा भी प्रममय ही है। इसी प्रम से हिंदी सूफी काव्य पोषित हुआ है। हिंदी सूफी काव्य की प्रत्येक कहानी का मूलाधार प्रम है। इसका बीज और अंत प्रेम की ही विजय है। फारसी के जितने कवि हैं वे मानो कविता में प्रम के अतिरिक्त कुछ जानते ही नहीं। प्रमाणस्वरूप जनालुद्दीन रूमी, जामी फरीदुद्दीन अत्तार अनगज्जाना आदि के उदाहरण दिए जा सकते हैं। जायसी ने भी पदमावत में लिखा है—

मानुष पम भयउ बकुठी । नाहित काह छारि भरि मूठी ॥

विक्रम धसा प्रेम के बारा । सपनावति बहु गयउ पतारा ॥

मधु पाछ मुगधावति लागी । गगन पूर होइगा बरागा ॥ आदि

जायसी ने पदमावत में मविस्तर प्रम पीर की विशद और प्राञ्जल अभि-यञ्जना की है।

परम सत्ता की प्रेममय कल्पना

(जायसी की कान्ता रति या मधुर भाव की साधना)

उपयुक्त विवेचन से स्पष्ट है कि सूफी ईश्वर को ही प्रियतम रूप में देखते हैं। वे सारे ससार को इसी की ज्योति से प्रोदभाषित बताते हैं। उन्होंने सवत्र लौकिक प्रम के बहाने अलौकिक प्रम का वर्णन किया है। जायसी ने भी ईश्वर की कान्तारति को ही प्रधानता दी है। यहाँ उनका साध्य है। प्रम प्रभु से बदा (जीव या साधन) दूर है परन्तु यह दूरी नगण्य है (उससे मिलने की उत्कण्ठा और उससे दीनार की लालसा कभी कम नहीं होती है)।^१

१—आउटनाइस इस्लामिक कल्चर ए एम० सुस्तरी प० ३११ ।

२—आवारिफुल मारिफ प १०४ ।

वस मीन जल धरती अम्बा बस अवास ।
जो जाही का भावता सो ताही के पास ।

उस प्रेम सत्ता के दर्शन सबको सहज नहीं हैं । वह जिसे दर्शन देना चाहता है उससे हृदय में प्रेम के डोरे डाल देता है प्रेम-बाणों से बेध देता है या प्रेम की चिंगारी में उसके हृदय को जला देता है -

बर्तन प्रेम चित्तगी विधि मला ।^१

सत्कार का बण रण उसके प्रेम बाणों से विधा हुआ है । (राबिया ने कहा है मेरे रोग का निराकरण तब होगा जब प्रिय से मिलन होगा) । बिना प्रियतम से मिल निस्तार नहीं -

उन बान्ह अस को जो न मारा ।

बेधि रहा सगरी ससारा ।

धरती गगन बेधि सब सखी । साखी टाट देहि सब साखी ॥

गगन-नखन जो नाहि न गने । व सब बान् आहि के हुने ॥

जायसी ने इन जायतिक सौन्दर्य को उस रहस्यमय ईश्वरीय सौन्दर्य के प्रेम सूत्र में बधा हुआ माना है । इसी का अवलम्बन पाकर जीव उस प्रेममय तब पहुँच सकता है । सूफी ही क्यों ? सभी भारतीय मनीषी उस सत्ता को सबत्र व्याप्त देखते हैं । इसीलिए वे सरल सत्कार को प्रणाम करते हैं -

मियाराम मय सब जग जानी । करड^२ प्रनाम जोरि जुग पानी ॥

(तुलसीदास)

मदित कौकिल विद्यापति भी उसके माध अपना जन्म-जमान्तर का सम्बन्ध मानते हैं -

जनम जनम हम रूप निहारत नयन न तिरपित भन ॥ (विद्यापति पदावली)

हमी^३ ने कहा है कि 'स्थी ईश्वर की तिरत है । वह केवल सांसारिक प्रमिका नहीं है । वह निर्माता है निर्मित नहीं ।' इसीलिए 'अलमजा जो कतरतुल हकीका अपति मजाज हकीकत का पुन है । इसीलिए सूफी कवि सांसारिक प्रेम के माध्यम से ईश्वरीय प्रेम की व्यञ्जना कल्पना और बणन करते हैं । मध्य युगों हिन्दी साहित्य की प्रधान प्रेरणा धम-भाषना ही रही है । धम-भाषना के परिणामस्वरूप धर्म धर्मों के आवरण में सुन्दर कवित्व का विकास हुआ है । पन्ना

१-राबिया मिस्त्रिक भागरेट स्मिथ, पृ० ११० (तुलनीय मीराबाई का भवरोष भी तभी मिलेगा जब धम संवरिया होय) ।

२-हमी दी पोल्ट एण्ड मिस्त्रिक, निकस्तन, पृ० ४४ ।

वत और रामचरितमानस के सभी सौंदर्य का मूल प्रेरणा स्रोत यही है। बौद्ध योगियो सूफिया निगुणियो तथा सगुणमार्गी भक्ता के साहित्य का वेद विदु ईश्वर या या प्रियतम के साथ लीना या उसी की साधना है। तदस्य दष्टि से देखने पर उगत है कि इन सभी साधना प्रमगूक है और है भक्त हृदय की रागात्मिका वृत्ति का प्रसाद ।^१

पदमावत और चित्ररेखा जायसी की सबध्रष्ट कायात्मक रचनाएँ हैं। इनमें उन्होंने अपनी प्रेम साधना का सविस्तर विवेचन किया है। चित्ररेखा में उन्होंने स्पष्ट कहा है —

जब लगी बिरह न होइ तन हिये न उपजइ पेम ।
तब नगि हाथ न आव तप करम घरम सन, नेम ॥^१
अर्थात् बिरह का हृदय में उत्पन्न होना अत्यंत आवश्यक है। पदमावत की समस्त कथा का वेद प्रेम-साधना ही है।

संत बुरहान महदी गुरु ने ही उन्हें प्रम-प्याना पथ को दिखाया था —
पेम पियाना पथ उलावा । जापु चाखि मोहि तू द चलावा ।
पेम पियाला जिह पिया निया पेम चित बध ।
साचा मारग जिह निया, तजि यूठा जग धध ॥
जायसी ने अपने को प्रम मध भौरा कहा है —

मुहमद मलिक पेम मधु भौरा ॥
उन्होंने प्रेम प्रीति का अंत तक निर्वाह किया है —
हाथ पियाला साथ सुराही । पेम पीनि लइ आर निवाही ॥
प्यारे पीर सयद अशरफ की कृपा से उनके हृदय में प्रम जीव प्र-वर्जित हुआ था —

जैसा हिये पेम कर दिया । उठी जोति भा निरपन हिया ॥
हीरामन 'गुक' द्वारा वर्णित पदमावती के नयशिल वणन के आंतर राजा रत्नसेन के हृदय में प्रम भाव का उदय होता है। वह अपना राज पाट, सुख बंधन, भोग आदि का परित्याग करके जोगी बन जाता है और तब तक प्रयत्न करता है जब तक उस प्राप्त नहीं कर लेता। चित्तीड़ में मिहान तक का मार्ग एव प्रकार से

१-पदमावत का काव्य सौंदर्य पृ० २०४-२२५ ।

२-चित्ररेखा पृ० ७० ।

३-यही पृ० ७४ ।

४-चित्ररेखा पृ० ७५ ।

५-जायसी प्रयावती छंद १८ ।

प्रम-पय ही है। इस पर वह बिघ्नो, अतरायो और नाना विध प्रत्यूहो का प्रत्या-
ख्यान करता हुआ गतिमान होता है—

हीरामन न रत्नघन का समझाया था—

पेम मुनत मग भूल न राजा । वन्नि पम फिर न्द ता छाजा ।

पेम फानि सो मरा न छूना । जाउ दीह बहु फानि छूना ॥^१

पदमावती का रूप-वर्णन सुनकर राजा मूर्छित हो गया। इस प्रेम भाव को भला
कौन जान सकता है—

प्रम घाव दुग जान न कोई । जेहि लागे जान प सोई ॥

परा सो पेम सभु द अपारा । लहरहि लहर होइ बिसभारा ॥

प्रम माग निश्चयमव दुगम है। दुस्त के भीतर भी प्रम और गुन का अमृत स्रोत
रहता है। इसको बही पाता है जो मत्स्य को पोटा सहने को उद्यत हो, फिर तो
प्रियतम का भिन्न और अनन्त सुख ही सुख मिलता है—

भलेहि पम है वन्नि दुहेना । नुद जग तरग पम जई सना ।

दुस्त भीतर जो पम मधु रागा । जग नहि मरन सहै जा गाथा ।

जा नहि सोस पम पय लावा । सो प्रियिमी मह राह क आवा ।

अव मैं पय पेम तिर मता । पाव न ठनु राखि क चना ।

पेय-आर सो बहु गो रेगा । जो न दख का जान बिसरा ।

तो लवि नुव पीतम नहि भेंगा । भिन, तो जा जनम दुख मेटा ।^१

मालव प्रम क ही कारण अमर होता है अथवा वह एक मटठी रास ही है—

मानुष पेम भएउ बबुणी । नाहि त बाह छात्र भरि मूटो ।

पमहि भाह बिरह रस रगा । मन क पर मधु अमृत बसा ।^१

प्रम प्राय सौम्य बय हाता है। पदमावती भी अप्रतिम-सौम्य स्वरूप है। उसक
सौम्य की भास्वरता ईश्वरस्य सौन्दर्य की ही भास्वरता है इसलिए तो रत्नमन
उपवृत्ति के योगी भिरारी तक हो जाता है।

प्रारम्भ में प्रेम प्राय वासनात्मक हाता है। बिरह की तपानि म प्रज्वलित
होकर प्रमी द्वादशवर्षी कांचन की तरह कानिमान हो जाता है। हीरामन स पदमा
वती न कहा कि यदि म चाह तो उद्यत आज ही फिर सबन्धी हूँ, परन्तु अभी तक
उपे मेरा मम ज्ञात नही है। मुझे अभी पूणन गान नहा है कि वह प्रेम क रग म
रग उगा है या नहीं—

प सो मरगु न जान भास । जान प्रीति जोआरि क आरा ।

हो जानति हो अब्दी काँगा । गा वह प्रीति रग बिर राँगा ।

१-जायसी पदमावती, दोहा ६७।

२-बही, पं० ४० (दा० ७)।

३-बही पं० ७१ (दोहा २१२-३)।

ना वह भएउ मलयगिरि वागा । ना वरु रबि होइ चण अवासा ।
 ना वह भयउ भोर व रगू । ना वह दीपक भएउ पतगू ।
 ना वह करा भ ग क होई । ना वह आपु मरा जिउ सोई ॥

इस प्रकार जब दोनों का मित्रता हाता है तो प्रभी मर कर भी अमर हो जाता है । वे पुन कभी अलग नहीं होते ।

रत्नसेन देवपाल के साथ द्वन्द्व युद्ध करते समय घायन हा जाता है । सांग की सापातिक चोट के कारण उसकी मर्यु हो जाती है । उसरी दोना रानियाँ सनी हो जाती हैं । चिता मे जलते हुए व बहती हैं कि हे कात जीने जी तुमने हमे जिस बठ स नगाया था मरने पर भी हे रवामिन हम उस बठ को न छोडेंगी । हे प्रियतम जो गाँठ तुमने हमारे साथ जोती थी आरम्भ से नेकर जीवन के अत तक के लिए लगाई थी वह छूट नहीं सकती—

एक जा भाँवरि भई मियाही । जव दुसरे होइ गोहन जाही ।
 जियत कत ! तुम हम्ह गर लाई । भुए कठ नहिँ छाडहि साई ।
 औ जो गाँठ कन तुम्ह जारी । आदि अत लइ जाइ न छोरी ।
 यह जग काह जो अछहि न आयी । हम तुम नाह ! दहू जम सायी ।
 लागी कठ अगि देइ होरी । छार भई जरि अग न मोरी ।
 रानी पिउ के गह गइ मरग भएउ रतनार ।
 जो रे उवा सो अथवा रहा न काइ ससार ।

जायसी का कथन है कि जो कोई भी इस ससार में उत्पन्न होता है वह अवश्यमव अन्त भी होना है । प्रम एक ऐसा अमर एवम शाश्वत सत्य है मित्रता कभी अस्त नहीं होता । अलाउद्दीन और राघव कहा हैं ? वह सुरूप रानी पद्मावती कहा है ? रत्नसेन और हीरामन कहाँ है ? व सब नयी रहे पर उनकी प्रम कहानी जगन म है—

कहु सुरूप पदमावति रानी । कोई न रहा जग रही कानी ।
 धन सोई जस कीरति जासू । फून मर प मर न बामू ॥^१

अलाउद्दीन भी पदमावती का प्रभी है पर उसका प्रम सच्चा नहीं हैं । उसकी वासना का पमु त्याग नहीं हुआ है । वह पदमावती का शरीर चाहता है अत वह बाह्य सौन्दर्य पर प्रतु ध कामी पुरुष है । उसमे एक सच्चे साधक की-सी तपस्या लगन और त्याग नहीं है । उसमे शक्ति त्रय अहंकार तण्णा और वासना का घाथाय

१—जायसी ग्रंथावली प० ३० दोहा ३

२—वही प० ३०१

है। इसीलिए उसके हाथ में चिता की राखमात्र आती है—

छार उठाइ लीहि एक मूठी। दीह उठाइ पिरथिमी झूठी।
 प्रेम माग के पथिक के लिए हृदय की पवित्रता आवरण है। कल्मषयुक्त हृदय में प्रेमप्रभु का मिलन असंभव है। महान्देव जी ने रत्नसेन को उपदेश दिया था कि दुःख सहो पर प्रेम पथ पर गतिमान रहो—

कहेसि न रोव, बहुत त रोवा। अब ईसर भा दारिद खोवा।
 अब त सिद्ध भरसि मिधि पाई। दरपन क्या छूटि गई काई।
 वहाँ बात अब हों उपदेशी। लागु पथ भूले परदेशी।
 प्रेम-पथ के पथिक के हृदय में क्रोध, ईर्ष्या आदि के लिए स्थान नहीं रहता। वह सहिष्णु उदार और तपस्वी हो जाता है—

गुरु कहा बेला सिद्ध होइ। पेम-बार होइ करहु न कोइ।
 जावहँ सीस जाइ क बीज। रग न होइ ऊम जो बीज।
 जेहि जित पेम पानि भा सोई। जहि रग मिल आहि रग होई।
 जो पैं जाइ पेम सो जूझा। किन तप मरहि सिद्ध जो बूझा।
 सीस दीह में अगमन पेम पानि सिर भेलि।
 अब सो प्रीति निवहों चलो सिद्ध होइ खेलि।

सम्बन्ध रत्नसेन एक उत्कृष्ट प्रेम पथिक के रूप में चित्रित किया गया है। बन्दी रत्नसेन को गुली पर चढ़ाए जाने की आशा होती है, उसका हृदय अपने परम प्रिय में पूर्णतः निमग्न है।

राजपुरुषों ने कहा जिगका स्मरण करना चाहते हो उम मुमिर तो। अब हम तुम्हें बेतकी का गमन बना देंगे (गुली से बीज देंगे)। उम समय रत्नसेन ने कहा है मैं हर इबासत में उसी का स्मरण करता हूँ—मरते और जीने दोनों अवस्थाओं में जिसका हो चुका हूँ। मैं उम पदमावती का स्मरण करता हूँ जिसे नाम पर मरा यह जीव निष्कारण है। मरी बाया में जितनी रक्त की बूँदें हैं, वे सब पदमावती पदमावता कहती हैं। यदि मैं जीवित रक्त तो मरे एक-एक बूँद रक्त में उसी पदमावती का स्थान है। यदि सूखी पर चढ़ूँगा तो उसी का नाम लेकर मरूँगा। मर शरीर का रोम-रोम उसी से विधा है। प्रत्येक रोमरूप वेधकर जीव उमके द्वारा गुड़ किया गया है। मरी हृदय-हृदयों में वही—पदमावती-पदमावती शब्द हो रहा है। मरी नय-नय में उसी की ध्वनि हो रही है। वस्तुतः उत्कृष्ट प्रेम का यह

१—जायसी पदावली प० ३००

२—वही, प० १०४, दोहा ५

एक अत्यन्त मुन्दर उदाहरण है—

कहेसि सँवरू जेहि चाहिमि सँवरा । हम तोहि करहि केत कर भँवरा ।
कहेसि ओहि सबरो हरि फरा । मुए जियत आहीं जेहि केरा ।
रक्त क बूद कया जस अहही । पत्मावति पदमावति' कहही ।
हाडहि हाड सबल भो होई । नस-नस माह उठे घनि सोई ॥' ।

प्रमी के मन में लोभ और अहंकार नहीं रहना चाहिए । रत्नसेन जब मिहल से नोट रहा था, तो उसके मन में लोभ और अहंकार दोनों थे और वह रक्तमेन को ले डूबे ।' वह रा रोकर कहता है कि आह घमण्ड मझ ले डूबा ।

पूर्वांकित पत्तियों में चित्ररेखा के उदाहरणों (जब लगी विरह न होइ तन टिय न उपजइ प्रम) द्वारा स्पष्ट किया गया है कि प्रम गाधना में विरह का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है । गुरु विरह की चिनगारी डाल देना है—

गुरु विरह चिगी जो मेला । जो गुलगाइ लेइ सो चेला ।

मान ही भूने हुए साधक को प्रभु का स्मरण कराता है । साधक को सुधि आती है कि इस दुःख स्थिति के पूव वह ईश्वर के साथ एक था । यहाँ धरती और स्वर्ग मिले हुए थे ? वहाँ से इन्हें किसने विद्यक्त कर दिया ?

धरती सरग मिले हत दोऊ । केइ निनार के दीह विछोऊ ॥'

मनु तो एक ही वार प्राण लेती है पर विरह में अनेक वार प्राणान्त पर प्राणान्त का सामना करना पड़ता है । विरही अपने को सभाल नहीं पाता उस शरीर और परिधान की सुधि-बुधि नहीं रहती । प्रिय को रटते रटते उसका मुख सूख जाता है ।' विरह वज्राग्नि से भी भयकर है । अग्नि तो जल पड़ने पर शान्त हो जाती है पर विरह साधना के अलसीकर पाकर और भी अधिक उत्पन्न होता है । सूय भी विरहाग्नि के ही कारण जल रहा है । विरही की वियोगाग्नि प्रिय की प्राप्ति पर ही शांत होती है ।

विरह बजागि बीच का कोई । आगि जो छट जाइ जरि सोई ।

विरहि के आगि सूर नहि टिका । रातिहु दिवस जरा औ धिका ॥'

१—जायसी ग्रंथावली प० १११ ११२ दोहा ३

२—वही प० १७२ ७३

३—वही, खड २२ दोहा ७।३

४—वही खड २२ पृ० ६८

५—वही

६—वही पृ० ७८, दोहा ६

प्रभु विरह का अनुभव करने वाला साधक धर्य है। वियोग की चिनगारी का नाम सुनने ही पृथ्वी और आनाश बर्ष जाने हैं, पर धर्य है विरही और धर्य है उसका हृदय जहाँ विरह की वह चिनगारी ही नहीं उसकी सम्पूर्ण ज्वाना भी समा जाती है

मुहमद चिनगी पम क, मुनि महि गगन डराइ।

धनि विरही औ धनि हिया तह अम अगिनि ममाइ।^१

जिम्मे हृदय म विरह की निष्पत्ति होता है वह धर्य धर्य हा जाता है। प्रत्येक स्थान पर ज्योतिषय नग उत्पन्न नहीं हात। सवय जल म मोती नहीं भिनती। प्रत्येक वन में चन्दन के वृक्ष नहीं होते-व ही प्रत्येक प्राणी के हृदय म ईश्वर के विरह की भावना भी उत्पन्न नहीं हाती। विरह अघ्यात्म के पवित्र ही इम विरह भाव का अनुभव करते हैं-

वन पल नग न हार्हि जहि जोती। जल-जल सीप न उपनहि मोती।

वन-वन विरिछ न चदन होई। तन-तन विरह न उपन सोई ॥^१

जब प्रिय निवृत्तम होते हुए भी दूर रह तब प्रमी क विरह सनाप का पारा सहन शक्ति के चरम बिन्दु का स्पश करने लगता है। पुण्य म सौरभ और दुग्ध म घट की भाँति वह तत्त्वा का तत्व सब में ओतप्रोत है। वह प्यारा प्रभु इम घट का ही अपना घट बनाकर रमण करता है। आत्मा के ही अन्दर परमात्मा विद्यमान है। देगवाल की विचित्रता भी दूग दानों म नहीं है परन्तु भावना की दृष्टि स परमात्मा जीव म चिन्ता दूर है। साधक प्रभु का सामीप्य चाहता है वह उसके विरह म अतीव वनप सहता है अग्नि के कौर साकर जीवन धारण करता है-

वन वास पिउ छीर जिमि निघर मिन एव टाइ।

तस कता घट घर क, जियउ अगिनि वह मा^१।

विरह की ज्वाना बड़ी दाहक होती हैं-

जग मह कटिन सरग क पारा।

तहि त अधिक् विरह क झारा।^१

पन्भावनी भी विरह की अग्नि म तप रही है। उम भी नीन् नहीं आती मानो कोई सेज पर 'वेवांय रग गया हो।'^१

१-जायसी धयावी पृ० ८८, दाहा ७

२-वही, पृ० १३६ दाहा २२।१२

३-डा० मन्गीराम शर्मा भक्ति का विकास पृ० ५९३

४-जायसी धयावनी, नागरीप्रचारिणी मभा वामो पृ० ६५ (४।५)

५-वही पृ० ७३ (१।२)

जब तक जीव ईश्वर से भिन्न नहीं जाता, यह लडपन बनी ही रहती है और मिलन के पूर्व विरह का जगाना अत्यन्त आवश्यक है। सच तो यह है कि विरह के बिना प्रेम होता ही नहीं।¹

उपयुक्त विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि यद्यपि पदमावत की कथा भूत एक लौकिक कथा है किन्तु इस त्रैलोक्यिक कथा के माध्यम से जायसी ने ईश्वरीय प्रेम की अभियोजना की है। प्रेम-पीर के साधनात्मक जीवन-दशन का जसा वायात्मक निरूपण पदमावत में हुआ है वसा हिन्दी के शायद ही किसी काव्य में हुआ हो। ✓

प्रेमाख्यानक परम्परा

प्रेमाख्यानो का महत्व और जायसी

प्रेमाख्यान का अर्थ

प्रेमाख्यान का आख्यान शब्द मूलतः आख्यायिका का ही भाषान्तर-सा प्रतीत होता है और इसका ही अर्थ में कथा शब्द का भी प्रयोग होता है। परन्तु आख्यायिका के लिए जहाँ कहा गया है कि वह केवल नायक द्वारा ही वर्णित गद्य के रूप में होती है वहाँ कथा स्वयं नायक या किसी अन्य पात्र द्वारा भी कथित हो सकती है और साहित्यशास्त्र के पण्डितों ने आख्यानादि का इन दोनों के ही अन्तर्गत मान लिया है। फिर भी जमा 'पुराणमाख्यानम्' से प्रकट होता है 'आख्यान' शब्द का प्रयोग किसी समय पुराणों के लिए भी किया जाता था और उससे अन्तर्गत पाई जानेवाली अंतकथाओं को 'उपाख्यान' की संज्ञा दे दी जाती थी। महाभारत को कथावित्त इसी कारण वही-वही 'भारताख्यान' कहा गया मिलता है और उसकी कथितपत्र अंतकथाओं को 'शकुन्तलोपाख्यानम्' नलोपाख्यानम् आदि कहा गया है। आख्यानो का स्वरूप स्वभावन कथनात्मक हुआ करता है और उसमें आई हुई कथा को इतिवृत्तात्मक रूप में दिया जाता है। उनसे कथानकों का किसी रचयिता द्वारा कल्पित कर लिया जाना ही पर्याप्त नहीं क्योंकि वे साधारणतः लोक प्रचलित या ऐतिहासिक भी हो सकते हैं। इसमें मुख्य अन्तर केवल इसी मान का रहता है कि प्रथम वर्णबानों के पात्र कल्पना प्रमूढ होते हैं तथा उनसे सम्बन्धित घटनाओं के परिपक्वता का विकास में जहाँ कवि को किसी प्रकार के कथन का अनुभव नहीं करना पड़ता वहाँ दूसरे वर्णवानी रचनाओं में ऐसी मुजादरा रहा करती है। प्रेमाख्यानो

मे प्रधानत किसी पुरुष का किसी स्त्री के प्रति या किसी स्त्री का किसी पुरुष के प्रति प्रभासक्त होना दिखलाया जाता है।^१ इस प्रकार की घटनाओं के मूल में प्रत्यक्ष दशन चित्र दशन स्वप्न दशन गुण श्रवण-अथवा किसी आभूषणादि की प्राप्ति जसी बातें हुआ करती हैं। इस प्रकार प्रमाभिभूति होने पर प्रेमी व प्रमिका अपने प्रेम-पात्र को प्राप्त करने के लिए प्रयत्नशील होते हैं। उनके प्रेम में एकांत निष्ठा आ जाती है। वे अपने समक्ष के समस्त प्रयूहो, अंतरायो और विघटन-बाधाओ को तणवत मानते हैं। जोगी बनना विकट यात्राओ के लिए निक्कन पडना सात सात सागरा को पार करना युद्ध करना आदि में से कोई न कोई उनका धम हो जाता है। भारतीय प्रमाकथाओ का अत बहुधा प्रेमी और प्रेमपात्री के बीच विरह सम्बन्ध के घटित हो जाने पर ही अवलम्बित रहता है और इसके सम्बन्ध में कम विपाक और पुनजन्म की कथायें तक जोड़ दी जाती हैं किन्तु कभी कभी प्रेमाख्यानों का रूप दुःखात भी बन जाया करता है जिनके अधिक उदाहरण ऐसी सूफी रचनाओं में ही मिलते हैं। सूफी प्रमाख्यानों में और विशेषकर उनमें जिनके कथानक अर्थात् भारतीय स्रोतों से लिए गए रहते हैं ऐसे प्रेम सम्बन्ध की कहानी प्रचुर मात्रा में मिलती है जिसके लिए वध या अवध का कोई प्रश्न नहीं उठा करता और जहाँ प्रायः प्रत्येक काम पूरा स्वच्छन्दता के साथ किया जाता है। परन्तु भारतीय कथानकों में अधिकतर ऐसी नारियों का ही समावेश रहा करता है जो पतिव्रत धर्म का पालन अत्यन्त आवश्यक समझती हैं तथा जो पति के अभाव में प्रायः सती भी हो जाती हैं।^२ पन्मावत और चित्ररेखा की कथाएँ मूलतः भारतीय ही हैं। पदमावत में तो महत्काय रानियों का सती होना ही है। चित्ररेखा में भी पति के अभाव में रानी चित्ररेखा चिता में जल मरने को प्रस्तुत है। वह कहती है कि हे प्रिय जो तुमने मुझ भुला दिया है तो मैं भी अपने को जलाकर तुमसे मिलूंगी —

जो तुम पिउ हौं अइम विसारी । आपहि जारि मिनौ तो नारी ।^३

भारतीय प्रेमाख्यानों की परम्परा

भारतीय प्रेमाख्यानों की परम्परा अत्यन्त प्राचीन है। वस्तुतः प्रेम एक ऐसी सहज मानवीय प्रवृत्ति है जो मनु और श्रद्धा में भी विद्यमान थी। ऋग्वेद के दशम मण्डल^४ में अप्सरा उवशी की प्रेमकथा का मूल मिलता है। इस उवशी और पृथ्वी

१-५० परशुराम चतुर्वेदी सूफी प्रेमाख्यानक साहित्य, पृ० २४५-४६ से उद्धृत।

२-वही पृ० १-३।

३-चित्ररेखा पृ० १०६-७।

४-ऋग्वेद १०।६५।

के प्रोमाख्यात के विषय में पेंजर ने लिखा है कि अभी तक पान हुई भारत भारती-
 यीय प्रम-कहानियों में यह सबसे प्रम-कहानी है, बहुत सम्भव है कि सम्स्त
 विश्व के प्रोमाख्यातों में भी यह प्राचीनतम समझा जा सके।' पूरुरवा और उवशी
 से सम्बद्ध अनेक वाच्य नाटक ममृत साहित्य में विद्यमान हैं और व सब इसी
 मूलकथा के स्फीन-मोन रूप हैं। 'श्रुते' में ही 'श्रुति शयवाश्व और मनारमा' का
 प्रमकथा भी मिलती है। वन्दि कहानियाँ देवता और मानवी अप्सरा और मानव,
 श्रुति और गजकथा के प्रेम से सम्बन्धित है।

उपनिषदा में अनेक छोटी-बड़ी प्रेमकथाएँ मिलती हैं। पाञ्चवल्क्य और गार्गी
 सत्यकाम और जाबलि, अहल्या और द्रुप प्रभृति अनेक सुमधुर कथा प्रसंगों से
 उपनिषदा के ज्ञान भंडार को मनोमय बनाया गया है। रामायण और महाभारत
 तो कथाओं के अक्षय भंडार ही बन गए हैं। महाभारत के सम्भव-मव में अजुन
 सुमद्रा दुष्यंत शकुंतला भीम हिडिम्बा आदि के प्रमाख्यात मिलते हैं। कहानियों
 के एक बहुत और प्राचीन संग्रह गुणाडय कृत बहुत्वया है। इसे उस समय में
 प्रचलित कहानियाँ का कोष कहा जाता है। आज यह अपने मूलरूप में उपलब्ध
 नहीं है तथापि क्षेमेद्र, सोमदेव प्रभृति कवियों द्वारा वस्तु-कथामञ्जरी और कथा
 सरित्सागर के नाम से संस्कृत साहित्य में रचानरित होकर सुरक्षित रह सका है।
 विष्णुगीय शताब्दी के प्रारम्भ के पूर्व मन्वन्त में कुछ एग्री कथाएँ लिखी जा चुकी
 थी जिनका पता महाभाष्यकार की या। अपिहृत्य कृते ग्रन्थे मूल की व्याख्या में
 भदरयी सुमनोत्तरा और वासवन्ता की प्रेमकथाओं का उत्तम पतञ्जलि ने किया
 है। सुमधु की 'वासवन्ता' की ही भाँति पतञ्जलि की पत 'वासवन्ता' भी रही हागी
 वाणभट्ट की काश्मिरी 'ज म त्रमान्तर में बचने वाल प्रम का चमत्कारपूर्ण कथा है।
 वात्सिल्य कृत मधुरम कूपारमभव 'अभिज्ञान शाकुन्तल' विष्णुवंशीयम' प्रेमा
 खानों के वनत उदाहरण है। वह कथा वेतालपंचविंशति और पञ्चतन्त्र भी
 आख्यातों के अक्षय भंडार हैं। इनमें पशु पक्षियों की पारम्य में बहुतना है।"

पौराणिक प्रमाख्यातों का पूरुरवा उवशी तल दमयन्ती दुष्यंत शकुन्तला

१-एन० एम० पेंजर की अरेशन आउ स्टोरी पृ० २४५

२-श्रुते १०१६१

३-ए० बी० कीय, कलकत्ता ललित निदेशक, (१९२३)

४-डा० हरिकान्त श्रीवास्तव भारतीय प्रमाख्यातक वाच्य, पृ० १०

५-विष्णु पुराण अष्टम ६१४, धीमन् भागवत स्कन्ध ९ अध्याय १४, वायु पुराण
 अष्टम ६१ ह्यपुराण १०, विष्णुधर्मोत्तर प्रथम खंड १३० ६ (भारतीय
 प्रमाख्यात की परम्परा के उद्भव)।

उषा-अनिरुद्ध, श्रीकृष्ण रुक्मिणी, प्रद्युम्न मायावती अजुन-सुभद्रा भीम हिडिम्बा प्रमति कथाओं ने परवर्ती साहित्य को बहुत प्रभावित किया है। स्वयंवर और सुन्दरी हरण इन कथाओं में पाय मिलते हैं। पृथ्वीराज रासो की कथाओं में इस पौराणिकता की छाप द्रष्टव्य है।

बौद्ध जातका और जन धर्म की कथाओं में भी प्रमाख्यानों के दर्शन होते हैं। कटुठहारिजातक मणिचोर जातक 'जसी जातक' कथाओं में भी प्रेम के प्रसंग मिलते हैं पर उनमें प्रमाख्यान वाले अंश गौण हैं उपदेशांश प्रमुख हैं।

परी गाथा में शुभा नाम की एक भिक्षुणी और एक नवयुवक के प्रेम की कथा है। जना की कथाओं में प्रमुख नाम के सेठ और बनमाला नाम की स्त्री की प्रेमकथा के साथ ही वज्रमुष्टि और भगी की कथा की भी पर्याप्त चर्चा है। इन जन चरितकाव्यों में स्त्रियों के बनावटी प्रेम सम्बन्धी विविध प्रसंग एवं निवृत्ति माय की बातें ही प्रधान होती हैं।

प्राकृत की बहुचर्चित रणसेहरी कथा का भी सिंहन और चित्तौड़ की कथाओं के साथ उल्लेख किया जाता है। सक्षम मय्या उसकी रूपरेखा दी जा रही है।

रणसेहरी कहा (रत्नशेखरी कथा)

जयचन्द्रसूरि के शिष्य जिनहृदयगणि^१ उस प्राकृत ग्रंथ के लेखक हैं जो पद्महवी शताब्दी के अन्त में हुए हैं। इस ग्रंथ की रचना चित्तौड़ में हुई है। ये संस्कृत और प्राकृत के बड़े भारी पंडित थे। इन्होंने बड़ी सरम और प्रौढ़ शैली में इस कथा की रचना की है।

मौलम गणधर भगवान महावीर स पर्वों के फल के सम्बन्ध में प्रश्न करते हैं और उसके उत्तर स्वरूप महावीर राजा रत्नशेखर और रत्नवती की कथा सुनाते हैं।

रत्नशेखर रत्नपुर का राजा था। उसके मन्त्री का नाम मतिसागर था। रत्नशेखर राजकुमारी रत्नवती के रूप की कथा सुनकर व्याकुल हो उठता है।

१-जातक कथा, (द्वितीय खंड) हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग पृ० २८५-८

२-५० परशुराम चतुर्वेदी भारतीय प्रामाख्यान की परम्परा प० ३२-३३

३-आत्मानन्द जन ग्रन्थमाला भाग १० १९७४ वि० में निणयसागर प्रसन्न बम्बई से प्रकाशित।

द्रष्टव्य— प्राकृत साहित्य का इतिहास (चौखम्भा)।

मत्तिसागर ने जोगिनी का वेश धारण करके सिंहद्वीप की ओर प्रस्थान किया। सिंहद्वीप में पहुँचकर उस जोगिनी ने कहा कि कायारूपी नगरी में हस्त रूपी राजा रहता है वहाँ पवन रूपी नगर-रक्षक है उस नगरी में जोगी बसता है।

तत्पश्चात् रत्नवती ने अपने वर की प्राप्ति के विषय में प्रश्न किया। जोगिनी ने उत्तर दिया कि कोई छूत श्रेष्ठ रत्न राजा कामदेव के मन्दिर में तुम्हारा प्रवेश रात देगा—वही तुम्हारा पति होगा।

जब मत्तिसागर ने लौटकर राजा से सभी बातें कही तो राजा उसके साथ सिंहद्वीप की ओर धन पड़ा। अनेक विपत्तियों को पार करने के पश्चात् वह वहाँ पहुँच गया। उसने कामदेव के मन्दिर में मन्त्री के साथ जुआ खेलना शुरू किया।

रत्नवती अपनी सखियों के साथ कामदेव की पूजा करने आई। रत्नवती की सखी ने उन लोगों से कहा कि हमारी स्वामिनी राजकुमारी किसी पुष्टप का मुख नहीं देखती, अतः आप लोग हट जायें जिससे वह पूजा कर सकें। मन्त्री ने कहा कि हमारा राजा रत्नशेखर बहुत दूर से आया है वह किसी नारी का मुख नहीं देखना अतः तुम अपना स्वामिनी से कहो कि मन्दिर में प्रवेश न करें जिससे हमारे राजा की छूत-श्रीटा में विघ्न न आए।

सखी ने राजा के रूप की भूरि भूरि प्रशंसा की। राजकुमारी का जोगिनी की बात याद हो आई। हृषीकेश पुनर्वित्त होकर उसने मन्दिर में प्रवेश किया। इतने में राजा ने वस्त्र से अपना मह डेक लिया। कारण पछने पर मन्त्री ने कहा कि हमारा राजा किसी स्त्री का मुख नहीं देखते। अतः रत्नवती और रत्नशेखर का वनी धूमधाम से विवाह होता है। दोनों रत्नपुर नामक नगर हैं और बड़े नगर के साथ नगर में प्रवेश करते हैं।

एक बार कनिष्क देश के राजा ने उसके राज्य पर चढ़ाई की। मामला ने यह समाचार राजा रत्नशेखर से कहा। किन्तु राजा ने अपना आत्म धर्म और प्रीति को प्रधान माना। विजय उस ही मिली। अन्त में निश्चया गया है कि राजा और रानी धार्मिक प्रवृत्तियों में अपना समय बिताने हैं।

द्वय कथा में भी तिब्बती मन्दिर चूनीय सुद्ध आदि अथवा कथानक कविओं के प्रयोग द्रष्टव्य हैं।

१—शिव कथावस्तु का सधन (म कथानक कवि) और गौरागौर हीरावती
ओगा हृषीकेश सप्त पृ० २६१ (रिस्तोड में करीब ६० मीटर पूर्व में गिरीनी
नामक स्थान)।

२—मिनाइए पन्नायत और गौरा धाम की बात (जटमल) की कथाओं के साथ।

अपभ्रंश के प्रेमाख्यान

अपभ्रंश की रचनायें विभ्रमोवशीयम^१ से ही प्राप्त होने लगती हैं। अपभ्रंश के सिद्ध साहित्य में कण्ह या कण्हपा की रहस्यमयी अनुभूतियों की बड़ी चर्चा है। सिद्धों की कविता में गुरु-महिमा रूति-खण्डन जाति भेद पर प्रहार, सहज क्षण की महिमा का उखान आदि के साथ डोमिन ब्राह्मणी आदि वा गुह्य साधना के प्रतीक के रूप में प्रयोग हुआ है। वाममार्गीय पंचमकारा में मधुन का भी एक प्रमुख स्थान रहा है। उनकी कविताओं में वासनात्रय साधना की बातें मिल जाती हैं। हेमचन्द्र के सिद्धहेम में उदाहरण रूप में आया हुए दोहों में नारी की दर्पोक्ति सुन लित श्रृंगारमूक अभियक्ति के साथ ही मुज मूणा नवती, वृष्ण राधा से संबद्ध दोहे भी मिलते हैं—ये दोहे निश्चित रूप से किसी प्रचलित कथा के अंश हैं। संयोग और वियोग से संबद्ध दोहे भी बड़ ही मार्मिक हैं। अद्भुत वृत्त संदेश रासक की प्रकृति का एक विरह-काव्य है। विरह निवदन के अंतराल में पडभ्रतु वणन और विरहिणी के भावों का उत्थित मार्मिक कित सहज चित्रण इस काव्य में हुआ है। कुमारपान प्रतिबोध (१२४१ वि) नामक चम्पू काव्य में नल प्रयोद तारा और रुक्मिणी के प्रेमाख्यान मिलते हैं।^२ जीवमन करण सलाप कथा और मयण पराजय दो छोटे रूपकात्मक छंद काव्य हैं। अपभ्रंश के चरितकाव्यों को प्रेमाख्याना के ढंग का काव्य कहा जा सकता है। पडमचरित जसहरचरित णय कुमारचरित करकण्डु चरित सनत्वमार चरित सुपामणह चरित, नमिनाहचौड भविसयसत कहा महापुराण प्रभृति प्रबंध काव्यों में—सबमें—एक प्रेमकथा अवश्य है। इनमें प्रेम का प्रारम्भ रूप गुण श्रवण चित्रदशन स्वप्न दशन जादि में से किसी एक के द्वारा होता है। नायक को नायिका की प्राप्ति के लिये प्रयत्नशील होना पड़ता है। दोनों का विवाह भी हो जाता है। पदमावती और करकण्डु चरित के नायक को सिंहल यात्रा भी करनी पड़ी है। प्राकृत की रयणमेहरी कथा में भी नायक की सिंहल यात्रा का उल्लेख है। यह अवश्य है कि जैनाचार्यों ने प्रेम की इन मधुर कथाओं में उपदेश और धर्मतत्त्वों का मिलाकर धर्म कथा बना देने का प्रयत्न किया है। प्रतिनायक आशचय-तत्व (गधव मुनि राक्षस आदि) भगनाचरण देश गंगर प्रासाद आदि के वणन कठवकात्मक छंद योजना अंगाय या सधि आदि के साथ ही काव्य गुण अलङ्कृति जादि की बातें भी इनमें मिल जाती हैं।

१-विभ्रमोवशीयम चतुर्थ अंक (मद्र जाणित मित्र लोभणी । आदि)

२-ज्ञानशिक्षा सखनऊ विश्वविद्यालय अक्टूबर १९४१ पृ० ८१

(डा० विपिनबिहारी त्रिवेदी का उल्लेख) ।

स्वयभू का रामायण नब्बे सधियों का एक बृहत् प्रबन्धन प्रधान महाकाव्य या 'पुराण' है। इसमें आदर्श चरित्र-स्थापन स्वयभू का उद्देश्य रहा है। स्त्रियाँ का सौन्दर्य-वर्णन इस काव्य में अत्यन्त सजीव रूप में हुआ है। राम-सीता की कथा में अनौचित्यता के संकेत भी यत्र-तत्र द्रष्टव्य हैं। इन काव्यों का महत्त्व, छन्द विधान कथा-संघटन, अलङ्कृति आदि की दृष्टियों से भी है क्योंकि परवर्ती हिन्दी आख्या नव काव्यों में इन्हीं चरित्र काव्य की परम्परा को बहुलाश में गृहीत किया गया है। कथानक रूढ़ियाँ के प्रयोग और लौकिक कथाओं में अलौकिकता विधायक तत्वा का समावेश भी इन काव्यों में प्रभूत परिमाण में मिलता है और हिन्दू और मुसलमान प्रेमाख्यान लक्षका की कथाओं पर इनका व्यापक प्रभाव पड़ा है।

अध्ययन की सुविधा के लिए हम प्रेमाख्यानों को दो विभागों में बाँट सकते हैं -

(१) शुद्ध भारतीय प्रेमाख्यानों की परम्परा

(२) सूफ़ी प्रेमाख्यानों का परम्परा ।

यहाँ यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि हिन्दी के अनेक सूफ़ी प्रेमाख्यानों में भी भारतीय प्रेमाख्यानों के गुण मिलते हैं और कतिपय सूफ़ी प्रेम गाथाएँ तो मूलतः शुद्ध भारतीय प्रेमगाथाएँ हैं और जनक भारतीय प्रेमाख्यानों में सूफ़ी प्रेमगाथाओं के गुण भी मिलते हैं अतः यह विभाजन मात्र अध्ययन की सुविधा के लिए ही किया गया है।

हिन्दी-साहित्य में प्रेमाख्यानका का विकास — सन्देश रामक, हमीर रासो और बीसन्नेव रासो मूलतः प्रेमाख्यान ही हैं प्रापितपतिता मदेश चिट्ट निवेदन पदच्छतु वर्णन प्रभृति तत्त्व न्न काव्या में मुख्यरूप से मिलते हैं। मध्य युग के हिन्दू प्रेमाख्यानों की यह परम्परा स० १००० (ढाता मारु रा दूहा) में प्रारम्भ होकर स० १६१२ (प्रेम पयोनिधि) तक चलती हुई मिलती है। हिन्दी साहित्य में सूफ़ी कवियों के समानान्तर हिन्दू कवियों की प्रेमाख्यान धारा भी सतत प्रवाहित होती रही है। जिस प्रकार मुगलमान कवियों का कथा-साहित्य पौराणिक, काल्पनिक एवं लोक प्रचलित तथा ऐतिहासिक कथाओं पर अवलम्बित मिलता है उगी प्रकार हिन्दुओं ने भी जायसी के पूर्व और उनके पश्चात् आख्यानक काव्यों का विपुल साहित्य निर्मित किया है। नलम्पयन्ती की कथा, रत्नमणी मगन उन दमन, नल चरित्र नलम्पयती चरित्र ऊगा की कथा वनि कृष्ण रत्नमणी से आदि हिन्दुओं के रचित पौराणिक प्रेमाख्यान मिलते हैं।

सोच प्रचलित और बल्बना प्रभूत कहानियाँ में प्रेमविभाग प्रमत्तया दोन मारु रा दूहा, कामरूप चन्द्राता की कहानी रमणशाह छरीनी भठियारी की कथा

कामरूप की कथा मगावती की कथा राजा चित्रमूकट की कथा मधुमालती चन्दन मलय गिरि वार्ता वात सयाणी चारिणी री आदि आती है।

ऐतिहासिक कहानियो म माधवानर काम कदला और रूपमजरी भी रची जा सकती है। इन भारतीय प्राम्थ्यानकों को डा० हरिकांत श्रीवास्तव ने तीन भागों (१-शुद्ध प्रेमार्थान २-जायापदेशिक काव्य और ३-नीति प्रधान प्रेमार्थान) म विभाजित किया है। इनम स प्राप्य ग्रंथो की सूची इस प्रकार है -

(१) शुद्ध प्रेमार्थान -

(१) डोना मारू रा वूहा - इसके मून कवि का नाम ज्ञात नहीं है। कुशन नामक कवि ने जसलमेर रावन की आज्ञा से चौपाइयाँ जोड़कर इसे ठीक ठाक किया है। इसे एक विवसनशील काव्य कहा जा सकता है। इसका रचनाकाल स० १० से १६१८ वि० तक है। अय प्राम्थयानो की सूची इस प्रकार है।

ग्रंथ-नाम	कवि	रचना काल
(२) वेदि कण्ठ रविमगी री	(महाराजा पथ्वीराज)	स १६४७ प्रकाशित
(३) रसरतन	पहवर	स १६७५ न प्र सभा से प्रकाशित होने जा रहा है।
(४) जितार्थवार्ता	नारायण दास	रचनाकाल के विषय मे मत भेद प्रकाशित।
(५) माधवानलकामकदला	विरहवारीश बोधाकत	स १८०६ से १५ के मध्य प्रकाशित।
(६)	गणपति	
(७)	दामोदर	स० १७३७ प्रकाशित।
(८)	राजकविवेश (नाटक)	स १७१७ अप्रकाशित।
(९)	—	संस्कृत हिंदी मिथिन।
(१०) वीसनदेव रास	रूपतिनाल्ह	स० १२१२ ? (१४वां शती) प्रकाशित।
(११) प्रमयिनास प्रमनता कथा	जटमन नाहर	अप्रकाशित।
(१२) चदकुवरि री वात	हस	स० १७४० प्रकाशित।

१-डा० हरिकांत श्रीवास्तव भारतीय प्राम्थयानक काव्य प० ३ -३१।

२-द्रष्टव्य भारतीय प्राम्थयानक काव्य।

- (१३) राजाचित्र मुकुट रानी
चन्द्रचिरन की कथा
- (१४) उषा की कथा रामदास अप्रकाशित ।
१८६४ अप्रकाशित ।
- (१५) उषा चरित मुरलीदास स० १८१८, अप्रकाशित ।
- (१६) उषाहरण जीवनलाल नागर स० १८८६ प्रकाशित ।
- (१७) उषाचरित जनकुञ्ज स० १८३१ अप्रकाशित ।
- (१८) रमणशाह छद्मवली
भटियारी की कथा अज्ञात स० १९०५ के पूर्व ।
प्रकाशित ।
- (१९) बात सयाणी चारिणी
री
- (२०) नन दमयन्ती कथा
- (२१) प्रेम पयोनिधि मगेंद्र स० १९१२, अप्रकाशित ।
- (२२) शक्तिमणी परिणय महाराज रघुराज सिंह जू देव स० १९०७ अप्रकाशित ।
- (३) अन्यापदेशिक प्रेमास्थान —
- (२३) पुट्टपावती स० १७२६, अप्रकाशित ।
- (२४) नल चरित मुकुन्दसिंह स० १७६८, अप्रकाशित ।
- (२५) नल नमन सूरदास स० १७१४ अप्रकाशित ।
- (२६) नन दमयन्ती चरित सेवाराम स० १८५३ अप्रकाशित ।
- (२७) लला भजनू सेवाराम ? राम अज्ञात अप्रकाशित ।
जी सहाय कृत
नन्ददास स० १६२५ प्रकाशित ।
- (२८) रूपमजरी
- (४) नीतिप्रधान प्रेमकाव्य —
- (२९) मधुमालती चतुमुतादास वायस्य स० १८३७ अप्रकाशित ।
- (३०) माघवानानकाम बदला कुशललाभ स० १६१३, अप्रकाशित ।
गोपाई
- (३१) सत्यवती की कथा ईश्वरदास स० १८५८ प्रकाशित ।
जन्य
- (३२) माघवानल आस्थानम आनन्दधर प्रकाशित ।
- (३३) माघवानलकाम बदला आनम स० १६४० अप्रकाशित ।
- 'आलम का माघवानलकामबदला और श्यामसनेही, 'गुलाम मुहम्मद का
प्रेमरसाल सुदरकली की सुदरकली कहानी दुली कुतुबशाह की कुतुबमुशतरी
नुसरती का गुलशने इश्क इज्जनिशाती का फूलबन, निसार का युगुफ जुनेखा,

कामरूप की कथा, मगावती की कथा राजा चित्रमूकट की कथा मधुमानती, चन्दन मलय गिरि वार्ता बात सयाणी चारिणी री आदि आती है।

ऐतिहासिक कहानियों में माधवानन्द काम कर्ता और रूपमुखरी भी रखी जा सकती है। इन भारतीय प्रमाख्यानकों डॉ० हरिकांत श्रीवास्तव ने तीन भागों (१-शुद्ध प्रमाख्यान २-आयापदेशिक काव्य और ३-नीति प्रधान प्रेमाख्यान) में विभाजित किया है। इनमें से प्राय्य यथा की सूची इस प्रकार है -

(१) शुद्ध प्रेमाख्यान -

(१) डोगा मारू रा डूहा - इसके मूल कवि का नाम ज्ञान नहीं है। कुशन लाभ नामक कवि ने जमलमर रावल की आज्ञा से चौपाइयाँ जोड़कर इस ठीक ठाक किया है। इस एक विवसतशील काव्य कहा जा सकता है। इसका रचनाकाल स० १००० से १६१८ वि० तक है। अन्य प्रमाख्यानो की सूची इस प्रकार है।

अर्थ-नाम	कवि	रचना काल
(२) बलि क ग रुक्तिगारी	(महाराजा पथ्वीराज)	स १६४७ प्रकाशित
(३) रमंगना	पुन्वर	स १६७५ न० प्र सभा से प्रकाशित होने जा रहा है।
(४) छिटाईवार्ता	नारायण दाम	रचनाकाल के विषय में मत भेद प्रकाशित।
(५) माधवानन्दकामकर्ता	विरहवारीश बोधाकत	स० १८०६ से १५ के मध्य प्रकाशित।
(६)	गणपति	
(७)	दामादर	स० १७३७ प्रकाशित।
(८)	गजकविवेश (नाटक)	स० १७१७ अप्रकाशित।
(९)	—	संस्कृत हिन्दी मिश्रित।
(१०) बीसनदव रास	नरपतिनाथ	स० १२१२ ? (१४वीं शती) प्रकाशित।
(११) प्रमविगास प्रमलता कथा	जटमल नाहर	अप्रकाशित।
(१२) चंद्रमुखि री बात	हस	स० १७४० प्रकाशित।

१-डॉ० हरिकांत श्रीवास्तव भारतीय प्रमाख्यानक काव्य प० २०-३१।

२-इष्टव्य भारतीय प्रमाख्यानक काव्य।

प्रेमाख्यानक परम्परा

(१३) राजाचित्र मुकुट रानी
चन्द्रकिरण की कथा

(१४) उषा की कथा

(१५) उषा चरित

(१६) उषाहरण

(१७) उषाचरित

(१८) रमणशाह छवीनी
भटियारी की कथा

(१९) बात सयाणी चारिणी
री

(२०) नल दमयती कथा

(२१) प्रम पयोनिधि

(२२) रुक्मिणी परिणय

(प्र) अयापदेशिव प्रेमाख्यान -

(२३) पुहुपावती

(२४) नल चरित

(२५) नल दमन

(२६) नन दमयती चरित

(२७) लना मजनू

(२८) रूपमञ्जरी

(२९) नीतिप्रधान प्रेमवाच्य -

(२९) मधुमालती

(३०) माधवानलकाम बदना
चौपाई

(३१) सत्यवती की कथा
अथ

(३२) माधवानल आख्यानम आनदधर

(३३) माधवानलकाम कदता आलम

'आनम का 'माधवानलकामकदला और 'श्यामसनेही, गुनाम मुहम्मद का
प्रमरसाल सुदरवती की सुदरवती कहानी दुली कुतुबशाह की कुतुबमुशातरी,
नुसरती का गुनश्ने इश्क इञ्जनिशाती का फूतबन' निसार का मुसुफ जुलेखा,

अप्रकाशित ।

१८६४, अप्रकाशित ।

स० १८१८, अप्रकाशित ।

स० १८८६ प्रकाशित ।

स० १८३१ अप्रकाशित ।

स० १९०५ के पूर्व ।

प्रकाशित ।

स० १९१२, अप्रकाशित ।

स० १९०७ अप्रकाशित ।

स० १७२६ अप्रकाशित ।

स० १७६८ अप्रकाशित ।

स० १७१४ अप्रकाशित ।

स० १८५३ अप्रकाशित ।

अज्ञात अप्रकाशित ।

स० १९२५ प्रकाशित ।

स० १८३७ अप्रकाशित ।

स० १९१३, अप्रकाशित ।

स० १५५८ प्रकाशित ।

प्रकाशित ।

स० १९४० अप्रकाशित ।

गवासी का किस्सा सेफुल्मुल्क वदी उज्जम तसीनुद्दीन का कामरूप और कला किस्सा फाजिलशाह का प्रमरतन तथा रज्जन का प्रेम जीवन निरञ्जन मुल्ला गाजी बकम का उपा चरित आदि कितने स्वतंत्र आख्यानक भी मिलते हैं। इनके अतिरिक्त अकेल जान कवि ने रत्नावली तथा मजनू तथा दमयंती पुहपवरिखा बनकावती छवि सागर मोहनी खिजरखा व दवल दे की कहानी कामलता, रूपमञ्जरी छीता बनकावती मधुकर माननी जादि अटठारह प्रेम कथाएँ लिखी हैं इनमें कुछ सूफी ढंग की हैं और कुछ शब्द प्रेमआख्यान हैं।^१

शुद्ध भारतीय प्रमाणानुसारेण 'वीमलदेव रासो' बहुचर्चित है। यहाँ सक्षम उसका परिचय दिया जा रहा है। इससे सूफी प्रेमआख्यानो से उसकी पृथक्ता का अनुमान लगाया जा सकेगा।

नरपति नाल्हकृत वीसलदेव रास

(शुद्ध भारतीय प्रमाणानुसारेण परम्परा का ग्रन्थ)

महत्व—गीत प्रबंध के रूप में लिखा हुआ वीसलदेव रासो नरपति नाल्ह की रचना है। यह हिंदी का गौरव ग्रन्थ माना जाता रहा है क्योंकि इसमें एक स्वस्थ प्रणय की सुंदर गाथा कही गई है और सामान्यतः इसके सबंध में विश्वास यह रहा है कि यह हिंदी का सबसे प्राचीन ग्रन्थों में से है। कुछ इतिहासकारों ने तो इसे हिंदी का सर्वप्रथम ग्रन्थ तक कहा है।^१ पर रामचंद्र शुक्ल का मत था कि वीर गीत के रूप में हम सबसे पुरानी पुस्तक वीमलदेव रासो मिलती है।^२ इसलिए उन्होंने इस ग्रन्थ को वीरगाथा काल के द्वितीय ग्रन्थ के रूप में स्थान दिया था। उनका कथन था कि इस ग्रन्थ में न तो उक्त वीर राजा की ऐतिहासिक चरित्रों का वर्णन है न उसके गौरव पराक्रम का। शृंगार रस की दृष्टि से विवाह और हस्तकर विदश जाने का (प्रोपितपतिता के वर्णन के लिए) मनमाना वर्णन है। इस ग्रन्थ में शृंगार की ही प्रधानता है वीर रस का किंचित आभास मात्र है। सयोग और वियोग के गीत कवि ने गाए हैं।^३ इस प्रकार स्पष्ट है कि यह एक शृंगार रस प्रधान प्रेम का ग्रन्थ है न कि वीर गाथा।

हस्तलिखित प्रतियाँ और संपादन—डा० माताप्रसाद गुप्त ने श्री अजरचंद नाहटा से प्राप्त १६ हस्तलिखित प्रतियों की सहायता से वीसलदेवरास का संपादन

१—डा० हरिकांत श्रीवास्तव भारतीय प्रमाणानुसारेण परम्परा, पृ० ३।

२—वीसलदेव रास स० डा० माताप्रसाद गुप्त भूमिका पृ० १।

३—हिंदी साहित्य का इतिहास पृ० रामचंद्र शुक्ल पृ० ३२।

४—हिंदी साहित्य का इतिहास, पृ० रामचंद्र शुक्ल पृ० ३१।

५—वही पृ० ३७।

किया है। कहा जाता है कि यह काव्य २००० चरणा में समाप्त हुआ है। और कुन मित्रा वर लगभग बीने पाँच सौ छन्द आते हैं। चिन्तु डा० गुप्त ने १२८ छन्दों को ही प्रमाणित माना है। इस संस्करण के पूर्व नागरीप्रचारणी सभा काशी द्वारा बीसलदेवरासो का प्रकाशन हुआ था। इस संस्करण में कुल चार खण्ड हैं—

सग (खण्ड) १—इसमें ८५ कडवक हैं। इसका मुख्य प्रतिपाद्य है मालवा के भोज परमार की पुत्री राजमती से साँभर के बीमनन्द का विवाह होना।

सग (खण्ड) २—इसमें ८६ कडवक हैं। बीसलदेव का रानी से रहना और हीरे की खान उड़ीसा देग की ओर प्रस्थान इस सग के विषय हैं।

सग (खण्ड) ३—इसमें १०३ कडवक हैं। राजमती का विरह और बीमन देव का उड़ीसा से लौटना इस सग की कथा है। और

सग (खण्ड) ४—इसमें ४२ कडवक हैं। भोज की अपनी पुत्री का निया जाना और बीसलदेव का वहा जाना राजमती को चित्तौड़गाना और राजमती का सुख भोगना इस सग के प्रतिपाद्य हैं। इस प्रकार मभावले संस्करण में कुल मिला कर ३१६ कडवक हैं।

छन्द—

यह एक मेघ प्रबंध काव्य है। १२८ छन्दों में कथा का सुन्दर निवाह हुआ है। इसके प्रत्येक छन्द या कडवक में छ पंक्तियाँ रखी गई हैं कहीं कहीं आठ पंक्तियाँ भी मिल जाती हैं। छन्द मात्रिक है। मात्राशा की गिनती ठीक ठीक नहीं है। आरम्भ के दो चरण पद्यों के जान पड़ते हैं। गीत हाने के कारण इसमें कहीं कहीं अतिरिक्त गण का अन्त पात हो गया है। उस ही मात्रा भी निष्प्रयोजन यथास्थान लीच कर दी गई है। पद्यों के लो चरणा में अनन्तर कहीं तरह और कभी चौदह मात्राशा की टेक और फिर पद्यों छन्द का एक चरण है जो प्रायः गीत के विचाय के कारण अधिक मात्राशा का हा गया है, फिर तेरह या चौदह मात्राशा की टेक और तदनन्तर पद्यों छन्द का वसा ही बना हुआ रूप मिलता है।

१—बीसलदेवरास, स० डा० माताप्रसाद गुप्त, भूमिका, पृ० ३-१२।

२—हिन्दी साहित्य का इतिहास प० रामचन्द्र शुक्ल प० ३४।

३—बीसलदेव रास, डा० माताप्रसाद गुप्त प० ३।

४—वही प० ४८।

५—बीसलदेव रास डा० माताप्रसाद गुप्त, हिन्दी परिचय प्रयाग।

कथा—

जसलमेर के भोजराज की राजकुमारी राजमती का विवाह अजमेर के बीसलदेव से ठीक हुआ। विवाह में बीसलदेव को टोक बूंदी, बूडाल मडोवर, सोरठ गुजरात एवम चित्तौर दहेज में दिए गए। एक दिन बीसलदेव ने मगव अपनी प्रशंसा की तो राजमती ने कहा कि आप के ऐसे अनेक नरेश हैं। एक तो उड़ीसा का ही राजा है। आपके देश में साँभर नमक निकलता है और उड़ीसा में हीरे की खानें हैं। पूछने पर राजमती ने कहा कि मैं पूव ज में हरिणी थी और उड़ीसा के जंगल में रहती थी। निजला एवादागी-व्रत किया करती थी। एक याघ के बाणों से बिद्ध होकर मैं भागी और जगन्नाथ जी के द्वार पर परलोक सिंघान गई। जगन्नाथ जी ने प्रसन्न होकर मुझ जसलमेर में जन्म धारण करने और पूरव देग में न पदा होने का वरदान दिया।

बीसलदेव ने कहा कि तूने मेरी अश्लाघा की है अतः अब मैं प्रयत्न करूंगा कि मेरे भी राज्य में हीरे की खान हो जाय। राजा ने राजमती भावज जाति के अननय विनय को तिरस्कृत करके ज्योतिषी को बनाया। राजमती के कहने पर ज्योतिषी ने चार महीने बाद की यात्रा का मुहूर्त निवात्ता जिसका बदल में राजमती ने उस मुदरी और सोन की सींगोवाली गाय दी। ज्योतिषी के चार महीने की लग्न बताने के बीच में राजमती पति को नाना प्रकार से समझाने का यत्न करती रही कि तु सब प्रयत्न नहा। राजा ने परदेग की ओर प्रस्थान किया। राजमती उसके विरह में करुणा कातर हो उठी। बारहमासे के द्वारा कवि ने राजमती के विरह का चित्रण किया है। वह विलाप करती है कि हे ईश्वर तूने स्त्री का जन्म क्यों दिया। यदि अय जीव ज तु हुई होती, तो ऐसी स्थिति में तो सुख में ही होती।

एक कूटनी ने उस विचलित करने का प्रयत्न करते हुए कहा— मैं तुम्हारे लिए दूसरे प्रिय को खोज देती हूँ। रोपाविष्ट राजमती ने उसे मार भगाया। राजमती ने पंडित को बुलाकर उड़ीसा की ओर प्रियतम के यहाँ सदेग देकर भेजा और कहा कि जाकर कह देना कि मेरे बाँयें हाथ की मुदरी दाहिनी बाह में सामने नहीं है। पंडित पत्नी की सूचना लेकर उड़ीसा की ओर चला। सात महीने के पश्चात् वह उड़ीसा पहुँचा। वह अनेक बातें भूल गया था। उसने उड़ीसा में कई विचित्र दृश्य देखे।

उसने बीसलदेव को पत्रिका देकर विरहिणी की दगा से उस अवगत कराने का पूण प्रयत्न किया। उड़ीसा नरेश की पट्टमहादेवी ने उस रोक और कहा कि तुम्हारे चार विवाह करा दूंगी। राजा ने एक योगी को राजमती के यहाँ भेजा। योगी ने अजमेर में आकर राजमती को राजा की चिट्ठी दी और कहा कि राजा

आज के तीसरे दिन आ जायेंगे । राजा आया रानी ने थोड़ा मान भी किया और अन्त में वे सुखपूर्वक मिल गए । जैसे रानी राजा से मिली, वैसे ही इस सप्ताह में सभी कोई मिलें —

रांणी राया सऊ मिली ।

तिम पुण सप्ताह मितिज्यो सहु कोइ ॥^१

ग्रन्थ की रचना तिथि—

बीसलदेव रास की अनेक प्राप्त प्रतिलिपियां म ग्रन्थ की रचना तिथि के सम्बन्ध में अनेक उल्लेख हैं ।^१

(१) सबत सहस सतिहत्तरई जाणि । नल्ह कबी सरि कही अमतवाणि ।

(२) सबत सहस तिहत्तर जाणि ।

(३) सबत तर सतोत्तरह जाणि । सुक पचमी न इ श्रावण माण ।

(४) बारह स बहुत्तरा मवारि । जेठ बदी नवमो बुधवारि ॥

नाल्ह रसाइण आरम्भ । सारदा लूठी ब्रह्म कुमारि ।

काममोरा मुस मण्नी । रास प्रगासी बीणनदे राइ ॥

डा० माताप्रसाद गुप्त का कथन है कि पाठालोचन क मित्रा ता के अनुगार इनमें से कोई भी पाठ माथ नहीं हो सकता । ये रचना तिथि चाने छन्द कई प्रतिषो म अलग अलग स्वतंत्र रूप से ग्रन्थ की भावना से रचे गए जाते होते हैं । गुप्त जी का विचार है कि उपयुक्त चार पाठा से निम्नलिखित छ तिथियाँ निकली हैं —

(१) स १०७० ।

(२) स० १०७३ ।

(३) स० १३७७

(४) स० १३०७ } तेरसतोत्तरह स य दा भिन्न अथ निय जा सकते हैं ।

(५) स० १२८२

(६) स० १२१२ } बारह से बहुत्तरा स य दाना अथ लिए जा सकते हैं ।

डा० गुप्त ने प्रक्षयो की समस्या के कारण लिखा है कि 'इन पाठा क आधार पर ग्रन्थ की रचना तिथि निर्धारित करना उचित नहीं जान पड़ना ।'^२ महामहोपाध्याय गौरीशंकर हीराचन्द्र जोशी ने स० १२७२ की तिथि को कातिकान्त वष

१-बीसलदेवराव स० डा० माताप्रसाद गुप्त प० १६७ ।

२-वही प० ५१

३-वही प० ५१

४-नागरी प्रचारिणी पत्रिका वष ४८, (म १९१७) प० १६३ ।

५-वही, प० ५१

म लेने पर गणना स ठीक बताया था । बीसलदेव रास म तीन ऐतिहासिक नाम थात हैं—बीसलदेव राजमती और भोज परमार । बीसलदेव (विग्रहराज) नाम के चार राजा हुए हैं, जिनम से बीसलदेव (ततीय) १२वीं शताब्दी विजयनगर (स० ११५० के लगभग) हुआ है । पृथ्वीराज के पिता सामेश्वर के बीजोत्पत्त के शिलाशेख म दी हुई चौथी शताब्दी म विग्रहराज (ततीय) की रानी का नाम राजदेवी दिया है । हो सकता है कि इसी का कवि ने राजमती कहा हो । किन्तु भोज परमार एक ही हुआ है जिसका समय स० १११२ क आसपास पड़ता है । इसलिए इस कथा के बीसलदेव से विग्रहराज (ततीय) का ही जायस्य लेना चाहिए ।^१ किन्तु विग्रहराज (ततीय) और भोज के समय न अजमेर ही बसा था, जिसे ११६५ वि के लगभग अजयराज ने बसाया था न आनासागर ही था जिसे अर्णोराज (स० ११६६-१२०७) ने खुदवाया था न जेसलमेर ही था जिसे जेसल ने (स्थापित के अनुसार) स० १२१२ म बसाया था ।^१ इसलिए यह प्रकट है कि यह रचना बारहवीं शताब्दी विक्रमी तक की किसी प्रकार नहीं मानी जा सकती ।

ओगा जी काविकादि स० १२७२ का गणना स शुद्ध आने क कारण ठीक मानते हुए कहते है कि १२७२ म ग्रंथ रचना करते समय विग्रहराज (ततीय) का शासन काल १५ वर्ष के लगभग पुराना हा गया । डा० गुप्त का बयान है कि उाका यह विचार ध्यान देने योग्य है और माय भी हो सकता है । तथ्य यह बात होता है कि विग्रहराज (ततीय) की रानी का नाम राजदेवी था । उसी सबब म राजमती नाम स कुछ कहानिया समय पान्तर प्रसिद्ध हो गई । फिर भोज परमार आदि स उसे सम्बन्धित कर विग्रहराज (ततीय) ने बहुत दिन बाद किसी परपति नाह नामक कवि न इस ग्रंथ की रचना कर डाली ।^१ डा० गुप्त न प्राप्त प्रतियों का पाठ परम्परा के दृष्टिकान स विचार करते हुए कहा है कि प्राप्त प्राचीनतम प्रतिया स० १६३२ और स० १६६९ की ह । प्रक्षेपों और प्रतिलिपि परम्पराओं क आधार पर विचार करो के अनन्तर उांने निष्ठा है कि मरा अनुमान है कि बीसलदेव रास की रचना १४वां शताब्दी के उत्तरार्द्ध तक अवश्य हो गई हो होगी ।

विशेष—

मूलत बीसलदेव रासा गीत प्रबन्ध रूप म लिखा हुआ विरह काव्य है

१-महामहापाषाणाय गौरीशंकर हीराचन्द आज्ञा नागरी प्रचारिणी पत्रिका वर्ष ४५ प० १६५-६७ ।

२-श्री अमरचन्द्र नाट्य राजस्थानी जनवरी १९४० प० २२ ।

३-बीसलदेव रास डा० माताप्रसाद गुप्त, प ५२-५३-५४ स उद्धृत ।

इमका मन प्रतिपाद्य विरह ही है। या कवि ने इसे स्त्रीवाच्य और 'अमतकाव्य' की भी सजायें दी हैं—(१) वाग वाणी मो घर दिया। अस्थी रसायण बरुं बरवाण ।^१
(२) अमत रसायण नरपति -यास ।^२

बीसलदेव रास को हम एक प्रणय-कव्या' या 'चौक गायामक काव्य' भी कह सकते हैं। यह मूलतः लोकगीत है। ग्रामगीतो का साहित्य में जा महत्व स्वीकार किया जाय, वही इसे भी मिल सकता है।^३ इस काव्य में गेय-तत्व पूष मात्रा में विद्यमान हैं। गाने की चीज हाने के कारण इसकी माया में समयानुसार बहुत कुछ फेरफार होता आया है।

इतिहास की दृष्टि से इस काव्य का कोई महत्व नहीं है, क्योंकि इसमें एक कल्पनाशील कवि ने विरह-वर्णन को प्रतिपाद्य बनाया है। ऐतिहासिक घटनाएँ अनुश्रुतियों के आधार पर दी गई हैं। बीसनदेव का डहीसा जाना और उससे सम्बद्ध समस्त वर्णन कवि के कल्पना बिलास मात्र हैं। बीसलदेव से सौ वर्ष पूर्व भोज परमार का भी दहात हो चुका था अतः उसकी कव्या के साथ बीसनदेव का विवाह भी पीछे का भट्ट भणत मात्र है। इस काव्य में कवि ने सहज शरीर में विरहिणी की मनोदशाया का चित्रण किया है। 'साहित्यिक महत्ता के मन्त्र में इसका कह सकते हैं कि स्थान स्थान पर कुछ उपमा उत्प्रेक्षाएँ ऐसी मिल जाती हैं जिसके कारण कभी कभी नाम मात्र की काव्य की चतक आ जाती है अथवा इसमें उक्ति-भंगिमा का प्रायः अभाव है।

यह रचना कालिदास के मेघदूत की लौकिक-परम्परा में दृष्टिगोचर होती है। इसमें बहुत सी बातें यथा की स्थिति में मिलती हुई भी पड़ी हैं।^४ परम्परामुक्त बातें इसमें ऐसी रसी गई हैं जो प्रेम की परीक्षा से सज्ज रखने वाली हैं जैसे राज मती के विरह कुटनी का आना और प्रेम के व्रत से निश्चित करने का प्रयत्न करना। बीसनदेव के सम्मुख उड़ीसा की पट्टमहादेवी का ववाहिक प्रस्ताव भी इसी प्रकार का है। इसमें कुछ पुरबी शब्दों का प्रयोग भी दृश्य है। जायमी तथा अय सूफी कवियों की रचना में प्रयुक्त होने वाला कविशक्त शब्द स्वयं के अर्थ में इसमें भी मौजूद है।^५

१—बीसनदेवरास, ना० प्र० सभा, काशी, प० २-८६।

२—वही प० ३ १०३।

३—हिंदी साहित्य का अतीत प० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, पृ० ७६।

४—हिंदी साहित्य का अतीत, प० विश्वनाथप्रसाद मिश्र प० ७६।

५—बीसलदेव रास, डा० मानप्रसाद गुप्त छद्म ६७, (छोडा घर मन्दिर कविलास)।

श्री अंगर चन्द नाहटा^१ ने इसके भाषा-विषयक दृष्टिकोण को समझ रख कर लिखा था। इसकी भाषा सोलहवीं-पन्द्रहवीं शताब्दी की राजस्थानी भाषा है। जिन विद्वानों ने ग्यारहवीं से सत्रहवीं शताब्दी तक की राजस्थानी भाषा का अध्ययन किया है उनका यह मत हुए बिना नहीं रह सकता कि ग्रंथ में प्राचीन भाषा का अंश बहुत कम-नहीं के बराबर—है। सोलहवीं शताब्दी में नरपति नाल्ह नाम एक जन कवि हुए हैं जिनका उल्लेख जन गुजर कविआ भाग १ में हुआ है। असंभव नहीं कि बीमलदेवराज का रचयिता भी वही हो। बीमलदेवराज के डा० मानाप्रमाण गुप्त बाल सम्करण के प्रकाशन के साथ विद्वानों ने यह स्वीकार कर लिया है कि इसकी भाषा प्राचीन है और १६वीं शताब्दी की राजस्थानी से बहुत पूर्व की है। उपयुक्त विवेचन के आधार पर स्पष्ट है कि बीमलदेवराज एक प्रेम कथा है। यह न तो धीर गाथा है और न सूफी प्रमथा। पञ्चरत्न धारहमासा और विरहाभियक्ति के दृष्टिकोण से इसका महत्व है।

सूफी प्रेमाख्यानक साहित्य

भारतीय सूफी कवियों ने भी अपने प्रेमाख्यानों की सज्जा सोपेयत पहल पहल फारसी भाषा के ही माध्यम से आरम्भ की थी तथा मसनवी पद्धति को ही अपनाया था। उदाहरण के लिए खसरो ने ईरान के फारसी कवि निजामी के पंचम तामब खम्म (पाचमसनवियो का संग्रह) के जयाब म एन अपना भी खम्म तयार किया था जिसकी शीरी खुसरू एव मजनू लला नामक दो मसनवियों का सबसे प्रसिद्ध प्रेम कहानियों से था। उसने इसी प्रकार एक तीसरी भी मसनवी दुबलरानी खिज खाँ के नाम से प्रत्यक्षत किसी ऐतिहासिक प्रेम-व्यापार का आधार लेकर लिखी थी जिस कथावस्तु सूफी प्रेमाख्यान का नाम नहीं दिया जा सकता और जो जिसे ऐतिहासिक दृष्टि से भी बसा महत्व प्रदान किया जा सकता है। उसकी प्रेम कहानी धीरे क्लिप्त और मत्त गढ़न है क्योंकि तथ्य है कि बहुत ने इतिहासज्ञों के मत से खसरो द्वारा निर्दिष्ट समय में कोई दुबलरानी जसी प्रसिद्ध राजपूत बाता ही नहीं थी।^१

खसरो की इस काल्पनिक और मनगढ़त पद्धति का अनुसरण कई सूफी कवियों ने भी किया। भाषा के लिए कुछ ने अवधी को गहीत किया और कुछ ने दक्षिणी हिंदी को फारसी मसनवी काव्यों का रूप उनके समान था ही दोहा चौपाइयों के प्रयोग का आदर्श अपभ्रंश की प्रवृत्ति रचनाओं ने बहुत पहले से ही प्रस्तुत कर

१—राजस्थानी जनवरी १९४० पृ ५१।

२—प्रो० के आर० कानूनी ए एटिक्वा एनालिमिस्त आफ दी पदिमनी लीज्ड माइन रियू नवम्बर १९२६ पृ ३६१-८ और विश्वपत्रिका पृ ३६५ की पाद, टिप्पणियाँ पृ परगुराम चतुर्वेदी सूफी प्रेमाख्यानक साहित्य, पृ २४९।

रमा था - और फिर तो लोच प्रचलित बहाणिया में अपने प्रेम पीर का पुट देकर सूफी कवियों ने प्रमाख्यानकों की रचनाये प्रारम्भ कर दी ।

सूफी प्रमाख्यान प्रायः भारतवर्ष की अनेक आधुनिक भाषाओं में लिखे गए हैं । प्रमाख्यानकों की रचना करते समय हम इन भारतीय कवियों का इसी कारण ईस्वी सन की चौदहवीं शताब्दी में दा भिन्न भिन्न भागों को अपनाते हैं । इनमें से एक जिसके अनुसार अबधी को प्रधानता दी जाती है और जिसके लिये दोहा चोपाई जैसे छन्दों का प्रयोग होता है, भारतीय भाषा एवं भारतीय मस्कति से अधिक सम्पन्न रमता हुआ चलता है तथा उनकी पद्धति पर निर्मित रचनाओं को पीछे हिन्दी साहित्य का एक महत्वपूर्ण अंग भी समझ लिया जाता है किन्तु दूसरा जो प्रधानतः हिन्दी के तत्कालीन दक्कनी उर्दू (दक्खिनी हिन्दी) को अपनाकर आगे बढ़ता है और जिसके लिए फारसी बहुरों का भी प्रयोग किया जाने लगा है न अधिकतर ईरानी वा शामी परम्परा की ही ओर उन्मुख रहना पसन्द करता है तथा उसकी शैली में रचित प्रमाख्यानकों का झुकाव परवर्ती उर्दू साहित्य की दिशा में हो जाता है । इसमें सन्देह नहीं कि हिन्दी अथवा दक्कनी उर्दू (दक्खिनी हिन्दी) कही जाने वाली भाषा मूलतः उत्तर की क्षत्री बोली हिन्दी का ही एक रूप उद्भूत करती है और फारसी एवं अबधी से अधिक प्रभावित होने लगी हुई भी उनकी रचना उतनी विलक्षण नहीं प्रतीत होती किन्तु इसके साथ ही इतना और भी कह दिया जा सकता है कि सूफी कवियों एवं नेयनों ने इन रचनाओं के लिये कारण यह पीछे प्रमाण अपना रम रूप बनती भी दीख पड़ी, तथा अन्त में उसे उर्दू का वर्तमान बेश मिल गया । जब तक ऐसे साहित्य की रचना का ताव दक्षिण के बीजापुर एवं गोरखपुरा वाले राज्यों तक सीमित रम ऐसा उत्तर उतना स्पष्ट न हो सका था, किन्तु पीछे दिल्ली जमे नगरो के भी माय सम्बन्ध दण हो जाने पर उसके आमूल परिवर्तित हो जाने तक का समय जा गया । इस कारण ईस्वी सन की सत्रहवीं शताब्दी तक रचे गए सूफी प्रमाख्यानकों का 'यूनानिक मनावेश यन्त्रि' हिन्दी साहित्य के अन्तर्गत भी कर लिया जाय तो उतना अनुचित नहीं कहा जा सनता ।^१ उस समय तक दक्षिण में मसनवी रचनाओं का निर्माण प्रचुर मात्रा में हो गया था और दक्कनी निजामी ने 'कदमरावन' ओ पदम' (सन १४८०-६२ ई०), शाह हुमनी ने 'बशीरतुल अनवर' (सन १५६३) गवासी ने 'सफ़ुर्मुक व बदी मुज्जमाल' (सन १६२६ ई०), मुल्लावजहीने 'सबरम' (सन १६३६ ई०) मुकीमी ने 'चर वदन व माहियार' (सन १६४० ई०)

१-५० परशुराम चतुर्वेदी (सूफी प्रमाख्यानक साहित्य) हिन्दी साहित्य, भाग १ पृ० २८१

नुसरती ने गुनसने इश्व (सन १५५७ ई०), तवई ने किस्ता बहराम घो गुल अदाज' (१६६० ई०), गुनामअनी ने 'पदुमावन (१६९६ ई०) तथा 'हाशिमि ने यूसुफओ जुलेखा (१६८० ई०) जैसे प्रसिद्ध प्रमाख्याना को उक्त प्रथम शली म प्रस्तुत कर दिया था। अवधी भाषा और गौहे चौपाई वाती पद्धति को गहीत कृखे सबप्रथम तिस सफी कवि ने अवधी रचना प्रस्तुत की यह ज्ञात नहीं है। यह अवश्य है कि अभी तक पात रचनाओ के आधार पर मौलाना दाऊद दलमई के प्रेमाख्यान 'चदायन से ही हिंदी सूफी प्रमाख्यानक परम्परा का आरम्भ माना जाता है।

अप्राप्त प्रेमगाथाएँ

विधाना का विचार है कि चदायन के अनंतर जिन सूफी प्रमगाथाओ की रचना हुई उनकी संख्या बड़ी जान पड़ती है किन्तु अभी तक उनमें से बहुत कम उपलब्ध हैं और कई एक का तो आज तक साधारण उल्लेख मात्र मिला है। साधारण उल्लेख या परिचय प्राप्त ऐसी प्रेमगाथाओ में शैखरिजकल्था मुश्ताकी (स० १५४६-१६३८) की रचना प्रेम जीव निरञ्जन की चर्चा की जाती है और कहा जाता है कि वह सूफी मत का या हिंदुई म बड़ी योग्यता रखता था और उसका उपनाम रञ्जन था। इसी प्रकार किसी राधा ग्मानदीप एव रानी दवजानी की प्रेमगाथा का ज्ञानदीप नाम से लिखने वाला दासपुर (औमपुर) का निवामी शख नबी भी इस ढंग का सूफी कवि बतलाया जाता है (लेखिए आगे पृ० ५७७)। उसका समय १६७६ अनुमान किया जाता है। बान्शाह औरगजेब के शासन काल स० १७१५-१७६४ के अतगत चतमान किसी पेमी नामक कवि की रचना पेम परकाश को भी इसी श्रेणी की कहानी समझा गया है और बताया गया है कि वह केवल ६०-६५ पन्नों में ही लिखी जान पड़ती है। मुहम्मद अफजल की रचना ब्यरहमासा उफ बिकट कहानी (स १६४८) तथा फाजिन शाह द्वारा लिखी हुई नूरशाह एव माहे मुनीर की प्रमकथा प्रम रतन (स० १६०५) के सम्बन्ध में भी अनुमान किया जाता है कि वे सूफी प्रेमगाथाएँ रही हानी, किन्तु इस बात के लिए कोई प्रमाण नहीं है।

हिंदी के कतिपय उपलब्ध सूफी प्रेमगाथानों की सूची

(१) मुल्ला दाऊद चदायन ७८१ हि० (१३७६ ई०) अप्रकाशित

१-सूफी काव्य संग्रह प० परगुराम चतुर्वेदी प० ६३-६४।

२-यह ग्रन्थ डा० परमश्वरीनान गुप्त द्वारा सम्पादित।

३-द्रष्टव्य डा० विश्वनाथ और डा० माताप्रसाद गुप्त द्वारा सम्पादित 'चदायन व० म० मुशी भाषा विधान विद्यापीठ आगरा।

(२) शेख कुतबन	मगावती	६०६ हि० (१५०३ ई०)	अप्रकाशित
(३) मालिक मुहम्मद जायसी	पदमावन चित्ररेखा	६४७ हि० (१५४० ई०)	अप्रकाशित
(४) मयन	मधुमालती	६५१ हि० (१६१३ ई०)	प्रकाशित
(५) शेख उममान	चित्रावली	१०२२ हि० (१६१३ ई०)	
(६) जान	वनकावती	स० १६७५ (१६१८ ई०)	अप्रकाशित
(७) शेखनबी	चानदीप	१०२६ हि० (१६१६ ई०)	,
(८) जान	रामनता	१६७८ स० (१६२१ ई०)	,
(९)	मधुकर मालती	स० १६६१ (१६३४ ई०)	,
(१०)	रतगावली	स० १६६१ (१६३४ ई०)	
(११)	छोता	स० १६६३ (१६३६ ई०)	
(१२) हुसेन अनी	पुहुपावती	११३८ हि० (१७२५ ई०)	
(१३) वासिम शाह	हसजवाहर	११४६ हि० (१७३६ ई०)	प्रकाशित
(१४) नूरमुहम्मद	इन्द्रावती	११४७ हि० (१७४४ ई०)	
(१५)	अनुराग वामरी	११७८ हि० (१७४४ ई०)	
(१६) शेख निसार	यूसुफ जुलेया	१२०५ हि० (१७६० ई०)	अप्रकाशित
(१७) सत्राजाअहमद	नूरजहाँ	१३१२ हि० (१६०५ ई०)	
(१८) शेख रहीम	भापा प्रमरस	१६१५ ई०	प्रकाशित
(१९) कवि नसीर	प्रेम दयण	१३३१ हि० (१६१७ ई०)	प्रकाशित
(२०) अली मुगद	कथा कु बरावत अनान		अप्रकाशित

चंदायन (१३७६ ई० या ७८१ हि०)

सूफ़ी प्रमाह्यानो की शैली में रची जाने योग्य सर्वप्रथम रचनामूना दाऊद कृत 'चंदायन' ही है। इस ग्रंथ की एक खण्डित प्रति बिहार के मनोरसरीफ खान काह स प्रो० हसन अस्करी को प्राप्त हुई है।^१ इस प्रति की प्राप्ति के पन्हे हिंदी क शोधियों ने चंदायन चंदावत^२ जादि अनेक नामों की कल्पनाएँ की थीं। चंदायन के रचना-काल के विषय में भी अनेक अटकलबाजियाँ की गई हैं —

१-जे० बी० आर० एम० प्रो० हसनअस्करी का लख १६१३ रेयर फोगमट आफ चंदायन एण्ड मगावती प ७-८ ।

२-डा० रामकुमार वर्मा हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास प० १३१ ।

डा० विमलकुमार जन, सूफ़ी मत और हिंदी साहित्य, प० ११२ ।

- (क) मित्र बंधुआ के अनुसार स० १ ८२ (१३२८ ई०) ।
 (ख) डा पीताम्बरराज बडयवाल स० १४६७ (१४४० ई०) ।
 (ग) डा० रामकुमार वर्मा कदावत ' चदावत, चटावन स० १३७५ ।
 (घ) प० परशुराम चतुर्वेदी स० १४३८ (१३७६) ।
 (ङ) स १३७५ ।
 (च) डा० कमलकुल शर्मा १३७० ई ।

वस्तुतः चदावन का रचनाकाल ७८१ हि (१३७६ ई०) है । मुल्ता दाऊद ने स्वयम लिखा है —

वरिम सात से होइ इक्यासी । निहि जाह कवि सरसेउ भासी ॥

साहि फिरोज तिल्ली गुलतानू । जोभासाहि अजीर बखान ॥

दलमऊ नगर बस नवरगा । ऊपर कोट तरे बहै गगा ॥

धरमी योग बस भगवन्ता । गुण गाहक नागर जसवन्ता ॥

मलिक वयाँ पुत उधरन धीरू । मलिक मुबारक तहाँ वम मीरू ॥^१

इस प्रकार स्पष्ट है कि वे रायबरेली के अंततः डनमऊ नगर के रहने वाले थे । डनमऊ के प्रसंग में जबकि गजेटियर में लिखा है कि फिराजशाह तुगलक ने यहाँ मुस्लिम धर्म और विद्या के अध्ययन के लिए एक विद्यालय की स्थापना की थी । इसकी महत्ता इसी ग्रन्थ से स्पष्ट है कि डलमऊ के मुल्ता दाऊद नामक कवि ने ७१६ हि (१२५२ ई०) में भाषा में चद्रनी नामक ग्रन्थ का सम्पादन किया था ।^१ इस वृत्त से इतना सूचित है कि डलमऊ के मुल्ता दाऊद ने चद्रनी गाथा के आधार पर ग्रन्थ सम्पादन किया था । चदावन के आधार पर आज यह ग्रन्थ प्रमाणित है कि इसका रचना काल १२५२ ई० नहीं बल्कि १३७६ ई० है । इस सूचना की दूसरी महत्ता यह है कि दाऊद के ग्रन्थ का आधार लोकप्रचलित चननी चद्रनी या तोरिब चदा की कथा ही है । मुल्ता दाऊद की ही तरह प्रायः सभी सूफी कवियों ने लोकप्रचलित कथाओं को ही अपनी अभिव्यक्ति के लिए माध्यम रूप में गृहीत किया है । विद्वानों का ध्यान इस गजेटियर की सूचना की ओर नहीं गया था । इसलिये लोग सुवर्ण जी के ही अनुकरण पर कुतबुन

१-मिश्रबन्धु विनोद स० १६७०, भाग १ पृ २४१ ।

२-डा० बडयवाल दी निगुण स्कूत्र आफ हिन्दी पोपती प० १० ।

३-डा० रामकुमार वर्मा हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास पृ ६३ ।

डा० वर्मा ने १३५३ स १३७३ वि के बीच चदावन का रचनाकाल माना है ।

४-सूफी काव्यसंग्रह प० ६३ ई० ।

५-चदावन ।

६-गजेटियर आफ प्राविस आफ अवध भाग १ (१८५८ ई०) प० ३५५ ।

से ही मूफ़ी प्रमाख्यायक परम्परा का प्रारम्भ मानते रहें क्योंकि 'गुवन जी न 'हृती माहित्य का इतिहास' और 'जायसी ग्रंथावली' की हीमूफ़ी परम्परा का प्रथम प्रेम काव्य स्वीकार किया है।

'चदाया के अध्ययन से स्पष्ट हो जाता है कि मोराना दाऊद ने अपने प्रारम्भ में मगनवी परंपरा पर ईश्वर स्तुति साहेनकर की प्रशंसा रचनारान का निर्देश आदि किया है। जायसी ने भी ऐसा ही किया है और इन दोनों के मूल में मगनवी पद्धति और अपभ्रंश के चरित काव्या की शली का मगलाचरण ही है। मुल्लादाऊद ने चन्ना के सौंदर्य का उल्लेखित वर्णन किया है और जायसी ने भी 'पदमावली' का रूप-वर्णन विलसित भाव से किया है। चदा और लोरिक का मिलन शिव मंदिर में होता है और पदमावती-रत्नमेन का भी। दोनों काव्या में भारतीय कथानक स्थितियों और कथा चयनों की योजना मिलती है। लोरिक' का भाग जाना लोरिक और चदा के माग में आकर बाघाओ का आना चन्ना की साफ का डसना गारुनी का आकर जीवित करता जुवा में चदा तन को हार जाना आदि में नन कथा' का प्रभाव स्पष्ट दृश्य है। इसकी भाषा ठंड अवधी है, पर है बड़ी गुड। वही कहा अत्यंत सुन्दर भाषा के भी साह प्रयोग हुए है जैसे—

धरमी लाग बस भगवन्ता । गुन गापक जागर जगवन्ता ।

चदायन की एक मन्त्रि प्रति रीत नानरी मनचस्टर में प्राप्त हुई है। इसमें कल ३२६ पृ. है। यह फारसी अक्षरों में मुद्रित प्रति है। इसके चित्र उर्दू जीवित है। इसकी एक हस्तलिखित प्रति तहरीर सग्रहालय में थी। भारत पाकिस्तान विभाजन के बाद पठियाता के सग्रहालय में इसकी दस मन्त्रि प्लेटे रह गई हैं शय १४ पण्ड तहरीर सग्रहालय को ले दी गई हैं। वीकार क श्री मुरपोत्तम शर्मा के पास लगभग १६२ पण्डों की एक खडित प्रति है। मनेरशरीफ खानवाह की प्रति भी मन्त्रि है। इन सब प्रतिया की मास्कोफिल्म कापी या फोटोस्टेट प्रतियां डा० परमेश्वरी नान गुप्त ने प्राप्त करनी है।

१-प रामचन्द्र गुवन, हिन्दी साहित्य का इतिहास का इतिहास प० ८१।

२-प० रामचन्द्र गुवन जायसी ग्रंथावली भूमिका प० ३।

३-इस प्रति की माइक्रोफिल्म डा परमेश्वरी गुप्त ने मगाई है।

४-पठियाता सग्रहालय के दस पण्डस।

५-हिन्दुस्तानी, भाग १५ प० १७।

६-रेयर फ गमटस आफ चन्नायन एण्ड मगावनी प्रो० अस्वरी।

इस ग्रंथ के विषय में अलबदायूनी ने लिखा है कि मुल्ला दाउद ने चंदायन नामक एक हिंदी मसनवी जौनाशाह के सम्मान में लिखी है इसमें लोरिक वा नूरख और चंदा की प्रेम कथा बड़ी सजीव शली में दी गई है। मखदूम गैख तफीउद्दीन बायज रवानी मुल्ला दाऊद की इस पुस्तक की कुछ कविताएँ पढ़ा करते थे। जनता उनसे बड़ी प्रभावित थी। इस वार गैख से कुछ लोग ने पूछा कि आपने इस हिंदी मसनवी को ही क्यों चुना है इस पर गैख ने उत्तर दिया कि यह सम्पूर्ण आख्यान ईश्वरीय सत्य है। पढ़ने में मनोरंजक है प्रेमिया को आनंद भरे चिंतन की सामग्री देने वाला है कुरान की कुछ आयतों का उपदेश देने वाला है और हिंदुस्तानी गायकों और भाटों के गीत जसा है। जनता में इस गाने से उसके हृदय पर बड़ा गहरा प्रभाव पड़ता है।^१

प० परशुराम चतुर्वेदी का कथन है कि यह रचना अपने वास्तविक रूप में उपलब्ध नहीं है किंतु यदि लोरिक नूरख लोरिक हो तो इसकी क्या प्रसिद्ध लोरिक और चंदा की भी हो सकती है।^२

चतुर्वेदी जी का अनुमान सत्य है और इगनड बानी प्रति एवम मनेरशरीफ खानकाह बानी खंडित प्रति में बीर लोरिक और चंदा की ही कहानी वर्णित है।

चंदायन का कथा-सार

गोवर नगर के महार राजा सहदेव के चौरासी रानिया थी। पट्टमहादेवी फूनारानी के बहुत दिनों के पश्चात् एक कन्या हुई और उसका नाम चंदा रखा गया चार वर्ष की अवस्था होने पर उसका विवाह बावन बीर नामक व्यक्ति से कर लिया गया। चार वर्ष की युवती होने पर समुरान गर्भ। वहाँ उस पति की आवश्यकता की बात ज्ञात हुई। वह असंतुष्ट रहने लगी। एक दिन रास से झगडा कर वह मायके लौट आई। वहाँ उसने अपनी सखी सहेनिया से अपना कष्ट कहा—

एक दिन चाँद अपने महल की अटारी पर खड़ी थी। उधर से भिक्षा मागता हुआ एक बाजिर निकला। उसकी दृष्टि अटारी पर गई और वह चाँद के सौंदर्य का देखकर मूर्च्छित हो उठा। प्रमत्त से विद्वत्तर बाजिर विरह के गीत गाता राजा पुर के रामचंद्र के साथ में पहुँचा। राव रूपचंद्र उससे चाँद के नखशिख का वपन

१—जाज एस ए रकिंग मतलबुत्तवारीख (अलबदायूनीकत) १८९७ ई०
कलकत्ता प० ३३३।

२—ना प्रचारिणी पत्रिका वर्ष २४ प० ४२, भारतीय प्रमाख्यानक परंपरा
प० ८६ से उद्धृत।

मुनकर उस पर जासक्त हो गया और गोबर पर आक्रमण कर दिया। गोबर नरेश सहदेव के साथ युद्ध हुआ। युद्ध में अपने प्रमुख वीरों को मारे जाते देख सहदेव ने निकट ही रहने वाला एक वीर लोरिक को सहायता के लिए बुलाया। वीर लोरिक ने आकर राव रघुचन्द के वीरों को तहस-नहस कर डाला।

लोरिक की वीरता दखकर चान्द उस पर मोहित हो गई और उसने अपने मन की बात अपनी सखी विरसपति से कही, और लोरिक को देखने की इच्छा प्रकट की। विरसपति ने इसके लिए एक उपाय बनाया। उसके अनुसार चाद ने अपने पिता से विजय की खुशी में समस्त नागरिकों को भोज देने को कहा। तत्नुसार भोज का आयोजन हुआ और उस भोज में लोरिक भी आया। चान्द और लोरिक ने एक दूसरे को देखा। वे एक दूसरे पर मुग्ध हो गए। फलतः विरसपति के माध्यम से उन दोनों का एक शिव मंदिर में मिलन हुआ और अनुराग प्रगट होने लगा। फिर गुप्त रूप में लोरिक चाद के महल में भी आने-जाने लगा।

लोरिक और चाद के गुप्त प्रेम की बात लोरिक की पत्नी मना को पात हुई। वह अत्यंत क्षुब्ध हुई और बसंत पूजन के अवसर पर जब उसकी मेंट चाद से हुई तो उसने उसे खूब खरी खोटी सुनाई। निदान दोनों के बीच विवाह बंद गया और हाथापाई होने लगी। उस दिन की घटना के बाद चान्द और लोरिक दोनों को अपने प्रेम-यापार के प्रकट हो जाने की आशंका हुई। दोनों ने सप्ताह कर एक दिन अपना नगर छोड़ दिया।

चांद और लोरिक के भाग जान की खबर जब उसके पति वाहनवीर को पात हुई तो उसने उनका पीछा किया। लोरिक का उसके साथ युद्ध हुआ और वाहन घायल हो गया। उसे वायल छाडकर लोरी और चान्दा जाग चल पड़े। राग में उनके रास्ते में अनेक बाधाएँ आईं। एक दिन जब वे दोनों एक पेड़ के नीचे सो रहे थे चाद को साथ में डस लिया। जब लोरिक जगा तो वह अत्यंत दुखी हुआ और करुण बिलाप करने लगा। तब गान्ठी ने आकर चाद को जीवित किया। आगे बढ़ने पर एक जुआरी के चक्कर में आकर लोरिक जुआ खेलने लगा और दाव में अपना सब कुछ यहाँ तक कि चांद को भी हार गया। चांद अपनी बुद्धि चातुरी से उस जुआरी को पजे से बच निकली और तब लोरिक उस जुआरी को मार कर आगे बचा। इस तरह अनेक विघ्न बाधाओं को पार करते दोनों हरदी जा पहुँचे और वहाँ सुखपूर्वक रहने लगे।

इधर लोरिक के चने जाने पर मना दुखी रहना लगी और एक वष तक प्रतीक्षा करने पर भी जब लोरिक लौट कर गोबर न गया तो उसने 'यापार के लिए जाते हुए सिरजन नामक व्यापारी से अपनी कष्ट कथा लोरिक तक पहुँचाने

का अनुरोध किया। तदनुसार सिरजन न लोरिक से सब हाल जाबर कहा। मना का हाल सुन कर चाद व विरोध करने पर भी नारिक गोवर के लिए चल पडा और शीघ्र घर जा पहुँचा।

जारम्भ

पहल गाऊ सिरजनहारू

जिन सिरज्या यह देवस बयारू ॥

सिरजसि घरती जीर अकामू

सिरजसि मेहु मदर कविनासू ॥

सिरजसि चाम् मुरुज उजियारा

सिरजा सरग नरख कय मारा ॥

सिरजस छाह सीत औ धूपा

सिरजस किरतन (?) जीर सरूपा ॥

सिरजसि मघ पवन अबकारा

सिरजसि बीजु बरे चमकारा ॥

जाकर सभ पिरिधिमी सिरजन कह्यो एक स गायि ।

दिय घबर मन हुनस दूसर चित न समायि ॥

साधनकत^१ मनासत (असूफी प्रमाख्यान)

यह ग्रन्थ कब रचा गया और साधन कौन थे इस सबब में अभी तक कुछ भी ज्ञात नहीं हो सका। किन्तु प्रिंस आव बल्स म्यूजियम तथा नेशनल म्यूजियम में उसके जो सचित्र पन्थ हैं उनके चित्रों का समय कलाममज १५४ ई० के आसपास जाँकते हैं। इसकी ख्याति के देखते हुए यह अनुमान गत न हागा कि उसकी रचना पंद्रहवीं शती में अथवा उससे पूर्व ही हुई होगी। टा० माताप्रसाद गप्त ने इसकी रचना का न स १६२४ (१६७) बिक्रमी के पूर्व माना है।

इसकी कथा एक प्रकार से चन्दावन की उप कथा है। इसमें कहा गया है कि जब लोरिक चन्दा को लेकर भाग गया तो उसकी पत्नी मलिन रहने लगी। एक दिन मानन नामक किसी कामुख राजकुमार ने उस देख लिया और उसे फुसलाने के लिए एक कूटनी मालिक को भेज दिया। वह अपने को मना की वचन की धार देता कर मना के यहाँ लगी और उस फुसलाने की चेष्टा करने लगी। यह प्रत्येक मास के व उपस्थित करती और पुरुष प्रसंग के

निष्प्रति करती। मना उसका प्रतिवार यह करके कहती कि पति के अतिरिक्त उसके लिए अर्थ कोई अपेक्षित नहीं है। इस प्रकार कवि ने बारह महीनों का कुटनी मना सवाद के रूप में वर्णन किया है। वष समाप्त होने पर मना कुटनी को निकाल बाहर किया करती है।

इसका साधन वृत्त जो रूप है उसमें सूची तत्त्व स्पष्ट परिलक्षित नहीं हैं। उल्लेख रूप में उस ग्रहण किया जा सकता है। जहाँगीर के शासनकाल में एक फारसी कवि हमीदी ने अस्मत्-नामा नाम से इसी कृतानी को लिखा है जिसमें चार के मर जाने पर खोरक के मैना के पास वापस आने का उल्लेख करते हुए कथा की तात्त्विक व्याख्या की गई है। इसमें बाद के प्रेम की मायावी और मना के प्रेम को असनी बताते हुए कहा गया है कि लारिक की तरह अनुरूप असली प्रेम तत्व को छोड़कर मायावी प्रेम की ओर जाता है पर तत्व पात होने पर पुनः असनी प्रेम की ओर लौट आता है। सातन कुंवर के सत को डिगाने वाला शतान बताया गया है। इस कवि में कवि ने बार-बार मना के सतीत्व की ही महिमा का गान किया है। 'मनासत पहल लोर कहा के एक प्रसंग के रूप में रचा गया था। जिसका प्राचीनतम रूप उसके लोरकहा पाठ में मिलता है। उससे बाद किसी समय इस प्रसंग को अलग कर स्वतंत्र रचना के रूप में प्रकाशित किया गया और कदाचित् उसी समय उसमें बदनादि की पंक्तियाँ रख दी गईं।'

संभवतः इसी फारसी रूप को नुसरती ने अपनी दखिनी हिन्दी के मसनवी में अपनाया है।

विशय—

श्री हरिहर निवास त्रिवेदी ने माधनकृत मनासत को प्रकाशित किया है। उनके अनुसार यह ग्रन्थ १४८० के पश्चात् और १५०० ई० के पूर्व लिखा गया है।

२—मृगावती

कृतकाल ने ६०६ हि० (१५७३-४ ई०) में मृगावती की रचना की है। मसनवी पद्धति का अनुसरण करते हुए उन्होंने शिवर स्तुति मुहम्मद स्तवन आदि के अनन्तर 'शाहे-बख्त का वर्णन किया है—

साह हुसन अहै बड राजा । छत्र सिंहासन उन कहै छाजा ॥
पन्ति औ बुधबत ममाना । पठ पुरान अग्य सब जाना ॥

*

*

*

१—भारतीय साहित्य, डा० माताप्रसाद मुन्सुन सन १९५६

२—मनासत, स० हरिहर निवास त्रिवेदी प० ८८

दान देई औ गनता आव । बलि औ कस न सरवरि पावे ।

राज जहाँ नौ मधव रह्यो । सवा वरहिं यार सब चह्यो ॥

इहके राज यह रे हम कहे । नौ स नौ जा सबत अहे ॥

इस हुमेनशाह के विषय में बड़ा मतभेद है । गुबन जी का कथन है कि यह चिश्ती वंश के गैस बरहान के शिष्य थे । और जौनपुर के बादशाह हुसेनशाह के आश्रित थे ।^१ गुबन जी ने जायसी-प्रभावली में इस मत का सशोधन करते हुए निश्चय किया कि पूर्व में बगान के शासन हुसैनशाह शर्की के अनुरोध से जिसने सत्यपीर की कथा चलाई थी कतबन मियाँ एक ऐसी कहानी लेकर जनता के समक्ष आए जिसके द्वारा उन्होंने मुसलमान होते हुए भी अपने अनुषंग होने का परिचय दिया ।^२ हुसेनशाह के नाम से उस समय दो शासन थे । जिनमें से एक हुसेनशाह शर्की जौनपुर का शासन करता था । और दूसरा उसी प्रकार बगान में राज्य करता था । पहले को बहलोल खा लोदी ने सन् १४८८ ई. में हटा दिया और फिर वह अपने यहाँ से भाग कर बगान वाले हुमेनशाह की शरण में रहने लगा । उसकी मृत्यु भी हि. सन १५०४ (१४९९ ई.) में ही हो गई जो मगावती के रचनाकाल सन १५०४ ई. से चार साल पहले पड़ता है ।^३ फिरिश्ता और स्मिथ ने भी खिला है कि १५०१ हि. में सिन्दर नोनी ने उन परास्त कर दिया और वह भाग कर हुसेनशाह शर्की के यहाँ बगाल में गया और वही उसकी मृत्यु १५१५ हिजरी में हुई । इस घटना का उल्लेख इस्नामी बांगला साहित्य में भी हुआ है । कवि कतबन जौनपुर के अनुचर थे । उन्हीं के साथ कवि बगान में चला आया था और सुल्तान हुसैनशाह शर्की के यहाँ रहा । मगावती का १५१६ हि. में वही गौड देश में चला गया ।^४ प्रा. अस्करी के अनुसार हुसैनशाह शर्की १५१६ हि. तक जीवित रहा । जो उसके १५१० हि. तक सिन्दर भी चले रहे हैं । अस्करी साहब का मत शाह शर्की ने १५१० हि. तक चलने वाले सिन्दर के कारण प्रबल है पर प्रायः इतिहासकार यह मानते हैं कि उसकी मृत्यु १५१५ हि. में ही हुई थी अतः अधिक सम्भव यही है कि

१-हिन्दी साहित्य का इतिहास नागरीप्रचारिणी सभा काशी, पृ. ६५

२-पं. रामचन्द्र गुबन जायसी प्रभावली, भूमिका पृ. ३

३-हाफिज मुहम्मद शीरानी पञ्जाब में उद्भूत पृ. २१२

४-त्रिगुप्त ए. हिस्ट्री आफ् दी राज्ज आफ् मुहम्मडन पावर (फिरिश्ता के इतिहास का अंगरेजी अनुवाद) वा. १ पृ. ५७२ ।

५-स्मिथ शर्की आर्किटेक्चर आफ् जौनपुर पृ. १३ ।

६-सुबुमार सेन इस्नामी बांगला साहित्य पृ. ८ ।

७-जे. बी. आर. एस. प्रो. अस्करी कृत मगावती, १९५५ ।

प्रोभाह्वयानक परम्परा

मृगावती बंगाल के हुसैनशाह की छत्रछाया में ही रची गई वह एह एक धम्मपरायण पुरुष था और उसने हिन्दू मुस्लिम ऐवय के दृष्टिकोण से सत्यपीर नामक एक संप्रदाय भी चलाया था। मृगावती में नायक राजकुमार है। नायिका भी राजकुमारी है। वह उड़ने की विद्या भी जानती है। वह अपने प्रेमी को धोखा देती है। पिता के देहात के बाद राज्य भी बरने लगती है। इस प्रकार इस काय में घटनाओं का वाहुल्य है। मन्त ने कहा है कि वे किसी रहस्यमयी बात को खोजकर स्पष्ट करने जा रहे हैं और एतदर्थ वे गाथा दोहा चौपाई अरिठन सोरठा आदि का प्रयोग करके देसी शब्दों के माध्यम से उसे सरन बना रहे हैं। मुल्का दाउद जायसी आदि ने भी इसी प्रकार की अभिव्यक्ति की है—

अउर गीन में वहाँ बीनती सिरनाम कर जोर ।
एक एक वान मोति जस पुरवा वहाँ जो हीरा तोर ॥

(चदायन)

यव यव वोन मोति जस पुरवा इकठा भव चित नाय ।
(मृगावती)

'कुचन-वचन हीरा मोती। फिरवा हार फई तस जोती। (चित्ररेखा)
कुतबन के गुर मुहरावदिया संप्रदाय के बूदन (जौनपुर वाले)
गेख बूदन जगसाँचा पीर। नाउ नेत गुष होय सरौर ॥
कुतबन नाउ ने रेपा धरे। मुहरावदि जिह जगनिरभरे ॥

मृगावती की कथा

'मृगावती की कथा में हम इस प्रकार है—
चन्गिर के राजा गणपति देव का पुत्र कचन नगर के राजा हपगुरारि की पुत्री मगावती के रूप पर विभोहित हो जाता है। राजकुमारी सयोगवश उड़ने की विद्या जानती थी। जनेक कष्ट सहते हुए राजकुमार उसके यहाँ पहुँचा। एक दिन राजकुमारी उसे धोखा देकर उड़ जाती है। राजकुमार उसकी खोज में जोगी बन कर निकल पड़ता है। चतुर्दिक समुद्र से घिरी एक पहाड़ी पर पहुँचकर उसने स्वमिनी नामक सुदरी को एक रात्रि के हाथ में पकड़े स बचा नेता है इस काय में प्रसन्न होकर उस सुदरी के पिता ने राजकुमार के साथ उसका विवाह कर दिया। अंत में राजकुमार वहाँ पहुँचता है जहाँ पिता की मृत्यु के अनंतर मगावती सिंहासनारूढ़ होकर राज्य कर रही है। वहाँ वह बारह वर्षों तक ठहरा रहता है और जब राजकुमार ने पिता को पता चला तो उसे बुनाने के लिये दूत

१-नागरीप्रचारिणी सभा खोज रिपोर्ट १९००

डा० रामकुमार वर्मा को इनकी एक पूण प्रति 'एकडना' गाँव से मिली है।

भजा । पिता का सदेश पाकर के राजकुमार मगावती के साथ चल पडा । माग म उसन रुमिनी को भी ने लिया । वह दीघबाल तक उन दोनो के साथ भोग विलास करता रहा पर एक दिन आखेट मे हाथी से गिर कर मर गया । दोनो रानिया उसके साथ ही सती हो गई ।

रुमिनी पृनि वसहि मरि गई । कुनवती सन सो सति भई ।
 बांहर वह भीतर वड होई । घर गहर को रहै न जोई ॥
 विधि कर चरित न जान आनू । जो सिरजा सो जाहि निआनू ।
 गग तीर लके सर रचा । पूजी अविधि बहो जा वचा ।
 राजा सग जरि रानी चौरासी । ते सब गए इद्र कबितासी ॥

मिरगावति और रुमिनी (लके) जरा कुवर के साथ ।

भसम भई जरि तिल एक मह निह रहा न मान ॥

कतवन ने कथा के प्रारम्भ मे मुहम्मद स्तवन और उनके चार मीतो का भी उल्लेख किया है

उसमा बचन दीा के लिए जेरे मुहम्मद अघरटु सिप ।

अली सरे विध जापुन बोहा । आगम गड उनसा कर लीहा ।

चार मीत हैं पन्ति चारो है समतन ।

मानसरोदक अमन भर-रहे कवन के फन ।

३-पदमावत (१५४०)

जायसी द्वारा प्रेमाख्यानो का उल्लेख

जायसी ने पदमावत मे कतिपय राम गाथाओ की आर सकेत किया है-

बहुत-ह ऐस जीउ पर खना । तू जोगी बहि माह अकना ।

विश्रम घसा पेम के बारा । सपनावति कह गएउ पतारा ।

मुत्बच्छ मुगुधावति नागी । कवनपूरि होइ गा वरागी ।

राजकुवर कचापुर गएऊ । मिरगावति कह जोगी भएऊ ।

साधा कुवर मनोहर जोगू । मधुमानति कह कीह वियोगू ।

पमावति कह सरसुर साधा । उरवा नागि अनिश्च धर बाधा ।^१

इन पक्तियों के साक्ष्य पर स्पष्ट है कि पदमावत की रचना के समय तक वे (इन पक्तियो मे कयिन) कहानियाँ किसी न किसी रूप मे अवश्य प्रचलित थीं ।

प० रामचन्द्र शुक्ल 'सरजजीवा वर्मा' डा० रामकुमार वर्मा 'हरिऔध' प्रभृति विद्वानों का विचार है कि जायसी द्वारा दी गई यह सूची जायसी के पूर्व लिखे जा चुके प्रमाख्यानों की है। इन विद्वानों की बात इसलिये माय्य है कि धीरे धीरे शोध में ये ग्रन्थ मिलत जा रहे हैं।

ए०जी० शिरेफ का अनुमान है कि जायसी ने प्रमाख्यानों की जो नामावली दी है वह प्रमाख्यानों की न होकर लोक प्रचलित प्रम कहानियों की है जिन्के स्वरूप के विषय में यह नहीं कहा जा सकता कि ये कहानियाँ लिखित हो हीं। सम्भव है कि ये मात्र मौखिक परम्परा से चली आती हो।

इस सूची पर विचार करते हुए शुक्ल जी ने लिखा है कि विक्रमादित्य और 'अपा अनिष्ट' की प्रम कथाओं को छोड़ देने से चार प्रम कहानियाँ जायसी के पूर्व लिखी हुई पाई जाती हैं। इनमें से मगावती की एक खटित प्रति का पता तो नागरीप्रचारिणी सभा को लग चुका है। मधुमालती की भी फारसी जखरो में लिखी हुई एक प्रति मैंने किसी राजजा के पास देखी थी, पर किसके पास है यह स्मरण नहीं। चतुर्भुजदास कृत 'मधुमालती' की कहा नागरीप्रचारिणी सभा को मिली है जिसका निमाणबाल ज्ञात नहीं और जो अत्यन्त भ्रष्ट ग्रन्थ है। मुग्धावती और प्रभावती का अभी तब पता नहीं चला।

डा० कमलकुल श्रेष्ठ का कथन है कि मधुमालती की कहा का फाग कापी सभा में है और ग्रन्थ में नहीं अपितु पद्य में है।

मधुमालती की दो प्रतियाँ भारतीय विद्याभवन के श्री हरिवल्लभ भाषाणी जी को मिली हैं। इनमें सवा सात मौ से ऊपर छद्म हैं।

डा० वासुदेवशरण अग्रवाल का कथन है कि त्रिक्रमादित्य और स्वप्नावती सिंहासन बत्तीमें म पाचवी पुतली लीलागा की कथा है कि विश्व ने सिंहासन की प्राप्ति के लिये बहुत कष्ट भोगा। उन्हीं का पाठ यहाँ स्वप्नावती (पाठांतर चम्पावती) मिलता है (६१२ आ १९) श्री अमरचन्द नाहटा जी को स्वप्नावती की

१-प० रामचन्द्र शुक्ल जायसी ग्रथावली भूमिका पृ० ४

२-नागरीप्रचारिणी पत्रिका भाग ६, पृ० २६४

३-डा० रामकुमार वर्मा हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास पृ० ३०७

४-प० अयोध्यामिह उपाध्याय हरिऔध हिन्दी भाषा और साहित्य का विकास, पृ० १६१।

५-ए०जी० शिरेफ मधुमालती, पृ० ६

६-प० रामचन्द्र शुक्ल नागरीप्रचारिणी सभा, जायसी ग्रथावली भूमिका पृ० ४

७-हिन्दी प्रमाख्यान काव्य, ना० प्र० सभा सोज रिपोर्ट १९०२, नोटिस ४४।

भजा । पिता का सदेश पाकर के राजकुमार मगावती के साथ चल पडा । माग में उसने रविमनी को भी ल लिया । वह दीघकाल तक उन दोनों के साथ भोग विलास करता रहा पर एक दिन आंखेट में हाथी से गिर कर मर गया । दोनों रानिया उसने साथ ही सती हो गई ।

रुक्मिणी पुनि वसहि मरि गई । कुनव ती सन सो सति भई ।
वाहर वह भीतर बह होई । घर गहर को रहे न जोई ॥
विधि कर चरित न जान जानू । जो सिरजा सो जाहि निभानू ।
मग तीर लके सर रचा । पूजी अवधि कही जा बचा ।
राजा मग जरि रानी चौरासी । ते सब गए इद्र बबिनासी ॥

मिरगावति और रुक्मिणी (लके) जरी कुवर के साथ ।

भसम भई जरि तिन एक मह तिह रहा न गात ॥

कुतबन ने कथा के प्रारम्भ में मुहम्मद स्तवन और उनके चार मीतों का भी उल्लेख किया है

उसमा बचन दीन के निय जेरे मुहम्मद अघरहु सिय ।

अनी सरे विघ आपुन की हा । आगम गड उनसो कर नीहा ।

चार मीन है पडित चारौ हैं समतन ।

मानसरादक अमन भर-रहे कवल के फन ।

३-पदमावत (१५४०)

जायसी द्वारा प्रेमाख्यानो का उल्लेख

जायसी ने पदमावत में कतिपय प्रेम गाथाओं की जोर सवेत किया है—

बहुत-ह ऐस जीउ पर खेना । नू जोगी कहि माह अकला ।

विश्रम धसा पेम क थारा । सपनावति कह गएउ पतारा ।

गुनबच्छ मुगुधावति लागी । ककनपूरि होइ गा बरागी ।

राजकुवर कचापुर गएऊ । मिरगावति कह जोगी भएऊ ।

साधा कुवर मनोहर जोगू । मधुमानति बह कीह वियोगू ।

पेमावति कह सरसुर साधा । उरवा लागि अनिष्टघ वर बाधा ।^१

इन पक्तियों के साक्ष्य पर स्पष्ट है कि पदमावत की रचना के समय तक वे (इन पक्तियों में कथित) कहानियाँ किमी न किसी रूप में अवश्य प्रचलित थी ।

तब घर मे बठे रहैं जाहि न हाट बजार ।
मधुमालति मिरगावति, पोयी दोइ उगार ।
ते बाँचहि रजनी समै, आवहि नर दास बीसे ।
गावहि अक्ष वात कर्गहि नित उठि दहि असीस' ॥

बनारसी दम इन पोथिया को लगभग १६०५ ई० (स० १६६२) मे पढ़ा^१ करते थे पदमावत १५४० ई० (१५६७) मे लिखा गया था । गायसी जीर बनारसी दास ने उल्लेख से स्पष्ट है कि ये मात्र मौखिक कहानियाँ ही नहीं पुस्तक रूप मे भी थी । मधुमालती की कथा का उल्लेख उस्मानकृत 'चित्रावली' मे भी मिलता है ।

'मधुमालति होइ रूप दिखावा । प्रेम मनोहर होइ तह आवा ।'
मगावती मुख रूप बसरा । राजकुवर भयो प्रेम अहेरा ॥
सिंहल पदुमावति मो रूपा । प्रम किमो है चितउर भूपा ॥

इन साक्ष्यों के आधार पर कहा जा सकता है कि ये प्रेमकाव्य हैं । इनमे से कुछ तो प्राप्त हो गए हैं और सरसुर प्रेमावती की कहानी " प्रभति प्रेम गाथाये अभी तक अज्ञात हैं । यह अभी भी ज्ञात है कि ये प्राप्त अप्राप्त क्याए सुफी प्रमाख्यानो की परम्परा मे हैं या असूफी भारतीय प्रेमाख्यानो की परम्परा मे ।

४—शेख (मियाँ) मझन कृत मधुमालती (रचनाकाल १५४५ ई०)

प० रामचन्द्रशुक्ल^२ का अनुमान था कि मधुमालती की रचना पदमावत के पूव हुई थी किन्तु शुक्लजी ने यह अनुमान एक खचित प्रति और मधुपाठ मुग्धावति लागी वाले पदमावत के उत्सख को दष्टि मे रखकर किया था । इधर मधुमालती की कई प्रतियों^३ का पता चला है 'एकटला से प्राप्त प्रति के आधार पर

१—अदकथान, प० नाथूराम प्रमी, प० ३८ (३३५) १६५७ ।

२—वही प० २६ (अब सोरह स बासठ कानि हूजी कान) २५७

३—चित्रावली उस्मान, (३०५ ७) ।

४—पदमावत, डा० वासुदेवसरण अग्रवाल, प० २२३-२४ ।

५—हिन्दी साहित्य का इतिहास प० रामचन्द्र शुक्ल, प० ६८ ।

६—डा० कमलकुन श्रष्ट ने (हिन्दी प्रमाख्यानक काव्यों, प० ३८) इन दोनो प्रतियों को नागरीप्रचारणी सभा मे देखा था एक वह वस्तुत भारतकना भवन में सुरक्षित प्रतियाँ हैं ।

(क) नागरीप्रचारणी सभा की दो प्रतिया (ये प्रतिया सण्डिन और अपूण हैं) । एक फारसी लिपि मे है और दूसरी देवनागरी मे । फारसी लिपि वाली प्रति के प्रारम्भ मे २७३ और अत मे ८० दोहे नहीं हैं । इसकी पुणिका मे प्रति

—शेषान अगले पृष्ठ पर देखिए

हानी लोक पाहित्य में मिल गई है।^१ सुन्दर-मुग्धावती की कहानी अत्यन्त लोकप्रिय थी। सत्शेरासक में इसका उल्लेख जाया है—

‘कह व ठाइ पडवइहि वडपयासिय^२ कह बहुसवि णिवद्धउ ।

रासउभासियइ । कहव ठाइ सुन्दरक कत्यवर नन चरिउ ॥

कत्यव विविहवि णोइहि भारतु उच्चरिउ ॥

सदृशे रासक^३ की इन पक्तियों से स्पष्ट है कि कहीं पर चारों बंदों के जाता बंदों की याद दिलाते हैं कहीं विविध रूपा से निबद्ध रासक पढ़े जाते हैं। कहीं सुन्दरक, कहीं नलचरिउ और कहीं विविध विनोद पूर्वक महाभारत की कथाएँ दी जाती हैं। यहाँ पर यह द्रष्टव्य है कि सुन्दरक की कथा का उल्लेख ‘वद’ नलचरिउ और ‘महाभारत’ के साथ किया गया है।

सुन्दरक और रानी सावलिगा की कहानी आज भी बिहार से गुजरात तक गद्य गाव में कही जाती है। (सुन्दरक सावलिगा की कहानी के लिए देखिये मगर चन्द नाहुटा का लेख राजस्थान भारती अप्रैल १९५०)।

‘मधुमालती’ की कथा का उल्लेख—

मधुमालती नाम की कई रचनाओं का पता चलता है। मञ्जनकृत मधुमालती नामक अवधी प्रेम कहानी की अनेक हस्तलिखित प्रतियाँ मिलती हैं। कई हस्तलिखित प्रतियों के आधार पर श्री शिवगोपाल मिश्र ने मञ्जन कृत मधुमालती का संपादन किया है। कवि बनारसी दास ने लिखा है कि वे मधुमालती और मगावती की पोथियाँ रात्रि के समय जौनपुर में बाचा करते थे। इस उल्लेख से स्पष्ट है कि १६५१ ई० में ये पोथियाँ विद्यमान थीं।

१—गो वासुदेवशरण अग्रवान पदमावत पृ० २२२-२४।

२—म दशरासक (प० हजारीप्रसाद द्विवेदी और विश्वनाथ त्रिपाठी) प १२।

४३ ४४ वा पत्र।

३—दक्षिण मधुमानती पर अजरतन दास का नेत्र हिंदुस्तानी पत्रिका, अप्रैल १९३८ पृ० २१२।

नागरी प्रचारिणी पत्रिका मञ्जन कृत मधुमानती प० चम्बली पाठ्य, १९६५ पृ० २१५-१६।

नागरी प्रचारिणी पत्रिका, हीरक जयती अंक टा० माताप्रसाद गुप्त का लेख पृ० ५८ स० २०१।

४—मञ्जनकृत मधुमालती डा० शिवगोपाल मिश्र (हिंदी प्रचारक पुस्तकालय, काशी) १९५७।

तव घर मे बठे रहें जाहि न हाट बजार ।
मधुमालति मिरगावनि पोथी दोइ उदार ।
ते बाँचहि रजनी सम, आवहि नर दास बीसे ।
गावहि अरु वात बगहि निन उठि दहि असीसे ॥

बनारसी दास इन पोथियों को लगभग १६०५ ई० (स० १६६२) में पढ़ा^१ करते थे पदमावत १५४० ई० (१५९७) में लिखा गया था। जायसी जीर बनारसी दास के उल्लेखों से स्पष्ट है कि ये मात्र मौखिक कहानियाँ ही नहीं पुस्तक रूप में भी थीं। मधुमालती की कथा का उल्लेख उत्तमानवृत 'चित्रावली' में भी मिलता है।

'मधुमालति होइ रूप दिखावा । प्रेम मनीहर होइ तह आवा ।'
मृगावती मुख रूप बसरा । राजकुवर भयो प्रेम अहेरा ॥
सिंहल पदुमावति मो रूपा । प्रेम कियो है चितउर भूपा ॥

इन साक्ष्यों के आधार पर कहा जा सकता है कि ये प्रेमकाव्य हैं। इनमें से कुछ तो प्राप्त हो गए हैं और सरमूर प्रमावती की कहानी 'प्रमति प्रेम-गाथायें अभी तक अज्ञात हैं। यह अभी भी ज्ञात है कि ये प्राप्त-अप्राप्त कथाएँ सूफी प्रमाख्यानों की परम्परा में हैं या असूफी भारतीय प्रमाख्यानों की परम्परा में।

४—शेख (मिया) मझन कृत मधुमालती (रचनाकाल १५४५ ई०)

प० रामचन्द्रशुक्ल^२ का अनुमान था कि मधुमालती की रचना पदमावत के पूर्व हुई थी, किन्तु शुक्लजी ने यह मनुमान एक खंडित प्रति और 'मधुपाछ मुग्धावति लागी' वाले पदमावत के उल्लेख को दृष्टि में रखकर किया था। इधर मधुमालती की कई प्रतियों^३ का पता चला है एकटला से प्राप्त प्रति के आधार पर

१—अदकथान, प० नाथूराम प्रेमी, प० ३८ (३३५) १९५७ ।

२—वही, प० २६ (अब सोरह स वासठ कानिक हूओ कान) २५७

३—चित्रावली उत्तमान, (३०।५७) ।

४—पदमावत डा० वासुदेवदरण अग्रवाल प० २२३-२४ ।

५—हिन्दी साहित्य का इतिहास प० रामचन्द्र शुक्ल, प० ६८ ।

६—डा० कमलकुल श्रेष्ठ ने (हिन्दी प्रमाथ्यानक काव्या प० ३८) इन दोनों प्रतियों को नागरीप्रचारिणी सभा में देखा था, एक वह वस्तुतः भारतवर्षा भवन में सुरक्षित प्रतियाँ हैं।

(क) नागरीप्रचारिणी सभा की दो प्रतियाँ (ये प्रतियाँ खण्डित और अपूर्ण हैं)। एक फारसी लिपि में है और दूसरी देवनागरी में। फारसी लिपि वाली प्रति के प्रारम्भ में २७३ और अंत में ८० दाहे नहीं हैं। इसकी पुष्पिका में प्रति—
—शेषान अगले पृष्ठ पर देखिए

डा० शिवगोपाल मिश्र ने मधुमालती^१ का प्रकाशन करके एक बड़े अभाव की पूर्ति
गत पृष्ठ से आगे—

लिपि का समय स० १६४४ वि० दिया हुआ है।

- (ख) जगमोहन वर्मा की प्रति—(गुदड़ी बाजार से प्राप्त ?) चित्रावली से सपादक श्री जगमोहन वर्मा को गुदड़ी बाजार (कागी) से एक खंडित प्रति प्राप्त हुई थी। यह ग्रंथ १७ पाने से १३३ पान तक है। पुस्तक उर्दू (फारसी ?) में अत्यंत शद्ध अक्षरों में लिखी हुई है। भाषा मधुर है। पाँच-पाँच पक्तियों के बाद एक दोहा है। आदि और अन्त में पृष्ठ न होने से ग्रन्थकर्ता के ठीक नाम सिवाय मसन के जो उसका उपनाम है और उसके निर्माणकाल आदि का पता नहीं चलता। ग्रन्थ के आदि के ३६ पानों तक बायें पृष्ठ पर के किनारे पर दो-दो पक्तियों फारसी भाषा में कुछ याददाश्त लिखी है, जिनके अन्त में ११ रवि उस्सानी १०६६ हि० की मिति है। याददाश्त में उसी समय का बणन है। इससे अनुमान होता है कि यह प्रति उस समय स० १७१६ के पहिल की लिखी हुई है।

देखिए चित्रावली भूमिका (स० जगमोहन वर्मा)

- (ग) श्री चन्द्रवती पांडय जी को भी गुदड़ी बाजार से एक प्रति मिली थी। उनकी भी प्रति में १७ से १३३ पाने हैं। तथि भी फारसी है। इस प्रति के भी बाएँ पृष्ठों पर दो-दो पक्तियाँ याददाश्त के रूप में मिलती हैं। इसके अन्त में ११ रवि उस्सानी सन १०६६ हिजरी दिया हुआ है।

देखिये ना० प्र० पत्रिका मसन कत मधुमालती (प० चन्द्रवती पांडय का लख) स० १९६३ स० ४३, प २२५।

- (घ) भारतकला भवन, कागी विश्वविद्यालय की प्रति इसमें प्रतिलिपि का काल स १६४४ दिया हुआ है। (इस समय भारतकला भवन में मधुमालती की तीन प्रतियाँ हैं)। रामपुरवाली प्रति का हिन्दी रूपान्तर भी इसमें सुरक्षित है।
(ङ) रामपुर स्टेट लायब्रेरी की प्रति—इसमें कुल २४६ पृष्ठ हैं प्रत्येक पृष्ठ पर १५ पक्तियाँ हैं। प्रत्येक पृष्ठ स्वर्णालंकृत है। पुष्पिका के अनुसार इसका प्रतिलिपिकार मुहम्मदगाहवादाशाह गाजी का समय है। इस प्रति का फारसी भाषा में अनुवाद भी हुआ था।

फारसी अनुवाद देखिये कटलाग आफ दी परशियन मेन्सुस्क्रिप्ट्स इन दी ब्रिटिश म्यूजियम, प० ८०३, (१८८१ *०)।

रामपुरवाली प्रति के आधार पर ना० प्र० पत्रिका में सत्यजीवन वर्मा का एक लख छपा था। देखिए ना० प्र० पत्रिका स० २००२ भाग ६ प० २६७।

की है। मधुमालती म मञ्जन ने हमने रचनाकान का स्पष्ट उल्लेख किया है—

‘सवत नौ स बावन भएऊ । सती पुरुष कलि परिहर भएऊ ॥

तो हम चित्त उपजी अभिलाखा । क्या एक बाधो रस भाखा ॥

सुरस बचन जहाँ लगि सुन । कवि जो सामने ते सब गुने ॥

जो सभ वहे सुरस रस भाखी । गुनी कान द पेम अभिलाखी ॥

(मधुमालती मञ्जन, पृ० १४)

अतः यह निश्चित है कि मञ्जन ने मधुमालती नामक प्रेमकथा की रचना हिजरी सन ६५२ तम्नुसार सन १५४५ ई० अथवा स० १६०२ वि० में की।

मधुमालती की कथा—

कनेसर नगर के राजा सुरजभान के पुत्र मनोहर को एक रात कुछ अप्सरायें मुप्तावस्था में उठाकर रातो रात महारस नगर की राजकुमारी मधुमालती की चित्र सारी में रख आईं। जागने पर दोनों ने एक दूसरे को देखा—दोनों एक दूसरे पर मोहित हो गए। मनोहर ने उसके पूछने पर कहा कि मेरा अनुराग तुम्हारे ऊपर अनेक जन्मों से है। जिस दिन मैं इस ससार में आया—उसी दिन से तुम्हारा प्रेम मेरे हृदय में उत्पन्न हुआ है। बहुत देर तक वार्तालाप करने के पश्चात् वे सो गए। अप्सरायों ने सोये हुये मनोहर को उठाकर उसके महल में पहुँचा दिया। जागने पर दोनों के हृदयों में विरह जन्म व्याकुलता छा गई। राजकुमार मनोहर उसके वियोग में योगी होकर निकल पड़ा। समुद्र के माग से जाते समय उसके इष्टमित्र तितर बितर होकर बह गए। मनोहर बहता हुआ किसी जगल के तट पर जा पहुँचा। वहाँ एक मुन्दरी पलंग पर लेटी हुई थी। पूछने पर उसने बताया कि वह चित्तविस रामपुर के राजा चित्रसेन की बेटी प्रेमा थी। उस वहाँ पर कोई राक्षस उठा लाया था। राजकुमार ने राक्षस का बध किया और प्रेमा का उद्धार किया। उसने कहा कि मैं मधुमालती की सखी हूँ और मैं उसे तुमसे मित्रा दूंगी। मनोहर के साथ प्रेमा अपने पिता के घर में आईं। मनोहर के उपकार को मुनकर प्रेमा के पिता ने उसको मनोहर से ग्राह देना चाहा। प्रेमा ने इसे यह कहकर अस्वीकार कर दिया कि मनोहर मेरा भाई है और मैंने उसे अपनी सखी मधुमालती से मित्राने का वचन दिया है।

दूसरे दिन जब मधुमालती अपनी माँ रूपमजरी के साथ प्रेमा के घर आईं, तो प्रेमा ने उसे मनोहर से मिला लिया। प्रातः रूपमजरी ने चित्रसारी में दोनों को एक साथ देखा, तो बहुत फटकारा। जब उसने देखा कि पुत्री मनोहर का प्रेम छोड़ने को प्रस्तुत नहीं है, तो उसने उसे पक्षी हो जाने का शाप दिया। वह पक्षी होकर उड़ गई। माता अपने शाप की बात सोचकर पछताने लगी। उसने बहुत विलाप किया। वह मधुमालती को खोजने लगी, पर उसका पता न चला।

डा० शिवगोपाल मिश्र ने मधुमालती^१ का प्रकाशन करके एक बड़े अभाव की पूर्ति

गत पृष्ठ से आग—

लिपि का समय स० १६४४ वि० दिया हुआ है।

- (ख) जगमोहन वर्मा की प्रति—(गुदड़ी बाजार से प्राप्त ?) चित्रावली से सपादक श्री जगमोहन वर्मा को गुदड़ी बाजार (काशी) से एक खंडित प्रति प्राप्त हुई थी। यह ग्रंथ १७ पन्ने से १३३ पन्ने तक है। पुस्तक उदू (फारसी ?) में अत्यंत शुद्ध अक्षरों में लिखी हुई है। भाषा मधुर है। पांच पांच पक्तियों के वाद एक दोहा है। आदि और अन्त में पृष्ठ न होने से ग्रन्थकर्ता के ठीक नाम सिवाय मशन के जो उसका उपनाम है और उसके निर्माणकाल आदि का पता नहीं चलता। ग्रन्थ के आदि के ३६ पन्नों तक बायें पृष्ठ पर के किनारे पर दो-दो पक्तियों फारसी भाषा में कुछ याददाश्त लिखी है जिनके अन्त में ११ रवि उस्सानी १०६६ हि० की मिति है। याददाश्त में उसी समय का वणन है। इससे अनुमान होता है कि यह प्रति उस समय स० १७१६ के पहिले की लिखी हुई है।

देखिए चित्रावली भूमिका (स० जगमोहन वर्मा)

- (ग) श्री चन्द्रवती पांडेय जी को भी गुदड़ी बाजार से एक प्रति मिली थी। उनकी भी प्रति में १७ से १३३ पन्ने हैं। तथि भी फारसी है। इस प्रति के भी बाएँ पृष्ठों पर दो-दो पक्तियाँ याददाश्त के रूप में मिलती हैं। इसके अन्त में ११ रवि उस्सानी सन १०६६ हिजरी दिया हुआ है।

देखिये, ना० प्र० पत्रिका मशन कत मधुमालती (प० चन्द्रवती पांडेय का लेख) स० १९६३ स० ४३ प० २२५।

- (घ) भारतवला भवन काशी विश्वविद्यालय की प्रति इनमें प्रतिनिधि का काल स० १६४४ दिया हुआ है। (इस समय भारतवला भवन में मधुमालती की तीन प्रतियाँ हैं)। रामपुरवानी प्रति का हिन्दी रूपान्तर भी इसमें सुरक्षित है।

- (ङ) रामपुर स्टेट लाइब्रेरी की प्रति—इसमें कुल २४६ पृष्ठ हैं प्रत्येक पृष्ठ पर १५ पक्तियाँ हैं। प्रत्येक पृष्ठ स्वर्णालंकृत है। पुष्पिका के अनुसार इसका प्रतिनिधिकाल 'मुहम्मदगाह बादशाह गाजी का समय है। इस प्रति का फारसी भाषा में अनुवाद भी हुआ था।

फारसी अनुवाद देखिये कटलाग आफ दी परशियन मेन्सुस्क्रिप्ट्स इन दी ब्रिटिश म्यूजियम, प० ८०३, (१८८१ ई०)।

रामपुरवानी प्रति के आधार पर ना० प्र० पत्रिका में सत्यजीवन वर्मा का एक लक्ष छपा था। देखिए ना० प्र० पत्रिका, स० २००२ भाग ६ प० २६७।

१- डा० शिवगोपाल मिश्र।

की है। मधुमालती में मन्नन ने इसी रचनाका न का स्पष्ट उल्लेख किया है—

‘सबत नी स बावन भरु। सती पुरय बलि परिहर भएऊ ॥

तो ह्य चित्त उपजी अभिलाखा । बया एक थाथी रस थाखा ॥

सुरस बचन जहाँ लगि सुन । बवि जा सामने ते सब गुन ॥

जो सभ कहै सुरस रस भाषी । सुनो कान द पेम अभिलाखी ॥

(मधुमालती, मन्नन, पृ० १४)

अतः यह निश्चित है कि मन्नन ने मधुमालती नामक प्रेमकथा की रचना हिजरी सन ६५२ सन्नुसार सन १५४५ ई० अथवा स० १६०२ वि० में की।

मधुमालती की कथा—

कनेसर नगर के राजा सुरजभान के पुत्र मनोहर को एक रात कुछ अप्सरायें सुप्तावस्था में उठाकर रातो रात महारस नगर की राजकुमारी मधुमालती की चित्र सारी में रख आईं। जागने पर दोनों ने एक दूसरे को देखा—दोनों एक दूसरे पर मोहित हो गए। मनोहर ने उसके पूछने पर कहा कि मेरा अनुराग तुम्हारे ऊपर अनेक जन्मों से है। जिस दिन मैं इस मसार में आया—उसी दिन से तुम्हारा प्रेम मेरे हृदय में उत्पन्न हुआ है। बहुत देर तक वार्ता-वप करने के पश्चात् वे सो गए। अप्सरायें ने सोये हुये मनोहर को उठाकर उसका महार म पहुंचा दिया। जागी पर दोनों के हृदयों में विरह जाय याकुलता छा गई। राजकुमार मनोहर उसके विधोग में योगी होकर निकल पडा। समुद्र के माग में जाते समय उसके इष्टमित्र तितर बितर होकर बह गए। मनोहर बहता हुआ किसी जगल के तट पर जा पहुँचा। वहाँ एक सुन्दरी पत्थर पर लेटी हुई थी। पूछने पर उसने बताया कि वह चित्रविस रामपुर के राजा चित्रसेन की बेटी प्रेमा थी। उसे वहाँ पर कोई राक्षस उठा लाया था। राजकुमार ने राक्षस का वध किया और प्रेमा का उद्धार किया। उसने कहा कि मैं मधुमालती की सखी हूँ और मैं उसे तुमसे मिला दूंगी। मनोहर के साथ प्रेमा अपने पिता के घर में आईं। मनोहर के उपकार को मुनकर प्रेमा के पिता ने उसको मनोहर से याह देना चाहा। प्रेमा ने इसे यह कहकर अस्वीकार कर दिया कि मनोहर मेरा भाई है और मैंने उसे अपनी सखी मधुमालती से मिलाने का वचन दिया है।

दूसरे दिन जब मधुमालती अपनी माँ रूपमजरी के साथ प्रेमा के घर आई तो प्रेमा ने उसे मनोहर से मिला दिया। प्रात रूपमजरी न चित्रसारी में दोनों को एक साथ देखा तो बहुत फटकारा। जब उसने देखा कि पुत्री मनोहर का प्रेम छोड़ने को प्रसन्न नहीं है, तो उसने उसे पक्षी हो जाने का शाप दिया। वह पक्षी होकर उड़ गई। माता अपने शाप की बात सोचकर पछताने लगी। उसने बहुत विलाप किया। वह मधुमालती को खोजने लगी, पर उसका पता न चला।

कृवर ताराचन्द नामक राजकुमार ने उसे पकड़ना चाहा। मधुमालती ने उसे देखा कि ताराचन्द और मधुमालती के रूपा में साम्य है—अतः वह ठहर गई। राजकुमार ने उस पकड़ कर सोने के पित्ररे में डाल दिया। एक दिन उम पक्षी ने अपनी सारी प्रेमा कहानी ताराचन्द से कह सुनाई उसे सुनकर उसने प्रतिज्ञा की कि मुझे तेरे प्रियतम मनोहर से अवश्य मिला दूंगा। उस पित्ररग पक्षी को देखकर वह महारस नगर में पहुँचा। उसकी माना रूपमञ्जरी ने प्रमत्त होकर मग्न पडकर उसे फिर मधुमालती के रूप में परिवर्तित कर दिया। मधुमालती के माता पिता ने ताराचन्द के ही साथ उसका व्याह करना चाहा किन्तु ताराचन्द ने कहा कि 'मधुमालती मेरी वहिन है और मैंने उसे बचन दिया है कि जैसे भी होगा मैं उसे मनोहर से अवश्य मिलारूगा।

मधुमालती की मा ने तब सारा हाल लिखकर प्रेमा के पास भेज दिया। मधुमालती ने भी अपनी यथा कथा को तिल भेजा।

प्रेमा जिस क्षण दोनो पत्रों को पढ़ कर दुःख के सागर में डूब रही थी—ठीक उसी समय एक सब्बी ने योगी वेश में मनोहर के आगमन का संज्ञा दिया। मधुमानती का पिता अपनी रानी और दल आ सहित वहाँ गया। पश्चात् मधुमालती और मनोहर का विवाह हो गया। मनोहर मधुमालती और ताराचन्द्र प्रेमा के घर बहुत दिना तक अतिथि बन रहे। एक दिन शिकार स लौटने पर ताराचन्द प्रेमा और मधुमालती को एक साथ झूना झूलते देखकर प्रेमा पर मोहित होकर मूर्छित हो गया। मधुमानती और उसकी सखिया उपवार में नग जाती हैं।

प्रेमा के सौंदर्य पर मोहित होने के पश्चात् (कथा ६ खण्ड और है)

मधुमालती ताराचन्द से उसकी मूर्छा का कारण पूछती है। उसने अपने मोह और प्रेमा के रूप सौम्य का वणन किया। मधुमानती ने अपने पिता जी के समक्ष उन दोनों के विवाह का प्रस्ताव रखा। दोनो का व्याह हो जाता है। राजकुमार मनोहर—मधुमालती और ताराचन्द प्रेमा सखपूवक साथ रहने लगते हैं।

कृवार महीने के लगते ही दोनो राजकुमारो ने राजा चित्रसेन से विदा की प्रार्थना की। राजा वंश ही दुःखित होता है। अतः पुर में भी शोक और कृष्णा के भाव छा जाते हैं। मधुमानती की माँ ने विदा के क्षणों में कहा—

साईं सेवा करव चित लाए। जनि डोन चिन दाहिन बायें।

सखियों ने भी स्नेहातिरेकवश कहा—

जो बिलुरत दुख जन त्यो एहा। कत करतउ बालापन नहा ॥

बचन माँ ने आशोप दिया—

जो लगी धरती गगजन और ससि सूर अपार।

तो लगी राज सोहाग तुअ, राखी सिरजनहार ॥

चारों की एक साथ ही विदाई होती है। कुछ दूर जान पर दोनों दो मार्गों पर चल पड़ते हैं। इस समय इन मुन्नी के दिव्योपवा का वारुणिक दृश्य उपस्थित होता है। ताराचन्द्र और मनोहर गले मिलते हैं। सभी एक दूसरे से अत्यन्त प्रेम भाव से मिलते हैं पुन 'बोउ पूरव फोउपश्चिम जाई। मनोहर दो वप म बन गिरि पदचता है। महान म पदचने पर आनन्दोत्सव मनाया जाता है। राजकुमार को पाकर उसका पिता-राजा अत्यन्त हर्षित होता है।

'बुवर पिता वा लागी आई। नन जोति अनु अचरे पाई ॥

चारों ओर आनन्द ही आनन्द छा जाता है।

अतः म कवि न प्रेम की प्रगति करते हुए 'मधुमालती का उपसहार किया है।

'प्रेम अमित्र जे पाइय वासा। समवान तेहि आव न सासा।

जेहि भी पम अमी सी, परिच कर क पार।

ओषि सहसदन कनी सो, मित्रहि पम आधार ॥'

मञ्जन (जीवन चरित)

अभी तक मञ्जन जीवन के विषय में निश्चित रूप से कुछ भी पान नहीं है। अतः एवम वहि साध्या व आधार पर इतना कहा जा सकता कि य मुसलमान सूफी सत य। इनका पूरा नाम है शय (मियाँ) गुफनार मञ्जन'।

मधुमालती के प्रारम्भिक मंगलाचरण के कारण श्री बजरत्ननाथ जी न मञ्जन को हिन्दू माना है किन्तु पुस्तक के प्रारम्भ में ईश्वर मुहम्मद, पीर गुरु प्रमथोर प्रमति प्रमगा एव अतः साध्या और एकडला एवम रायकृष्णदास जी की प्रतियों के साक्ष्य पर स्पष्ट है कि ये मुसलमान थे।

इनके गुरु शैख गौस मुहम्मद व।

शय मुहम्मद पीर अफारा। सात समद नाव के कठ हारा।

दाता गुन गाहक गौस मुहम्मद पीर।

मञ्जन ने १२ वर्षों तक बठिन तपस्या की और उन्हे आत्मज्ञान प्राप्त हुआ

१- मञ्जन कृत मधुमालती, की एकडला से प्राप्त प्रति की पुष्पिका।

प्रति श्री मधुमालती पोथी ममाप्त है, जा सबसे १७५४ सम नाम जेठ सुनी दुजो को तवार भई वार बुनवार को। पडितवन सों बिनती मोरी। टूटा अणर मरवाहि जोरी। गुफनार मिया मञ्जन कृत राममूलक सहाय लिपित महिराम। श्री रायकृष्णदास की प्रति पुष्पिका में भी 'शैख मञ्जन लिखा है।

२- हिन्दुस्तानी, अग्र न, १९३८ प० २११।

पिता के स्वर्गवामी होन पर उह दूसरा घर बसाना पडा। ज्ञानोदय के पश्चात ही 'स्वात सुखाय सन ९५२ हि० में मधुमानती की रचना की। मधुमालती से इनकी कोमल कल्पना और स्निग्ध सहृदयता का पता चलता है। 'वृक्षि पड मोर आखर लोई से स्पष्ट है कि मधुमालती की कथा में मञ्जन ने पान की चर्चा की है। अतः समझ बूझकर ही उसको पढ़ना चाहिए। मधुमालती में अनेक स्थलों पर (विशेषतः पण्डितों से त्रटियों के लिए क्षमा मागते समय या पण्डित मूल चर्चा के स्थलों पर) मञ्जन की विनयशीलता के दशन होते हैं।

वारहमासा

मञ्जन का वारहमासा सावन से प्रारम्भ होना है। सम्पूर्ण वारहमासे में मलिक मुहम्मद जायसी का अनुकरण द्रष्टव्य है। यद्यपि मञ्जन ने मलिक मुहम्मद का कहीं भी उल्लेख नहीं किया है किन्तु इनके काव्य को पढ़ने से स्पष्ट है कि ये पदमावत से पूर्णतः प्रभावित हैं। उदाहरणार्थ कुछ पंक्तियाँ यहाँ दी जा सकती हैं—

सिध मया बरस झकजोरी। प्रेम सतिन दुइ जोजन धोरी ॥

(मञ्जन)

बरस मया झकोरि झकोरी। मोर दुइ नन चुर्वाहि जस ओरी ॥

(जायसी)

मरन रनि तेहि सीतल जहि पिउ कठ नेवास।

सखं परब देवारी मोहि सखी बनवास। (मञ्जन)

सरद रनि तेहि सीतल भाव। जेहि प्रीतम कउ जागि बिहाव। (मञ्जन)

सखि मानहि लोहार, सब गाइ देवारी खेनि।

हों का खेलों कत बिनु रही क्षार सिर मेनि ॥ (जा ३० ३०।८)

मधुमालती (शिल्प विधि एव अथ वैविष्टय)

मधुमालती के कथा शिल्प पर कथासरित्सागर और 'हितोपदेश' के कथा शिल्प का प्रभाव है। मूलकथा के विकास के साथ साथ तमाम अंतकथाएँ और उपकथाएँ उससे फूटती रहती हैं और इन कथाओं की चरम परिणित मूलकथा में ही होती है। कथा में आध्यात्मिक प्रेम भाव की योजना के लिए प्रकृति के भी दशवों का समावेश मञ्जन ने किया है। मञ्जन की कल्पना कुतबन से विग्न है और वणन भी अधिक विस्तृत और हृदयग्राही हैं।

कवि न नायक और नायिका के अतिरिक्त उपनायक और उपनायिका की भी योजना करके कथा को तो विस्तृत किया ही है साथ ही प्रेमा और ताराचंद के चरित्र द्वारा सच्ची सहानुभूति, अपुव मयम, और निस्वार्थ भाव चित्र भी दिखाया है। जन्म जन्मान्तर और यो-यतर के बीच प्रेम की अखंडता दिखाकर मञ्जन ने

१-हिंदी कहानियों की शिल्प विधि का विकास डा० लक्ष्मीनारायण लाल, पृ० ३० (१९५३)।

प्रमत्तत्व की 'यापना' और नित्यता का आभास दिया है। सारा जगत एक ऐसे रहस्यमय प्रेम-युग में बना है जिसका अन्वेषण करके जीवन उस प्रेम-मूर्ति तक पहुँचने का माग्य प्राप्त करना है। समस्त रूपों में जीव परम-मत्ता की छिपा-छोपी को देखकर मुग्ध होना है। मग्न कहने हैं—

देखत ही पहिचानेउ नोहा । एही रूप जेहि छग्यो मोही ।

एही रूप बृत्त अहै छाना । एही रूप रव मिण्टि समाग ॥

एहा रूप प्रगटे बहु भवा । एही रूप जग रव गरेसा ।

ईश्वर का विरह साधक की प्रधान संपत्ति है जिसके बिना साधना के माग्य में कोई प्रवृत्त नहीं हो सकता। किसी की आर्ग्य व्युत्पन्न नहीं सकता।

पम दीप जाने हिय गारा । ते सय आदि अंत उजियारा ।

जगत जन्म जन जीवन ताही । पम पीर जिय उपजा आही ।

कोटि माहि विरला जग बोइ । जाहि सरीर विरह दुख होई ।

रतन कि समर सागरहि यजमोली गज बोइ ।

चन्दन रि वन जन उपज विरह कि तन तन भाइ ।

जिसके हृदय में विरह होना है उसके लिए यह समार स्वच्छ द्रव्य हो जाता है और इगम परमात्मा के आभास अनेक रूपों में पड़ने हैं। तब वह देखना है कि इस सृष्टि के सारे रूप-मारे 'यापार' उमी का विरह प्रकट कर रहे हैं।

प्रायः जायसी बृन्वन आदि मूर्खी तबियों ने रात्रियों के सती होने और 'छारि छठाइ लीटि इक मूठी' की बातें कही हैं कि तु मग्न ने इसका अर्थगत निराले रूप में किया है उसका वक्तव्य है कि कवि में सभी प्राणी नागवान हैं। अतः मधुमालती का वना गती होत हुए विरह-रूप। वन-ता स्वयं मर जायसी, किंतु सत्य और प्रेम-म आदि और अनंत हैं—

उत्पत्ति जग जेती चलि आइ । पुष्प मारि जन गनी कराई ।

म छोदन एहि मारि न पारेउ । सही मरिहि जो कनि जीतार ।

सती सुनी समार सभाऊ । गी मरि जिण सो मरे न काऊ ॥

स्पष्ट है कि मग्न ने मधुमालती और मनाहर का मिलन तो करा दिया है, किंतु मानव प्रेम के नात उस कृती नहीं होना दिया। मती पसम को उठाने जान बझकर अपने काय में नहीं जाने दिया।

५-उसमान वृत्त चित्रावली-रचनाकाल १६१३ ई०

श्री जगन्मोहन वर्मा ने चित्रावली का संपादन करके १६१२ ई० में काशी

१-दो साहित्य का इतिहास प० रामचन्द्र शास्त्र, पृ० ६७-६८ ।

२-चित्रावली की एक मधुम एव सुन्दर हस्तलिखित प्रति महाराज काशी नरेश के

नागरीप्रचारिणी सभा से प्रकाशित किया था ।

ये जहाँगीर के समय में बतमान ये और गाजीपुर' के रहने वाले थे । इनके पिता का नाम शेख हुसेन था । ये पाँच भाई थे । चार भाइयों के नाम हैं—शेख अजीज, शेख मानुल्लाह, शेख फजुल्लाह, और शेख हुसन—

कवि उसमां बस तेहि गाऊ । शेख हुसेन तब जग नाऊ ।
पाँचा भाइ पाँचो बूधि हिए । एक एक सौ पाँचो लिए ।
शेख अजीज पढ़ लिखि जाना । सागर सील ऊच बर दाना ।
मानुल्ला विधि मारग गहा । जोग साधि जो मोन होइ रहा ।
शेख फजुल्ला पीर अपारा । गन न काहु गहे हथियारा ।
शेख हुसन गाए न भल अहा । गुन विद्या कह गुनी सराहा ।'

ये चिश्ती संप्रदाय के निजामुद्दीन औलिया की शिष्य-परम्परा के सत थे । इनके गुरु थे 'हाजी बाबा —

'गहि मुज कीहे पार जे, बिन साहस बिनु दाम ।

कपूती सबल जहान के चश्ती साह निजाम ।

बाबा हाजी पीर अपारा । सिद्धि देत जेहि लाग न बारा ।'

इन्होंने १०२२ हिजरी (१६१३ ई०) में चित्रावली नाम की पुस्तक लिखी—

'मन सहसु याइस जब अहे । तब हम बचन चारि एक बहे ।

इन्होंने इस प्रमास्थान के स्तुति छंद में शाहेतस्त जहाँगीर की प्रशस्ति लिखी है

कथा मां प्रभु गाएउ नई । गुरु परसां समापत भई ॥

'योगी बूढ़ना खण्ड में काबुल, बदहशां खरासान, रूम, साम, मिस्र इस्त
बाल, गुजरात, सिंहलद्वीप करनाटक उडीसा मनीपुर एव बलेनीप आदि के उल्लेख
मिलते हैं ।' सबसे विलक्षण बात यह है जोगियों का अग्नेजो के द्वीप में पहुँचना बहुत

पुस्तकालय में है । इसका प्रतिलिपिकान है स० १८०२ (१७४५ ई०) महा-
राजा का पुस्तकालय सरस्वती भवन रामनगर किला ४-३२)।

श्री जगन्मोहन वर्मा ने एक अन्य प्रति का भी उल्लेख किया है—चित्रावली की
भूमिका में उन्होंने किसी रमजान मियाँ की चित्रावली की उद्गू प्रति का उल्लेख
मात्र किया है । देखिए चित्रावली, जगमोहन वर्मा (१९१२ ई०) ना० प्र०
सभा, काशी भूमिका ।

१-चित्रावली, ना० प्र० सभा, पृ० ११-१२ गाजीपुर उत्तम अस्थाना । देवस्थान
आदि जग जाना ।

२-वही, पृ० १२ ।

३-वही, पृ० १० ।

४-वही, पृ० १४ ।

संभव है कि उस समय अगरेज भारतवर्ष में आ गए थे—

‘बलदीप देखा अगरेजा । तहाँ धाढ़ जेहि कठिन करेजा ।

ऊँच-नीच धन सम्पति हरा । मद ब्रराह भोजन जिह केरा ।’

जायसी का पूरा अनुकरण कवि न इस रचना में किया है । जो जो विषय जायसी ने अपनी पुस्तक में रचे हैं उन विषयों पर उसमान ने भी कुछ कहा है । कहीं-कहीं तो शब्द और वाक्य विभ्यास भी वही है पर विशेषता यह है कि कहानी बिलकूल कवि की कल्पित है, जसा कि कवि ने स्वयं कहा है—

‘कथा एक मैं हिए उपाई । कहत मीठ और सुनत सोह्राई ।’

उसमान ने जायसी का पूरा अनुकरण किया है । जायसी के पहले के कवियों ने पाँच चौपाइयों (अर्द्धालियों) के पीछे एक दोहा रखा है । पर जायसी ने सात-सात चौपाइयों का श्रम रखा और यही श्रम उसमान ने भी रखा है । कहानी की रचना भी बहुत कुछ आध्यात्मिक दृष्टि से हुई है । कवि ने सुजानकुमार को एक साधक के रूप में चित्रित ही नहीं किया है बल्कि पौराणिक शाली का अवतम्बन करके उसने उसे परम योगी शिव से उत्पन्न तक कहा है । इस काव्य में योगी प्रभावजग्य ब्रह्म का छाप सबत्र लगी हुई है । महादेव जी ने उससे प्रसन्न होकर राजा धरनीपर को बरदाय दिया था—

‘दखू देत हों आपन असा । अब तोरे होइहोँ निजवसा ।’

कवलावती और चित्रावली अविद्या के रूप में कल्पित जान पड़ती हैं । सुजान का अर्थ ज्ञानवान है । साधनाकाल में अविद्या को बिना दूर रखे विद्या (सत्यज्ञान) की प्राप्ति नहीं हो सकती । इसी से सुजान ने चित्रावली के प्राप्ति न होने तक कवलावती के साथ समागम करने की प्रतिज्ञा की थी । जायसी की ही पद्धति पर नगर, सरोवर, यात्रा, दान महिमा के वगन चित्रावली में भी हैं ।

चित्रावली के आशेट प्रसंग जलश्रीडा प्रसंग^१, रूपनगर वगन^२, चित्रावली का नक्षत्रिण वगन^३, लौकिक-बहुजता^४, सबंधी उल्लेख, सयोग^५ वियोग^६ वगन, स्त्री

१-चित्रावली, ना० प्र० समा, पृ० १६० गाजीपुर उत्तम अस्थाना । देवस्थान आदि जग जाना ।

२-हिन्दी साहित्य का इतिहास, प० रामचन्द्र शुक्ल, पृ० १०६ ।

३-वही, पृ० १६ चित्रावली ।

४-वही, पृ० १ ।

५-चित्रावली, ना० प्र० समा, पृ० २५-२६ (पद्मावत, ना० प्र० समा,)

६-वही, पृ० ४७-४८ ।

७-वही, पृ० ६१-६२ ।

८-वही पृ० ७१-७२, ७३-७७ ।

९-वही, पृ० २३, २६, ८५ ।

१०-वही, पृ० २०४ ।

भेद वणन^१ (मुग्धा वासका सजा धीरा) दान^२ महात्म्य, सत्य महात्म्य^३ प्रमत्ति प्रसंगो म भी मनिक् मुहम्मद जायसी क्त पदमावत का प्रभावतिगम्य स्पष्ट दशनीय है ।

यद्यपि उसमान जायसी सपूणत प्रभावित है तथापि कही-कही उहीन अपनी कृपागति और सरस वणना गति के द्वारा सरस एवं प्रभावित दृश्य भी उपस्थित किए हैं । विरह वणन के अंतगत पटऋतु मे सम्बद्ध एक उद्धरण सी दय दशन हत पर्याप्त होगा—

ऋतु बसन नोनन वन फना । जह तह भौर कमुग रग भूना ।

आहि बहा सो भवर हमारा । जेहि बिन बसत बमत उजारा ।

रात बरन पुान देखि न जाइ । मानहु दवा दहू दिसि लाई ।

रति पति टुरऋ ऋतपता बनी । कानन देइ आइ दनमली ।^४

चित्रावली की कथा

नवान क राजा घरनीवर पवार सतानहीन थे । शिव के प्रसात् स उनके एक पुत्र उत्पन्न हुआ जिसका नाम सुगान रखा गया । व बड़ा हुआ । एक दिन शिखर से नीटते समय वह भाग भूत गया और एक दक् (प्रत) की मडो मे जाकर सा गया । देव ने आकर उसकी रक्षा स्वीकार की । एक दिन वह देव रूपनगर की राजकुमारी चित्रावली की वप गौठ का उत्सव देखने के लिए गया और अपने साथ सुजानकुमार का भी लेता गया । वहा पहुंचकर देवो ने राजकुमार के राजकुमारी की चित्र सारी मे ले जाकर निटा दिया । जागने पर उमने चित्रमारी का देखा—एक से एक सुन्दर चित्रो को देखकर वह आश्चर्य म पड गया । उमने वहा पर एक राज कुमारी का चित्र देखा—उस पर जासक्त हो गया । उसने अपना एक चित्र बनाकर उसी की वगन म टाग दिया । देव से उसी अवस्था मे उठा कर मनी म ले आए । जागने पर उसे लगा कि स्वप्न देख रना था कि तु अपन हाथ और वस्था म लगे रग को देखकर उमने पटना को सत्य मान लिया । वऋ याकन हो उठा । इसी समय उसने सबक वहाँ था पढ़चे जीर उसे राजधानी म ने गए । अपने साथी सुबुद्धि की सलाह से कुमार ने मडी म एक अन्न सत्र खोन दिया ।

चित्रावली न जब राजकुमार के चित्र को देखा तो यह भी प्रम विह्वल हो गई । उसने अपन भृत्यो को गानिया क वग म कुमार का पता लगाने को भेजा । एक कुटीवर की चुगली पर कुमारी की माने वह चित्र घलवा दिया । राजकुमारी

१-वही पृ ३७, ३८ ५४ १६७ १७२-७३ ।

२-वही पृ० ३२८-२९ (पदमावत पृ० २०७-२०८) ।

३-वही पृ० १६ ।

४-वही प० १८ ।

ने आविष्ट होकर उम कुंगीवर का मुग्ध कराके निजान लिया। कुमारी के भेजे हुए जोगियों में से एक राजकुमार न अज्ञस्य तत्र पहुँचा। वह राजकुमार को अपने साथ स्थानगत आया। एक विश्व मन्दिर में उसका कुमारी के साथ साक्षात्कार हुआ। इसी समय कुंगीवर ने राजकुमार को अज्ञात बना दिया और वन्ध्याकार एक गुफा में छोड़ आया जहाँ उसे एक अज्ञात न निगत किया उसके विरह की ज्वाला से घबड़ाकर उसने उस अज्ञात किया। एक वतमानुष के अज्ञान में उसकी दृष्टि पुन उदा की ल्यों हुई। वन में उस एक हाथी न पकड़ किया। एक बड़ा भारी पत्नी उस हाथी को लान उठ गया। पकड़ाने हाथी न राजकुमार को छोड़ दिया। राजकुमार एक समुद्र तट पर गिरा। घूमते फिरते वह सागर गन् नामक नगर में पहुँचा। वहाँ उसने राजकुमारी कनकावती के प्रसन्नवन में विद्याम किया। राजकुमारी उसका ऊपर साहित्य हो गई। राजकुमारी ने उसे अपने यहाँ भोजन के बहाने बुलवाया। भोजन में अपना हार रखवाकर चोरी के अन्वेषण में उस काम करवा लिया।

× × ×

चित्रावती का भेजा हुआ वह जामीदून सुजान कुमार को एक स्थान पर बठाकर उसका आगमन की सूचना देते राजकुमारी को यहाँ चला। इस बीच एक दूती न द्वेषवण यह समाचार रानी से कह दिया। वैचार जोषीदून बोदी बना किया गया। पर्याप्त विनम्र जब हो गया और दून नहीं लौटा तो सुजानकुमार विकृत हो उठा। वरुण्यवण अपने चित्रावती का नाम लक्ष्मण पुनारना प्रारम्भ कर दिया। अपयश के डर में राजा न उस मारने के लिए एक मन्त्रवाला हाथी छोड़ा, किन्तु कुमार न हाथी को मार डाला। राजा ने सदलक्षण उस पर आनमण करने का प्रयत्न किया। इसी बीच एक चित्रकार सागरगन् से लौटा और उमन उस राजकुमार का चित्र लिखवाया जिसने साहित्यगन् के राजा को मारा था। वह चित्र सुजान कुमार का ही है—यह जानकर राजा ने चित्रावती और सुजान का विवाह कर दिया। कुछ दिनों के पश्चात् कनकावती ने विरह से सतप्त होकर हम मिथ को दूत बनाकर भेजा। उसने भ्रमर की अयोक्ति के द्वारा सुजान को कनकावती के प्रेम की मुधि लिखाई। सुजान ने चित्रावती के साथ स्वदेश की ओर प्रस्थान किया। उसने माय में कनकावती को भी साथ में ले लिया। वापस लौटने समय समुद्र में तूफान आने के कारण उन्हें कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। राजकुमार अपनी दोनों रानियों के साथ नगाल चोट आया। पिता का हृदय आनन्द से भर गया। माता अज्ञानी हो गई थी, परन्तु पुत्र के दा रानियों के माय आगमन जग्य हर्षितरेक में उसके नश्वर खुल गया। राजा ने पुत्र का साक्षात्कार करके उसे गद्दी दे दी। सुजान अपनी रानियों के साथ सुखपूर्वक राज्य करने लगा।

चित्रावली का मूल-स्रोत

'चित्रावली सूफी कवियों की प्रेमगाथाओं की कोटि की है। यद्यपि उसमान ने यह दावा किया है कि—

‘बया एक मैं हिण उपाई । बहुत भीठ थी सुनत सुहाई ।

कहाँ बनाय बस मोहि सूझा । जेहि बस सूझ सो तसे दूसा ॥

तथापि इस कहानी के प्रमुख तत्व इधर उपर लोकवातार्थों में बिखरे मिलते हैं। उन्हीं से लेकर यह चित्रावली उसमान ने 'उपाई है ।' इस कहानी का आधार निश्चय ही लोकवातार्थ है। यह जायसी के पदमावत और बालम की कामकन्दला की भाँति ही प्रेमगाथा है। इसमें चित्रदर्शन से प्रेम का उदय हुआ है और उसके लिए अनेक कष्ट उठाने पड़े हैं।

इस कहानी के विश्लेषण से इसके बया विधान में निम्नलिखित तत्वों की संयोजकता मिलती है—

१—दवी तत्व (अ) शिव पावती का खाना, सिर की झेंड घाँगना, वरदान देना ।

(आ) देव की मढ़ी, सुजान को उड़ाकर रूपनगर में ले जाना और ले आना ।

२—अदभूत विलक्षण तत्व—

(अ) सजान को बजगर सीलता है, विरह की अग्नि से ध्याकुल हो उगल देता है ।

(आ) पुत्र उसे हाथी पकड़ता है हाथी को पक्षी लेकर उड़ जाता है, हाथी उसे छोड़ देता है। बनमानुष उसे बनीपथि-अजन देता है ।

(इ) पागल सुजान का हाथी को मारना ।

(ई) अघी माता का पुत्र आगमन से दृष्टि पाना ।

३—चित्र-दर्शन-गारा प्रेम—सुजान तथा चित्रावली में ।

४—प्रत्यक्ष दर्शन से प्रेम—(अ) बनमानुष का । (आ) कवलावती का ।

५—मिलन और विवाह में विविध बाधाएँ—

(अ) कुटीचर द्वारा

(आ) माता द्वारा

(इ) पिता द्वारा—जो सुजान पर मुद्र करने बड़े ।

१—मध्ययुगीन हिन्दी का लोक तात्विक अध्ययन, डा० सत्येन्द्र, पृ० १६२ ।

२—वही, पृ० २०१ ।

३—वही, पृ० २०३ ।

६—विश्व द्वारा विवाह का मांग सुनना — मुझ के लिए बाराह राजा विश्व पाकर मुझान की विनायली का विवाह करने को समझ ।

७—मुख्य विवाह से पूरा एक विवाह— कथलावली से ।

८—नायक का अन्धा किया जाना, तथा पुन एक प्रमी के माध्यम से औपधोपचार से पुन दृष्टि पाना —

(अ) कूटीचर द्वारा अन्धा किया गया ।

(आ) धनमानुष ने प्रम में पड़कर औपधोपचार से अन्धा किया ।

प्रस्तुत विश्लेषण से स्पष्ट है कि उसमान ने जायसी की ही भाँति भारतीय कथानक कृत्तियों के पर्याप्त प्रयोग किए हैं । यद्यत् यह कहा जा सकता है कि लौकिक तत्वों के माध्यम से उसमान ने इस सुन्दर प्रेमकाव्य की कथावस्तु का सघटन किया है ।

उपरोक्त विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि विनायली पर जायसी के परभाव का पर्याप्त प्रभाव पड़ा है ।

शेख नबीकृत ज्ञानदीप

(रचनाकाल १६१४ ई०—१६१९ ई०)

ज्ञानदीप की एक प्रति का उल्लेख नागरीप्रचारिणी सभा, काशी की 'सोज रिपोर्ट' (सन १९०२) में किया गया था । शेख नबी जोनपुर के दोसमऊ के पास 'मऊ नामक स्थान के रहने वाले थे । स० १६७६ में द्वाँगीर के समय में बतमान थे । ज्ञानदीप के अन्त साक्ष्य से स्पष्ट है कि यह काव्य १०२६ हिजरी में लिखा गया —

एक हजार सन रहे छबीला । राज सुनही गनहु बरीला ।
सम्बत सोलह स धिहरा । उक्ति गरत बोम्ह अनुसारा ।
अदनेमऊ दोसपुर घाना । जाउतुपुर सरकार मुजाना ॥
तहवाँ शेख नबी कवि कही । शम् अमर गुन पिगल मही ।
बोर, सिगर बिरह किछु पावा । पूरन पद स जोय सुनावा ।'

इस काव्य की कथा के द्वारा आनन्द की निष्पत्ति ही उनका लक्ष्य है, यदि कवि के धर्म से पाप का विनाश और पुण्य का प्रकाश हुआ तो वह अपना धर्म सार्थक समझेगा —

१—सोज रिपोर्ट १९०२, नोटिस १०२ । इसमें १५०० श्लोक हैं । यह प्रति सोज के समय मौनवी अब्दुल्ला, धुनियाँ टोला, मिरजापुर के पास प्राप्त हुई थी ।

सबरस-पाइ किहेउ सनमाना । जो आनन्द हिय होइ निमाना ।

बिनती एक किहेउ विधि पाहो । मिट पाप पुन ऊज ताही ।

कवि ने अत्यन्त ईमानदारी के साथ प्रारम्भ में ही कह दिया है कि यह कथा उमने सुनी थी -

पोधी वाच नवी कवि बही । जे कछु सुनी कहू स रही ।

बाखर चारि कहा म जोरी । मन उपराजा न कीहेउ चोरी ।

मननवी-पद्धति के अनुसार कवि ने प्रारम्भ में ईश्वर-स्तुति की है पश्चात् मुहम्मद साहब की प्रशंसा की है । कवि ने सम्राट जहांगीर शाहें तख्त का भी उल्लेख किया है -

मुराणीन दिनपति जहांगार निजनेम ।

सहि सनीम छत्रपति छौनी दन के मार कवन दम द्रोनी ।

कथा

नमिसार के राजा का नाम राय शिरोमणि था । भगवान शंकर की कृपा से उनका एक पुत्र हुआ - उसका नाम उड़ाने नान्दीप रखा । वह प्रसिद्ध था । एक दिन शिकार में वह भटक गया । वहाँ सिद्धनाथ योगी ने उस समार से विरक्त करने का प्रयत्न किया । उन य बातें बड़ी नारस गयीं जब योगी ने उमसे संगीत द्वारा विरक्त करने का यत्न किया ।

विद्यानगर के राजा सुखदेव के देवजानी नामकी एक विदुषी पत्नी थी । नान्दीप जागी के वश में बसुर पया था । देवजानी की सखी मुरानी ने उस संगीत का गारा जगाया । उसने देवजानी से सारी बातें कही । नान्दीप का रूप का लेख कर देवजानी विमोहित हो गई । नान्दीप की समाधि और उपासीनता के कारण देवजानी का वशाकरण मात्र भी विफल हो गया । मुरजानी ने मन्त्रों से वाग्ज का एक अश्व बनाया । पावनी गी की कृपा से उस जीवन मित्त और प्रतिदिन नान्दीप उस घाट पर सवार होकर मन्त्र की उठ पर उतरता और देवजानी में मिलता । एक दिन छत पर उतरने समय राजा ने उसे मार गिराया । उस मरुतु की जाना दे दी गई । मन्त्री की सलाह पर उा नहीं मारा गया । राजा ने उस एक वाण्ड-मजूगा में बंध करके नदी में प्रवाहित कर दिया । वह मजूगा बहती गानपुर में पहुँची । उमसे नान्दीप का निकानकर मानराय के दरबार में उपस्थित किया गया । उसकी बातें सुनकर राजा ने अपने यहाँ रख लिया ।

जब देवजानी की नान्दीप का बहा लिए जान का समाचार मित्त ता वह भिन्कुण्ड में कूद पड़ी पर पावनी जी की कृपा से बच गई । शंकर जी ने राजा सुखदेव को सपने में बताया कि नान्दीप निर्दोष है राजा ने चारों ओर देवजानी का

स्वयंवर का समाचार भेज दिया। स्वयंवर में देवजनी ने ज्ञानद्वीप का चरण किया धूमधाम से दोनों का विवाह हुआ। इसी बीच मानराज का स्वर्गवास हो गया और जानपीप को मानपुर जाना पड़ा। देवजानी का विरह बढ़ता गया और मुरझानी के श्रम से पूरा दोनों का मिलन हुआ। जब देवजानी के साथ ज्ञानद्वीप अपनी राजधानी की ओर लौट रहा था तो रास्ते में छत्रपूवक गुदरपुर के राजा ने उसे धमकाने का प्रयत्न किया किन्तु जानद्वीप ने उसे हरा दिया। देवजानी के साथ जानद्वीप स्वदेश लौटा। माता-पिता के हृदय का पार न रहा।

ज्ञानद्वीप में कवि ने प्रलय-दशन-जय प्रम और उमक विकास की कथा बही है। इसके मूल में है गुरु सिद्धिनाथ - जो उसे देवजानी के पास तक पहुँचा आते हैं। देवजानी परम-उद्योति-स्वरूपा है। गुरु सखी का प्रयत्न मधु जोगी-रूप गुदर प्राया पावनी एवम शरर की कृपा स्वयंवर प्रभति कथाक-रुणियो की योजना से कथावस्तु का संघटन किया गया है।

ज्ञानद्वीप की कथा सुसाम्य है। प्रमोदय पहले नायिका के हृदय में दिखाया गया है। मूलतः इस काव्य में शरार-रस की प्रधानता है। शरार के क्षेत्र में भी कवि ने बेचन विप्रतन्त्र तक ही बणत किया है। सयागावस्था के वणन का प्रायः अभाव है।

देवजानी का विरहावासा के चित्रण में प्रकृति का उद्दीपक रूप अधिक निसार पा सता है। कोषन की कक मोर का शोर और पपीहे की पी-पी आदि उसकी अवस्था को कर्णांतर बना देते हैं -

देखन चद चद विरारा । पपिा वोन सबल जिउ माग ।

बोनहि मोर सोर बन माहा । सानी कूवनि कामनन दाहा ॥

काकिल कूकत कजय वीनी । विरह पसीजि मोजि तन चोची ॥

विद्यापति की रक्षा मूर की रात्र और जायमी की नागमनी की हा भाति जानपीप की देवजानी का भी बीणावादन के कारण चन्द्रमा मुरग है उमके मग जागे नही बने और रात नही बीनती -

कचहु बीन वा डाह वावे । मधुरा मधुर मुर गाइ सुनाव ।

ग्रीग धविन होइ चान को रैन घटत बढ जाइ ।

मदन सूता तव जागे तहि गुन दिहेमि अनाइ ॥

उपचार-स्वप्न बह राह 'सार्जरी पून भुजग साहिल जादि वा जालेवन करती है -

चननि सौ तियेसि भुमिह राह । चाप्रिा कह से चाननि वाह ।

लिनि भुजग औ साहिल तिया । विरह मपु जेइ सोये सोला ॥'

ज्ञानद्वीप का बारहमासा पन्नावत की ही भांति 'आपाइ से ही आरम्भ होता

है। जायसी का प्रभाव इस बारहमासे में द्रष्टव्य है। परिवर्तमान ऋतुओं और उनके उपकरणों के विरहिणी पर पड़ते हुए प्रभावों को कवि ने स्पष्ट किया है। एक ही साथ कवि ने प्रकृति के सुख-एवम दुःखद - दोनों आयामों का वर्णन किया है -

सयोगिनियों के लिए सुखद प्रकृति -

हरिहर पहुमी भइ चहु ओरा । राजहि सखी विराजि हिंडोरा ।
झुलहि औ मलार रस गावहि । रीझि कत सो रीनि झुलावहि ।
सुख-ममन सब रन विहाई । चन चाउ रस भाउ अधाई ।
सारग मोर पपीहा विरह भरे मुख बन ।
मुनि-सुनि सुप सजोगिनि, देखि देखि पिय नन ।

वियोगियों के लिए दाहक प्रकृति -

एहि सावन विरहिन तन तावन । बरसत जन दुप वीच जमावन ।
मेचक मेघ मनो कज सना । अकुस चडित महाउत मना ।
पिक नकीब चात्रिक हरवारे । सोक सबद यानिहि पडवाह ।
बुद वान बरस चहु ओरा । दुख प्रात चलि नास हिंडोरा ।
भरान धाम पठि विधामी । नन मू दि सरखि सुपसामी ॥
एह दुप वितब नायिका नायक जिनिहि विदेस ।
भून सब सिंगार रस भई सो जोगिन बेस ॥

हरिपर पहुमी भइ चहु ओरा प्रभति वर्णनों में जायसी का स्पष्ट प्रभाव पड़ा है।

**कासिमशाह कृत हंस जवाहिर - रचनाकाल १७६३ वि०
(१७३६ ई०)**

प्राप्त प्रतिया - हंस जवाहिर एक अत्यंत लोकप्रिय प्रमाख्यात्मक काव्य है। इस ग्रंथ के दो संस्करण फारसी लिपि में प्रकाशित हुए हैं। ये दोनों संस्करण लखनऊ से क्रमशः १६१ ई० और १६१ ई० में प्रकाशित हुए थे। हिंदी में भी इसके कई संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं। एक नवलकिशोर प्रस लखनऊ में प्रकाशित हुआ था और दूसरा अयोध्या में इसकी एक हस्तलिखित प्रति श्री शेख कादिरवृक्ष मकड़ी खोह मिरजापुर के पास सुरक्षित है। इसकी लिपि कथी है और इसमें कुल ३६८ पं० हैं। उसकी निखावट अत्यंत सुंदर और सपाठ्य है। इसकी एक दूसरी हस्तलिखित प्रति श्री हबीबुल्ला खहायाजार डा खास प्रतापगढ़ के पास है।

१-नामी प्रस, लखनऊ (से हंस जवाहिर का फारसी अक्षरों में प्रकाशन हुआ था) ।

२-ना० प्रचारिणी सभा, सोज रिपोर्ट, १६०२।१ । ३-वही १६२६।२८७ ।

कथा

बल्लभ के सुल्तान की मृत्यु के पश्चात् उसका एकमात्र पुत्र हस को शत्रुओं ने बन्दी बना लिया, किन्तु उसकी माँ उग लेकर रूम देश के शाह यहाँ भाग के गई— वहाँ उसका बड़ा सम्मान हुआ। एक वर्ष पश्चात् हस ने सपने में एक सुन्दरी को देखा। वह उसके रूप पर विमग्न हो गया।

चीन देश के बालशाह आलमशाह की रानी के गम से जवाहिर नाम की एक पत्नी हुई। बड़ी होने पर एक दिन वह एक तालाब में स्नान करने गई। वहाँ उसकी एक परी से मित्रता हो गई। वह परी शब्द नाम से जवाहिर के ही पवनपुत्र म रहने लगी। जवाहिर के पिता ने उसका विवाह सुल्तान मोलाशाह के पुत्र दिनोर से ठीक कर दिया। शब्द ने दिनोर की बड़ी निन्दा की। वह पक्षी रूप में जवाहिर के लिए वर दूढ़ने चली पड़ी। वह रूम देश में पहुँची। उसने हस से जवाहिर के सौंदर्य की प्रशंसा की। शब्द के नखशिख बणन से वह अत्यन्त प्रभावित हुआ। उसे अपने सपने की सुधि हो आई। वह जोगी रूप में उसकी खोज में निकलना चाहता था, किन्तु शब्द ने उसे सात दिनों तक ऐसा न करने के लिए मना किया। उसने नीटकर जवाहिर से सारी बातें बतवा दीं। किसी के चुगली करने पर शब्द बन्दी बना ली गई और उसका वस्त्र भी छीन लिया गया। अब वह उड़ने में असमर्थ हो गई। दिनोर के विवाह की तयारियाँ हुईं। हस भटकते हुए एक पहाड़ पर पहुँचा और वहाँ सो गया। वहाँ से परियाँ उभरे उठा ले गईं और दिनोर के बाराण से उठा ले गईं। उसके स्थान पर हस को बिठा आई। हस और जवाहिर का विवाह हो गया। रात में अशुभियाँ बढ़ती गईं और रात्रि में आनन्द केलि के अन्तर्ग वे सो गए। परियाँ हस को उठा ले गईं और दिनोर को रख आईं।

रानी जवाहिर ने दिनोर को अम्बीकार कर लिया, इससे हस बहुत व्याकुल हुआ। जवाहिर की माँ ने शब्द परी का मुक्त कर लिया। वह हम के यहाँ पक्षी रूप में पहुँची। जवाहिर का वृत्तांत सुनकर हस जोगी होकर निकल पड़ा। उसके साथ उसके बहुत से साथी भी चले। शब्द पक्षी उनका पथ प्रदर्शक बना। किसी प्रकार अनक विघ्नों को पार करके वे जवाहिर के नगर में पहुँचे। दोनों प्रेमियों का मिलन हुआ। हस को अपने देश की सुधि हो आई। वह जवाहिर के साथ रूम की ओर चला, पर माग में बोरनाथ के चले ने उन्हें विनग्न कर दिया। हस योगी होकर भटकता रहा। वह मोलाशाह के यहाँ पहुँचा। वहाँ दिनोर की बहिन से उसका विवाह हुआ। बाद के प्रयत्न से जवाहिर और हस का पुनर्मिलन हुआ। हम अपनी दोनों रानियों के साथ रूम छोड़ा। वह रूम का बादशाह बना और उसने

बलख को जीत लिया। जवाहिर के गभ स हसीन नामक एक पुत्र हुआ। हस के विरोधी मीरदौला के पुत्र न अनक सुनतानो के साथ उस पर आक्रमण किया। उसकी छरी क वार से हस की मृत्यु हो गई। दोनों रानिया न प्राणत्याग दिए। बाद म हसीन राजा हुआ।

हस जवाहिर की कथावस्तु कल्पनिक है। प्रेमाख्यानक का यो की काव्य रूढियों क प्रयोग इसमें द्रष्ट य है कवि आदि से अत तक (प्राय) जायसी और उनकी कृति पदमावत से प्रभावित है। कवि के समक्ष पदमावत और उसकी कथा थी। उसने उसी क सात्त म इस कथा का ढालने का प्रयत्न किया है। स्थान-स्थान पर जायसी की पदावली भी ज्यो की त्यो ले ली गई है। इस काव्य म प्रीति का प्राय अभाव है।

पदमावत की ही भाँति यह कति भी विपादांत है।

पातिहि पाति सोबाय की देह उपर ते छार।

छानहि करत ओनाय के अस्त छार के छार ॥^१

छार उठाइ लीहि एक मूठी। दीहि उठाइ पिरिथमी झूठी।^२

कवि ने कथा क अंत म कथा की आध्यात्मिकता की ओर स्पष्ट संकेत किया है—

वासिम कथा जा प्र म बखानी। बूझ सोई जो प्र म गियानी।

कौन जवाहर रूप सोहाई। कौन शत्रु जो करत बडाई ॥

कौन हस जो दरसन नोभा। कौन देस जेहि ऊची शोभा।

कौन पय जो कठिन अपारा। कौन शत्रु जो उत्तरे पारा।

कौनमीत जिन सग जिव दी हा। कौन सो दुरजन अतिद्वन कीम्हा।

को पानी जिन बानि सुनावा। कौन पुरुष जिवसुन चित्त लावा।

कौन दष्ट जेहि दरस न जूवा। कौन भेन जहि शत्रुहि मूजा।^३

बाच कथा पाथी भुवन परसन तेहि जगदीश।

हमहि बोन सुमिरे सोइ वासिम दई अशीग ॥

इन पक्तियों पर जायसी की निम्नांकित पक्तियों का प्रभाव स्पष्ट रूप से द्रष्ट य है—

महम्मद यन् कवि जारि सुनावा। सुना जो प्रेम पीर गा पावा

जोरी त्रा रक्त क लेई। गाढ़ी प्रीति नन जन भई ॥

जो मन जानि कवित अस कीम्हा। मकु यह रहै जगत मह चीम्हा ॥

कहाँ सो रतनसेनि अस राजा। कहा सुना अस बुधि उपराजा।

१—हस जवाहिर वासिमशाह पृ २७०-७१।

२—पदमावत डा० वासुदेवशरण अग्रवान पृ० ७१२।६५१।४।

३—हस जवाहिर प्रति वासिमशाह पृ० २७२।

कहाँ अलाउद्दीन गुलनानू । वह राधो जेई कीह बसानू ।
 वह मुख्य पदमावति रानी । कोइ न रहा जग रही कहानी ।
 पनि सो पुछ्य त्रम कीरनि जामू । फन मर पै मर न वासू ॥
 बेहू न जगत जस बेचा, बेहू न जगत जस मोल ।
 जो यह पढ कहानी, हम सबर दुइ बोन ॥'

इसी प्रकार हंस जवाहिर का औपसहारिक छन्द (त्रिगम कवि न वद्धावस्या का वणन किया है) पदमावत के छन्द से प्रभावित है । उदाहरण के लिए एक एक पक्ति पर्याप्त होगी—

'वासिम यौवन हाथ है, चाहे सो काज सवार ।
 पुनि हस्तीबन तमगो, कीन उठाए भार ॥'
 'मुहम्मद विरिष बएस अब भई । जोवन हूत सो अवस्या गई ।

+ + +

सब लपि जीवन जोवन साया । पुनि सो माचु पराए हांया ।
 विरिष जो सीस छोटावै गीम धुन तेहि रीस ।
 बूढ़ आढ़े होत तुम्ह बेइ यह दीन अमीस ॥'

जायसी ने प्रभावित हाफर कागिमशाह ने अपने राज्य में अनेक मामिक स्थलों को प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है । हंस के पिता की मृत्यु न पश्चात् परिवार की वरुण दशा (जवाहर का सौन्दर्यवणन, प्रथममग जवाहर की वियोगशा, परिषा की सहायतापै, आदि प्रसंगों पर जायसी की छाप तो है पर वासिमशाह काय सौन्दर्य के अन्वयन में असफल है ।

नूरमुहम्मद कृत 'इन्द्रावती'

रचनाकाल ११५७ हि० (स० १८५१ या १७४४ ई०)

प्रतिष्ठा— इन्द्रावती की रचना पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध दो भागों में हुई थी । डा० श्यामसुन्दरदास ने इन्द्रावती के पूवाद्ध को संपादित करके नागरीप्रचारिणी सभा से प्रकाशित किया था । मग उत्तरार्द्ध अभी तक अप्रकाशित है । स० १९६० की एक हस्तलिखित प्रति के आधार पर डा० श्यामसुन्दरदास ने उत्तरार्द्ध इन्द्रावती की एक प्रतिलिपि करवा दी है— जो नागरीप्रचारिणी सभा में सुरक्षित है । खोज

१—पदमावत ६५२ ।

२—हंस जवाहिर वासिमशाह पृ० २७२-७३ ।

३—पदमावत ६५३ ।

४—इन्द्रावती नागरी प्रचारिणी सभा, पृ० ४ (१९०६) ।

रिपोन' में इसकी एक हस्तलिखित प्रति का विवरण दिया हुआ है। इसमें कुल ९०० पद्य हैं। यह कथी लिपि में है और मौनवी अन्तुला, पुनियाता टोला, मिरजापुर के पास सुरनिन है। इन्द्रावती के सौन्दर्य-वर्णन, शिव मन्दिर में मिलन-वर्णन, बिरह-वर्णन और युद्ध-वर्णन के प्रसंगों में पदमावन का स्पष्ट प्रभाव है। जब इन्द्रावती के दोनों भाग प्रकाशित हो चुके हैं।

कथा (पूर्वाद्ध)

कालिंजर के राजा 'राजकुंवर' ने एक रात स्वप्न में दण्डवत् किसी सुन्दरी का प्रतिबिम्ब देखा। दूसरी रात पुनः उसने उस रूपवती को मुख पर बिम्बरी लट छवि वान रूप को स्वप्न में देखा। राजकुंवर के राजकाल से विपत्ति-सी ले ली। उसकी बिना से सभी लोग दक्षिण हुए। एक तपस्वी ने उसे बताया कि यह सुन्दरी सागर के उसपार स्थिति आगमपुर नगर के जगपति राजा की रतनसेन इन्द्रावती नामक पुत्री है। वह रूप-गुण की धान है।

'राजकुंवर' ने तपस्वी गुरुनाथ को अपना पयप्रदणक बनाया और अपने आठ सखियों के साथ जोगी होकर आगमपुर की ओर चल पड़ा। अनेक विघ्नों और अतारियों को पार करके वह आगमपुर पहुँच गया। वहाँ शिव मन्दिर में आकाशवाणी हुई और वह राजकुमारी की मन-पुलवारी में गया। वहाँ होली की धम थी। इन्द्रावती ने अपना शृंगार किया—दण्ड में अपनी छवि देखकर वह स्वयं पर रीझ गई। राजकुंवर की सहायता चेतना नामक एक मालिक न की। बाटिका में दोनों का मिलन हुआ, किन्तु राजकुमारी के रूप को देखते ही राजकुंवर भ्रूलित हो गया। राजकुमारी को प्राप्त करने के लिए समुद्र में प्रणमोत्ती निकालना आवश्यक था—इस काल में उसे अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा मुद्द करना पड़ा वह बली हुआ। उसके मन्त्री बुद्धधन और 'कपा' राजा की सहायता में वह मुक्त हुआ।

जब इन्द्रावती ने सुना कि उसका प्रियतम बली हुआ है तो उनकी वेदना बढ़ गई। सखियों ने अनेक प्रकार के उपचार से और रात में मधुकर मालती 'हीरामालिका' प्रभृति प्रमगाथाओं को सुना करके उसने दक्ष को कर्म करने का प्रयत्न किया। तपस्वी गुरुनाथ की सहायता से सच्चा प्रेम जान लेने के बाद सागरपुत्री कमला देवी ने प्रसन्न होकर उसे वह माती दिया। राजकुंवर ने वह माती पाकर जगपति ने इन्द्रावती और राजकुंवर का विवाह कर दिया।

१—सौज रिपोन, १६०२, रेविण इन्द्रावती, पृ० ३०४।

२—दृष्टव्य—पदमावती के रूप-वर्णन को सुनकर और शिव मन्दिर में उसे देखकर रतनसेन का भ्रूलित हो जाना। पदमावन

प्रेमाख्यानक परम्परा

दक्खिनी हिंदी के प्रेमाख्यान

दक्खिनी हिंदी में भी सूफी प्रेमाख्यानों की रचना हुई है। हिंदी के सूफी प्रेमाख्यानों के रचयिताओं के समया सम्भवतः ऐसा कोई उपयुक्त आदर्श उपस्थित रहा होगा जिसका अनुसरण करना उन्हें स्वाभाविक जान पड़ता होगा। यह विनोद कर उनके समय तक प्रचलित उन विशिष्ट अपभ्रंश वा प्राकृत आख्यानों के रूप में रहा होगा जिनमें से कुछ की रचना वा उद्देश्य धार्मिक प्रचार भी हो सकता था। सूफी कवियों ने अपनी रचनाओं वा दार्शनिक अधिकतर इन्हीं के अनुरूप खड़ा किया होगा जिस कारण उनकी रचनाओं के अंतर्गत वे सारी बातें आपस में आपस में होंगी जो इसके लिए सामान्य समझी जा सकती थीं। परंतु ऐसा करते समय उनका ध्यान सम्भवतः उन फारसी सूफी प्रेमाख्यानों की ओर भी अवश्य आकृष्ट हुआ होगा जिनका निर्माण अधिकतर निजामी (म० १२०३ ई०) के समय से होने लगा था और जिनकी कुछ बातों को अपने यहाँ समाविष्ट कर लेना उनके लिए स्वाभाविक भी था। परंपुराम चतुर्वेदी का कथन है कि उत्तरी भारत के हिन्दी सूफी प्रेमाख्यानों के लिए कोई पूरव प्रचलित भारतीय रचनादर्शन वतमान रहने के कारण इधर फारसी साहित्य का प्रभाव उतना नहीं पड़ सका जितना दक्खिनी हिन्दी की ऐसी रचनाओं पर पड़ा।

परन्तु इसका परिणाम भी केवल इसी रूप में उचित होता है कि दक्खिनी हिंदी के सूफी प्रेमाख्यानों का वाहय रंगरङ्ग उत्तरी भारत की ऐसी रचनाओं से बहुत कुछ भिन्न जान पड़ता है और भाषा शैली, वाच्यरूप एवं छन्द प्रयोग जैसी बातों में वे एक दूसरे के समान नहीं हैं। वण्य विषय एवं मूल उद्देश्य के सम्बन्ध में दोनों के कवियों में बहुत अधिक अंतर नहीं है। दक्खिन वाले शाही सस्कृति और शाही आदर्शों द्वारा अवश्य अधिक प्रभावित हैं और उनमें अभी भी इस्लामी बहूतरता तक दीर्घ पड़न उगती है। किन्तु अपनी रचनाओं के अंतर्गत 'तक' तत्व की प्रतिभा करते समय ये उत्तर वालों से किसी प्रकार भिन्न नहीं जान पड़ते। इनके काव्य में वही-वही प्राचीन वेदुद्धन अरबों के प्रेम की स्वच्छन्दता है तो कभी-कभी ईरानी प्रेम की आध्यात्मिकता भी मिलती है।

निजामीकृत 'कदम राव व पदम'

(रचना वा १४५७ ई० के वा)

निजामी सुलतान अहमदशाह सालिस बहमनी (हिजरी ८६५) के जमाने में मौजूद था। वह सुलतान का दरबारी शायर था। कहा जाता है कि इसकी एक प्रति

अजुमन तरविराए उरू (पाकिस्तान) में गुरखिन है। इस प्रेमाख्यान के कतिपय पृष्ठों के चित्र इस सस्या के मुखपत्र — बीबी जबान में प्रकाशित हो चुके हैं।^१

हाशमी साहब के विवरण से पता होता है कि इस ग्रन्थ की रचना बीबी साधारणतः वही है जो बहुत सी अन्य सूफी मसनवियाँ में देखी जा सकती हैं। यहाँ पर भी उसी प्रकार से गुसाईं परमेश्वर की स्तुति की गई है उसी प्रकार बड़े लोगों का गुणगान किया गया है। अभी तक इसकी कथा का पूरा विवरण उपलब्ध नहीं हो सका है। इसलिए कहा नहीं जा सकता कि इसका कथानक निरा काल्पनिक है अथवा किसी प्रचलित आधार पर आश्रित है। इस रचना का दृढ़ अवश्य फारसी का कोई बहुर जान पड़ता है और इसकी भाषा में बहुत से हिन्दी व संस्कृत के शब्दों का समावेश दीर्घ पड़ता है। स्वयं हाशमी साहब का कथन है कि हसन खाज बदीम इसमें और अरबी फारसी के बजाय हिन्दी अल्फाज ज्यादा हैं। इसकी जबान इस प्रकार मुश्तरी है कि इसका समझना शिक्का तनर है।^२ बड़ दुख की बात है कि इतनी महत्वपूर्ण पुस्तक की प्रति पाकिस्तान में है और हमें प्रयत्न करने का पर भी कोई विवरण नहीं मिल सका। हाशमी साहब ने जो पंक्तियाँ उद्धृत की हैं। उनसे यह स्पष्ट नहीं होता कि इस कथानक का नायक कौन है और नायिका कौन है— कि त सोच मेरा गुसाईं बंदम। पदम राव तुज पाँव केरा पदम ॥ जरा तू धरे पाय ही सर परू। आयन मार कीन रुतरई करू ॥^३

मुल्ला बजहीकृत 'कुतुबमुश्तरी'

(रचनाकाल स० १६६६ ई.)

मुल्ला बजही गानकुण्ण के इमामी कुतुबसाहब के दरबार का कवि था। कुतुब मुश्तरी का रचनाकाल के विषय में उसने लिखा है —

तमामानसविया दीस वारामने। सन एन हजार ठोर जगरा मन ॥^४
इस प्रकार स्पष्ट है कि इसका रचना काल १०१५ हि० अर्थात् १६१०

ई है।

उसने इनके कथानक स्वयं अपने समय के शाहजादे मुहम्मद कुनी के जीवन

१—नसीखदीन हाशमी, दसन में उरू (१६१० ई.) मसतब मुईउन अन्व उरू बाजार नाहीर प० ३३।

२—यही प० ३५।

३—वही प० ३७ (दक्खिनी हिन्दी के सूफी प्रेमाख्यान प० १२४ से उद्धृत।

४—श्रीराम शर्मा द्वारा सम्पादित सगरा प्र० प० १।

५—कुतुब मुश्तरी दक्खिनी प्रकाशन समित हैदराबाद प० ५।

प्रेमाशयानक परम्परा

म तयार किया है। उसी के आधार पर उमने वायपाल से नवर उसर तिसी मुशरी नाम की मुदरी के साथ प्रेम सम्बन्ध बन की बहानी प्रस्तुत कर दी है। बदमराव व परम तथा बतुन मुशरी के बीच के १०० पौयों के मध्य तिसी हुई तिसी मरानवी का पता नहीं चलता। कुतुबगुमरी में ऐसे प्रसंग या स्थान बहुत ही कम हैं जिनमें ईश्वरीय प्रेम की ओर इंगित हो या तिनकी व्याख्या सूफी विचार धारा के अनुसार की जाय।

'गवासी' कृत 'सैफुलमुलूक व यदीउल जमाल' और तूतीनामा'-

गोनकु डा का गवामी मुल्ला वजही का समसानी कवि था। इसकी उप युक्त दो मसनवियाँ प्रकाशित हो चुकी हैं। सफुन मुलूक व यदीउल जमाल का रचना काल १०२७ हिजरी अर्थात् १६१७ अथवा १६१६ ई० है। बि हमकी बहानी तिसी पारसी की गद्य पुस्तक से ली गई है। इसमें मिश्र के बादशाह आसिमनवन के फरज सफुनमुलूक और गुलिस्तान ऐरम की गाहजादी यदीउल जमाल के 'इशक की कथा बर्णन है। कथा का प्रारम्भ मिश्र देश के बादशाह में होता है। इसमें यवन देग, चीन, सिन्धुद्वीप, इमबददीप आदि अनेक स्थानों की चर्चा आती है। इसकी मगायनी में कर्मिनी की सहायता में नायक को नायिका की प्राप्ति होती है। प्रेमा की सहायता में मधुमा तती और मनोहर का मिलन होता है। इसी प्रकार इस कथा में भी एक राजकुमारी की ही सहायता में नायक को नायिका की प्राप्ति होती है। जानूई अगूठी तस्वीर देगवर प्रेम-विभार हाना, सागर-यात्रा तूपान और जनयान छस रागमनत्व रागम का बय करके राजकुमारी की रक्षा प्रकति बयानक ऋडियो व दयान हम इस कथा में हान हैं।

मिश्र के बादशाह आसिमनवन की यवनदेशीय पत्नी से एक लडका पदा हुआ, उसका नाम सफुनमुलूक रखा गया। उसी दिन वजीर को भी एक लडका पदा हुआ उसका नाम साऊ रखा गया। बादशाह ने अपने जेट को एक जरीदार बपडा और एक सुलेमानी अगूठी दी। बपडे पर गुलिस्तान ऐरम की गाहजादी की तस्वीर बनी थी। सफुनमुलूक साऊ व साथ उसकी साज में चले पडा। समुद्रा को पार कर के चीन पहुँचे। वहाँ से वे कुस्तुनियों के लिए चले। सागर में तूपान आया। वे बह गए। उसने इस्फद द्वीप में एक राजस की कर्म में एक राजकुमारी का उदधार किया। उसी की सहायता से उसे यदीउल जमान की प्राप्ति हुई। दोनों का विवाह हुआ और वह अपने देग लीट आया।

गवामी कृत तूतीनामा का मूलस्रोत शकसक्ति है गुनसप्तति की सतर बहानियों में से ५२ से नैवर मौनाना जियाउद्दीन नरगवी ने उसका पारसी अनुबाद

(७३० हि० अर्थात् स० १३२६) में किया था ।

उनमें से ३५ से लेकर मूलना सयद मुहम्मद वादरी ने हि० १०६३ अर्थात् १६८१ म उसका एक स्पष्टीकरण प्रस्तुत किया था इन दिनों की भाषा फारसी रही । कहा जाता है कि गवासी ने मौलाना नरेशवी के तूतीनामा से ४५ कहानियाँ को चुनकर अपनी कृति का निर्माण किया है ।^१ इसका रचनाकाल स० १६६५ बत लाया गया है । इसकी कथा का आरम्भ हिंदुस्तान के एक धनी सौदागार की वाणिज्य यात्रा से होता है । इसकी मूलकथा के एक रहते हुए भी प्रशंगवश ऐसी अनेक अन्य कहानियाँ का समावेश हो जाता है । जिनमें उसका कोई भी प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं प्रत्युत जिनकी सख्या केवल दृष्टांत प्रदान के यात्रा से उत्तरोत्तर बढ़ती ही चली जाती है । उत्तर भारत के हिंदी सूफ़ी कवियाँ ने ऐसी रचना-शैली को इस रूप में कदाचित् कभी न अपनाया था यद्यपि उनके लिए यहाँ वैसे आदर्शों की कमी भी नहीं कही जा सकती ।^२

गवासी की चंदा और लोरिक नामकी एक और मसाली मिली है । यह भी फारसी से तजुमा की गई है । इसकी तसनीफ सन १०३५ हि० के पहले हुई होगी ।^३

दक्कन में उद्दू के अंतर्गत इसकी केवल कुछ ही पत्तियाँ उदघत की गई हैं जिनसे कहानी की मूल कथा का ठीक पता नहीं चलता । फिर भी अत्यन्त दिए गए इसके कतिपय पद्यों को इनको मिलाकर देखने से यह स्पष्ट होते देर नहीं लगती कि इस मसनवी का सबंध प्रसिद्ध लोरिक व चंदा की ही कहानी से है ।

गवासी की कुछ पत्तियों को मिलाकर पढ़ने से प्रतीत होता है कि इसकी कहानी कुछ भिन्न है । यहाँ पर चंदा किसी नगर के बादशाह की पुत्री है । जिसका नाम सम्भवतः बाना या मानाकुंदर है । इसके सिवाय जब चंदा को चोरी से लेकर लोरिक भाग निकलता है और बादशाह को इस बात की सूचना दी जाती है तो वह वहाँ पर कहता है अच्छा हुआ मेरी बाधा टल गई । लोरिक व घर उसकी एक परम सुंदरी नारी है जिस में प्यार करता हूँ और उसे अब किसी कुटनी द्वारा पालन में मुझे सुविधा हो सकेगी ।^४

इस कहानी में न तो कही चंदा के किसी पूर्व पति वाकन की चर्चा है न

१-तूतीनामा स० भीर सआदत अली रिजवी (हैदराबाद हि १३५७) मुकदम

प० ३१

२-हिंदी के सूफ़ी प्रमाख्यान प० परशुराम चतुर्वेदी प० १२६

३-दक्कन में उद्दू, प० ७८

४-दक्खिनी का पद्य और गद्य स० श्रीराम शर्मा प० २८६ ८६ (१६५४ ई०)

५-वही पृ० २८८ ८६

न उसके भागने समय के बिष्णों का ही बणन है। लोरिक ही परनी मैना के पतिव्रता होने की ओर सकेन कुछ अवश्य मिनते हैं। चदा से लारिक स्वय कहता है—

“थो सुनकर कहा मरे घर नार है। ओ सतवतनार वा ईमान आतार है।

के साहब मुझे चदा होर मूर का। मेरे घर म गोना है कोहनूर वा।

इम्म पाक बहू में टुक एन। पतिव्रत मनासा है नाव नेक ॥”

दोनों कहानियों में लोरिक जाति का खाला ही है और गोरू चराने का काम भी करता है। इसके रचनाकाल के विषय में किए गए हागमी साहब के अनुमान 'इसकी तसवीफ हि० स० १०३५ के पहले हुई होगी।' से केवल यही जान पड़ता है कि यह समय चंदापन में लगभग २५० वर्ष पीछे का होगा।^१ स्वयं मुल्ला दाऊ की कतिपय पक्तियों में ध्वनिन होता है कि लोरिक एव चंदा की कथा उनके समय से भी प्रसिद्ध रही होगी। किस्सा मना सतवती के रचयिता के सम्बन्ध में अनुमान किया गया है कि वह संभवत गवासी ही रहा हागा और इसके लिए उसके अन्त की दो पक्तियाँ भी उद्धृत की गई हैं—

‘ गवासी यो करना करम की नजर दुआ हक सा मगना मरे हक उपर ॥’^२

ये पक्तियाँ हासमी साहब द्वारा चंदा और लोरिक मसनवी से ली गई पक्तियों में भी दोल पड़ती हैं। इन बातों की विवेचना करते हुए प० परशुराम चतुर्वेदी ने निष्कर्ष निकाला है कि उपलब्ध सामग्री के आधार पर हम इतना और अनुमान कर लेने के लिए बाई साधन नहीं कि इस रचना का रूप किसी सूफी प्रेमगाथा का या अथवा यह केवल किसी युद्ध प्रेमगाथा की परम्परा के ही अनुसार निर्मित की गई थी। यदि इसका रचना काल स० १६८२ के पूर्व का भी मान लिया जाय उस दशा में भी यह मसनवी की वृत्ति होने के नाने उसके जीवन-काल से पहले की रची नहीं कही जा सकती और इसी कारण यह साधन 'कवि की मनासत' के पीछे की ठहरती है। अनप्य हो सकता है कि मना व मोना व सतीत्व पालन की कहानी इन दोनों कवियों के बहुत पहले से सम्भवत चंदापन के रचयिता मुल्ला दाऊ के समय से भी पूर्व स किसी न किसी रूप में चली आती रही होगी और यह भी असम्भव नहीं कि यह किसी समय लारिक व चंदा की कथा से स्वतंत्र भी रही होगी ॥^३

१—विखनी का गद्य और पद्य स० श्रीराम शर्मा, २८७-८६

२—वन म उद् प० ७८, हिंदी के सूफी प्रैमाख्यान, प० १३१।

३—वन म उद् पृ ८७, दखिखनी का गद्य और पद्य, प० ४८२।

४—हिंदी के सूफी प्रैमाख्यान प० १३५-३६।

मुकीमी कृत 'चन्दर बदन व महियार'

मुकीमी बीजापुर की आदिलशाही सल्तनत की छत्रछाया में रहने वाला एक प्रख्यात कवि हुआ है। चन्दरबदन व महियार की रचना के समय बीजापुर का सुल्तान इब्राहीम आदिलशाह द्वितीय (स० १६२६-८४) था अथवा अभी कुछ ही समय पहले मर चुका था। इस काव्य की रचना सन १६२७ ई० में हुई बताई जाती है। मुकीमी ने इस काव्य की प्रस्तावना में गवासी का स्मरण एक उस्ताद की तरह किया है और उसने मसनवी को उसके तुल्य मरचा है। चन्दर बदन व महियार की रचना का मकसद मजहबे इस्लाम की अजमत जाहिर करना भी बतलाया गया है।

महियार नामक एक युवक चन्दर बदन के राजा की कथा के रूप गुण की बात सुनकर उस पर आसक्त हो जाता है। उसे खोजता हुआ वह चन्दर पटन पहुँचता है और उसे देख भी नता है। वह उसके चरणों पर गिर पड़ता है पर वह उसे ठुकरा देती है। महियार विक्षिप्त हो जाता है। वह उसके प्रेम में पागल होकर प्राण दे देता है। उसका जनाजा चन्दर बदन के महल की ओर से जाने लगा तो एक नौटी ने उसे समाचार दिया। उसे बचा दुख हुआ। नहा धोकर वह एक कोने में जाकर सो रही। महियार के गम से उसकी भी मृत्यु हो जाती है। दोनों एक ही स्थान पर एक साथ दफना लिए गए।

इस कथा के आधार पर बीजापुर के ही किसी आतिशी नामक कवि ने एक फारसी मसनवी लिखी। पीछे रचना का दक्खिनी हिन्दी अनुवाद बुनबुन नामक कवि द्वारा किया गया जो पहली मसनवी से कहीं विस्तृत तथा विशाल है परन्तु इनमें से किसी की भी कोई प्रति उपलब्ध नहीं जिसके आधार पर उनके ऊपर पड़े किसी सूफी विचारधारा के प्रभाव का समुचित निणय किया जा सके।

नुसरती कृत 'गुलशाने इश्क'

इस मसनवी का रचना काल स० १७१४ अर्थात् १६५८ ई० है। इसमें

१-दक्खिनी हिन्दी काव्य धारा राहुन सास्करायान प० २२३।

२-हिन्दी के सूफी प्रभाव प० ११६।

उद्गू मसनवी का रचना अदुल कादिर सरखरी प० ४८-५०।

३-चन्दरबदन व महियार कथा स० मुहम्मद अकबरुद्दीन सिद्दीकी भूमिका।

४-हि० के सू० प्र०, प० १३६-३७।

५-दक्खिनी का गद्य व पद्य प० ४६०।

मनोहर और मनुमान्ती के प्रेम की कथा वर्णित है। डा० एहनिशाम हुसेन^१ का कथन है कि यह मसनवी ईरान की वनखिल मसनविया के आधार पर लिखी गई है। कुछ फारसी मसनविया की तरह 'गुलशने इश्व' व प्रत्येक 'बाव' के पहले एक ऐसा शेर लिखा मिलता है जिससे उगवे प्रसंगा का स्पष्ट निर्देश हो जाता है। सम्भवन मसनवी मधुमासती और गुलसने इश्व का कथात्मक चमक एव ही है।

इन्हनिशानी शृत फूलवा भी एक प्रसिद्ध प्रेम कथा है। इसकी रचना-काल १६६५ ई० कहा जाता है।^१ इस काव्य की मूल कथा पद्य भूमि भी भारतीय है। बीजापुर के शासकी की मधुपजुलवा (स० १७४४ ई०) तथा गोनगुण्डा के तवई की मसनवी 'रिस्मे बहराम व गुलवदन भी दक्खिनी हिन्दी की मसनवियाँ हैं।

अरबी फारसी शामी परम्परा का अनुवर्तन—

दक्खिनी हिन्दी के अधिकांश प्रमाख्यान या तो किमी न किसी फारसी मसनवी व अनुवाद हैं अथवा किसी अन्य प्रसिद्ध एवं प्रचलित प्रेमगाथा के आधार पर लिखी गई मसनवी के रूप में उपलब्ध होत हैं। स्वतन्त्ररूप से रचित मसनवियों की संख्या अधिक नहीं।^१ कहा जाता है कि इन्हनिशाती की रचना 'फूलवन कुछ अगा में मौलिक है पर वह भी अतिफलता के आदर्शों पर लिखी गई है। दक्खिनी हिन्दी के अधिकांश मसनवी लिखने वाला ने भारतीय प्रेमगाथा परम्परा को न अपनाकर फारसी मसनवियों को ही अपना आदर्श बनाया था। इस प्रकार उन्होंने अपने पीछे आने वालों के लिए मार्ग प्रदर्शन करके ऐसी भावी उद्भूत रचनाओं की बुनियाद भी कायम कर दी। फलतः ऐसी मसनवियाँ ने न मवल शामी परम्परा की रक्षा एव प्रचार का प्रयत्न किया गया, अपितु सभी इनमें हिन्दू समाज एवं संस्कृति का मूल चित्रण भी नहीं किया जा सका, न उन्हें कोई मूल्य ही मिला। जिन परी शाही दरवार, देव दरवेश एवं विज्जवा विषयक प्रसंगों को कभी कभी अनावश्यक होने पर भी स्थान दिया जाने लगा और विद्वशी पशुपक्षी तक जान लगे। इन मसनवियों के रचयिता प्रायः मुस्लिम मुत्ताना की छत्रछाया में रहते थे जिस कारण उनके उपयुक्त वणनों की प्रचुरता दीख पडने लगी और फारसी एव अरबी की वहाँ विशेष प्रतिष्ठा होने के कारण इन दोनों भाषाओं की सदावनी को भी अधिक महत्व दिया जाने लगा और उसका ही आदर्श प्रायः उन सभी प्रेमगाथाओं के लिए भी उपयुक्त समझा जाने लगा जिनका उद्देश्य केवल विशुद्ध प्रेम का प्रचार मात्र ही रहा करता था। इन मसनवियों के अन्तर्गत फारसी तथा कभी-कभी अरबी बह्ना (छन्दा) को भी अपनाया गया। ऐसी छोटी से छोटी रच

१-उद्भू माहित्य का इतिहास, डा एहनिशाम हुसेन पृ० ४३।

२-उद्भू माहित्य का इतिहास, डा० ऐजाज हुसेन, पृ १९।

धन और विजय की लिप्ताएँ ही प्रधान थीं। बारहवीं शताब्दी के साम्राज्य-स्थापना की लालसा इन राजाओं के मन में जा गई लेकिन होती है। धीरे-धीरे मुस्लिम शासन की स्थापना होनी। मई और हिंदू राज्यों का सूय अस्त होता गया।

अभी तक भारतवर्ष में जितने धर्म और आक्रमणकारी आए थे वे सब यहाँ के हो गए थे पर इस्लाम इन सबसे निराना था। इसने हिंदू संस्कृति के प्रत्येक आयाम पर गहरा प्रभाव डाला है। अनेक मुसलमान वंश शताब्दियों तक भारत में राज्य करते रहे। इनमें से बहुत से राजा इस्लाम की कटघरता और विदेशी भावनाओं से आपूरित थे। ये हिंदुओं से विद्वेष रखते थे समय-समय पर हिंदुओं पर अनेक प्रकार के अत्याचार भी होने लगे। हिंदुओं के धर्म-रीति-रिवाज मंदिर आदि विध्वंस हो रहे। उनका हृदय भी भग्न होता रहा। सचमुच भारत में ऐसा विषम समय कभी नहीं आया था। शक हूण आदि अनेक विदेशी जातियाँ इसमें पूरक यहाँ आई थीं और उन्होंने शासन भी किया था परन्तु वे राजनैतिक धार्मिक और सामाजिक दृष्टियों से शीघ्र ही भारतीयता में निमग्न हो गई थीं। इसलिए कभी प्रम-प्रचार की आवश्यकता न पड़ी थी। मुसलमान इससे विपरीत ही मित्र हुए। वे भारत में आकर भी भारतीय न बन सके और सचमुच यहाँ के निवासियों का घना की दृष्टि से देखते रहे। जिसके परिणामस्वरूप समय-समय पर अनेक अत्याचार भी करते रहे। जत्र उद्धत और मत्वाय मुसलमान आक्रान्तों ने यत्र की प्रशासनिकता का रीत्या प्रारम्भ किया ता उनको ब्राह्मण दधानवान भी साथ ही आए। ये सूफी दरवेश थे। मुहम्मद ग़ारी की शासन-स्थापना के साथ ही साथ हम सूफियों को प्रम का मारम वीन बोते हुए देखते हैं। मुसलमान शासक अपने उद्धत स्वभाव के कारण तत्वार का धार में अपने इस्लाम की देखना चाहते थे और किसी भी हिंदू को इस्लाम या मत्व - दो में से एक चुनने के लिए वा य कर सकते थे। पर दूसरी ओर एक शासक वग ऐसा भी था जो हिंदुओं को जपन पव पर चान्त में जाना प्रदान करने में सुख का अनुभव करता था। ऐसे शासक वग में शरशाह का उन्नाहरण लिया जा सकता है। जिसमें उल्माजा की शिक्षा की अग्रहना कर हिंदू धर्म के प्रति उदारता का भाव प्रशिक्षित किया। शासकों में ऐसे मुसलमान भी थे जो हिंदू धर्म के प्रति उदार ही नहीं बरन उस पर आस्था भी रखते थे। जत्र व एक ओर इस्लाम के अग्रगत सूफी धर्म के प्रचार की भावना में विश्वास मानते थे वहा दूसरी ओर व हिंदुओं के धार्मिक आदर्शों को भी सौन्य

१—डा० विमलकुमार जन सूफीमत की हिंदी साहित्य प० २१६।

२—ईश्वरीप्रसाद का शास्त्र हिंदू और मुस्लिम कूल इन इण्डिया।

की दृष्टि से देखते थे । प्रेम-काव्य की रचना में इसी भावना का आगर है । सूफिया ने भारतीय वातावरण के अनुकूल वेदों प्रचार ही नहीं किया था वरन् सुन्दर काव्य भी लिखे थे, जिनमें प्रयत्न और परोक्ष दोनों रूपों में सूफी मन के सिद्धांतों का प्रतिपादन हुआ था । इनका उद्देश्य ईश्वरीय प्रेम के अनिर्दिष्ट जन समाज को प्रेम पाश में आवद्ध करना भी था । इन लोगों ने मुस्लिम और खलीफों से जो कुछ भी व्यक्त किया वह जनता के आश्वासनाय सुधा सिंधु ही सिद्ध हुआ और भारतीय साहित्य के लिये एक अनूठी निधि की बन गया । उसने तपित मानव हृदय को शांति प्रदान की । अतः भारतीयों ने इन सतों में अपने परम हितों और गुण चिंतन ही पाये । प्यासे को पानी देनेवाला और भूखे को भोजन प्रदाता सदा सहाय होता है । इसी प्रकार ये सत भी लोगों को शीघ्र ही समाननीय हो गये । यही कारण था कि हिन्दू और मुस्लिम जनता पर इनका गहरा प्रभाव पड़ा । हिन्दू ने तो अपने परम हितों को सहायक ही पा लिया ।

जायसी महान उसमान आदि सूफी कवियों ने अपने प्रेमाख्यानों की रचना द्वारा जिस एक महत्वपूर्ण प्रश्न की ओर हमारा ध्यान आना है वह मानव जीवन के सर्वोत्तम विकास के साथ सम्बन्ध रखता है और जो प्रदान उनको एकादृष्टि और एकात्मिकता ही जाने पर ही सम्भव है । इनका कहना है कि यदि हमारी दृष्टि विशुद्ध प्रेम द्वारा प्रभावित हो सके और हम उसके आगर पर अपना सबंध परमात्मा से जोड़ लें तो हमारी सकीर्णता समाप्त हो जाएगी और जा सकती है । ऐसी दशा में हम न केवल सत्त्व एक व्यापक विश्व-वस्तुत्व की स्थापना कर सकते हैं प्रत्युत अपने भीतर की अपूर्व शक्ति एवं परम ज्ञान का अनुभव भी कर सकते हैं । इन प्रेमाख्यानों का मुख्य मन्त्र मानव हृदय को विशालता प्रदान करना उमे सवथा परिवृत्त करना तथा अपने भीतर दृढता और एकात्मिकता की शक्ति-भक्ति आना है । सूफियों के इस प्रेमाधारित जीवनानुशास के मूल में उनका यह सिद्धांत भी काम करता है कि वास्तव में ईश्वरीय प्रेम तथा लौकिक प्रेम में कोई अंतर नहीं है । इशकमिजाजी तभी तक सद्योप है जब तक उगम स्वायत्त परायणता की सकीर्णता जान पड़े और आत्मत्याग की उदारता न लक्षित हो । जबतक वह अपने अविशुद्ध रूप में नहीं रखा करता तभी तक उसमें वापना के संयोग की आकांक्षा भी की जा सकती है । व्यक्तिगत सुख-सुख अथवा लाभ-हानि के स्तर से ऊपर उठते ही वह एक अपूर्व रंग पकड़ लेता है और फिर प्रमत्त उस रूप में ही आ जाता है जिसे इशक

१-डा० रामकुमार वर्मा हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ० २६६ ।

२-डा० विमलकुमार जैन सूफीमत और हिन्दी साहित्य, पृ० २१५-१६ ।

हवीवी के नाम से अभिहित किया जाता है। सूफियो ने उसे यह रग प्रदान करने के ही उद्देश्य से प्रत्येक प्रमी को विभिन्न सफटो और बाधाओं की आग में तपाने की चेष्टा भी की है।

सूफिया की इस पापक नियम और उसकी जटिलता में बहुत बड़ी आरथा है और इसके कारण उनमें हम कभी कभी एक विचित्र अध विश्वास अथवा साप्र-दायिकता की कृत्रिम गंध पाकर ऊपर धार्मिक कट्टरता का आरोप करने लग जाते हैं। कभी कभी तो हममें हमें उनके इस्लाम धर्म के प्रचार से उद्देश्य से दिए गए किसी एम प्रलोभन का भी संदेह होने लगता है जो मनाहर कहानियों के प्रति आकर्षण उत्पन्न कराकर प्रतिफलित किया जाय परन्तु सूफियों के प्रेमाख्यानों द्वारा ही इसी प्रकार की शक्या निम्न होती जान पड़ती हैं। इन कवियों ने अपनी ऐसी रचनाओं में इसकी ओर कभी कोई संकेत नहीं किया और न इनके कथानवा से उकर उनके धर्म विराम अथवा अत तत्र भी कोई ऐसा प्रसंग छड़ा जिससे उनका कोई सांप्रदायिक अर्थ लगाया जा सके। यह आवश्यक है कि जहां तत्र घटनाओं की धर्म योजना का प्रकाश है उसे इस प्रकार निभाया गया है जिससे सूफी प्रेम-साधना का भी मेघ बूझ जाय। परन्तु ऐसी बातें अधिक से अधिक केवल दृष्टान्तों के ही रूप में पाई जाती हैं जिस कारण उनके सांप्रदायिक आग्रह का भी रहना अतिवाय नहीं है।

डा कमलकुन श्रष्ट का कथन है कि ये कवि इस्लाम का प्रचार करने वाली सस्या में सर्वाधिक अवश्य थे। इस कारण इनकी नियत पर उसका प्रभाव संभव है। मध्ययुग के ये सूफी इस्लाम का प्रचार बड़ जोर से कर रहे थे। इन प्रमाख्यानों के द्वारा इस्लाम-प्रचार की पृष्ठभूमि तयार की गई है। जायसी वासिभसाह नूर-मुहम्मद आदि कवियों में सामंजस्य या सहानुभूति की भावना नहीं थी। हिन्दू धर्म को य न तो इस्लाम के समक्ष रखने को तयार थे और न उसे कोई महत्वपूर्ण धर्म ही मानते थे। इन्हीं सूफी प्रमार्गी कहना गत है।^१

इस प्रकार के अनेक आरोपों द्वारा कमलकुन श्रष्ट ने जायसी मजान आदि को इस्लाम का प्रवर्द्धन प्रकट प्रचारक सिद्ध करने का प्रयत्न किया है। डा० श्रष्ट ने इस विषय में सबद्ध कोई प्रीति तक भी नहीं दिया है। उनका कथन है कि

इस मौलिक दृष्टिकोण का उदघाटन करते हुए भी इसके पक्ष में अति प्रबल प्रमाण देने में समर्थ है और इस कारण इसे पूर्णरूप से सही नहीं कहा जा सकता।^१

१—हिंदी प्रेमाख्यातक काव्य पृ० १५७-१७५

२ वही पृ० १६३।

ऊपर स्पष्ट कहा जा चुका है कि इन सूफी कवियों की रचनाओं और कथाओं में आदि से अत तक कोई ऐसा प्रसंग नहीं आया है जिसके आधार पर उन्हें इस्लाम का प्रचारक या मोप्रचारक कहा जा सके। मिथ्र जी न ठीक ही कहा है—

हिंदी के सूफी मुसलमान कवियों का हिन्दी के क्षेत्र में बनने का कारण तत्काल का उपदेशात्मक नहीं है। वह यदि गुड साहित्य की सजना नहीं है तो निष्पक्ष तत्काल की उपासना भी नहीं। उनके समस्त प्रयासों में साहित्य की संरचना भी कहीं अपने प्रमुख स्तर में है। इस दृश्य-दशन की दृष्टि से अतः मूढ सना-याय न होगा। जायसी ने साहित्य का प्रमुख स्तर से दृष्टिपथ में रखकर भी प्रेमगाथा लिखी है।^१

इस प्रकार स्पष्ट है कि जायसी या किसी अन्य सूफी कवि पर इस्लाम के प्रचारक होने का डा० श्रेष्ठ का आरोप उचित नहीं है। वस्तुतः जायसी अत्यंत उदार और महान सन थे। वे इस्लाम के अनुयायी थे, पर सूफी सन होने के कारण इस्लाम और हिंदू की भावना से वे ऊंचे उठ हुए थे—

निह सननि उपराजा भातिहि भाति कुनीन।

हिंदू तुरक दुवों भय अपन अपने दीन ॥^२

‘मालु के रक्त पिना के विदू। अपन दुवी तुएक और हिंदू ॥’

जायसी ने सबसे इसी प्रकार के विचार प्रकृत किए हैं। इसके अतिरिक्त पदमावन आदि प्रभाषयानों के नायक-नायिका, उनके दैनिक व्यापार वातावरण, तथा उनके सिद्धांत या संस्कृति में भी कोई परिवर्तन नहीं लाया जाता है और न कहीं पर यही चेष्टा की जाती है कि कथाप्रवाह के किसी भी अंश में किसी संप्रदाय या धर्म के महापुरुषों द्वारा कोई मोठ सा दिया जाय। इनमें प्रसंग यदि कोई हिंदू योगी या तपस्वी आ जाता है तो स्वाज्ञा सिद्ध भी आ जाने है और मोना तगमग एक ही उद्देश्य से काम करते पाए जाते हैं। हम जिनका द्वारा लिख गए प्रभाषयानों में भी महापुरुषों का समावेश कर दिया गया पाते हैं जो अत्यंत गंभीर प्रेम वान का व्यक्तिया के जीवन में एक नया मोड़ घटित कर देते हैं और इस प्रकार उन्हें उन आत्मा की ओर आकृष्ट कर देते हैं जो जन धर्म पर आश्रित है।

१—विप्रेरेखा एक बोल’ आचाप प० विश्वनाथ प्रसाद मिथ्र प० ६-१०।

२—जायसी प्रयावनी, ना० प्र० सभा काशी प० २१३।

३—वही प० ३०८।

४-१० परगुराम अतुर्वेदी हिन्दी साहित्य, सूफी प्रभाषयानक साहित्य प० २६१-६२।

तुलसीदास को जायसी की देन

अनेक कवियों की अभिव्यक्तियों में पारस्परिक साम्य बूढ़ निकालना विद्वानों के लिये दुष्कर काय नहीं है। भिन्न देशों की विभिन्न भाषाओं में अनेक कालों में विरचित कवियों की रचनाओं में वसी समानताएँ देखी गई हैं। इस प्रकार के साम्यों के मूल में विचारों की अनुकूलता और कुछ विनिष्ट परम्पराएँ आती हैं। अभिप्राय सस्वारी रुढ़ियों और परम्पराओं का भी इस क्षण में महत्वपूर्ण स्थान है।

प्रायः ज्ञात या अज्ञात रूप से कवि अपने पूर्ववर्ती कवियों की महाघ विचार धाराओं एवं भावनाओं को गृहीत करते चले आए हैं और यही कारण है कि जब हम किसी कवि के अध्ययन में प्रवृत्त होते हैं तो उस विषय से संबद्ध प्राचीन साहित्य में अनेक साम्यमूलक अभिव्यक्तियाँ मिलने लगती हैं। जायसी ने 'पदमावत की प्रस्तावना' में सिलसिले में इसी लिये कहा था कि आदि अत गाथा का जसा स्वरूप है वसा ही मैं भाषा चौपाई में लिख रहा हूँ।^१ तुलसीदास ने भी कहा था—

नानापुराण निगमागम समत यद्रामायण निगदित क्वचिदयतोपि ।

स्वात सुखाय तुनसी रघुनाथ गाथा भाषा निबधमति मजुलमातनोति ॥^२

यदि परवर्ती साहित्य का भी अनुशीलन किया जाय तो उसमें भी इसी प्रकार के भाव साम्य मिल जायेंगे। किन्तु इस प्रकार प्राप्त हुई सामग्री के आधार पर हम किसी कवि के ऊपर धीरे वृत्ति का आरोप नहीं कर सकते। यद्यपि साहित्य के क्षेत्र में ऐसी पुनर्व्यक्तियों का बोलबाना रहा है। मूल में काव्य मधुमालती में भी अनेक भाव ऐसे हैं जो उनके पूर्ववर्ती कवियों कुतबन और जायसी से मिलते हैं। यही नहीं अनेक दोहे तो सस्त्र श्लोकों के अनुवाद मात्र दिखेंगे किन्तु ऐसे तत्व मूल में अध्ययनशीलता एवं सस्त्र आदि से धनिष्ठता ही और ही संकेत करने वाले हैं।^३ इस प्रकार के विचारों के मूल में भारतीय समाज साहित्य और सस्त्र की अविच्छिन्न परम्परा को भी गृहीत किया जा सकता है। प्रायः कवि उससे समान रूप से परिचित प्रभावित हुए हैं। पतकसम्पत्ति के रूप में परम्पराएँ अभिप्राय, रुढ़ियाँ सूक्तियाँ आदि भी कवि के लिए सचन-स्वरूप हैं जिनके बल पर कवि अपने काम-धर्म पर गतिशील रहते हैं। काव्य की अलङ्कारिता से सम्बद्ध उपमा रूपक प्रतीक, छन्द आदि के लिये भी कवि प्रायः परम्परा का आश्रय लेते रहे हैं। लीक छोड़कर चरने वाले कवि भी होते रहे हैं।

१—आदि अत जस गाथा अहे । लिखि माझा चौपाई कहे । जा प्र० ना प्र०सभा

२—रामचरितमानस, बालकाण्ड, प० १ ।

३—डा शिवमोपाल मिश्र, मगनवृत्त मधुमालती भूमिका प० १५ ।

प्रेमाख्यानक परम्परा

जहाँ तक सूफियों का प्रश्न है उनमें परम्परा का सीमोल्लघन कम ही मिनता है। प्रायः सभी सूफी कवियों के काव्यों में प्रेमानुभूति की प्रवणता, प्रेम-गीत की उदात्तता तथा की लौकिकता में अलौकिकता का समावेश प्रकृत तत्त्व मिलते हैं। हिंदी के इन सूफी कवियों ने अवधी भाषा को प्राजन बनाने और भारतीय लोक-प्रचलित कथाओं को अमरता प्रदान करने का महत्वपूर्ण कार्य किया है।

मुल्ता दाऊद वृत्त चंदायन (७८१ हि०) १३७६ ई० से हिंदी प्रेमाख्या नव परम्परा का प्रारम्भ माना जाता है किन्तु इस परम्परा के बीज सुमरो के खम्स (पाँच मसनवियों का सग्रह) में मिल जाते हैं।

जायसी के काव्य पर चंदायन और मगावती (१५०३ ई०) का पर्याप्त प्रभाव है। लोक गायामय पद्धति पर काव्य का जो स्वरूप-निर्माण इन काव्यों में मिनता है, वही जायसी के काव्य में भी द्रष्टव्य है।

यह सबसे मति से स्वीकृत है कि जायसी हिंदी सूफी कवियों में सर्वश्रेष्ठ है। परवर्ती संपूर्ण सूफी काव्य पर उनका प्रभाव पड़ा है। साथ ही निगुण-सगुण भक्ति काव्यों पर भी उनका प्रभाव पर्याप्त मात्रा में पाया गया है।

यद्यपि दोहा चौपाई वाली शैली जायसी से बहुत पहले की है। सरहपाद, मुल्तादाऊद और कुतबन की कृतियों में यह शैली प्रयुक्त है और जायसी ने भी इसी शायरी का प्रयोग किया है तथापि कुछ योगों का अनुमान है कि तुलसीदास ने जायसी की ही शैली पर रामचरितमानस का प्रणयन किया है।

पदमावत की रचना १५४० ई० में हुई थी। इसके पहले प्राकृत और अपभ्रंश में चरित और आख्यान काय लिखे गये थे। मसनवी-पद्धति के साथ ही पदमावत में इस भारतीय काव्य पद्धति का भी सुन्दर उत्पन्न हुआ है। इसके ३४ वष के पश्चात् सन्त १६३१ में तुलसीदास ने अपने रामचरित मानस की सजना की है। उनमें दोहा-चौपाई के अतिरिक्त और भी छन्दों के प्रयोग हुए हैं तथापि उसकी मुख्य शायरी दोहा-चौपाई वाली ही है। जायसी की महानता इस बात में भी है कि उन्होंने तुलसीदास से पूर्व दोहा-चौपाई में इतने विशाल और प्रोन्नत काव्य की सजना की थी। आश्चर्य नहीं कि उन्हें (तुलसीदास को) जैसे विविध छन्दों में अपने विभिन्न काव्यों की रचना करने की प्रेरणा अपने पूर्ववर्ती अन्य कवियों से मिली हो वैसे ही पदमावत से मानस की शायरी का सुभाव भी मिला हो 'साखी सबदी दोहरा कहि किहनी उपखान के द्वारा गोस्वामी जी किहनी उपाख्यान, रचयिता सूफी कवियों की ओर संकेत तो करते ही हैं आश्चर्य नहीं कि इससे उनका अभिप्राय जायसी से ही हो जैसे साखी सबदी दोहरा के द्वारा स्पष्ट ही कबीर का निर्देश है और यह अनुमान भी सम्भव है कि तुलसीदास ने पदमावत

का अध्ययन किया था। श्री इन्द्रचन्द्र नारग जी ने तुलसीदास द्वारा वर्णित कतिपय घटनाओं का उल्लेख करते हुए उनका मूल पदमावत म वताने का प्रयत्न किया है।

वसन्त पंचमी आने पर पदमावती महादेव की पूजा के लिए महादेव के मंडप में जाती है। वहाँ उसने पूजा की वरदान मांगा आकाशवाणी हुई तब राजा रत्नसेन से मिली पर वह मूर्छित हो गया। इन समस्त बातों का विवरण पदमावत म सुन्दर ढंग से प्रस्तुत किया गया है—

दब दब बहते कहते श्रीपंचमी आ पहुँची। पदमावती ने सब सखियों को बुलाया। सभी गुरुपा और पदिमनी जाति की थी। पान फूल सिन्दूर आदि से सब अनुराग राग में पगी थी—

चली पउनि सब गोहने, फूल डार लेइ हाथ।

विम्बलाथ के पूजा, पदमावति के साथ ॥

बाजहिं डान दुदुभी भेरी। मान्तर तूर झाड चहु फेरी।

पदमावति ग देव दुबारा। भीतर मंडप कीन्ह पसारा ॥

पर फूलहसन मंडप भरावा। चन्दन अगर देव नहवावा ॥

लइ सँदूर आनग मैं खगे। परसि देव पुनि पायन्ह परी ॥

और सहेगी सब बियाही। मो कह देव काहु वर नाही।

हो निरगुन जो कीह न सेवा। मुनि निरगुनि दाता तुम देवा ॥

वर सयोग तुम भरवहु कलस जाति ही मानि।

जेहि दिन हीछा पूज बेगि चढ़ावहु आनि ॥

हीछा हीछि बिनवा जस रानी। पुनि करजोरि ठाढ भइ रानी।

उतफ को देख देव मरि गएऊ। सबद अकूट मरूप मह भएऊ।

और अमने पश्चात्—

ततपन एव सखी बिहसानी। कीतुव आइ न देखहु रानी।

पुरुबदार मड़ जागी छाप। न जनीं कौन देस त आए ॥

उन्ह मह एक गुरु जो कहावा। जनु गुर द काहु धौरावा ॥

कु वर बतीसी लच्छन राता। दसए लछन वहै एक वाता ॥

मुनि सो बात रानी रप चढ़ी। वह जस जोगी देखीं मढ़ी ॥

लेइ सग सखी कीन्ह तह परा।

जब उसे राजा ने देखा तो वह अचेत हो गया। पदमावती ने उसे जगाने के अनेक विधि, उपचार किये, पर वह नहीं जाग। अन्ततः उसने रत्नसेन की छाली पर अपना सदेश लिख दिया—

प्रेमाख्यानक परम्परा

'भीष्म लेइ तुम जाग न सिखे ।
तुलसीदास ने भी रामचरितमानस के बालवांछ म इसी प्रकार के एक प्रसंग की
योजना की है । (रत्नमेन पदमावती के लिय शिव मन्दिर म डेरा डाले पड़ा था)
और राम अपने भाई राममण के साथ मानिया से पूछ कर वाटिया म पून चुन
रहे थे) ।

तहि अबसर सीता तहँ आई । गिरिजा पूजन जननि पठाइ ।
सग सखी सब सुभग सयानी । गावहि गीत मनोहर बानी ।
'पदमावती के साथ रूपवती सहनिया थी और बजे बजे रह के तो जानकी व साथ
सुभग सखियाँ गीत गाती जा रही थी, और कवण किरिणि नूपुरध्वनि मुखर हो
रही थी वहाँ पदमावती स्वतः महादेव का पूजन करती थी तो यहा सीता गिरिजा
को पूजने जा रही थी । पदमावती न महादेव की पूजा के अनन्तर अपने त्रिये सुन
कर वरदान मांगते हुए कहा था कि भरा वर-मयोग भिना दोग ता तुम्ह बरना
चन्दाऊँगी । जानकी मर्यादा की देवी थी । उहनि पूजा के पश्चात इतना ही कहा
कि मोर मनोरथ जानहु नीके । उहँ भी पति की कामना थी । उहँ जानीस भी
भिना था कि 'पूजहि मन कामना तिहारी । इन प्रसंग म तुलसीदास ने जायसी
की ही भाँति एक विधि सखी को उपस्थित किया है—

एक सखी निय सग विहाई । गई रही दखन पुनवाइ ।
तेहि दोउ बधु बिलोके जाई । प्रेम विवस सीता पहि आई ॥
उसने भाकर सीता स राम के रूप का बखान किया— अबसि दखियहि दखन जागू और
उत्सुक हुई । अय सखियो न भी समयन किया— अबसि दखियहि दखन जागू और
व उस प्रिय सखी को आगे बरके उहँ देवन चला—

एक सखी सिय सग विहाई । गई रही देवन पुनवाइ ।
और 'ततएन एक सखी बिहमानी । कौतुक जाइ न देखहु रानी ।
वान प्रसंग म अम्भुत साम्य हैं । सम्भव है यह याजना जायसी के उपयुक्त सखी
के द्वारा पदमावती के यागी के पास पहुँचने के सुभाव स ही तुलसी ने अपनाइ हो
और महादेव के मण्य का अकूट शक्त ही तो वही उस मन्दिर माझ भई नभवाणी
का प्रेरक नहीं है जो रामचरितमानस म वागभुगु डि का अपन पूवजम म उज्ज
व महाकाल (शिव) मन्दिर म मुक वा अपमान करने पर मुताई पनी थी ।'
इसी प्रकार का एक और प्रसंग द्रष्टव्य है । अनाउहीन बितौड पर घेरा

डाव पना है और रत्नसेन नाच-रग म मस्त है—
तबहु राना हिय न हारा । राजपीरि पर रचा अघारा ।
सोह साह क बरक जहाँ । समुहै नाच बराव तहाँ ॥

जहवा सौह साह क दीठी । पातुरि फिरत दीह्वि तह पीठी ।

इस पर गढ़ के ऊपर बाण चरने लगे । कन्नौज के राजा जहाँगीर का बाण उस वधवा की जाँघ में लगा । वह गिर पड़ी और उडसा नाच नचनिया मारा । रहसे तुख बजाइ क तारा । इसी मिलता जुलता दृश्य रामचरितमानस में अंकित है । सुयेन पवत पर समय रामचन्द्र शिविर बनाकर आसीन हैं । वे दक्षिण दिशा में बादल के घुमडने और बिजली के चमकने की बात विभीषण से कर रहे हैं—

कहत विभीषण मुनहु वृपाला । होइ न तडित न वारिदमाला ।

लका सिखर उपर आगारा । तह दसरुधर देख अयारा ।

छत्र मेघडवर तिर पारी । सोइ जनु जलद घटा अतिकारी ।

और उस समय—

छत्र मुकुट साटन तव हते एक ही बान ।

सबके दक्षत महि परे मरमु न रोक जान ॥^१

इन दोनों अखाडों में विचित्र सांख्य है । श्री इन्द्रचन्द्र नारग ने इन सब वणनों के अनंतर लिखा है क्या जायसी ने तुजसी का इस प्रसंग की उदभावना करने की मूढा नहीं दी ? हमारे देखने में तो संस्कृत रामायणों में ये प्रसंग इस रूप में नहीं आए और हम इन्हें तुजसी की मौखिक सूझ ही मानते थे । परंतु क्या यह सम्भव नहीं कि जायसी की उपयुक्त प्रसंगों की उभावना उस कवि के लिए पथ प्रदर्शक रही हो जिसकी अमर रचना रामचरितमानस के सामने जायसी की पन्मावत को जीत भूल ही गये ।

इसी प्रकार (पदमावत में) पन्मावती के विवाह के समय निर्मित रंग महन के वणन और रामचरितमानस में सीता स्वयंवर के समय निर्मित वितान के वणनों में भी अद्भुत साम्य है ।

पुनरी गाडि गति सम्भट काड़ी । जनु राजी सब सब ठानी ।

—जायसी

सुर प्रतिमा सम्भट गति कानी । मगन द्रय लिए सब ठानी ।

—तुलसीदास

इस प्रकार साम्यमूलक प्रसंगों के विषय में यह कहा जा सकता है कि तुलसीदास ने पन्मावत में प्रेरणा ग्रहण की थी । एक बात यह भी है कि इस प्रकार के प्रसंग (जन्म-शिव-मन्दिर गन्-वणन आदि) मध्यकालीन कविता में कथानक रुढ़ि बन गये । अतः बहुत सम्भव है कि इन कवियों के इन प्रसंगों का मूल स्रोत लोक जीवन की ये वाच्यगत रुढ़िया ही हों ।

प्रेमाख्यानक परम्परा
 यह समावना की जा सकती है कि तुलसीदास ने पदमावत को पढ़ा था
 और वे उसकी छन्द-योजना से प्रभावित हुए हैं।

जायसी और कबीरदास (तथा अय्य सन्त कवि)

भक्तिवादी कवियों में कबीर को सतमत का प्रवक्ता कहा जाता है। यद्यपि कबीर ने कभी किसी मप्रदाय या पय विशेष के प्रवक्ता का अप्रहर्ष नहीं किया था, तथापि बालातर से उन्हें एक पय विशेष से संबद्ध कर दिया गया। वे एक श्रान्तदर्शी सत हुए हैं। उनका पय निराला था। उन्होंने जायसी की भाँति समन्वय का पल्ला नहीं पकड़ा, व एक श्रान्तिकारी भक्त थे। भारतीय अद्वैतवाद, मुस्लिम एकेश्वरवाद और सूफीमत के प्रेमपय को स्वीकार करते हुए भी वे सबसे अलग थे। उन्होंने हिंदू मुसलमान पौर, पैगम्बर, पंडित आदि के बाह्य ढवरों का प्रवल छण्डन किया। कविता को तो विद्वान कबीर की 'बानियों' में 'बाई प्राडवट' मानते हैं—वे मूलतः भक्त थे। इस स्वतंत्र विचारक वाह्याढवरों के सडक और प्रतिभा के घनी सत कवि के रूप में कबीरदास हिन्दी भक्ति साहित्य में समादत हैं। सत कवियों में कबीरदास को छोटकर और कोई भी ऐसा विचारक या कवि नहीं है जो जायसी की समकक्षता में आ सके। कवि रूप में कबीरदास से जायसी की श्रेष्ठता स्वतः सिद्ध है। कबीरदास की बहुत सी रचनाओं को काव्य कोटि में रखने से विद्वान हिचकिचाते हैं। उनका कथन है कि उन्होंने अधिकतर नीची श्रेणी के अपठ लोगों को प्रभावित करने का प्रयत्न किया था। पढ़े लिखे लोगों पर इनका तथा इसी प्रकार के अय्य निगुणपयी सतों का वैसा प्रभाव नहीं दिखाई देता। अपठ जनता को आवृष्ट करने के लिए योग साधना और ज्ञान माग की फुटकल बानों को अपनी उन्टवाँसियों तथा चमत्कारपूण रूप से लपित करने का इन्होंने प्रयास किया था। कबीर ने पान को तो ग्रहण किया था पर कम की बसी व्यवस्था उनके पय में न हो सकी। कबीर की सब रचनायें शूद्र काय के अन्तगत आ सकती हैं, इसमें सन्देह है। योग-साधना का उल्लेख करने वाली नाडी, चक्र, सुरत निरत ब्रह्मरघ आदि का विवरण देनेवाली रचनायें काव्य के अन्तगत नहीं मानी जा सकतीं। जिनमें प्रेमतत्व का निरूपण है या जिसमें पति-मत्नी मेन्य-संबन्ध, पिता पुत्र, आदि अनेक लौकिक सकेतों से रहस्य-सकेत विण गए हैं वे ही काव्य के भीतर ली जा सकती हैं। इस प्रकार उनकी बहुत सी रचनायें काव्य कोटि में नहीं आतीं। वहाँ उनकी स्फुट नीरस पद रचना और वहाँ साहित्य की अमूल्य निधि पदमावत। वहाँ कबीर की असाहित्यिक 'सपुत्रकही माया और पदमावत की नास्त्रसमत सरल

और अलङ्कृत काव्यभाषा ।^१ इतना ता स्पष्ट है कि जायसी की भाषा कड़ी से अधिक सरल अलङ्कृत और काव्यमय है । उसका कारण है कि जायसी का लक्ष्य काव्य था और कबीर का भक्ति-गाथा ।

कबीर का रहस्यवाद हिंदी में अपना महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है । ऐग पदा में उनका कवि रूप भी मुखर हो उठा है । कबीर के पहले ही हिंदी सूफी कवियों की रहस्यवादी रचनायें प्रकाश में आ गयी थी । मुल्ला दाऊद का चत्वार्यन कबीर के बहुत पहले ही प्रतिष्ठा प्राप्त कर चुका था । कबीर के रहस्यवाद में जो प्रेममूलक सौंदर्य है । वह सूफियों से भी हई वस्तु है । इमानिए कबीर के रहस्यवाद का अस्मिन्तर यदि अद्वैतवाद और हठयोग है तो उसका प्राण सूफीमत का प्रेम ही है यदि सूफीमत के प्रेम पीर की अभिव्यक्ति उसमें से निकाल ली जाय तो उसमें रहस्यवाद रह ही नहीं जाता । कबीर के पीर साईं बरतार, भगतार में सूफियों की प्रेम पंक्ति का ही एक रूप द्रष्टव्य है । कबीर के रहस्यवाद में भी अत्यक्त-अशरीरी प्रियतम के प्रति दाम्पत्य भाव का प्रणय है । उसमें भी प्रेम की पीर और विरह की भावना सूफियों की है । भारतीय भक्ति और ज्ञानमार्ग सबथा भिन्न वस्तु है । भक्ति में सगण और ज्ञान में निगण का स्पष्ट आधार है । केवल सूफी पद्धति में ही निगण के प्रति भी दाम्पत्य प्रणय का योग जाना है । निगण के प्रति दाम्पत्य प्रेम ही उस रहस्य की सत्ता भी देता है । इस प्रकार कबीर का रहस्यवाद निश्चय ही सूफीमत पर अवलम्बित है । फिर कबीर का रहस्यवाद मन्त साधनात्मक है । उसमें ब्रह्म माया तथा हठयोग के पहलू कमजोर कुत्तिनी इज्जत विगला सुपुम्ना आदि का योग है । कबीर ने उन उन्मत्तवाकियों का भी इन सबके साथ योग हो गया है और अस्पष्टतापन जा गया है । दार्शनिकता और हठयोग के समन्वय के कारण कबीर का रहस्यवाद जटिल हो गया है । जायसी का रहस्यवाद सहज सबाव और सरस है । सद्भाव त्व दृष्टि में निगुण का सूफीमत भल ही साहाय्य है किन्तु प्रवृत्ति शृङ्खला में उसमें प्रियतम और प्रियतमा सुस्पष्ट है उनके माध्यम में उपस्थित होने पर कवि सरलता से प्रियतम के प्रति प्रणय तथा प्रेम की पीर की सहज अभिव्यक्ति कर देता है । जायसी के यहाँ साधनात्मक और भावनात्मक दोनों प्रकार के रहस्यवादों का सत्तर उत्कृष्ट देखा जा सकता है । सुवन जी ने ठीक ही कहा था कि जायसी सच्चे रहस्यवादी हैं । कबीर में जो कुछ रहस्यवाद है वह सब एक भावना या कवि का रहस्यवाद नहीं है । हिंदी के कवियों में यदि कहीं सरस सुन्दर और रमणीय अर्थात् रहस्यवाद है तो जायसी में जिनकी भावुकता उच्चकोटि की है । वे सूफियों की भक्ति भावना के अनुसार कही परमात्मा को प्रियतम के रूप

प्रमाह्वयानक परम्परा

में देवदत्त जगत व नाता हृषा म उस प्रियतम के रूप माधुप की छाया दफते है। और वही सारे प्राकृतिक रूपों और यापारो का पुरुष क ममानमन क हेतु प्रवृत्ति के शृंगार, उत्सव या विरह विवकता के रूप म अनुभव करन है।^१ इस प्रकार वया कवि वम और वया मिद्धा न त्रिपण, वया रहस्यवात् की सम्पन्न वाध्य-पद्धति और वया प्रत्यक्ष-मभी दृष्टिकाणा म जायमी कवीरदास जी की अपेक्षा टि नो ताव धारा म सम्मानपूण पद के अधिकारी है।

सूफी मत मान और भक्ति का मध्यम माग है जिसम निगुणापासना वा प्राधाय है। ध्यानपूर्वक देखने पर स्पष्ट हा जाना है इन निगुणोपासना म सगुणो पासना भी अनुस्यूत है। भारतीय भक्ति साधना पद्धति न उस पर अपना भी गहरी रण चढ़ा लिया है। योगिया मिद्धा ने भी उम सूफी मन पर अपनी गहरी छाप लगा दी है। यही यह भी बात है कि सूफियों ने भी भारतीय समाज धम साहित्य और साधना पद्धति पर बड़ा गहरा प्रभाव डाला है। साहित्य के क्षेत्र म सूफिया की मजना प्रणाली अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इस प्रणाली ने समसामयिक और परवर्ती साहित्य पर अपना प्रभाव जमर कर दिया है।

भारतीय साधना पद्धति म योग मग का भी बड़ा महत्व है। योग वाले तो अपनी प्राचीनता वदो मे भी पाने ते जाते हैं। जो भी हो प्राचीन योगमग का ग्रहण बौद्धम के भीतर उम समय विकन रूप म क्रिया गया जब उमम हीनयान और महायान की प्रश्रय फूरी। महायान म भी हीनयान और सहजयान नाम के माग निकल। सहजयान की उपासना तांत्रिक रूप म भारत मे बहुत दितोभवक चली रहे। यही सप्रदाय बौद्धा के विवस्न हो जाने पर सहजिया नाम गोरखनाथ रहा, जिनम से आग चक्रर नागपथ फूग। नागमत म मध्ययुगनाय प्रेमनक्षत्रपरक बचन भी पाए जाते है। नागमार्गी अद्वैतवाद, प्रेममार्गी सूफीमत आदि प्रसिद्ध मिद्ध हो गए है। कवीरदास के विषय मे कहा जाता है कि गव तकै एष सूफी फरीर स इनका मन्मग हुआ था। सूफिया के ससग के कारण इनम प्रेमनक्षत्रपरक बचन भी पाए जाते है। नागमार्गी अद्वैतवाद, प्रेममार्गी सूफीमत का मागमग य उनकी रचनाओ म स्थान स्थान पर दिखाई देते है।^२ कवीरदास जस नानमार्गी असलो की साधना पद्धति म जो माधुयमान प्रणय भाव दृष्टिगोचर होता है उस सूफियों की देन वहा ना सकता है। भागवत म श्री गानी दृग् प्रसग म इसी प्रसन्न व प्रणय की बात मितती है, पर वह साधार वण का नकी है। सूफिया का प्रणय निराकार के प्रति है। इस प्रकार सूफिया की यह प्रणय भावना नगीर दरिया आदि सा ने प्रणय म अभिप्रक हुई है। उदाहरणार्थ सूफी

१-प रामचन्द्र गुप्त ना० प्र० भूमिका पृ० १६४।
२-वही, पृ० २५४-५५।

प्रणय भावना से प्रभावित ज्ञानमार्गी सतो की कुछ बाणियाँ ली जा सकती हैं—

‘बालम आओ हमारे गेह रे ।

तुम बिन दुखिया देहरे ॥’

पीतम साहब आए मेरे पहुना घर आंगन लग सुहोना ।’

बहुरि नहि आवना यहि देस । जो रे गये बहुरि ।

नहि आये पठवत नाहि सदेस ॥’

तोको पीव मिलेंगे धूघटू के पट खोल रे ।

साई बिन दरद करेजे होय ।’

तलफ बिन बालम मोर जिया ।

नन यकित भए पथ न सूजे साई वेदरदी सुधि न लिया ।’

समुझ सोच मन मीत पियरवा आसिक होकर सोना क्या रे ?

कहै कबीर प्रम का मारग सिर देना तो रोना क्या रे ।

दास दिवाना बावरा अलमस्त फकीरा ।

एक अकेला हू रहा असमत का धीरा ।

हिरदे मे महबूब है हरदम का प्याला ।’

एक प्रम बह्याड छाप रह्यो समझ विरला पूरा ।

अधभेदी कहीं समायेंगे ज्ञान के घर है दूरा ।’

कबीर की ही भाँति अय निगु गोपासक नानमार्गी सत भी सूफियो की प्रम भावना से प्रभावित हैं। उदाहरण के लिए कुछ ज्ञानमार्गी सतो की बाणियों में से एक एक पक्तियाँ दी जा रही हैं—

मोरा पिया बस कोने देस हो ।’ (धमदास)

प्रभु मेरे प्रीतम प्रान पियारे ।’ (नानक)

अजहू न निकस प्रान कठोर ।

दरसन बिना बहुत दिन बीते, सुन्दर प्रीतम मोर ॥’ (दाहूदयाल)

तेरा मैं दीगर दीवाना ।

१-कबीर, पृ० २५८ (पद ३५)।

२-वही पृ० २८३ (पद ८८)।

३-वही पृ० ३१२ (पद १३७)।

४-वही पृ० ३५० (पद २२४)।

५-वही पृ० २६६ (पद ५२)।

६-वही, पृ० ३२६ (पद १७३)।

७-वही, पृ० २८६ (पद ६६)।

८-वही, पृ० ३४५ (पद ३१०)।

९-वही पृ० २८७ (पद ६७)।

१०-सतवानी सग्रह पृ० ४४ (भाग २)

११-वही पृ० ४६ ।

१२-वही, पृ० ६३ ।

पंजाल में गिरना
 बपने को जनाना
 जब तक दम म दम
 बासा धरना
 इन्ध बपाना
 नमक की तरह गनना
 बोनी हो जाना
 हाथ मगन कर रह जाना
 बराबरी न कर सवना

सिर देना
 अपना दाप दूसरे के सिर देना
 रो रोकर आसू की नदी बहाना
 घाह न पाना
 पिजर से पछी का उठना
 वाटों न पनना
 हाथ झाडार बनना

आस मू द नैना
 हाथ मोजना
 निगाह फेरकर न देपना

रस का बिप होना
 बाए होना
 तेनी का बन
 दीन का गहारा
 हाथ पत्रटना
 रण में रगना
 सोया गो धाया

बोनु न राजा बापु जाई
 जो सगि जीउ पाया म ।
 मुगि म सरण गुरग गिह दीदा
 हिपरा जाल मरा
 नोन दिए होद तान बिना
 गिय बिनु म वीटी बराती
 पाहू छुव न पाण, गए मरारत हाथ
 दारिउ सरि जो न ब मना,
 पाटेउ हिया दरनि ।

जो सिर सेंती येन
 आपन दोष आन सिर दीहा
 रोद रोद आंसू नदी बहाद
 बूढ जगन न पाव पाहा
 गा सो प्रान पेसा, म पीजर तन छू छ
 वांट ह माह पून जनु पून
 बनब झारि दोउ हाथ मुहम्मद बह
 छोटि क
 मू द नन जगत मह बनना
 रा रोइ मीज हाथ
 दीठि न दख फेरि मुहम्मद राना प्रेम
 जो

जो एहि रस के बाए भएऊ
 तेहि मह रग बिप भर होद गणऊ
 तनी बल निशि जिन फिर
 ना नमाज है छीन क यनी
 कर गति तीर मद्र मद्र आथा
 रा राजतु अब तनि म गग
 चीनि लट्ट मा प्रागि,
 मुहम्मद गा न धाए ।

२१८
 २२४
 २३४
 २४४
 २५२
 २६४
 २४६
 २४४
 ३०६
 ३०८
 ३०८
 ३१२
 ३१३
 ३१४
 ३१७
 ३१७
 ३१६
 ३१८
 ३१८
 ३१८
 ३२०
 ३२१
 ३२२
 ३२

झगडा लगाना	इच्छा पूज आस तु लाव । भाइ बघु मह लाई लाव	३४२
वारपार न सूझना	बाप पूत मह कहै कहाव वार पार किछु सूझत नाही ।	३४३
बान स भी पनला जीर तलवार से भी पाा	दूसर नाहि को टेक बाही ॥ वारहु ते पतरा अस झीना ।	३४६
मर मर कर पाव उठाना	खटग धार से अधिको पना ॥	२४६
दूध का दूध और पानी का पानी	बहु तरु मरि मरि पाव उठइहै नीर खीर हुत काढ्य छाती ।	३४६
पध न सूचना	करव निवार दूध और पानी ॥ निरखि नयन में देखीं कतहु पर नहि सूझि	३४६
अपन मिर लना	रहौ लजात् मुहम्मद धान करीं का वृषि ॥	३५२
छार करना	सो सब भ अपने सिर लीहा	३५२
अपना अपना ध्यान रखना	तहि कह छार करीं धरि जारी आपहि आप आइक परी ।	३५२
आखो देखी काना सुनी और भाना	कोज न कोज क धर हरि करी ॥ नन क देसा सवन क सुना	३५४
	तोहि छाडि मोहि और न भावा	३५५

कहरानामा

टोइ टोइ पाव उठाना	टोइ टोइ भु इ पाव उतरहु	विहारखली प्रतिपद्य १
साले पठना	नाही तो परिहृ खाने रे	
हाथ गार कर पद्याना	काइ टकटोरि छू छि होइ बहुरा हाथ, शारि पद्यतानेउ रे	"
जाल म पठना	वाहौ फाद नरक नहि दला परा जाल उरझानेउ रे	'
गाठ पूर कर आना	जो अस सूचि वृषि मारग के गाठि पूरि बरि आवे रे	' २
अनेले झूरना	दरब हुत मन पुर अवेना, कोई नहि निरवाह रे	
मसधार म झूबना	सोइ चाहु पारजहि उतरहु	

मत बूढहु मझधारा रे

मुहावरे

प्रचलित रूप
श्री गणेश
देर न नगना

एक पल म करना
राज नागना
घून मे मिलाना
बराबरी न कर सनना
चीटी का हाथी के समान बनना
राई ते पवत या तिनके से बज्य बनना

मम न जानना
प्रचलित रूप
राज भोगना
कन्पुतनी जमा नाचना
छछे हाथ जोटना
बाया पगारना
भूमि पर सिरमारना
भभून चपाना
भेप बपनना
बाणे पर डनटना

मौनी हाना
बबुनाभगत बनना
बाहा का गहारा दना
छार होना
पाप घोना
पानी का बुना हाना
समानापन निमाना
बोन स नी नना

पदमाचत में प्रयुक्त रूप
पहिन तानर नावल क्या बरौ अवगाहि
निमिप न ताग करन आहि
सत्र कीह पन एर

कीहमि राजा भूजहि राजू २
पुनि कीहसि मव छार २
दूमर नाहि ता सरवरि पावा ३
चाहहि कर हस्ति सरि जोपू ३
बज्यहि निरहि मारि उटाइ ।
निरहि बज्यरि दहि बडाई ॥ ३
तावर मरम न जान भाजा ४
चिन्नेला में प्रयुक्त रूप
सहम बडारह भूजइ राजू ६५
नाथ टार बाठ जा नावा ६६
चिन्नी छू छे हाथ ६६
वा भा परगाट क्या पवारें ७०
वा भा भगनि भूए रि मारें
वा भा नटा भभून चपाने
वा भा गरु का परि नाए ॥
वा भा भप दिगम्बर छोट
वा भा आपु उरति गए वाह
जा मखहि तजि मौन तू गहा ।
ना बग रहै उलु भगत बचना ।
नीह वाह निन ममुद गैभार ॥ ७३
गुए जा छार हाइ यह दहा । ७४
घोवा पाप पानि मिर भेना । ७४
पानी जइस बुन बुना हाई । ७६
तहा सपानप बीन बरीज ७६
सामु ननद वोनन जिव नई ८४

मुह अगोरना मुह जोहना	सामु ननद के मुर्हाहि अगोरे	८४
हाथ जोड रहना	रह्य सुखी दोऊ कर जोरे ॥	८४
पट्टियो म डेल पडना	थापु आपु कह हाइहै,	
	ज्यो पाखिन मह डल ।	८४
सूर्यास्त हाना	अथएउ सुरज होई अब साझा	९२
भोर पनुहाना	कहा धनतरि पावही	
	जो पनुहाव भोर ।	९२
तन म सास रहना	जब नगि हुई सास तन मोरे ।	९३
हाथ जोड कर सवा करना	सवा करौं ठाड कर जोरे ।	९३
श्रमणकुमार होना	तुम स उब सगन औ तरे ।	९४
मुख का रंग उड जाना या मुख श्वेत होना	राता बदन गएउ होइ सता	९५
पनव ओट होना और सपना सा बीतना	पलक जोट फुन होतए,	
	गा सपना सा बीति ।	९६
स्वगवासी होना या शिवगोक मे जाना	जबहि कुवर भा चाह बटाऊ ।	१००
छार होना	कतन पूछइ चोइहा	
	छार होउ जरि अग ।	१०७
सुधि आना	नारि चिनरेया चित जाई	११०
पोछ पछनाना	रहहि जो करत खेनारी	
	त पाछे पछताहि	११२
एक अक्षर पन्कर पडिन होना	एक अक्षर प्रम वा पन् सो	
	पन्ति होइ ॥	११३

(ग) अलाउद्दीन सब्घी प्रबन्ध और फुटकल काव्यो की सूची

जायसी	१	पदमावत रचनाकाल स० १२६७ ।
नारायणदास	२	छिजाई बाता २० वा० अनात प्रति० वा० स० १६४७
और रततरंग		और १६८२ ।
जान कवि	३	क्या डीना की २० वा० स० १६६३ प्र० वा० स० १७८४
जान कवि	४	क्या खिरखा शाहजादे व देवन दव की
नानचद न गोदय	५	पन्मिनी—चरित २० वा० स० १७०२ प्र० नि०
या लक्ष्मण्य		वान स० १७५१ ।
हेमरतन	६	गोरा बादन पन्मिनी चौपाई म० १७६० ।
जन्मन	७	गारा वापन की वान
जोधराज	७	हम्मीर रासो २० वा० स० १७८५ ।
वान कवि	८	हम्मीर हू
चन्द्राखर	१०	हम्मीर हू
वीरेन्द्र	११	पन्मिनी २० वा० स० १८६८
प्रसाजी	१२	प्रतय की दाया
राजस्थानीगद्य म	१३	वान मायणी चारिणी रो
श्यामनारायण—		
पाहेय	१४	जोहर

अलाउद्दीन जम झूर और निरकूय नरेण के मन्त्र म इतनी अधिन रचनाए
 मुम्पत चार उद्देश्यों में लिखी गई हैं—
 १—अलाउद्दीन की प्रतिभा प्रकृत और निरकूयता का चित्रण,
 २—क्षत्राणियों की सनीत्व निष्ठा का प्रदर्शन
 ३—राजपूनी वीरता का दिग्दर्शन और
 ४—राजस्थानी नरेण द्वारा मुगल मन्त्राण का कथानन की प्रया के समयनाय
 पुरानी नजीर का प्रस्तुतीकरण ।

१—छिजाई बाता भूमिका, डा० मादाप्रसाद गुप्त, प० २२-२३

(घ) सहायक ग्रथ सूची

हिंदी ग्रथ

- अद्ध कथानक स० प० नाथूराम प्रभो, १९५७ ।
अनुराग वासुरी नूर मुहम्मद १९०६ ।
अपभ्रंश साहित्य—डा हरिवंश कोछड़ ।
आधुनिक साहित्य—आचार्य नन्दलाल वाजपयी २००७ ।
आधुनिक हिंदी काव्य की प्रवृत्तियाँ (रहस्यवाद—श्री प्रभाकर माचवे ।
इंद्रावती—नूर मुहम्मद ।
इतिहास—प्रवेश—श्री जयचंद्र विद्यालंकार १९३८ ।
ईरान के सूफी कवि—बाकेजिहारी तथा कन्हैयालाल ।
उत्तरपुर राज्य का इतिहास— श्री गौरीशंकर हीराचंद ओझा ।
एकोत्तरशती—रवींद्रनाथ ठाकुर ।
कवितावली—तुलसीदास (स० डा० माताप्रसाद गुप्त) ।
कविवर जामसी—डा सुधींद्र ।
कबीर—डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी ।
कबीर और जायसी के रहस्यवाद का तुलनात्मक विवेचन डा०
गोविंद त्रिगुणायत ।
कबीर का रहस्यवाद—डा० रामकुमार वर्मा १९४४ ।
कबीर प्रथावली—स डा श्यामसुंदरदास प० स० ना० प्र० सभा काशी ।
कबीर साहित्य की परम्परा—प० परगुराम चतुर्वेदी ।
काव्यकला तथा अन्य विषय—जयशंकर प्रसाद ।
कीर्तिलता—स० डा० बाबूराम सक्सेना ।
कीर्तिलता और अवहट्ट भाषा—न० श्री गिरिप्रसाद सिंह ।

- गीतावली-सुलसीदास ।
 गोरखबानी, १९६० वि० ।
 चदवरदायी और उनका काव्य-डा० विपिनबिहारी त्रिवेदी ।
 चदामन-डा० परमेश्वरी नाल गुप्त हि० प्र० रत्नाकर, बम्बई-६ ।
 चित्तार्माण, भाग २, प० रामचंद्र शुक्ल १९४५ ।
 चित्ररेखा-स० शिवसहाय पाठक ।
 चित्रावली-उसमान (प्र० स० १९१२ ई०) ।
 छिनाईवार्ता-स० डा० माताप्रसाद गुप्त ।
 जानक कथा (द्विवेदी) हि० सा० ह० प्रयाग
 जायसी-डा० रामरतन भटनागर ।
 जायसी और उनका पदमावत-प्रा० दानबहादुर पाठक और
 प्रो० जीवनप्रकाश जाशी
 जायसी की काव्य साधना-प्रो० दानबहादुर पाठक ।
 जायसी के परवर्ती सूफी कवि और काव्य-डा० सरला शुक्ल स० २०१३ ।
 जायसी प्रथावली-स० डा० मनमान गौतम ।
 जायसी प्रथावली-स० डा० मानाप्रसाद गुप्त १९११ (प्र०सा०)
 जायसी प्रथावली-स० प० रामचंद्र शुक्ल (प्र० स०, द्वि०स०, प०स०)
 जायसी साहित्य सिद्धांत और अध्याय-श्री यशदत्त शर्मा ।
 जिन रतनकोश-बंशलकर (१९४४) ।
 जैन साहित्य और इतिहास-प० नाथरामप्रभो ।
 डोनामरू रा हूरा-स० पारोक आनि ना० प्र० सभा दाशी प्रथमावति ।
 तुंगनककालीन भारत (भाग २)
 तमबुक अथवा सपोमत-प० चंद्रवली पाठक (प्र०स) ।
 द्विवेदी अभिनन्दन ग्रंथ (डा० बडधवाल का लक्ष) ।
 पदिसनी का पद्य और गद्य-स० श्रीराम शर्मा ।
 नल इमन-सूरदास लखनवी ।
 नाथ-मंत्र वि-प्रा० हवारीप्रसाद द्विवेदी ।
 पदमाकार पंचामृत-न० प० विश्वनाथप्रसाद मिश्र ।
 पदमाव-स० भगवतीप्रसाद
 पदमावत-जाना भगवान्जीन, १९२५ ।
 पदमावत (सटीक) मुन्शीराम शर्मा ।
 पदमावत (मूल और सजीवनी व्याख्या) डा० वामुदेवशरण अग्रवाल

पद्मावति-श्री प्रियसन-मुघाकर द्विवेदी १९११ १२ ।

पद्मावती-श्री सूयवातशास्त्री १९३४ ।

पद्मावत का काव्य-सौम्य शिव सहाय पाठक ।

पद्मावत का ऐतिहासिक आधार-इन्द्रचन्द्र नारग ।

पद्मावत-सार-इन्द्रचन्द्र नारग ।

पद्मावती-दुषहरनदास ।

पाहार अभिनदन-प्रथ (व्रज साहित्य मन्त्र) ।

पुरातत्व निबन्धावली-महापण्डित राहुन सास्त्रवत्याया ।

पूर्व मध्यकालीन भारत-डा० रघुवीर ।

प्रकृति और हिन्दी काव्य-डा० रघुवश प्र०स० ।

प्रकृत साहित्य का इतिहास-डा० ज० चन्द्र जन ।

प्रिया-प्रफास केशवदास ।

पद्मीराज चरित-दाबू रामनारायण स० १८८६ ।

पद्मीराज रामो (सक्षिप्त) स० ५० हजारीप्रसाद द्विवेदी और डा० नामवर सिंह

पद्मीराज रासो (पद्मावती-समय) स० हरिहरनाथ टडन ।

भक्ति का विकास-डा० मुंशीराम शर्मा ।

भारतीय प्रमाख्यानक परम्परा-प० परगुराम चतुर्वेदी १९५६ ।

भारतीय प्रमाख्यान काव्य (स०-१००० १९१२) १९५५ ।

मध्यकालीन घम-साधना-डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी ।

मध्यकालीन भारतीय सस्कृति-म०म० गौरीशंकर हीराचन्द ओशा

१९२७-२८ ।

मध्ययुगीन हिन्दी साहित्य का तीन तात्विक अध्ययन डा० सत्येन्द्र १९६६ ।

मध्ययुगीन प्रमाख्यान-श्याममनोहर पाडेय ।

मधुमानती-भगन-स० डा० शिवगोपाल मिश्र ।

मलिक मन्मद जायसी-भा० १-डा० कमलकुन्द त्रेष्ठ १९४७ ।

महायान-भक्त शान्ति मिश्र ।

मिश्रबधु विनोद-भाग १ (खडवा प्रयाग) ।

मीराबाई की पदावली-(स० ५० परगुराम चतुर्वेदी) ।

मेघनाथ-व्यय (हिन्दी अनुवाद की भूमिका) ।

मनासत (साधन वृत्त) स० हरिहरनिवास द्विवेदी १९५६ ।

मीराना रुमी-जगदीशचन्द्र वाचस्पति ।

रहस्यवादी और हिन्दी कविता-श्री गुनाव राय और श्री शम्भूनाथ पाडेय

स० २०१३ ।

रहिमन विनास ।

रजपूताने का इतिहास (दू० ख०) म०म० गौरीशंकर हीराचंद्र ओझा ।

रामचरितमानस-नूतनीदास-म० श्यामसुन्दरदास ।

राम और रामावयी काव्य-डा० दशरथ ओझा डा० दशरथ शर्मा ।

रीतिकानीन कवियों की प्रमव्यजना डा० बच्चनसिंह (ना० प्र० सभा)

रूपक रहस्य-डा० श्यामसुन्दरदास ।

बाह०मय विमल-प० विश्वनाथप्रसाद मिश्र म० १९९९ ।

विनमोवशीय (हिंदी अनुवाद) अनु० शिवसहाय पाठन १९६० ई०

विद्यापति-नववली स० श्री रामवण वेणीपुरी ।

वीरसलदेव राम-स० डा० मानाप्रसाद गुप्त-श्री जिन विजयमुनि ।

वीरसलदेव रासो-ना० प्र० सभा काशी ।

बनिकिसन एकमिणी ।

सत बानी भाग १ ।

सत बानी संग्रह भाग २ ।

सदेश रासक (अद्भुतानुवृत्त) स० डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी और श्री विश्वनाथ त्रिपाठी ।

सरस-स० श्रीराम शर्मा ।

सक्षिप्त पत्रमावत-श्री श्यामसुन्दरदास-सत्यजीवन वर्मा १९२६ ई० ।

सुकवि-समीक्षा-रामकृष्ण शिरीमुख ।

सूफी काव्य संग्रह-प० परशुराम चतुर्वेदी १९५० ई०

सूफी मत और हिन्दी साहित्य-ना० विमलकुमार जन १९५५ ई० ।

सूफी मत साधना और साहित्य-श्री रामपूजन तिवारी ।

सूफी महाकवि जायसी-डा० जयदेव १९२७ ।

सूरसुधा ।

सूरसागर-स० नन्ददुलारे वाजपेयी (प्र०स०) ना० प्र० सभा, काशी ।

शकुन्तला नाटक-अनु० राजा लक्ष्मण सिंह ।

शिवसिंह सरोज-शिवसिंह सेंगर स० १९४० ।

हस जवाहिर-वासिम शाह ।

हकायके हिंदी-डा० अतहर अन्वय रिजवी ।

हमारा राजस्थान-श्री पथ्वीसिंह महता १९४०, प्र० स० ।

हिंदी कवि चर्चा-प चंद्रवली पाठ्य ।

हिंदी के आधुनिक महाकाव्य-डा० गाविंदराम शर्मा ।

हिंदी काव्य में प्रकृति चित्रण-डा० किरणकुमारी गुप्ता प्र०स० ।

हिंदी के कवि और काव्य—प० गणेशप्रसाद द्विवेदी प्र० स० ।

हिंदी के विकास में अपभ्रंश का योग—श्री नामवर सिंह प्र० एव द्वि०
संस्करण ।

हिंदी पर फारसी का प्रभाव—श्री अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी ।

हिंदी प्रमाख्यानक काव्य—ग० कमलकुंज शर्मा, १९७३ ई० प्र० स० ।

हिंदी प्रेम गाथा—सग्रह प० गणेशप्रसाद द्विवेदी ।

हिंदी भाषा और लिपि—ग० धीरेन्द्र वर्मा ।

हिंदी भाषा और साहित्य का विकास—प० अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध'

हिंदी भाषा का इतिहास डा० धीरेन्द्र वर्मा ।

हिंदी भाषा और साहित्य—डा० श्यामसुन्दरदास १९३० ई ।

हिंदी महाकाव्य का स्वरूप विकास—ग० शम्भूनाथसिंह, प्र० स० ।

हिंदी साहित्य (द्वि ख०) भारतीय हिंदी परिषद प्रयाग १९५६ ई०

हिंदी साहित्य—डा० श्यामसुन्दरदास ।

हिंदी साहित्य—प० हजारीप्रसाद द्विवेदी प्र० स० स० २००६ ।

हिंदी साहित्य का अतीत (आत्काल—भक्तिकाल)—प० विश्वनाथप्रसाद मिश्र
स० १९५५, प्र० स० ।

हिंदी साहित्य का आदिकाल—ग० हजारीप्रसाद द्विवेदी प्र० स० ।

हिंदी साहित्य का जातिबनात्मक इतिहास—डा० रामकुमार वर्मा द्वितीय एव
तृतीय संस्करण ।

हिंदी साहित्य का इतिहास—प० रामचन्द्र शुक्ल (स० २००८) ।

हिंदी साहित्य का प्रथम इतिहास (प्रियसत कृत) —ग० विश्वीरीलाल गुप्त,
१९५७ प्र० स० ।

हिंदी साहित्य की भूमिका—डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी ।

हिंदुई साहित्य का इतिहास—(तासीट्ट) —ग० लक्ष्मीसागर वाण्येय १९५३,
ई० प्र० स० ।

हिंदुस्तान की पुरानी सभ्यता—श्री वेणीप्रसाद ।

हिंदुस्तानी इतिहास—त्रिभुवनशरी ।

संस्कृत प्राकृत अपभ्रंश

बद्ध कथा — स० नापूराम प्रभो ।

अमरुत शतक—अमरक—श्री ऋषीश्वरनाथ भट्ट स० १९७१ ई० ।

अग्निपुराण (बी० आ—ई एडीशन) ।

आत्मानन्द जन ग्रन्थमाला—१९७८ निणय सागर प्रेस बम्बई

उक्ति-व्यक्ति प्रकरण—दामोदर पंडित
 करवड्डु चरिड (वनवामर वृत) स० प्रो० हीरालाल जन, १९३४ ।
 कपूर मजरी (राशेखर वृत) ।
 काम सूत्रम—अनु०—माधवाचाय ।
 कायानुशासन—हेमचंद्र ।
 कायानुशासन—वाग्भट ।
 कायालकार—भामह ।
 कायादश—दण्डी,
 कायाकार—रुद्रट ।
 कायालकार—कुमार
 सूत्र—स० डा० गेद्रे
 कायादश—दंडिन (गास्त्री रगाचाय रेडडी तथा वेलवन, कर पूना) ।
 कायप्रमाण—मम्मट—स० डा० सत्यव्रत १९५५ ।
 कानिदास ग्रथावली—स० प० सीताराम चतुर्वेदी प्र० स० ।
 कुमार सभ्रम कालिदास ।
 ध्वयाशोक—जानदवदन—स० डा० नयेद्र ।
 गीतगोविंद—विनयमोहन शमा ।
 चौर पचागिका विल्हण ओरियटन युव एजेंसी, पूना ।
 परमात्म प्रकाश—डा० ए० ए० उपाध्ये ।
 भविस्यत्त कहा—दान गुणे बडौदा ।
 मून मायमिन कारिका—नागाजुन पचम संस्करण ।
 सीतावड कहा (श्री अग्नेजी भूमिका) वीरूदन वृत—स० डा० ए० एन०
 उपाध्ये ।

ब्रह्मपुराण
 ब्रह्मणोपनिषत् (गीता प्रेस गारखपुर) ।
 माधवान लकाम बदना आस्थान—गायकवाड ओरियटन सीरीज, बडौदा ।
 वण रत्नाकर ।
 बाल्मीकीय रामायणम ।
 विप्रमोवशोयम (कालिदास ग्रथावली) विप्रम परिपद वागी ।
 स० एस० पी० पंडित (भूमिका भाग) ।
 विष्णुपुराण और विष्णुयमोत्तर पुराण
 सिद्ध रासक—भयाणी जिन विजय मुनि । (आ० ह० प्र० द्विवेदी
 वि० त्रिपाठी) ।

साहित्य दपण (विश्वनाथ वृत्त) म०म० बाणें द्वारा संपादित ।

स० डा० सत्यव्रत ।

श्री मदभगवद्गीता स वालगभाधर तिलक ।

श्री मदभागवत

उर्दू-फारसी

कश्फुल महजूज-दुज्वेरी (उर्दू अनुवाद) पत्राव म ३८
आइने अकबरी ।

उर्दू मसनवी का इतका-अ नून बनदिर साखरी ।

कश्फुल महजूज (ऊर्दू) लाहौर ।

उर्दू साहित्य का इतिहास-एजाजहुसेन ।

खलीनतुन असीफिया-गुलाब ससर ।

खुसरो शोरी-निजामी नवन किशोर प्रेस लखनऊ ।

तारीख ए फिरिश्ना (संगनऊ से प्रकाशित) ।

ननदमन फजी-नवलकिशोर प्रेस लखनऊ ।

नूरुललुगान, भाग ४ ।

मनिक् मुहम्मद तायसी-सयद इल्ब मुस्तफा (१९४१ ई) ।

मिसकालत जनवार-(अरबी) ।

रिमुजुल आरिज मीर हसन देहलवी (१७७८) हैदराबाद क़ुतुबखाना ।

शोरी-खुशरा (ससर) मु युनीवर्सिटी जनीगत ।

लगा मजनू-निजामी (न वि० प्रेस लखनऊ) ।

तूतीनामा

स मीर सआदत अलीरिजवी वि० १९५७ ।

नुरान शरीफ

चन्दरवदन व माह्यार-मुक्कीमी अजउद्दीन सान्बि ।

पत्राव म म उर्दू-हाफिज मुहम्मद शीरानी ।

दनन म उर्दू-नसीफद्दीन हाशिमी ।

रुहे तसब्बुफ-नेहरी ।

मकदमा शरो शायरी स्वाजा अलताक हुसन अली ।

फारसी साहित्य का इतिहास-असगर निमत ।

अंग्रेजी

ए हिस्ट्री आफ ओटोमन-पोइटी-वा० १

अलवरुनीज इंडिया-भाग १ सचाऊ १९१०

- ए हिस्ती आर बगानी लैंगद—निनेवद देन १९११ ई० ।
 ए हिस्ती आर परिणियन निरेवर एन मान्य टास्स ।
 ए हिस्ती आर मस्टन निरेवर—ग० वा० का १९०८ ।
 ए हिस्ती आर रात्र जाफ पुमडन गार—गिग
 ए गोट हिस्ती आर मुस्निम एन एन टिगि—ग० ई० बरीदना ।
 एनल्स एण एगिबम आर राउगान, वा० १ कनन देन्स ग ।
 ऐन एम्पायर विरर थाक निक्कीन मँचुरी—विनिनन ग्गुङ्ग ।
 एन एक्वाभिनसन आर दो मिस्किट टडेडीन एन एनाय, १९२० ई०
 वावर नामा—इतिथ । जहीम्नन अमर ।
 इटोन्वमन ट दो हिस्टी आर मूरीम्न—ग्रावर ग० आरदग ।
 अलगज्जानी—गी मिस्किट—मागरट हिमय ।
 अरिन्गाटिल्स पाइटी—गामपियस ।
 आनी अकवरी—गवानमैन
 आउर ता०
 गानोनाजी आर गिग्या—एय ।
 वामिनन ससृत्त निरेवर—A B Keith
 निक्कनरी आर इम्नाम (१८८८ ई०)—गी० पी० ह्यूड
 निक्कनरी आर बल्ड निरेवर—शिप्ले ।
 इ गिनम एगिब एण निगइक पाइटी—गम० निक्कन ।
 इण्माइकनापीडिया आर इम्नाम वा० ३८ ।
 इण्माइक नापीडिया आर रिनिजन एण एगिब, जेम्स हेल्मिग वा०
 १३ १९२१ ई० ।
 इन्नुगान आर इम्नाम आन इगिबन कचर नागवद
 इरलिगुन आर अवरगी—ग० वाबूराम मरमना ।
 एनिपटस आर ज्यूग एण मोमडन वनदस
 एस्तर दो ना नितरटूर ऐंडु ग० गन्नुस्तानो नामी, (कच)
 १८७०^८ परिवर्द्धित मस्तरण ३ वायुम म १८७०—७१ ई० ।
 इण्डियन कल्चर—वायुम १ ।
 एन ऐन ईम्न रोत्र गालेन ।
 जनालुडीन रुमी—निकसन ।
 गीसरी आर पजाव टास्स एण वास्सम १९१८ ई० ।
 गजटियर आर प्राविंस आर अवर वा० १२, १८४८ ।
 हिस्टी आर इगिग्या वा० ३,—इतिथ ।

पदमावत की अनेक
प्रतियाँ विशेष रूप से — { १।० हि० वि० वि० की प्रति ।
भारत कला भवन की कथी प्रति ।
रामपुर स्टेट वाली प्रति की माइशाफिम ।
मनेर शरीफ वाली प्रति की कापी ।

मधुमावती—(निगम आम्बुगहन) दो प्रतियाँ भारतीय विद्याभवन उम्बई ।

मसना या मसनानामा—ना० प्र० सभा की प्रति ।

मनासन—मनेर शरीफ ।

मगावती—(हस्तलिखित प्रति) ।

शिलालेख—राउलवेल

राउलवेल (Prince of Wells Museum Bombay)

बगना—इस्लामी वागला साहित्य—सुकुमार सन

पत्र-पत्रिकाएँ—खोजविवरण

अमल बाजार पत्रिका पूजा अक—१९७७ ।

करे ट स्टनीज पटना कानन पटना १९५३ १९५५ ई०

जनल आफ दी अमेरिजन ओरियटल सोसाइटी वा ३ ४ ४१ ।

जनल आफ दी रायल एशियाटिक सोसाइटी आफ बंगाल ।

जनल आफ बिहार रिसच सोसाइटी बष ३८ अक १ २ १९५३ ।

ना प्र० पत्रिका भाग १२ म० १९८८

१३ स १९८६

१४ स १९९०

, अक १ बष ४५ स १९९७ (प० १६५—१६७) ।

अक ४ बष ५-७ स २० ६ ।

अक ४ बष ५ स २०१ ।

ना० प्र० प (हीरक जयनी अक) ३ बष ५ स २० १० ।

अन ३-४ बष ६४ स २०१५ ।

अन १ बष ६५ २ १७ ।

ना प्र० सभा खोज रिपोर्ट १९ -१९०२ (नोटिस १ २) ।

ना० प्र सभा खोज रिपोर्ट स० १९५७-८८ । १९४७ ई ।

ना० प्र सभा नयोत्पन्न अर्थात् विवरण १९२६-२८ ई ।

पुरुपाथ जून १९४२ ई० ।

- प्रसाद जुलाई, १९५६ ।
 माडन-रिपू-नव० १८५६ ।
 राजस्थानी, जनवरी १९४० प० २२ ।
 विश्वभारती, ख० १, अंक २, १९४६ ई० ।
 सम्मेलन पत्रिका १८६४ पौष-माघ । १८८१ शक भाग ५६ सफ्या १ ।
 सरस्वती प्रयाग १९३० ई० ।
 साहित्य-सन्देश भाग १३ अंक ६ (आन्ति पदमायती) ।
 सुतानपुर गजेटियर भाग ३६, १८०३ ई० ।
 हिन्दी अनुशीलन वप ११ अंक ३ १९५८ ई०। वप १३ अंक १०
 १९६० ई० ।
 हिन्दुस्तानी भाग ४ अंक ३ जुलाई १९३४ अप्रेन १८५८ ई० ।
 भारतीय विद्या (भा० वि० भवन, बम्बई-७) वा० १५ ।
 ज्ञानशिला नखनऊ अक्टूबर १९५१ ।
-

